श्रीमद्द्वाल्मीकि-रामायण
[ हिन्दीभाषानुवाद सहित ]
बालकारण-१

अनुवादक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एम.बी.ए. ए.सी.वी.

प्रकाशक
रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद
१९२७
प्रथम संस्करण २०००
Printed by Ramzan Ali Shah at the National Press,
Allahabad.
अनुवादक की सूचना

इस पुस्तक में भी नव भूमिका देना, प्रचलित प्रथा के अनुसार अनिवार्य समस्ता जाता है। तब इसने बड़े प्रथे के आराम में भी भूमिका का होना परमार्थक है। किन्तु भूमिका या तौर पर अनुवादक की लिखी हुई दृष्टि से आवश्यक है। इसी प्रकार के प्रत्येक रजस्तान वाले उनके किसी आलोचक, समृद्धि आदि में भी लिखी हुई है। ये दोनों प्रयाग आज ही प्रचलित हुई हैं, यह कहना उचित न होगा। इस देश में ये दोनों ही प्रयासः आलोचकाल से प्रचलित जान पड़ती हैं। इस इतिहास-अनुभु-रचना अनुमानिकोत रामायण में भी भूमिका है और यह भूमिका स्वयं आदिकविय की लिखी हुई नहीं, प्रत्युत्तर उनके किसी शिष्य प्रशिक्षण की लिखी हुई है। वालकार्ध के प्रथम स्त्रोत की ढींढ़, दूसरे से ले कर चौथे स्त्रोत तक—तीन स्त्रोत आदिकविय के भूमिकात्मक हैं। इसका रामायण के दीवारादारों में अभिरुचि, अनुवादक तथा गोविन्दराज जी ने भी स्त्रीकृत किया है।

“सर्गात्रयभित्ति केनचिदाल्मोकिष्णेण रामायण
निर्देशनन्तरं निर्माय वेदव शक्तनाथ संगमितः।
यथा
याज्ञवल्क्यस्य तथैव तत्व विज्ञानेश्वरस्य व्याख्यातं।”

उक्त तीन स्त्रोत में यह तब इस अनुवाद को पुष्टि करने वाले प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। यथा चौथे स्त्रोत का प्रथम श्लोक हैः—

“प्रासराज्यस्य रामायण वाल्मीकिंगवान्मण्डिषीः
चक्रार्थ चरितं कल्लें विचित्रपदामलंवान।।”
इस श्लोक में महर्षि वाल्मीकि नी के लिये “भगवान्” और “भालम्बान्” तथा दो विशेषण प्रमुख किये गये हैं, ये आदि काव्यचतुर्थ त्यों मार्मिक एवं सर्वह तत्तत्वत्त, शिथिलवशेष स्वर्ण धारण लिये कभी व्यक्तित्व में नहीं ला सकते। फिर इस श्लोक के श्रय पर व्याख्यान देने से भी स्पष्ट विद्वान होता है कि, इस श्लोक का कहने वाला श्रय चतुर्थिता नहीं, अनुमोदक केवल श्रय ही प्रमुख है। अतः श्रय की भूमिका पढ़ने के लिये दस्तुक जनों का, वाल-काव्य के इसरे तीसरे घात और चौथे सर्ग का पढ़ ध्यात रात्रोप कर लेना चाहिए। क्योंकि श्रय की भूमिका में तो आवश्यक वातें होनी चाहिए, वे सब इसमें पायी जाती हैं। यथाः, श्रय की उक्तियता का दिशार्पण, श्रय में निरुपित विषयों का संचित वर्णन, श्रय-विरिमाण का कारण, श्रय-निविमाण का स्थान, श्रय-निमाण का समय, श्रय का प्रकाशकाल और श्रय पर लोगों को सम्बन्धित। वे सभी वातें उन तीन सर्गों में पायी जाती हैं। अतएव इसमें नवी भूमिका लाइटेन की आवश्यकता नहीं है।

तब हाँ, इस श्रय के पढ़ने पर पैदा होने श्रयविह悬挂ष्टिक वर्ण चैति, सामाजिक व्यूर्षि चैति, वामिक व्यूर्षि चैति, राजनीतिक व्यूर्षि चैति पढ़ने के लिए किन सिद्धांतों पर उपनीत हो सकते हैं, वह वात दिखलाने की आवश्यकता है। प्राचीन रैकारों ने इस प्रयोगनीय विषय की उपेता नहीं की लेवल महानुभावों ने भी यथार्थवाद अपने स्वतंत्र विचार लिपिबद्ध किये हैं। उन्हें कि पथ का अनुसरण कर, इस श्रय के प्रस्तुतवहक ने भी, यथार्थवाद अपने स्वतंत्र विचारों का कारण करने में, अपने कर्तव्य की उपेता नहीं की। किन्तु स्वतंत्र स्थान पर तो विचार प्रकट किये गये हैं, वे स्वतंत्र से होने के कारण उनकी विश्व सूच से व्यक्त करने की आवश्यकता का अनुभव कर, अनुभव का विचार, श्रय के परिशिष्ट में, अपने विचारों को
अग्रांग-प्रयाग
कार्तिक शुक्र १४१३ सं १६८२
}
अनुवादक
विषयानुक्रमशिला

पहला सर्ग 1-25

नारदजी द्वारा वाल्मीकि जी का रामचरित्र का संरचना उपदेश।

दूसरा सर्ग 25-3

तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि का वहेलिया को, शाप देना। रामायण विचारादि के लिये ध्रुवा जी का वाल्मीकि जी के आत्मसाहित्य करना।

तीसरा सर्ग 36-48

समाधिक द्वारा कृप्या का संपूर्ण रामचरित की “प्रत्यक्ष-मिख” देखना।

चौथा सर्ग 49-55

प्राच्यमवासी श्रीरामचंद्र जी के पुत्र कुश और लव के वाल्मीकि द्वारा रामायण का पहला ज्ञान और कुश और लव का राजसंहार में रामायण गाना।

पाँचवाँ सर्ग 52-56

प्रयोच्या नगरी का विस्तृत वर्णन।

छठवाँ सर्ग 59-64

प्रयोच्छा में महाराज दशरथ के शासनकाल का वर्णन।

सातवाँ सर्ग 66-71

प्रामाण्यों, पुरोहितों अंग्रेजियों के साथ महाराज दशरथ के व्यवहार का वर्णन।
(२)

राजवाँ सर्गः
 महाराज दृश्यम का पुनःपासी के लिये यह करने का विचार करना और कुलपुरोहित वशिष्ठ जी से परामर्श करना।

नवाँ सर्गः
 अरुणकुमः की कथा और कुमत्रा का उनको खुलवाने की आवश्यकता प्रकट करना।

दसवाँ सर्गः
 राजा रोमपाद के यहाँ अरुणकुमः के द्यागमन को कथा।
 रोमपाद को कथा शान्ता के साथ अरुणकुमः के विचार की कथा।

ग्यारहवाँ सर्गः
 महाराज दृश्यम का यश करवाने के लिये श्रंगदेश में जाकर अरुणकुमः की प्रयोगिका में लाना।

बारहवाँ सर्गः
 अरुणकुमः की ब्राह्मा से महाराज दृश्यम का त्राह्यों की बुलवाना कर सरसू के कृतिक तत्त्व पर यज्ञविधान के लिये मंत्रियों की श्राहा देना।

तेहरवाँ सर्गः
 यह में सम्मिलित होने के लिये देश देशात्तरों के राजाश्रों तथा त्राह्यों को खुलवाया जाना।

चौदहवाँ सर्गः
 यह का वर्ण और अरुणकुमः की शविष्ठद्वारा।

७१-७६
७७-८१
८१-८८
८८-९४
९५-९९
९९-१०७
१०७-११९
पादरवाँ सर्ग

११९—१२६

dरश्रय के यह में यहमान लेने को भावे हुए देवताओं
का ब्रह्मा जी के साथ वार्तालाप।
dरश्रय के घर में महायज्ञ विषय की मनुष्यकृपा में अचरजी कर
होने की घोषणा।

सोरहवाँ सर्ग

१२६—१३२
आशिकुमार जी आशिका के प्रकट हो कर, महाराज
�श्रय के दिव्य पायस (खीर) का देना और उसे
विभाजित कर महाराज की रानियों का खाना।

सत्रहवाँ सर्ग

१३३—१३९

bहा जी की भांडा से देवताओं की वालयोगी में
उत्पत्ति।

अद्वारहवाँ सर्ग

१३९—१५१

यह समाप्त कर रश्रय का रानियों सहित नगर में प्रवेश।
यह समाप्त होने के वारहव नवर नेमन में श्रीरामचन्द्रादि चार
पुजा का जन्म। पुजा का नाम कराए विष्णुभास। राज-
कुमारों के विवाह के लिये महाराज का चिन्तित होता।
विभासाभिषेक जी तक आयाम।

उठचरवाँ सर्ग

१५२—१५६

विभासाभि जी का श्रीरामचन्द्रादि के यहरस्थार्थ महाराज
से मांगना और महाराज रश्रय का दुखों होता। विभासा-
भिषेक जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी की महिमा का वर्णन
किया जाता।
( ४ )

श्रीरामचन्द्र जी वालक हैं, वल्लान राजसेन से लड़ने यात्रा नहीं हैं, इस आधार पर महाराज का श्रीरामचन्द्र जी का विश्वासित के साथ भेजना प्रार्थीकर करना।

इकीसवाँ सर्ग १६२-१६८
विश्वासित का कुद्र होना, वशिष्ठ जी का महाराज का समभाना और यह कह कर कि, विश्वासित जी के साथ जाने से श्रीरामचन्द्र जी का बड़ा धन्यवाद होगा, प्रेतसाहित करना।

बाइसवाँ सर्ग १६८-१७२
वशिष्ठ जी के समभाने से महाराज का श्रीरामचन्द्र जी का भेजना। श्रीराम और तक्कमला की विश्वासित के साथ यात्रा। विश्वासित द्वारा दोनों राजकुमारों की बला और अतिवला नाशी हैं। विचारविशेष की प्रासि।

तेहसवाँ सर्ग १७२-१७९
गढ़ा और सरयू के सड़क पर पहुँच कर विश्वासित का होने राजकुमारों के शिवास्त्रम दिखाना और उस आश्रम का वृत्तान्त खुणाना।

चौवीसवाँ सर्ग १७९-१८५
तीनों का गढ़ा के पार होना। सरयू नदी का बृत्तान्त।
ताड़का के वन का वर्णन।

पंचवीसवाँ सर्ग १८५-१९१
ताड़का का पूर्ववृत्तान्त। ताड़का के वन के लिये विश्वासित का श्रीरामचन्द्र जी के उल्लासित करना।
छत्रीसवाँ सर्ग १९१-१९९
ताइकावथ और ताइकावथ पर देवताओं का सन्तोष प्रकट करता। विश्वामित्र के साथ दोनों राजकुमारों का रात पर ताइकावथ में वास।

सत्ताइसवाँ सर्ग १९९-२०४
विश्वामित्र का श्रीरामवन्द जी के समस्त बच्चों का देना।

अठाइसवाँ सर्ग २०४-२०९
विश्वामित्र का राजकुमारों को श्रद्धा लगा कर उनको लोटाने की विड़िया बताता। यदि विश्व ढालने वाले रात्रियों का वर्णन करने के लिये श्रीरामचन्द्र जी की विश्वामित्र जी से प्रारंभना।

उन्तीसवाँ सर्ग २०९-२१६
सिद्धार्थ में विश्वामित्र और दोनों राजकुमार। सिद्धार्थ की कथा।

तीसवाँ सर्ग २१६-२२१
राजकुमारों द्वारा विश्वामित्र के यह की रचना। मानवाध्य से मारीच का सागर में पड़का। श्रावणमास से छुटकूल का और वायुवास से अन्य रात्रियों का वर्ण।

इकतीसवाँ सर्ग २२२-२२७
जनक के यहाँ यहाँ और धनुष हेठने के लिये प्राध्यायवासी मुनियाँ का विश्वामित्र जी से प्रारंभना करता। समस्त मुनियों और दोनों राजकुमारों के साथ कौशिक की जनकपुर-यात्रा। स्नेह नदी के तट पर सत्यद्वार का निवास। यहाँ रात में
उस प्रान्त का वृक्षान्त मुझे की श्रीरामचंद्र द्वारा इस्त्मा प्रकट किया जाना।

बच्चीसवाँ सर्ग  

विश्वामित्र जी के वंश का विस्तृत वृक्षान्त वर्णन।  

२२७-२३२

तेतीसवाँ सर्ग  

कुँडलाम की कण्याओं के विवाह का वर्णन।  

२३३-२३९

चौदीसवाँ सर्ग  

गाधि की उत्पत्ति। विश्वामित्र धौर विश्वामित्र की वहिन की उत्पत्ति का वर्णन।  

२३९-२४४

पौतीसवाँ सर्ग  

विश्वामित्र जी के मुख से गज्जा धौर उमा की कथा का वर्णन।  

२४४-२४९

बड़ीसवाँ सर्ग  

कुँडल उमा का देवताओं के शाप देना।  

२५०-२५६

लौटीसवाँ सर्ग  

कार्तिकेय की उत्पत्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन।  

२५६-२६२

उड़ीसवाँ सर्ग  

संग्र के साथ हजार पुष्पों की उत्पत्ति। संग्र का प्रहा।  

२६४-२६९

दृष्टांतीसवाँ सर्ग  

संग्र के यज्ञीय पशु का इतना व्यस्त हर्ष। यज्ञीय पशु की खेती में संग्र के साथ हजार पुष्पों की यात्रा। संग्र पुष्पों द्वारा पुष्पिक्षी की खेती जाता। देवताओं का विचारलित हो जाता जो के पास जा, प्रार्थना करता।  

२६६-२७४
चालीसवाँ सर्ग 

ब्रह्मजी का ध्वन्द्राप हुए, हैन्तालाओं का घीर बंधाना।
यज्ञीय पशु के न मिलने के कारण महाराज सगर की
माहान से पुनः सगरपुत्रों द्वारा पूर्विकों का खोदा जाना।
अतः कपिल जी का दर्शन और कपिल के हृदय शब्द
से सात हजार सगरपुत्रों का भस्म होना।

इकतालीसवाँ सर्ग 

सात हजार पुत्रों की खोज में अश्शुमान का जाना। सगर-
पुत्रों की भस्म के देख उसका दुःख होना। यज्ञीय पशु
का कपिल आश्रम में अश्शुमान द्वारा देखा जाना तथा दूध
hुए सगरपुत्रों के उद्धारार्थ गड़ा जाने के लिये गहड़ जी
द्वारा अश्शुमान की उपदेश मिलना। यज्ञीय पशु ले ला कर
अश्शुमान का महाराज के दे कर यह की पूरा कराना और
उनसे अपने पितृभाष्यों के भस्म होने का चुटकात कहना।

बचालीसवाँ सर्ग 

अश्शुमान का कुछ दिनों तक राज्य कर के अपने पुत्र दिलीप
cा राज्य सौंप स्वर्ग तप करने के लिये हिमालयश्रृंग पर
जाना और वहाँ से स्वर्ग सिधार्ना। दिलीप का श्रीके
यह करना और पुरुषों के उद्धार के लिये विश्वसन हो,
अपने पुत्र भगीरथ का राज्य सौंप, स्वर्ग स्वर्ग सिधार्ना।
तदनत्तर भगीरथ का उग्रतप कर वर पाना।

तेतालीसवाँ सर्ग 

गज्जा के वेग के धारण करने के लिये, भगीरथ का एक
वर्ष तप कर महादेव जी की प्रसन्न करना। गड़बड़ वतरण।
गज्जा के अपने जटाजुट में शिव जी का लेख कर लेना।
तव भगीरथ का पुनः तप द्वारा शिवजी को प्रसन्न करना।
तव शिवजी का गद्धा को विलुप्तिरूपान में छोड़ना। गद्धा का भगीरथ के पंड़ित पोख़े वह कर, उनके पूर्णांकों का उद्दार करना।

चौवालीसवाँ साग्र ३०१-३०६
भगीरथ पर त्रहा जी का अनुश्रुत। रसातल में गद्धाजल से भगीरथ का घापने पितरों का तर्पण करना।

पैतालीसवाँ साग्र ३०६-३१६
अगस्ते दिन गद्धा के पार कर उत्तर तट पर पहुँच कर कौरिकादित्य का विलुप्तिरूपी के देखना। श्रीरामचन्द्र जी के पूर्णरूप विश्वामित्र जी का विलुप्तिरूपी का इतिहास छुँझाना। श्रीमति श्रीरामचन्द्र जी के घापने पृथ्वी का बुधगांवा वर्ष।
समुद्रमंडित की कथा। समुद्र से निकले हुए हलाहल के शिवजी का घापने काल में रखना। धन्नवतः दिति की समुद्र से उत्पत्ति।

छत्तालीसवाँ साग्र ३१६-३२१
दत्त का दुःखी हो मारीच से इन्द्रहन्ता पुत्र के लिये याचना करना। मारीच का दत्त के इन्द्रहन्ता देना।
दत्त की सेवा करते हुए इन्द्र का दत्त के गर्भ में घुस कर गर्मस्या वालक के बच्चे से दुःखे दुःखे कर दालना।

७४तालीसवाँ साग्र ३२१-३२६
वायु की उत्पत्ति। विशाला की उत्पत्ति का घुटान्त।
राजा सुमति की इच्छाकुबंशीय राजाओं की नामावली।
राजा सुमति श्रीराम विश्वामित्र का समागम।
अहतालीसवाँ सर्ग

326-334

शुमति का दोनों राजकुमारों के समन्वय में विभवामित्र से प्रश्न और विभवामित्र का उत्तर। राजा शुमति द्वारा दोनों राजकुमारों का लक्ष्य। तदनन्तर सब का मिश्रित के लिये विषाल पर प्रस्थान। मिश्रित के निकट के एक धार्मिक के विषय में श्रीरामचंद्र जी का विभवामित्र से प्रश्न। उस धार्मिक में पूर्वकाल में वसने वाले गौतम की कथा। श्राहल्या और कपट रूपवारी इन्द्र का समागम। गौतम का इन्द्र की अपने धार्मिक से श्राहल्या के साथ व्यस्मिचार करके निकलते हुए देखना। गौतम का श्राहल्या और इन्द्र का शाप देना। श्रीरामचंद्र जी के पादर्पर्श से श्राहल्या के शापोद्वार की वात गौतम द्वारा श्राहल्या से कहा जाना।

उनचासवाँ सर्ग

335-340

गौतम के शाप से इन्द्र के अग्निकोशों का गिर पड़ना। श्राद्ध विवेकानंद की प्रार्थना से पितृ देवताओं से इन्द्र के मेघ के अग्निकोशों की प्रार्थि। विभवामित्र के प्रार्थना प्रदान से श्रीरामचंद्र जी का गौतम के धार्मिक में जाना। शाप से हुए गौतम का श्राहल्या का श्रीरामचंद्र जी का सत्कार करना श्राहल्या तथा गौतम तया श्राहल्या का सिद्ध कर श्रीरामचंद्र जी का पूजन करना।

पचासवाँ सर्ग

340-341

श्रीरामचंद्र जी सहित विभवामित्र का जनक महाराज के यज्ञशाला में जाना और वहाँ ठहरना। जनक द्वारा विभवामित्र जी का व्यास्तित्य। दोनों राजकुमारों का परिचय।
पाने के लिये राजा अनक का विश्वामित्र से प्रश्न।
विश्वामित्र जी का उत्तर।

इष्क्यावनवां सर्गः २४७-२५२
विश्वामित्र के मुख से अपनी माता का शाप कुट जाने का दुःसन्तान खुश शतानन्द का प्रश्न होना। शतानन्द कुत श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति। शतानन्द द्वारा कौशिक वंश का दुःसन्तान कहा जाना। भाविन्द्र राजा विश्वामित्र का सर्वसैन्य वाणिज्याध्रम में प्रवेश।

वाचनवां सर्गः २५४-२५९
कौशिक झीर वशिष्ठ का परस्पर कुशल प्रभा। कौशिक आत्मिक करने के लिये, वशिष्ठ जी का शवला की सामग्री का प्रस्तुत करने के लिये प्रेषण करना।

त्रेपनवां सर्गः ३५९-३६५
वशिष्ठ जी द्वारा शवला की सहायता से विश्वामित्र का अपूर्व सक्षार। कौशिक का वशिष्ठ जी के शवला के मांगना। वशिष्ठ जी का शवला देना प्रस्वीकार करना।

चौवनवां सर्गः ३६५-३७०
कौशिक का वर्जोशी शवला को वांच कर पकड़ लें जाना। शवला का वंधु छुड़ा कर वशिष्ठ जी के पास भाना और दुःख प्रकट करना। वशिष्ठ जी का शवला के धोरज बचाना। विश्वामित्र का सामना करने के लिये शवला का स्तेन्ध यवनान्द का उत्पाद करना।

पञ्चपनवां सर्गः ३७१-३७७
वशिष्ठ झीर और विश्वामित्र का युद्ध। विश्वामित्र का पराजय।
विश्वामित्र का अपने पुत्र की राज्य सौंप कर तप करने की
हिमालय पर जाना। बर्दान में महादेव जी से समस्त प्राणों के प्राप्त कर, विश्वामित्र का पुनः वशिष्टायुष्म पर 
प्राकाश्य करना और प्रायम्य की उजाड़ना।

छपनवाँ सर्ग

१७७-३८२

वाशिष्ट जी का प्रपने प्रहादपद से विश्वामित्र के चलाये 
समस्त प्राणों की निष्फल कर देना। विश्वामित्र के चलाये 
प्रहाद तक के प्रपने प्रहादपद से वाशिष्ट जी का निष्फल 
कर डालना। तद्धवाल की सन्मीलन जान विश्वामित्र 
का प्रहादल सम्बन्ध खर्चने की प्रतिश्र करना।

सचावनवाँ सर्ग

२६२-३८७

रानी के साथ ले विश्वामित्र का महापर्यय प्राप्त 
करने के लिये दृष्टिगत दिशा में जा घर चल करना। वहां 
उनकी प्रपनी रानी से दूरविभादिः पुनों की प्राप्ति और 
एक हज़ार वर्ष चल करने के बाद भ्रामा जी का प्रकट 
हो। कर उनको "राजापृ" की पदबी प्रदान करना। इसी 
बीच में राजा विश्नु का सदैव नवन जाने के लिये वाशिष्ट 
जी से यह करने को प्रारम्भ करना। उनके निवेदन 
करने पर विश्नु का वाशिष्ट जी के पुत्रों के पास जाना।

अद्वानवाँ सर्ग

२८८-३९३

गुरु-प्राप्ता-उन्निष्ठ राजा विश्नु के वाशिष्टपुनोंत द्वारा 
यावानलय के प्राप्त होने का शाप। तद्विन्दु का विश्वा- 
मित्र के निकट गमन और उससे प्राप्त अभीष्ठ निवेदन।

उनसत्वाँ सर्ग

३९४-३९८

विश्वामित्र का विश्नु का सदैव स्वर्ग में भेजने की प्रतिश्र 
करना। विश्नु की यह करने के लिये प्रपने शिष्य
(१२)

देह कर विश्वामित्र का अर्थ अनुविष्टों का भुलाना। वरिष्ठों का भा महोदय नामक अनुष्टि का भुलाने पर न भ्राना। 'भ्रान: विश्वामित्र का उनकी शाय देना।

लाठचाँ संग २९६-४०६

विश्रुङ्क के यह का चर्चा। उत्साह लेने के लिये उत्स्व यह में भुलाने पर भी देवताओं का न भ्राना। इस पर कुछ हो विश्वामित्र जी का अपने तपस्वी से विश्रुङ्क के सबने खर्च मेजना। किंतु, इन्द्रजी देवताओं का विश्रुङ्क का सबनेखर्च में भ्राना भला न लगने पर विश्रुङ्क का। पुष्पिणि पर मिर्जा और "वचाहें वचाहें" कह कर भ्राना। तब कोष में भर विश्वामित्र का नयी सुखि रचने में प्रभुत होना। तब घड़ा कर देवताओं का विश्वामित्र जी का मनाना। विश्रुङ्क सदृ धाराः में शुकू पूर्वक रहने, देवताओं के यह स्वीकार कर लेने पर, नयी सुखि रचना से विश्वामित्र का निवृत्त होना।

इक्षुधवाँ संग ४०६-४११

द्वादश दिशा में तप में विन्ध्य होने पर विश्वामित्र जो का उस दिशा को झोंक पश्चिम में पुकार में जा कर उग्र तप करना। इस बीच में अभ्यरोप राजा का यह करना। उनके यह पर्व का इतना धारा नृत्या जाना। यह पूरा करने के लिये पुराणिक का अभ्यरोप से किसी जलीय नरपत्ता के जल ना का अभ्यरोप करना। गौरव के लालच में या अनुभव का अपने विचारे तुच्छ शृणुःशेष की राजा के हाथ बदना। शृणुःशेष को ले राजा अभ्यरोप का प्रस्थान करना।
राजा रामरीप का पुण्डर में श्रायमन। शुनःश्रेय का विश्वासित्र के निकट जा प्राण धरने और रामरीप का प्रभुस्वर यह पूर्ण होने के लिये प्रार्थना करनात्तू। विश्वासित्र का शुनःश्रेय के द्वारे प्रपने युग्मों को नरपशु वन कर राजा के साथ जाने को श्राय देना। श्राया न मानने पर विश्वासित्र का युग्मों का श्राय देना। विश्वासित्र के वतलाये मंडलों का नप करने से शुनःश्रेय की यह में रज्जा और रामरीप के यह की समाप्ति।

वेदमार्ग रागों ४१८-४२४
विश्वासित्र का श्रायर श्रेयका का समागम। पीछे पुण्डर देव देव देव का उत्तर हिमाल में जा कोशिकाके तट पर रख कर तप करना। किंतु वहाँ भी प्रभुदेव सिद्ध
न हुए। उनका ध्यान ऐसे तप करना।

चानसद्वार्थ रागों ४२४-४२९
विश्वासित्र के तप से डिगाने के लिये इन्द्र का रथ धरात्मक का विश्वासित्र के पास भेजना। विश्वासित्र का क्रीष्ण में भर रथ का श्राय देना। क्रीष्ण के कारण तप
नष्ट होने पर विश्वासित्र का श्राय जिन क्षी क्रीष्ण न करने का साहाय्य करना।

पंचाश्वार्थ रागों ४२९-४३१
एक हजार वर्षों तक निराहार तप करने के पीछे विश्वासित्र का श्रायार करने के बैठना और उस समय श्रायार का रथ धर इन्द्र का श्रृ त विश्वासित्र से मँगण सागर
और विश्वासित्र का उनकी ध्रुवने सामने परोसा सारा ध्रुव
उठा कर वे देना। तब विश्वामित्र का घेरा तप फरना।
उनके तप के दीनों लोकों के नए हैं जाने की श्रुति से अभाव का विश्वामित्र के व्यर्थित्य प्रमाण करना। विशिष्ट जो
द्वारा विश्वामित्र के व्यर्थि होने का प्रत्यक्षात्म। शताभजन्न
के मुख से विश्वामित्र का भूतत्व हुन राजा जनक का
दर्शित हो और विश्वामित्र से प्राणा मांग कर चढ़ी से विद्वा
होना।

छियासठवाँ सर्ग  

विश्वामित्र का राजा जनक की दीनों राजकुमारों का धन्य
देखने के लिये वहाँ प्राणा वतलाना। राजा जनक का उस
शिवद्वार का पूर्व भूतत्व कहना। फिर हल चलाते हुए
लीता की प्राकृति का भूतत्व राजा जनक द्वारा कहा जाना।
जनक का यह भी कहना कि, दूसरों से न चढ़ाये गये
धनुष पर यदि श्रीरामचंद्र जी रोदा चढ़ा देंगे तो, बीर्य
शूलका लीता उनके विवाह दी जायगी।

सरसठवाँ सर्ग  

विश्वामित्र जी के कहने पर राजा जनक का शिवद्वार
मांगवा कर दिखालाना। श्रीरामचंद्र जी का प्राणायास उसे
इता लेना और उस पर रोदा चढ़ा कर लोचन। खोंचने
में बड़े चढ़के के साथ धनुष के द्वा हुकड़े हो जाना।
विश्वामित्र जी की प्रत्यक्षतिके वरात सजा कर 
लाने के
लिये, राजा जनक का प्राप्त दूतों की प्रायोग्या
मेंजना।

अड्डसठवाँ सर्ग  

मिथिलेश्वर के दूतों से श्रुत संवाद हुन महाराज दर्शन
के कंठियों और पुरुषोत्तों से सलाह कर ब्रम्हले दिन प्रातः
काल जनकपुर के लिये प्रस्थान करना।
उन्हेंत्रवां सर्ग  ४५७-४६१
महाराज दुर्गारथ की जनकपुरायाथा। जनकपुर में दुर्गारथ,
प्रोर जनक की शंका और विश्वास का दोनों की देख हर्ष
प्रकट करना।

सतरवां सर्ग  ४६२-४६६
सौकारपुर से राजा जनक का दूत भेज दूर अपने भाई
कुशार्रज के पुलवान। राजाजनक श्रीकुशार्रज का पुरोहि
त सुप्रभावित विषय सहित महाराज दुर्गारथ से समागम।
धारत जी का दुर्गारथ के वंशावली का निष्कर्ष करना
प्रोर श्रीरामचंद्र परं लढ़का के विवाह के लिये कल्याणों
का मांगना।

इकड़तरवां सर्ग  ४७२-४७७
जनक के मुख से अपने वंश का परिचय। श्रीराम और
लढ़का के सीता और ऊर्मिला देने की राजा जनक की
प्रतिवाद।

वहतरवां सर्ग  ४७७-४८२
धारत की प्रभावित से विश्वासित जी का कुशार्रज को
लड़कियों के सरत और श्रुति के लिये मांगना। जनक
का देना स्वीकार करना। अपने दिन विवाह करने का
निष्कर्ष करने पर महाराज दुर्गारथ का जनवासे में जाना
प्रोर गेरालादि करना।

विहतरवां सर्ग  ४८३-४८६
राजा जनक के राजभवन में श्रीरामचंद्रादि के विवाह
होने का वर्णन।
चौहतर्करां सर्गः

प्रागले दिन श्रीरामचन्द्रदिक्रि का आग्नेयचंद्र मकर निन्द्रामित्र का विदा होना। महाराज दुर्गारथ को उदाहरण पूर्ण में विद्वृत्ति और तनक द्वारा दाहन का दिशा जाना। महाराज दुर्गारथ की यात्रा और मागे में चित्र। परशुराम जी का आगमन। परशुराम और श्रीरामचन्द्र का परस्पर वार्तालाप।

पञ्चहतर्करां सर्गः

परशुराम की श्रीरामचन्द्रदिक्रि से कुछ गर्वगगमी की वात। महाराज दुर्गारथ की परशुराम जो से वालकी का अभ्यासद्रम देने की विचार। परशुराम का शिवधुनुप की अथेता वैश्ववधुनुप का अथिनिक प्रसाव वततान।

छत्तहतर्करां सर्गः

श्रीरामचन्द्रदिक्रि का वैश्ववधुनुप पर वाण रच उसे भाँचता और परशुराम को परलोकात्मक के तत्तत कर देना। तब गर्व लाग कर परशुराम जी का श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करते हुए महेंद्र पर्व पर गमन।

सतत्तहतर्करां सर्गः

महाराज दुर्गारथ का प्रस्तुत हा प्रताध्याय की योग पुनः प्रस्थान। महाराज दुर्गारथ के राजधानी में पहुँचने पर नगरनिवासियों का हुर्ष प्रकट करता। श्रीराम सहित भरत का वनिहाल जाना। सीता और श्रीराम के पारस्परिक प्रेम की वृद्धि।

इति
ग्रन्थ में व्यवहार सहूतादरों की व्याख्या

( गो ० ) गौरविन्दराजीय भूषणादेवीका।
( रा ० ) नागेश मद्व की रामाभिरामी टीका।
( शि ० ) शिवसहायराम की शिरोमणि टीका।
( वि ० ) विषमपदविवृतिटीका।

( ) जा वाक्य पैरों के भीतर हैं वे अनुवादक के अपने हैं भाषा कथा की भास्कर्ता। उड़ करने के लिये जोड़ दिये गये हैं।

[ नोट ] पैरों के भीतर मिहीन घटनाओं में जा “नोट” अर्थात् टिप्पणियाँ दी गयी हैं, वे अनुवादक के ख्यात विचार हैं।

( शि ० गो ० ) अनुवादक के जिस श्रृवक के प्रचल में ( शि ० या 
( गो ० ) अनुवादक के प्रचल में, वहाँ समस्या चाहिये तो कह श्रृवक शिरोमणि टीकाकार के मतानुसार प्रथम गौरविन्दराजीय भूषणादेवीका के प्रचलीक स्वस्तित किया गया है।
श्रीमद्रामायणपाठ्यगणेशकम्

[नोट—सनातनधर्म के अन्तर्गत जिन वैदिकसम्पदायों—है—श्रीमद्रामायण का पारायण होता है, उन्हें समप्रदाय के अनुसार उपक्रम और समापन क्रम पत्वेक खण्ड के आदि और अन्त में क्रमरूप दे दिये गये हैं।]

श्रीवैष्णवसम्पदायः

क्रजज्ञाने राम रामेति मुहूर्त मघुराच्छरम्
श्राह्य कविताशाखां चन्द्रे सवामोक्षिकेनकं नमु ॥ १ ॥

वामोक्षिकुवसिंहस्य कवितावनचारिणः
श्राह्यंग्रामक्षणार्को न क्षति परं गतिम् ॥ २ ॥

यः प्रक्षतलं रामचरितामृतसागरम्
श्रुस्तस्तर्घुर्षि चन्द्रे प्रचेतसमकल्पम् ॥ ३ ॥

गणेष्मवीर्यां श्रमकीकृतरात्रंधाम्
श्राह्यंघामाधामाजार्करं चन्द्रे निलालयम् ॥ ४ ॥

श्रजनानन्दनं चररं जनकीशोकनाशनम्
कपिश्मकहन्तारं चन्द्रे लज्जक्षणधरम् ॥ ५ ॥

मेनोजजं माशुन्तुन्येवे
जितेत्निः शुद्धिं वरिष्ठम् ॥ ६ ॥

वातावरणं वानरयुधसमुखः
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ ७ ॥
(२)

उष्णं च सिन्धोः सलिलं सलौलं
यः श्राकवधि जनकामाणाः।
प्राच्य तेनैव दृश्या लड्डा
नमासि तं प्राक्षतिराधनेयम् ॥ ७ ॥

प्राक्षतिराधनेयंतिपाटलानं
काष्ठान्नादिकमनीयविग्रहम्।
परिधातःरथमुलवासिनं
भावायमि पचमाननन्तनम् ॥ ८ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकैर्त्तिनं
तत्र तत्र कुटमस्तराजलिम्।
वाप्पवालिलिपिपुर्वंलोकाचनं
माराति नमत राधसानंकवर् ॥ ९ ॥

वेद्वेद्वेदे प्रेम मिति जाते दृश्याधमजे।
वेदः प्राचेतसादासोंषात्तात्त्वाययंगासामना ॥ १० ॥

तद्वागतःसाधसानिधियोः
समसधूरपनतार्थवानरथयम्बम्।
पुक्कवर्तिनं मुनिश्वासि
दृश्यिरस्त्रव घर्घं निशामयत्वम् ॥ ११ ॥

श्रीधरवं दृश्यात्मकमासामीयं
सीतापदं रघुकुलान्घण्यत्वदोपम्।
प्राचार्यवाहुमरविन्ददलायतां
रामं निशाचरविनाशकारं नमामि ॥ १२ ॥

वेद्वेद्वेदहस्तिनं चरुद्रमति हृस्में महामायपे
स्म्भेपुष्पकमासनं मामियेय वीरांसने छुस्थितम्।
(२)
प्रथ्य पाचयति प्रभावन्यते तथा पुरुषः परं
ञ्ज्याल्यां भरताद्रिशि: परिधुर्तं रामं भजे प्रायामलम् ॥१३०॥

---

माध्यसम्भवायः

शुक्रास्रवर्ण विषयां शशिवर्ण चतुर्मुन्जम् ॥
प्रसन्नवर्ण ध्यायेत्सर्वविष्णुपशान्तिः ॥ १ ॥
जड्मृणारायणं बदन्ति तद्द्रक्करयो हि थः ॥
श्रीमद्भानन्दतीर्थविवाही गुरुस्तत्व न नमायस्यहम् ॥ २ ॥
पदेदे श्रामयो चैव पुराणे भारते तथा ।
प्रदातन्ते च मध्ये च विषयं: सर्वत्र गीते य ॥ ३ ॥

सर्वविष्णुपशान्त् सर्वसिद्धयं परम् ।
सर्वजीवन्येतारं बदन्ते विजयवं हरिम् ॥ ४ ॥

शर्मीसीघ्रस्व रामं सर्वरितविनायकम् ।
जानकीजानिना वर्गे महायुधविनितम् ॥ ५ ॥

प्रज्ञां महुप्रहिरजं विमलं संदर्भ ।
ध्यानन्दतीर्थमुलं भजे ताप्रज्ञापहम् ॥ ६ ॥

मवति यद्गुञ्जावासैहयुक्तोपि वामी
जडमोहवर्ण जन्तुर्जायते प्राक्षमोति: ।
सकलचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्रचन्द्र
भम वचस्ति विषयं सत्तिङ्ग भलये छ ॥ ७ ॥

मिश्यासिद्धान्तदुच्छत्रभोज्यामस्वनविचरणः ।
जयतीर्थविवाहीनिर्माणेऽनो कुञ्जव्रेः ॥ ८ ॥
विचे: पदश्रव गस्मीरेण्याच्यामिरिगिते ।
गुरुभारे भज्जयती साति भ्रोजयतीर्यवाकः ॥ ६ ॥
भूजन्टे राम सामेिति मधुरं मधुरात्सम ।
प्राणत्ता काव्यतासारं चव्ये गाल्मीरीकिरिकिलम ॥ १० ॥
गाल्मिरीकिरिकिलय निसिन्धय काव्यतासारारिगः ।
श्रवणामकमथानारिं को न याति परं गतिम ॥ ११ ॥
व: विचसत्तं रामचरितं मूललगभ ।
श्रूपदस्तं सुनति चव्ये प्राचेतसमकंदमपम ॥ १२ ॥
गोष्णेदीकुमारीशं मशकोहतराजस ।
रामायणमाहामालार्तं चव्ये निललामजम ॥ १३ ॥
प्राणश्चानन्दनं चव्ये साति शुक्ला-शोकनार्यानम ।
कपीशमन्चान्तारं चव्ये लहोस्यमहम ॥ १४ ॥
प्रेमाचवं माहत्तुल्येनानं
जितिदिवं बुद्दिमांतं करिः ।
दाताम्यं चान्ययुग्मुंतमयं
श्रोतामृज्ञ श्रस्वतं ममाम ॥ १५ ॥
वहहव्य सिरोऽस्यं सलिलं सलोतां
व: श्रोतस्व जनकात्मासाधः ।
प्राणाय तेनवीर चुव्याह लहूः
नमामि ते प्रश्निराक्षनेष्यम ॥ १६ ॥
भान्तनेत्समिश्यत्तलाननं
काश्मान्त्रिकमनीविग्रहम ॥
पारिजालतकमूलबासिनं
भावयामि पचमानलन्दनम् || १७ ||

यजुः यजम रघुनाथकीर्तिने
तः तः कृत्तमस्तकानागिनः
वाप्पवारिनिपूर्णालोचनं
माहात् नमत राजसान्तकम् || १८ ||

बेद्वेचे परे पुंसि जाते दशरथाले।
बेद्वे: प्राचेतसादासोतसाताश्रामायासतमा || १६ ||

स्वादमपद्वतीरं दातारं सर्वसमपद्वम्।
लोकामिरां श्रीरामं भूयो कृतुष्यो नमाम्यहम् || २० ||

तदुपगतसमाससंधियोऽगं
समलीनंतराध्वाकचंद्रं।
श्रववरितं सुनिश्चोतं
दशाशिवन्दन च वर्ध निशामयज्ञवं || २१ ||

बैदेहीसहितं छुदुमतलेः हृदे महामरणं
मधे पुष्कामसं मथिमये चोरासने छुस्तितम।

ब्रह्म वाचयत् प्रभुजन्मते तत्तं मुनिभः परं
व्याख्यातां भरतादिनमं परिवृतं रामं भजे श्रामलम् || २२॥

चन्दः चन्दः विशिष्ठचन्द्रकान्द्रियाण्यात्त्रकेवः।
व्यत्य व्यापत् श्रुगुणशायते देशतं कालत्रथः।
भूतावयं लुहनचितिमनोमकावङ्कांकमः।
स्वानाथ्यं ना विद्वदशिकं ब्रह्म नारायणायक्यं || २३॥

भूषारलं भुवनसनवस्यापिरायायम्।
लीलारलं जलाधिकुहितुकथनामलिरतम्।
(६)

चन्तारलं जगति मनतां सत्तरोजज्युर्तनं
कौस्य्याया लस्तु मम हस्समेगले पुज्जरलम् ॥ २४ ॥

महाव्यक्तः करणसेर्सोधियत्मात्मसमन्द्रम् ॥
कव्यसर्वं रामकीर्ति द्युमन्तुपुरास्मद् ॥ २५ ॥

वुक्ष्यास्मात्म भीमाय नसेश यत्व भुजान्तरस्यः ॥
नानावीरस्वर्यानं निकापामार्तिँ वक्षेत ॥ २६ ॥

स्वान्तस्थानन्तरस्व्याय पूर्वांकानमहागर्भसे ॥
उत्तकालकर्षणाय मध्वसुधाभाव्यये नमः ॥ २७ ॥

वाहलिकेः: पुनीयानो महोहरपदाश्रया ॥
वदुद्धरुपिनीलुब्धि कव्यस्तर्लिंका हय ॥ २८ ॥

सुक्किलस्तादुरे रस्य मुलरामायेशारे ॥
विहरले: महोहरां: प्रीतितं गुर्वो मम ॥ २६ ॥

हयत्राव हयनीव हयग्रीविति तेऽवच्चै वच्चै ॥
तस्य निश्चरते वाग्यी जहुक्ज्ञ्ञानवाहवस्तु ॥ २० ॥

स्मार्तसम्मद्रायः

शुक्लार्थचर्या विष्णुं शाशिर्वाः चतुर्म्भुजम् ॥
सत्वधर्मं ध्यायेतर्विष्णुपश्यान्तये ॥ १ ॥

वामोशाया: ह्रमनस: सर्वार्थोनासुपकमे ॥
यं नता क्षत्क्र्या: स्थुस्तं नमामि सजानभनम् ॥ २ ॥

वेदाभिष्कर्ता चतुर्म्भ: स्फटिकमिश्रयोपत्तमालाः द्धानाः
हस्तनेवेभं पदं सितमपि च सुभं पुस्तके चापरेणा ॥
भासा कुन्दरुप्यातिमिनिम| भासमानाधीमाना
सा मे चार्देवेंयं निवसल्ल बदने सर्वदा लुप्तस्मा ||३||
कुज्जतं राम रामेति मधुरं मधुरात्तरमुः
प्रास्तः कथितशाश्वदं वन्दे वाल्मीकिके विकल्मू || ४ ||
वाल्मीकेषु सनिस्निखय कथितानवारिणः
शृणुवरमकामवानादं का न याति पर्यं गतिमुः || ५ ||
वा: पिक्स्ततं रामचरितमृतसागरमुः
आत्मस्तं सुनि वन्दे प्राचेतसकमनरमुः || ६ ||
नाप्पदर्द्वताभारोऽ जगत्तितरात्रजयमुः
रामायणमहामालालर्लं वन्दे दनिलात्रजमुः || ७ ||
प्राज्ञनानन्दवं चेरं जानकीशोकनाशनम्
कष्य्गमलहतारं वन्दे लण्डनमय्युः || ८ ||
उज्ज्वलिन सिन्धोः सिन्धिलं सलीलं
वा: शीर्षावहि जनकाकामाजयाः ||
प्राद्यात तेनेव दुर्दृष्ट लण्ड्वा
लमामि ते प्राश्लिराजनेययमुः || ९ ||
प्राज्ञायकमतिपाटलानां
काष्ठवार्त्रिकमात्यविश्वमुः
पार्श्वातसरसूतवाम्भिनः
भावार्थ यथमानन्दनमुः || १० ||
वषृ यथा रजुनाथकोटितं
नं तम तत्र क्षतमस्तकार्जुनिकमुः ||
( = )

वाल्पारिपरिपूर्णलोचन
मार्हति नमस्त रामायणम
|| ६१ ||

सनेवापं मार्हतुमुद्यंगः
वितेषोयं बुद्धिमत्तं बारिष्टमः।
वातावर्णं बाणश्रृङ्खलमः
श्वेतमुद्रं शिरसा नमाभि || ६२ ||

यः कर्षोदलिषःसुमुद्रेवः
सम्प्रक्षःवल्यादरात्
वाल्मीकिवेदनारीविन्दुःलिङ्गं श्रामायणार्यं मदुः।
नामविधिरानििवलिङ्गारीयात्वात्त्यत्लोपद्रवं
संसारं स विहाय भच्छर्ति पुमानिवारोऽपि श्रवणस्य तमम || ६३ ||

तद्दः गतसमायसनिवेष्यां
समम्पुरंमन्तत्वाध्यायवाचवाचम्।
रखुरतिरं मुनिनवीरां
दुष्कुशिं सरसं वर्ष निशामयधवम् || ६४ ||

वाल्मीकिरिमसभुवत रामकाल्यगार्यामणी।
पुनातु सुधरं पुष्यता रामायणयामहान्तः
|| ६५ ||

श्लोकसारसामाकोणः सर्गकऽलस्तुमुः
कायद्याहमहामीनं च उद् रामायणांधोमः
|| ६६ ||

वेदवेदं परं पुरस्तः जाते दुःश्यामले।
वेदं प्राचेतसादातीत्सातात्रायामणयालमृ
|| ६७ ||

वेदेवेदीसहितं युद्धमतले हैमे महामहे
प्रभुपुष्पसबासने मशिमगे वीरासने युद्धितमुः।
प्राचे वाचयति प्रमक्षजुते तत्वं मुनिनम् परं
व्याह्यातं भरतादिभि: परिचुतं रामं भजे श्यामलम || ६८=१||

.
यामे भूमिस्नान युद्धं द्रुमान्यपर्वतः शुभमिशालः
गंगा भरतस्च शार्वदुःलयोऽवं वायुदीर्मक्षोषः च।
मुगोध्यशः विशोषणः युधस्तस्त तारास्यते जाम्वानृ
मेघे नीलस्रोणोऽसलंगयं रामं भजे प्रमाहलम् ॥११॥

नमोऽस्तु रामाय सल्लभमाय
द्रव्यं च तस्ये जनकारमायं।

नमोऽस्तु नड़ेन्द्रयमानि निमेयो
नमोऽस्तु चन्द्रकर्मद्रुगमीम् ॥ २० ॥
धोरामचन्द्रायनम्
श्रीपते रामातुजय नमः
प्राचार्य गठेलापेन्द्रिकमय प्राचार्यपारंपरोम्,
श्रीमद्धद्मण्योगिनियमुनावासतमयनायाविकान्।
वाल्मीकि मद नारदेन मुनिना मार्देवतावलम्,
सौतालिखमायायुक्तसहितं श्रीरामचन्द्रे महें॥ १॥
पितामहस्त्रापि पितामहाय,
प्राचेतसदेशुवलपदाय ।
श्रीमाध्यकारोतमेन्द्रिकाय,
श्रीगैतपुराण्य नमोनमस्तात्॥ २॥
लक्ष्मोनाय समारंभाय,
नायाधुनि मध्यमा ।
प्रसादाचार्य पर्यंताम्,
वंदे गुरुपरम्पराम्॥ ३॥
श्रीदुर्गस्तवकुलचारिनिशिलमावृः,
श्रीश्रीनिवासनुर्वसुसूतंत्रांसम्।
महाबिंदेन्द्रिनपदाम्बुजसुह्रवाधाम्
रामातुझय मुचयवर्महं सजामि॥ ४॥
श्रीमद्दाल्मीकिरामामायासू

बालक्राण्डः

ॐ
tपः स्वाभ्यायानिर्तं तपस्वी वागविदा वरस्।
नारदं परिपच्छ वाल्मीकिर्मुनिनिपुःवस। ॥ १ ॥
tपत्त्वा श्रीर स्वाभ्याय (वेदपाठ) में निरत श्रीर बोलने वालों
में श्रेष्ठ, श्रीनारद मुनि जी से वाल्मीकि जी ने पूँछा ॥ १ ॥
के न्यासिन्सांग्न छोके युणवाक्रं वीर्यवान्।
धर्मक्षेत्र कुङ्कुमसं सत्यवाक्यो हद्वरतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च का युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वानः कः समर्थश्च कर्त्तिकमियद्वशनः ॥ २ ॥
आत्मवानः जितकर्णो चूक्तिमाक्रोणसयकः
कस्य विभयति देवाव्य जात्रोपस्य संदुःसे ॥ ४ ॥

eष्ट समय इन संसारः में गुरुवान, कीर्तिवान, धर्माः, कुङ्कुमः
(किये हुए उपकार की न मूलने वाले) सत्यवान्धी, दुःखवत, धनेक

१ यात्राभिविधतायमातः गद्द्रश्रमवाहनद्वयोयमः तेषाः वरसं श्रेरः (गो०)/
२ आत्मवानः —धर्माः (गो०)

* कई उपकारों की अपेक्षा न कर, पुकळी उपकार के बहुत मानने वाले।

(शा०)
चालकायेदें

प्रकार के चैत्र पर कौतुहल हि मे।
भरत दुर्गौतिक, चैत्रवान, नोथ के जीतने वाले, तेजस्वी, हिंदु-शून्य, ग्रीष्म में कुछ होने पर देवताओं को भी भावमित्र करने वाले, कौन हैं। २ ३ ४।।

एतदिच्छायेः श्रूतु भरतू परं कौतुहल हि मे।
महये तव समर्थकसि ज्ञातुमवनविधि नरसू। ५।।
हे महयेः! यह जानने का मुखे बढ़ा चाव है (उक्त कर्म है) ओऽर अप पेसे पुरुष की जानने में समर्थ हैं। यथरावत् ऐसे पुरुष का बतला भी सकते हैं। ५।।

श्रुत्व चैत्रातिकक्रो वास्मीकेनकरो वचः।
श्रुत्वात्मिति चालकान्य महंते वाक्यमन्त्रवीत् ६।।
यह तु, तीनों लोकों का (भूत, भविष्य, ओऽर वर्तमान) बुलान्त जानने वाले देवत्व नारद प्रसग हुए ओऽर कहने लगे। ६।।

वस्ते दुर्गौतिक ये त्याय कीर्तिता गुणाः।
शुने वश्यायन्यं बुद्धा तैयर्यं श्यूत्तां नरः ७।।
हे शुनि। अपने जिन गुणों का वखान किया है, वे सब दुर्लभ हैं, किन्तु हम अपनी समाज से ऐसे गुणों से युक्त पुरुष का बतलाते हैं, शुनिये। ७।।

इष्ठाकुवंशमभो रामो नाम जनेः श्रुतः।
नियतायाः महावीयों शृवतिमान्यशृवतिमाने वशीप्रेये || ८ ||

१ नियतायाः - नियतसम्मान: (गो) वाचकीलान्तःक्रम: (रा)
२ शृवतिमान्य - निमित्साधानसः (गो) ३ वशी - सर्वजगतवशेषस्वयंति
४ वशी: सर्ववामीसहघ: (गो)
# भौगोलिक व्यवहार = प्रजाशासनिक, भूरिने कुदाल (रा)
प्रथमः सर्गः

महाराज उत्पत्ति के वंश में उत्पत्ति वीराकर्म का की की जन जानते हैं। वे न्यायस्वामी (मन के वम्म में रखने वाले वड़े वली, अति तेजस्वी, व्यान्दम, सर के स्वामी। || को ||

'भुदिमानीतिमाने स्वामी वीराकर्मणिवर्णहृः।
विशुल्को महावाहुः कम्बुश्रीवो महाभुः॥ ९॥
महारस्को महेश्वरसे गृहज्ञुः रूठिः॥
आजनावाहुः शुभिः शुरुः शुभ्रिः॥ १०॥

सर्वं, श्रयाद्रावन, मधुरभारी, गोयााः, श्रयानाशक, विशाल
कंजे वली, धीरे मेरी श्रुमाणो वली, श्रुम के समान गर्दन पर
tीन रेखा वली, वड़ी छूटी (छाड़ी) वली, बाहुः छाती वली धीरे
विशाल धनुपारी हैं। उनकी गर्दन की हड्डियाँ (हड्डीलो हड्डियाँ)
मौस से तपीय हुई हैं, उनकी केशों वाले छुटनों तक लटकती हैं।
उनका सिर धीरे मल्लक सुदर है धीरे वे वड़े रितामो हैं || १६ || १० ||

समः समविभक्ताः स्नाग्न्वरणः प्रतापवानः।
पीनवक्षा विशालाशो दुस्क्षीवावृक्षविलक्षणः॥ ११॥

उनके समस्त ध्रुव न बहुत व्याहु हैं, धीरे न बहुत वड़े हैं। (जा ध्रुग जितना लंबा या क्षेत्र ही जितना रहता है उत्तर नहीं लंबा या
क्षेत्र है)। उनके शरीर का चिकना सुदर रंग है, वे प्रतापी या
तेजस्वी हैं। उनकी ध्रुवी मात्र है, (प्रत्यांत हड्डियाँ नहीं दिखाई
लायी पड़ती)। उनके ध्रुवों नेत्र वडे हैं, उनके सब ध्रुव प्रत्यांत
सुदर हैं। धीरे वे संग श्रुम लद्दानों से वुक्त हैं। || ११ ||

1 भुदिमान्—सर्वं || (गो50) 2 नीतिमान्—मर्यादावान् (गो50) 3 महारा
पाहुः—द्रुस्तुपीतरवाहुः (गो50) 4 लक्ष्मीवान्—वाच्यवर्णभायुक्त (गो50)
वालकायड़े

पर्यंतः सत्यसन्तंश भ्रमानां च हिते रतः।

यशस्वी ज्ञानसंपन्न: शुचिर्वर्ध्य: समाधिमाने।। १२।।

वे शरणागत की रचा करना, इस अपने धर्म की जानने
वाले हैं। प्रतिष्ठा के द्वर (वाणे के पक्ष) अपनी प्रजा (रियाया)
के हितीर्धी, अपने प्राणियों की रचा करने में कौशिक प्राप, सवाहः,
पवित्र, सत्यार्थ, प्राणियों की रचा के लिये चिन्तावाय, प्रथमा
भाव तत्त्व का चिन्तमणि करने वाले हैं।। १२।।

प्रजापतिसम: श्रीमान्याता रिपुनिषुद्धः।

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।। १३।।

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्ये च रक्षिता।

वेदवेदायतनः धनुर्वेंद्रे च निषिद्दः।। १४।।

वे व्रजा के समान प्रजा का रचना करने वाले, अर्थात् जीवानुज
व्रज के पेशक, श्रुति का नाश करने वाले प्रथात्व वेदव्रजिर और
धर्मव्रजिर उनके छाय हैं उनका नाश करने वाले, धर्मप्रवर्तक,
व्यवहरणः और जानो जन के रचन हैं। वेदु वेदव्रज के तत्त्वों को
जानने वाले तथा वनुर्वेदा में अर्थ प्रवीण हैं।। १३।। १४।।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वः स्मृतिमान्यातिभावानां।

सर्वेषोकपियं साधुरुद्रीनात्मा विच्छ्रणं।। १५।।

१ धर्मं=शरणागतक्षणस्य ज्ञानार्थिः धर्मः (गो००) २ समाधिमानः—समाधि: आन्तर्वक्षणचित्तात्मानाः (गो००) ३ स्वनात:—सम्भूतिजनः
स्वनाः, जीवि (गो००) ४ विच्छ्रण:—लौकिकलौकिक कियाहृत्वाः (गो००)।

# अपने धर्म, अर्थात् यज्ञ, अष्पगम, दान, दण्ड और युद्ध की विशेष
रूप से रक्षा करने वाले हैं।
प्रथम: सर्गः

वे सब शाखाओं के तल्लों के बाल भूति झालने वाले, प्रतकारण शाक लीला, महा मात्राणी, सर्पसिर्फ, परस्परसार, कभी मौन प्रतिपूर्ण न करने वाले, प्रयास छोड़े गये, और तौराक वहै निर्माणिक विनियमों में कृत हैं।

सर्वदार्शिनः सद्धः समुद्र इव सिन्युभिः।
आर्यः सर्वसम्प्रवेंच सद्यां मियद्र्णनः। १६।

जिस प्रकार सब निर्मों समुद्र तक पहुँचती हैं, उसी प्रकार सजन जन वन तक सदा पहुँचते हैं प्रकाश सन्तान अभाष के समय, क्षण मोजन काल में, वन तक प्रजाः लोगों को पहुँच सदा रहती है। प्रजाः लोगों के लिये उनके पास जाने की मनाई कभी नहीं हैं। वे परम धरात हैं, वे सबका प्रार्थना व्राहय सशस्त्र भूमि—पशु पतना—ते कोई तुम्हारा हो, उसका समान दुष्प्रभु है से देखने जाले हैं और सदा मियद्र्णन हैं।

र च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीरेऽत्ते वेयं हिमवाचिनः। १७।
विरसुषा सद्यो वीयं सामविविषयदर्शनः।
कालाधिनिधत्वः कोधेष समया पृथ्वीसम। १८।

वे सब गुरुओं से युक्त कौशल्या के भ्रान्ति को बढ़ाते वाले हैं। वे गम्भीरता में समुद्र के समान, वैयं में हिमालय को तरह, परस्पर में विपश्चा को तरह, मियद्र्णनस्वत्व में चन्द्रमा की तरह, क्षोध में कालाधिनि के समान, और दमा करने में पृथ्वी के समान हैं।

* चरमशास्त्रसुदारसं चमीमातसङ्गवीकोवीका तथा।
चायायंतान्युपक्षानिनिधाण्यं संपन्नकरूः।
बालकाय्ये

धनदेन सपस्त्याने सत्ये धर्म इत्यापणः।
तमेवगुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १९ ॥

(वह द्वारा देने में कुशेर के समान प्रयोच्तु जब भेज़े हैं तव श्रृंखणी
तरं भेजे हैं, तत्वमाश्च में मानों दूधरे धर्म हैं)। ऐसे युक्तों ने युक
सत्यपराक्रमी श्री रामभद्र जी हैं) ॥ १६ ॥

र्वेष्ट्र श्रेष्ठगुणपूर्वकं ग्रिर्यं दशारथः सूतम्।
प्रकृतीनां हितेयुक्तं प्रकृतिभियक्ष्माया) ॥ २० ॥
यौराजयेन संयोगनुमैौ ख्यातीलाः महीपति:।
तत्त्याभिवेकसंभाज्यारान्ह्यः भायाभ्य जैक्यी) ॥ २१ ॥

(ऐसे) श्रेष्ठ गुणों ने युक्त र्याथे तथा धर्मा के हित की वाहने
वाले व्रेष्ट्र (गुप्त) श्रीरामचंद्र जी भी, प्रयोग के हितकामना के
वदेश ये, महाराज दृश्यरथ ने प्रति पुरवह दूधराज पद में देता चाहा।
श्रीरामाभिवेक को तैयारियों देख, महाराज दृश्यरथ की मिय महिषी
कैक्यी ने) ॥ २०) ॥ २१) ॥

पूर्वे दृशयरथा देवी वर्मनयाचत।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिशेचनम् ॥ २२ ॥

पहले पारे हुए दो दरद्वारा (महाराज दृश्यरथ से) मगि।
एक चर से श्रीरामचंद्र जी के लिये तेष निकाला और दूधरे से
(प्रपने पुत्र) भरत का राज्याभिवेक) ॥ २२ ॥

स सत्यवचनाध्याजा धर्मपाशेन संयतः।
विवासयामास सूर्य रामं दृश्यरथे मियम्) ॥ २३ ॥

(प्रकृतीनाः...युक्तं—जोसि तस्मात्तदाबुल्लुमुक्त) (वैकी)

1 प्रकृतीनाः...युक्तं—जोसि तस्मात्तदाबुल्लुमुक्त) (वैकी)
प्रथमः सर्गः

धर्मं वदने वज्रः (प्रायः प्रपनी वात के धरे होने के कारण)

तस्यादः महाराज दुर्गर्गः ने, प्राणोऽसे भी वह फर प्रपने यारे
पुष्प धीरामचन्द्र जी का वनगमन को घाता दी है ॥ २२ ॥

स नगाम वनं चोरः सर्वधामनुपालयन्।
पितुर्भजनसिद्धान्तकेत्यः मर्यकारणात् ॥ २४ ॥

चोरवर धीरामचन्द्र जी, पिता को घाता का पान करने
चोर कैंदे का प्रस्तर करने के लिये, पितुप्राणासुतार वन को
गये ॥ २४ ॥

t व्रजनवं सियो धाता लक्ष्मणोपजुनगाम ह।
स्नेदाेकिनसंपत्तः सुभिमानन्तर्वर्धनः ॥ २५ ॥

माना सुमिश्रा के धान्त के धरे ने यादेह स्नेह धीर विनय
से वस्त्र धीरलक्ष्मण जी (ब्रह्मस्नेहन्ना)ः धीरामचन्द्र जी के
पीढ़े हो लिये ॥ २५ ॥

ब्रह्मतरं दृष्टान् दृष्टां �.loadedगरमनुदर्शनः।
रामस्य दृष्टान्त भायुः नित्यं प्रणामम सिद्धा ॥ २६ ॥

जनकस्य कुले जाता देवमातेरे निमित्ता।
सर्वलक्षणसंपत्ता नारीणाः नभुः।
सीताप्युनगता रामं शरणं रोहिणी यथा ॥ २७ ॥

१ देवमातेरे निमित्ता—अन्यत्रप्रभवानन्तर्म हस्तेनाधिनिमित्ताविविधमा—

वेदविषया (गोः)

* बिनय से वस्त्र । । हुस्नानुवा का भ्रमण करते हुए ।
बालकाशेन

क्षणों मात्राओं के जाते हेल, श्रीराम जी की प्राणों के समान सदा वित्तिशील, राजा जनक की बेटी, साहात, नवमी का प्रव- तार और नवमी के सवोचम गुणों से युक्त, श्रीमाता जी भी श्रीरामचन्द्र जी के साथ वैसे ही गर्व, जैसे चंद्रमा के साथ रोहितों ॥ २६ ॥ २७ ॥

पैरान्जुगतों दूरं पित्रा दत्तर्येन च ।
श्रीविष्णुपुरे सूतं गजाकूलेऽन्यन्यंत ॥ २८ ॥

इन तीनों के पीछे दूर तक महाराज दशरथ श्रीरामचन्द्र जी गये। श्रीविष्णुपुर में पहुँच कर गाँव जी के किनारे श्रीरामचन्द्र जी ने (रथ सहित अपने) साथव (हुमग) के भी लोटा दिया ॥ २५ ॥

गुहमासाधच धर्मप्रत्या निषदाधिपिति मियम् ।
गुहेन सहितो रायो तुष्मणेन च सीताय ॥ २९ ॥

ते चलने वनं गतवा नदीस्तीतवा बहुदकाः ।
विन्दुक्रूपमुपाय भरद्रास्य शासनात् ॥ ३० ॥

धर्ममाधवश्रीरामचन्द्र जी निपास्तों (महाराजों) के शुलिया अपने स्वारे गुहु से मिले। श्रीरामचन्द्र जी, श्रीलक्षमण जी, श्रीसीता जी श्रीराम बहुत जलवाजी प्रथातू बड़ी बड़ी नदियों के पार कर, जन्म कल ज्ञान पूर्व सिद्ध के वरंजान बुद्धि के वतनाथे हुए विश- कुट में पहुँचे ॥ २६ ॥ ३० ॥

रष्यसारस्य कुला रष्यसारणा चत्व च ॥
देवगन्धन्यसंकाशस्त्रत ते न्यासन्युस्माद ॥ ३१ ॥
उस रम्य स्मारक में हीनों (धीराम, धीरलक्ष्मी धीर लोिना) राम गये धार्यंत वस गये। देवता धीर गणवारी की तरह वहाँ वे हीनों धुल पुर्वक रहने लगे। ३१ द।।

चिन्त्रकुट गते राये पुनरशोकातुस्तदा।
राजा दयारथः स्वर्ग जगाम विलप्त्युत्तम्॥ ३२।।
धीरामचन्द्र जी के चिन्त्रकुट में पहुँच जाने बाद (उधर) भयोष्या में पुनर्विजयाग से विकल महराज दयारथ हाँ राम! हा राम कह कर विलय फरते हुए स्वर्ग सिधारे॥ ३२।।

मृते तु तस्मन्नरतो वसिष्ठमुक्तेन्दिने॥
नियुक्त्यमानो राज्याय नैचछार्यं महावलं॥ ३३।।

महाराज के (इस प्रकार) स्वर्गवासी होने पर बशिरदि पुष्प दिःखन्वयों ने धीरभरत जी के राजसतिक करना चाहता, किन्तु भरत जी ने यह विचार न किया॥ ३३।।

स जगाम वन चौरो रामपाद्यासादक॥
गता तु सुमहात्मानर रामं सत्यपराक्रमसू॥ ३४।।
धीरे भे पूर्व धीरामचन्द्र जी की प्रसन्न कर रहने वन के गये। सत्यपराक्रम महात्मा धीर रामचन्द्र जी के पास पहुँच कर॥ ३४।।

अयाचदृश्चातरं रामायणभावपुरस्तु॥
त्वमेव राजा धर्मेन इति रामं भोक्त्रच्यावैः॥ ३५।।

१ रामपाद्यासादक: पूज्यरामप्रसादयितुपत्यवः (गो०) २ अयाचदृश्चातरं—
प्रायामात (गो०)
वालकार्ये

उन्होंने प्रत्यय मित्र भान से प्रार्थना की है राम! याप धर्मवहन है (प्रर्था यह धर्म शाखा की प्राथम है कि वह भाई के सामने कीटा भाई राज्य नहीं पा सकता) बतावे यापही राजा हीने वाल्मीकि है।

रामायण परमार्थारं सुमुखः सुभाषायामः।

न चैत्यवितरणदेशादारवर्य रामो महावलः।

किन्तु श्रीराम जो के अर्थ उदार प्रत्यय अवस्थावर्धन और अर्थ वास्तवी होने पर मैं, उन महावली श्रीराम जो ने थित के वादेशात्नुकूल राज्य करना विश्वेवार नहीं किया।

पादुके चास्ट राज्याय न्यासं दृश्या पुनः पुनः।

निवर्त्तयायास ततो भरतं भरतायाजः।

राज्य का कार्य चलाने के लिये अर्थ ने (तत्तत्त्व की) खड़ा भरत के दृषिय और अनेक बार उनके समक्ष कर लौटाया।

स काममन्वान्येव रामपादावुपपुष्यन्त।

नन्दिग्रामेशकराधार्य रामागमनकावल्या।

भरत जो श्रीराम जो द्वारा अर्थ अपने मनोरथ की इस प्रकार आत कर, उनके चरणों की स्पर्श करतथा श्रीरामवत् जो के लौटने ने प्रतीजा करते हुए, नन्दिग्राम में रह कर, राज्य करने लगे।

गते तु भरते श्रीमान्तास्यस्येऽजितेर्निधिः।

रामस्य पुनरालक्ष्यं नागरस्य जनस्य च।

1 सुमुखः—अविन्वयात्मकंस्यमुखः (गौं) 2 सुभाषायामः: "नवार्थिनः
कार्यावशायेरतः कार्यमलबो विमुखःःप्राविणः" विमुखार्जः (गौं) 3 जिते-
निधिः—मातृमर्तचति प्रार्थना न्यायेशालयि राज्यमोहणोदितीशिष्टः (गौं)
भरत जी के लौट गए पर, सत्य प्रतिष्ठित श्रीराम ने यह विचार कर दिया कि, चिर्कुट में (हमारा वास जान कर) अर्योद्यावासियों का धारा जाना शुल्क हो गया है। (प्रीति उन लोगों के प्राणे से चिर्कुट चाही तपस्वियों के जप तप में वितेस पड़ता है)। ॥ ३५ ॥

तत्तत्त्वानुर्मार्गाये दण्डकान्तविवेश है।

प्रतिवा तु महाराण्य रामो राजीवलोचनं। ॥ ४० ॥

विन्दुधार्का के पालन में मन्त्रित श्रीरामचन्द्र (चिर्कुट ढोड़) दण्डकान्तव वन में चले गये और दण्डकान्त वन में पहुँच राजीव-लोचन श्रीरामचन्द्र जी ने ॥ ४० ॥

विराथ राक्षसं हृतः शरभेऽं दद्वे है।

शुतीश्च चाप्यगस्त्यं च अगस्यभातरं तथा। ॥ ४१ ॥

विराध नामक एक राजसं को जाने से मारा श्रीराम तत्स्वातृ वे शरभेऽं मुखिये से मिले। तत्स्वातृ वे शुद्धिया, अगस्य श्रीराम शरभेऽं के माहे से मिले। ॥ ४१ ॥

अगस्यचन्दनाच्यैं जश्राहिन्द्रं शरसनम्।

रक्षे च परमेश्वरस्तुणि चाप्यसायकै। ॥ ४२ ॥

* पुकारे: विन्दुधार वाले दण्डकान्ता। (गो्)

* किसी दीक्षकार ने ऐसा किया है—श्री शामचन्द्र जी ने यह ख्यात कर कि, चिर्कुट में हमारी स्थिति की जान कर निकट होने के कारण अर्योद्यावासियों और ज्ञान कर महाराज द्वारका के साथ में रहने वाले बृहद मन्त्र-गान आने लगे, फिर विन्दुधार स्वासियों का यह कहना कि, आप ले लग यहाँ से जाय; अच्छा न होगा; इसकिये उन्होंने चिर्कुट छोड़, दण्डकान्त में प्रवेश किया।
बालकाण्डे

ध्रुवस्त्रय जो के कहने पर उसने उन्होंने छन्द का धनुष प्रहण किया (धर्मत्तलिया) साथ ही परम प्रसन्न हो कर, एक प्रति -
पै तलवार चौराह तरक्क जिसमें दाग कभी चुकते ही न थे,
(श्री रामचन्द्र जी ने ध्रुवस्त्रय जी से ) लिये ॥ ४२ ॥

वसतस्तस्य रामस्य बने वनचरेः सह ।
ऋषोद्भवयागमनस्वेः वधायात्मुररस्साम् ॥ ४२ ॥

उत्तर वन में, उन वानप्रस्थ ऋषियों के साथ रहते समय, राजस्व और ब्रजुरियों का नाश करराने की कामना रखने वाले, ऋषि राम-
चन्द्र के पास गये ॥ ४२ ॥

स तेषा प्रतिज्ञातिः राखसानी वर्ण वने ।
प्रतिज्ञातरच रामेण वथः संयतिः राखसाम् ॥ ४४ ॥
ऋषोरामचन्द्र जी, ने द्वारकार्यवासी राजस्वों के वाथ करराने -
के लिये जैसे कि, ऋषियों ने प्रारंभ की थी, तददूसर युज्ञ में
उनकी मारने के लिये प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥
ऋषीयामभिक्षुपानां द्वारकार्यवासिनाम् ।
तेन तत्रैव वसता जनस्यानन्विनासिनी ॥ ४५ ॥

इस प्रतिज्ञा की खून भ्रम के साथ तेजस्वी द्वारकार्यवासी
ऋषियों ने जाना कि श्रव राजस्व अवश्य मारे जायेंगे। इसके
पश्चात् उसी जनधर्म में रहने वाली ॥ ४५ ॥

विरुपिता शूर्णरक्षा राक्षसी कामरूपिणी।
ततः शूर्णरक्षावाक्याद्वृह्युक्तस्वराक्षसानु ॥ ४६ ॥

१ वनचरे—वानप्रस्थे । (१०) २ राखसानी—द्वारकार्ये ।
३ संयति—युज्ञ (गो)
क्रम त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम।
निजधाम रणे रामस्तेपं चैव पदावनान्॥ ४७ ॥

कामसुपिरी (प्रपनो इच्छानुसार प्रपनक हुय बड़ुजै वाली) राक्षसी सुपनका कै, उन्हैंने विक्रय किया। तत्वावली सुपनका के वाक्यों से उक्तिजित है। लड़ने के लिये भावे हुय खरद्दपशा निमित्तादि तथा उनके सब प्रजनीरों को श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में मारँ डाला॥ ४८ ॥

चने तस्मिन्निःसता जनस्याननिवासिनाम।
रक्षासं निहीतान्यासनसहस्राणि चतुरशं॥ ४८ ॥
श्रीरामचन्द्र जी ने उस वन में बसते हुए, बैसते हजार जनस्यानदानको राक्षसों को मारँ डाला॥ ४९ ॥

ततो ज्ञातिवर्ण शुल्का रावणः कृष्णमूर्षितः।
सहायं वर्यामास मारीतं नाम राक्षसम॥ ४९ ॥

प्रपनी जाति वालों के वध का संवाद सुन, रावण बहुत कुश्व हुया और मारीच नाम राक्षस से सहायता मांगी॥ ५० ॥

चार्यमाणं सुवहुशृणा मारीचन स रावणः।
न विरोधेऽवलथताः श्रमर रावण तेन ते॥ ५० ॥

मारीच ने रावण को हुयत मना किया और कहा कि हें रावण।
प्रपने से प्राधिक वलथान के साथ मार्गुत फर्नी प्रचूरी वात

१ पदावनान—अनुचराण्ण (मो०)
अनाद्यत तु तदाक्षरं रावणः कालेचादितः।
जगाम सह्मारीचस्तस्याध्रमपदं तदा ॥ ५१ ॥

किंतु कालवशान्त्वर्यां रावणः ने मारिचं की वातों का अन्वादर
किया एवं उसी समय मारिचां के साथ ले वह उस प्राथम में
गया जहाँ श्रीरामचन्द्र जी रहते थे ॥ ५१ ॥

तेन मायाविनाः दुरसमपावः टपात्यजेन।
जहार भायीं रामस्य गृह्यं हत्वा जटायुपाम् ॥ ५२ ॥

मारिच दोनों राज्यकस्मारों को प्राथम से दूर हटा ले गया।
इसी समय रावण जटायु नामक गिर्दा की मार श्रीरामचन्द्र जी
की मायां श्रीजानकी जी की हर ले गया ॥ ५२ ॥

शुद्धं च निहरते हृदा हर्तां शुद्धवा च मैथिलीम्।
राघवः शोकसंतसो विकल्पापाकुलेरनिन्द्रः ॥ ५३ ॥

जटायु की मृत्युमय दृष्ट में देख एवं उससे सोता जी का
हरा जोना चुन, श्रीरामचन्द्र बहुत शोकन्त्वय हुए एवं विकल है
उन्होंने विलाप किया। ॥ ५३ ॥

तत्तत्तेनैव शोकेन गृह्यं दृष्टवा जटायुपाम्।
मार्गिस्य वने सीता सरसं संदर्षं ह। ॥ ५४ ॥

तत्पथ्यात् उस शोक से व्यकुल श्रीरामजी ने, जटायु की दुःहितिया
फर, वन में सीता जी की दूँ दूँ हरे समय, एक राज्य का देखा ॥ ५४ ॥
कबन्धं नाम स्पेन विकृतं घोरदशेनस्म।
तं निहरत्म महावाहुद्वद्वाह स्वर्गशयस्म। ॥ ५५ ॥

१ मायाविना—मारिचिन ( २० ) २ निहरत—सुमित्वम् ( २० )
उस रात्रि का नाम कचन्य था और वह बहु विकराल मगरु रोप का था लो श्रीरामचन्द्र जो ने उसे मार कर धूप जिसके वह स्वर्ग गया। \(54\)

स चाक्ष्य कथयामास शवरी धर्मचारिणीम्।

धर्मनि परमांपदित्य रायवर्म्। \(56\)

स्वर्ग जाते समय कचन्य ने तपस्वी धर्मचारिणी शवरी के पास जाने के लिये श्रीरामचन्द्र जी से कहा। \(56\)

सोभयंगच्छन्महातेजः शवरी श्रवुसुद्धनः।

शवरी पूजितः सम्प्रग्रामः दशरथातमः। \(57\)

श्रवण के नाश करने चाले महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी शवरी के पास गये। शवरी ने द्वारकनन्दन श्रीरामचन्द्र जी का माली माति पूजन किया। \(57\)

प्रस्करीरे हनुमत संगतो वानरेण हैं।

हनुमदलर्नाक्षं सुग्रीवेण समागमः। \(58\)

पंवासर के समय उनकी मेंट हनुमान नामक बंदर से हुई और हनुमान जी के कहने पर श्रीरामचन्द्र जी का सुग्रीव से समागम हुया। \(58\)

सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंस्वन्द्र प्रभावः।

आदित्त्यायाध्यात्म सोतायाध्य विशेषत:। \(59\)

परामर्शी श्रीरामजी ने आदि से लेकर और विशेष कर सीता जी के हरे जाने का सब हाल सुग्रीव से कहा। \(59\)

<table>
<thead>
<tr>
<th>धर्मनि—तपस्वी। (ि०)</th>
<th>धर्मनिपदित्य—धर्मशूद्धा। (ि०)</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>(54)</td>
<td>(56)</td>
</tr>
<tr>
<td>(56)</td>
<td>(57)</td>
</tr>
<tr>
<td>(57)</td>
<td>(58)</td>
</tr>
<tr>
<td>(58)</td>
<td>(59)</td>
</tr>
</tbody>
</table>
वालकायदे

सुग्रीवचापि तत्सर्वः श्रुता रामस्य वानरः।।
चक्रार्ता सर्वं रामेण श्रीरामचतुर्भिः शासितकम्।। ६०।।
वानर सुग्रीव ने भी श्रीरामचन्द्र का सारा प्रत्यात्म जोन श्रीर 
अश्री को साहित्य कर मैत्री की।। ६०।।

tato vânararathe vârânuèkothanam prati।
Râmâyâneyitam sarvâ prâyâdâduñchiñten ch।। ६१।।

tadbhūtâr vânarâjâ jne shrîramacânâ tâ t called vâsma kâ shrîor 
shrîkhi dâ uñkse vâlî ki shrâvata ka sambhûra hâl khaâ।। ६१।।

pratishâartâ ch râmen tada vâlîchârân prati।
vâlîchârân bhûl tân kâthâyâmaâs vânarâ।। ६२।।

udse jnâ shrîramacânâ jî ne vâlî ki tâh z pratiâna kî।

tâb suâgriev ne vâlî ki tâh perakhâm kâ varân kîya।। ६२।।

sugârâ: shrîkunâsâsînhîyân vîrââvân râhane।
Râhuprâthâyaî tâ duñduûme: kâyâsujaðramûre।। ६३।।

sugârâ kâ shrîramacânâ jî ke bhrâ wybór vâlî hêne me shrâvām thî,

abhât: shrîramacânâ jî ke jânakârî ke liyê duñduûme râkshas ke

bhê luî shârîr ki hûkhyâm kî।। ६३।।


darâkâmyâmaâs suâgrievô mahâparvârsînîbham।
uttâmâyâva mahâbâhu: mâyây vachââ mahâvâru।। ६४।।

१ राधवप्रायः—राधवप्रायः (गौर) २ कायं—कायकालः

(गौर) ३ उत्तमं—उत्तमं (गौर)
प्रथमः सर्वः

हेर, आ एक बड़े पहाड़ के समान था, सुमुख ने लंबी भुजाओं वाले आरामचंद्र जी की दिखाया। उसकी देखि महा वलवान, आरामचंद्र हरसूक्ति। ॥ ६४ ॥

पादांबुधने चिकिपे संपूर्ण दशयोजनम्।

निमेदः च पुनः सालान्सैकेन महेरुपना॥ ६५ ॥

और पैर के श्रेरुठे की ऑरकर से उस ढूंढ़ों के पैर की बन्ही से दस शिक्षन हुए फ़ौंक दिया। फिर एक ही वाण सात ताल बुनों से ब्रह्मोत्स्वत हुमा॥ ६६॥

गिरि रसातलं जैसं जनयन्यथः तदा।

ततः मोतयननास्तेन विष्वकः स महाकपिः। ॥ ६६ ॥

पहाड़ फूंढ़, रसातल की चला गया। तब ती सुग्रीव का सन्धी दूर हो गया। तद्नस्तः सुग्रीव प्रश्न है और विष्वक कर ॥ ६७॥

किष्किंद्यां रामसहितो जगाम च गुहाः। तदा।

ततोमण्यज्ञयेशरः अनुमान्ये हृदिविन्धुः। ॥ ६७ ॥

आरामजी के साथ ते शुष्क के तद्द पर्वतों के बीच वसी हुई किष्किंद्रा पुरी के गये। वहाँ पहुँच पीले नेत्र वाले सुग्रीव ने जोर से गर्जना की। ॥ ६७॥

तेन नादेन यथता निर्जगाम हरीक्षरः।

अनुमान्ये तदा तारां सुग्रीवेण समागतः। ॥ ६८॥

1 अबिरितः—स्थलमनन्दके (भेष)। २ गुहा—पुत्रार्जुनसंप्रतम्यावतिरं श्रीकुमारी (भेष)। ३ अनुमान्ये—परिसाल्यः। सन्तोषः (भेष)।
उस महाराजन के छुन महावली वाली वाहिर निकला। (तारा
के मंगल करने पर) वाली ने तारा को समझाया 'और वह सुग्रीव
से भ्रमिता।।

निजघान च तत्रैनं शरणेन किरायं रायवः।
ततः सुग्रीववचनाद्वता वालिनमाहेवे।। ६९।।

श्रीरामचंद्र जी ने इसी बीच में एक हजार बाला से युद्ध करते
छुए वाली के मार बाला। तदनन्तर सुग्रीव के कई बाले से सुग्रीव
से युद्ध करते समय वाली के मार कर,।। ६८।।

सुग्रीववेव तद्वारे रायवः प्रस्तापद्यत।
स च सर्वत्र समानीय वाणिज्यानाः अर्थः।। ७०।।

श्रीरामचंद्र जी ने किफिन्धा का राज्य सुग्रीव की दोहे दिया।
तब बन्दरों के राजा सुग्रीव ने वाणिज्यों को एक कर कर
दिशा: प्रस्तापायमांस दिश्युजाकात्मकं।
ततो गृहस्य बचनात्संपातेतितुमान्वलिः।। ७१।।

केवल लोता जी के खोजने के लिये चारों ओर मेजा। तब
सम्यक नामक गुड़ के बतलाने पर महावली हनुमना,।। ७१।।

श्रत्योजनविस्तीर्णे गुणवेचरणार्यस्य।
तत्र लहना समसाय सदर रावणपाठिताः।। ७२।।

है सुमितर वै खारी समुद्र के लांच, रावणपालित लहना
पुरी में पहुँचे।। ७२।।

१ पूनः—परशुद्धिविवाहिनः (गो०)
२ आहवः—सुग्रीवच्युधे (गो०)
ददर्श सीतां ध्यानन्तरमोक्षकविनिकं गतस्तु।
निविद्युत्वालिभिज्ञान प्रदर्शि च निवेद्य च।।७३।।
भगवद कवि में श्री रामचंद्र जी के ध्यान में मस्त सीता जी को देखा। फिर श्रीरामचंद्र जी को ही हुई धंगुटी सीता जी को दे हो और श्रीरामचंद्र जी का सब हाल कह।।७३।।
समाजवास्य च चेतनी मर्यादामास तौरणस्य।
पञ्च सेनाग्रामान्धवा सत्स महादेवतानि।।७४।।
सीता जी की धरति वेंचाया। फिर भगवानकवाटिका के बाहर
चाले फांक का तोड़ डाला तथा (राम जी के)
पञ्च सेनाविषयों
के, सत्स मंत्र-पुष्ट्रों का।।७४।।
शुभस्मश्च निर्पिप्य ग्रहण समुपागमत।
अस्तेरेन्युक्तमातमां झाल्वा पैलमहादरातृ।।७५।।
द्वार शूरवीर (रामण्यम्) अछत्यकुमार के पीस कर,
(प्रयास मार कर) आत्मसमर्पण किया। हीनामान जी ने प्रहारी के
वर्धन के प्रभाव से प्रपने के प्रहार आप से इतक जान कर भी।।७५।।
पर्यायनसान्नीरो यथिष्ठात्मक्यहङ्चछया
ततो दर्शन पुरी जहानामुते सीतां च मैथिलीश्रु।।७६।।
राजस्वों की इच्छानुसार प्रपने का वंचनावाय और उनके सब
भ्राता भरे, फिर श्रीरीता जी के स्थान को होड़ समस्त जल्ला
भृत्य कर।।७६।।

1 तौरण—अशोकवत्विकवासिहृं (गी०)
बालकायदे

रामायण प्रयमाल्यातुं पुनरायान्यहारकोः।
सैविभिग्नय महात्मानं कुश्ल रामं प्रदक्षिणम् ॥ ७७ ॥

हत्यमान जी, श्रीराम जी को यह चुक्कदारी संवाद सुनाने को लोट धार्ये। श्रीरामचन्द्र जी की परिक्रमा कर अपरमित चैर्य और बलानां हत्यमान जी ने ॥ ७७॥

न्यवेदयुद्धमेयात् दृष्टा सीतेषि तत्वतः ॥

ततः हुश्रीवसहितो गत्वा तीरं महादेशः ॥ ७८ ॥

सीता जी के देखने का ज्ञान का भी का समस्त बुद्धान्त उससे कहा।

वृद्ध हुश्रीव आदि के साथ ले (श्रीरामचन्द्र जी.) समुद्र के तट पर पहुँचे ॥ ७८॥

समुद्र शोभ्यामास चर्रैरादित्यसंनिमः।

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितांगि: ॥ ७९ ॥

श्रीर चुर्य के समान चमचमाते (अर्थात् पैदे) धारा से समुद्र के चुर्य कर डाला। तब नीरपति समुद्र सामने आया ॥ ७९॥

समुद्रवचनाचैव नलं सेतुमकारयत्।

तेन गत्वा पूरीं लहङ्गा हत्वा रावणमाहे ॥ ८० ॥

श्रीर उसके कथनानुसार नल ने समुद्र का पुल बनाया।

उस पुल पर ही कर श्रीरामचन्द्र लख्झा पहुँचे श्रीर रावण दक युद्ध में वध कर ॥ ८०॥

रामः सीतामुनिमाध्य परं व्रीडासुपागमतः।

तामुचाच ततो रामः परशं जसंसंसदि ॥ ८१ ॥

१ अमेयाल्मा—अपरमितवैर्यलक्ष्मिनादितिष्ठन (गो०) २ तत्वतः—यथावत (गो०) ३ जसंसंसदि—देवादिसभाया (गो०)
सीता जी को प्रातः कर वे बहुत सख्तिमः में पड़ गये। जी ने सवः के सामने सीता जी से कठौर वचन कहे || ५१ ||
अमृत्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनें सती।
ततोग्निन्तचनात्सीता ज्वलता विगतकल्मम् पान || ८२ ||
कठौर वचनोऽनु प्रवृत्त सिद्ध जरी जी जे जलती भ्रापाः में प्रवेश किया। नव प्रतिवर्ती की साती से सीता की निधानम् मान || ५२ "
वभी रामः संस्ह्रुतः पूजितः सर्वेन्द्रतेः।
कर्मणा ते महता वैले।क्ष्य सचराचरस्। || ८३ ||
तत्र द्वेषायोऽसे पूजित श्रीरामचन्द्र जी प्रस्तुत हुषप। हि श्रीरामचन्द्र जी के इस कार्य से (राक्षसवधे से) तीनोऽशे लेकिं वर श्राचर, || ५३ ||
संदत्तरींगणं तुष्य। राधावस्य महात्मनः।।
अभिपरिचयं च लज्जायां राक्षसेनः विशेषणम्। || ८४ ||
देव श्राद्र कुष्ठि सन्तुष्ट हुषप। तदनन्तर राजस्वराज विशेषणा
लज्जा के राजस्वहस्तन पर विघ्न || ८४ ||
कृत्तकुलयस्तदा रामः विजवरः।भुसुमेद ह।
द्वेषायोऽवर भ्राप्य समुत्थाप्य च वानराच। || ८५ ||
श्रीरामचन्द्र तुषार्य हुषप, सन्तुष्ट से कूटः श्राद्र हरित हुषप।
ताधोऽसे वर पा श्राद्र मृत वानराः को फिर जीवित कर, || ५५ ||
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेन सुहृतः।।
भर्त्राजः श्राचर्य गत्वा रामः सत्यप्रारंभः। || ८६ ||
वालकाप्रे

सुधीरविसीम्यादि सहित पुष्पक विवाह में वेद कर प्रयोग को फ्लाक्स हुआ। सप्तर्षिवृति के प्राध्याप के पहुँच सत्यपराङ्ग मर श्रीरामचंद्र जी ने। ॥ १५ ॥

भरतस्यानिताः रामेः हनुमान्त्व ज्ञानजयत्।
पुनःराज्याभिः जलयुगीलिङ्गसहितस्तदा ॥ ८७ ॥
हनुमानं जी के मरत् जो के पास भेजा फिर सुखोपेक्षा अपना पूर्वक मूलान्त कहते हुए ॥ ८७ ॥

पुष्पक तस्मात्समः नन्दिग्राम यथा तत्तदा।
नन्दिग्रामे नवः हितवः आदि भिन्न सहितोऽज्जापः ॥ ८८ ॥
(श्रीरामचंद्र) पुष्पक पर सन्नात हा नन्दिग्राम में पहुँचे। पच्ची महापिता की प्रेमा पालन करने शाले। श्रीरामचंद्र जी भाइयों सहित जटा विसर्जन कर प्रयोग वहें वहें बालों की कठा। ॥ ८८ ॥

राजः सीतामन्युप्या राज्यं पुनर्वासनात्।
श्रेयः यद्युद्दितो लेक्ष्मणः पुष्पः सुवार्मिकः ॥ ८९ ॥

विष्णुः के पात कर प्रेमका की रजग्रेहो पर विनाये। श्रीरामचंद्र जी के राजस्विदेशाधिकारी होने पर सव प्रशान्त मानन्दित सन्तुष्ट और पुष्प तथा सुवार्मिक हो गये है। ॥ ८९ ॥

निरामये इतिहोरोगः दूषिन्धरचरिते।
न भुतारामर्यक्तुण्डुल्के दृष्टिश्चरिते ॥ ९० ॥

1 आदिविधिः—पूरवूर्तकर्म (गो.) 2 हित्या—सोधविधिः (गो.)
3 अनंच—सययुधिरितपितुधि 4 निरामय—सरीरोगारहित (गो.)
5 व्रोगान—मानसव्याधिरहित (गो.)
नायंशास्त्रीवार्ता नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।
न चारिजं भयं किंचिन्तापुर्व्यं जन्मतः॥ ९१॥
भौर न कोइं खो कस्मक विध्वंश सिवतः। भौर सवं खिलयां-पतित्रता हि हैं। न कस्मक किसी के घरं में प्राप्त लगती है। भौर न कोइं। जन में दूर कर हो मरता है॥ ६२॥

न वातरं भयं किंचिन्तापि ज्वररूपं तथा।
न चापि छत्त्रश्वं तत्र न तस्करभयं तथा॥ ९२॥

इसी प्रकार न ता कस्मक घोरी तुफान से। हानि होती है। भौर न ज्वर। भारि। महामारी का भय उत्तर होता है। न कोइं भूखों मरता है। भौर न किसी के घर चोरी होती है॥ ६२॥

नगराणि च राष्ट्राणि धनधार्यान्युतानि च।
नित्यं प्रस्थविताः सर्वं यथा कृत्युगो तथा। ९३॥

राजधानी भौर राज्ज धन धान्य से भरे पूरे रहते हैं। सब लोग। बसी प्रकार धान्य सहित दिन विताते हैं। जैसे सत्ययुग में लोग। विताया करते हैं॥ ६३॥

अर्थमेधशैलेन्द्रिशा तथा वहसुवर्णके।
गवां कौच्ययुतं दत्तचा ब्रह्मलोकं गमिष्यति। ९४॥

* यह रामायण यस समय बनी थी जिस समय श्रीरामचन्द्र जी का राज्याधिपति है युक्त या भौर ये राज्य कर रहे थे। इस किये यहाँ पर वर्तमान कालिक दिनों का प्रथम किया गया है।
वालकाठे

श्रीरामचंद्र जी ने ली प्रथमें यह किये हैं और तेंदु सुवर्ण का दूर्लभ हुआ है। नारद जी वादमोके जी से कहते हैं, महायशस्वी श्रीरामचंद्र जो करोड़ों नैरैं दे कर वैदुष्ट की जायगे। ॥ ६४ ॥

असंतुल्य थन दत्त्व ब्रह्मणों के महायशशा:।
राजबधायज्जितातुपातपथर्यः राजवः। ॥ ९५ ॥
महायशस्वी श्रीरामचंद्र जो ब्राह्मणों के अपरमित थन दे कर, राजवंश की प्रथम से ली गुनी ध्रुवक उत्तरित करते गे। ॥ ६४ ॥

चालुवर्षसे च लोकप्रसिद्ध मत्स्ये थर्म नियोश्यति।
दनवरुपसहस्राणि दशबंप्रशस्ताति च ॥ ९६ ॥

और-चारों वर्षों के लेगा कि अपने अपने वर्षानुसार कर्तव्य पालन में लगाये। ११,००० वर्ष, ॥ ६५ ॥

रामां राज्यमुसातित् ब्रह्माण्डोक प्रयास्यति।
इदं पवित्त्र पापम् पुरुषं वेदेऽश संमितस्तु।
यः पदेद्वायनं सर्वपापः प्रसुच्चते। ॥ ९७ ॥

फलस्तुति

राज्य कर, श्रीरामचंद्र जो वैदुष्ट की जायले। इस पुनीत, पाप खुदने वाले, पुप्पमद, रामचरित्र की जा पहुँच ली है, वह सब पापों से कुटा जाता है। क्योंकि यह सब वेदों के तुल्य है। ॥ ६७ ॥

एतद्वायनमायुव्यं पठनायायं नरः।
सुपुरुषोऽरमण: संगम: पृथ्य स्त्रेण महीयते। ॥ ९८ ॥

१ वेदेऽशसंमितस्तु—वेदेऽशःसंमितस्तु (म०) २ महीयते—पृथ्यते (म०)
द्वितीयः सर्गः

…

पाठः पारापात्स्रवीयः

tयात्त्वात्र्यायेऽभूमिपरित्वात्

वर्णितः पूण्यपल्लवीयः

ज्ञनव ग्रन्थलयः महत्त्वमीयात् || ९९ ||

इति प्रथमः सर्गः

इस वादलज्ञान क्रमांक पदे तर यह वेद शास्त्रों में पार्श्वपूर्ण हो, चंद्रिक पदे तेष्व धृष्टिपूर्ण है, बैश्य पदे तर उनका अर्ध्य वैश्वानर नरे वृद्ध धृद मद ते उनका महत्त्व पर्यायत ध्यानमात्र जाति में स्पष्टत: बने या उक्ति है || ८६ ||

वालकार्य न का प्रथम सर्ग पुरा हुआ ||

[इस ९९ श्लोकों के प्रथमपर्यंप है का नाम "पूण्यपल्लवीय या वादलज्ञान है। इसका ध्वनियां यहत: आलंकारिक हिंदू नित्य किया करते हैं। इसकी भाषण, क्ष्रिय, बैश्य और नृत्त भी पदे, यह धात ९९ वें श्लोक से सिद्ध होती है।]

हितीयः सर्गः

नारदस्य तु वदाक्ष्यं सुल्ता वाक्यविशारदः

पूज्यमात्र धर्मत्वं सहितियोऽयं महाशुभः || १ ||

१ ईयान—प्राप्तुयात् (गो) २ वाक्यविशारदः—वांष्यविशारदो

विद्वान् (गो)
द्वार्षि नारद के मुख से यह चुतान्त छुन छुकने पर, महर्षि वाल्मीकि ने अपने शिष्य भर्त्राज सहित नारद जी का पूजन किया।

यथात्त्मकृत्याः द्वारिकानारददत्ताः।
आपूर्च्चेत्वाभ्यास्यनुजात: संजगाम विहायसमेत।

dwarshi nārada ke mukh se yah chūtānāt quñ qukānāe par, maharṣi vaalmikī nē āpne śiśya bhartrāja sahīt nārada jī ka pūjana kiya।
yathātātmakṛtyaṁ dvārīkānāradyatāṁ। āpaूर्च्छेत्वा abhyāsya-nuñjaat: saṁjagāma vihāyasamēt।

स महुत्त्व गते तस्मिन्देवलोकं मुनिन्तदा।

जगाम तपसातीय जाहूच्चप्त्वाविद्युताण्डतः।

vatamrīkī jī, nārada jī ke dvārālokā chāle āne ke dō ḍhārdī vādā, us tamaśa nādī ke tattā pahanā, jē śūra-gādha jī se ḍhairādi hi duṇ par thē।

s tu tīrṇa samāsāya tapasāya mūnīntadā。

विश्वमाह विस्तरं पावें हुड्रा तीर्थंकरदमू।

nādī ke tattā pahanā śaurā nādī ka śvachch jāl (प्रायोत्त कौच्छह रहित) āxē maharṣi vaalmikī jī pāhā khāde hūp āpne śiśya bhartrājā se bāle।

अकादमंयदं तीर्थं भर्त्राज निशामये।

रमणीयं प्रसचाम्बुं सत्युग्गमनो यथा।

1 “नारदायास्तरणः”। 2 विहायसमुपाकारः संजगाम (गो)। 3 निशामयः पश्व (गो)। 4 प्रसचाम्बुं सयुग्गमनो यथा। (गो)।
हे भरद्वाज! देखो तो इस नदी का जल खैला ही स्वच्छ थी। जैसा सजन जन का मन।॥ ५॥

न्यस्यतां कठस्तातां दीयतां वच्कलं मम॥
इत्वेवावगाहिष्ये तमसातीथ्युतमम॥ ६॥

हे चतुर! किसी की तो जळीन पर रखें डो शौर हमारा वच्कल वर्स हमें दें। हम इस उत्तम तीर्थम तमसा नदी में, स्नान करेंगे।॥ ६॥

एवसुको भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना॥
प्रावच्छत्र सुनेस्तस्य वच्कलं नियतोगुरोऽ॥ ७॥
महर्षि वाल्मीकि के इस कथन को सुन, उनके शिष्य भरद्वाज ने उनका वच्कल वर्स दिया।॥ ७॥

स शिष्यहस्तादादाय वच्कलं नियतेन्द्रियः।
विचार ह दयास्तस्वाभिः विपुलं वनमु॥ ८॥
शिष्य के हाथ से वच्कल लें महर्षि विशाल वन की शोभा मिलते हुए ठहराने लगे।॥ ८॥

तस्यांभयाः तु मिथुनं चरन्तमं नपायिनम॥
ददज्ञ भगवास्त्रज कृष्णयोगस्त्राणिस्वनम्॥ ९॥

¹ अवगाहिष्ये—अवेशस्ताल्यासि (गो) ² प्रायच्छत्र—प्रादात्र (गो)
³ गुरोंनियतः—परतन्त्रःभरद्वाजः (गो) ⁴ तस्य—तीर्थ्य (गो)
⁵ अवधारणी—समवे (गो) ⁶ चरन्तम—विहरस्तम (रू) ⁷ अनपायिनम—
विशेषाभ्युन्तम् (गो)
वालकायुः

नदी के समीप ही उस वन में महृदय: वाल्मीकि जी ने मीठी बेली बेलने बाले वियोगशुन्य पवनः विहारः करते (जाड़ा खाते) हुए कौश पत्ती की एक जड़ी को देखा ॥ ६ ॥

तस्मातु मिहुनादेकः पुमासं पापनिःस्चयः ॥

जयान वैरनिःखोः निपादस्तरस्य पद्यः ॥ १० ॥

इत्ये में पत्रिणोऽनु कृतः पद्वः। नेत्रों जोड़े में से नर कौश पत्ती की वाल्मीकि जी के सामने ही मार डाला ॥ १० ॥

ते श्रीणितपरीताः। वेद्यामहां महीतले ॥

भार्या तु निहंत हड्डा ज्वारः द्रव्यां गिरमुः ॥ ११ ॥

तव उस कौश पत्ती की मादा अपने नर के रक्त से लह फड़ और पुष्पिधि पर अतिशयाते हुए द्रेंखः कर्तव्यवस्त्र से विलाप करने लगी ॥ ११ ॥

वियुक्ता पलिता तेन द्रिजेनः सहस्राणिः ॥

तासङ्गीपि मवेन पत्रिणा सहितेन वै ॥ १२ ॥

वह कौशी धर्म उस लाल चोटी बाले काममच और सम्मेलः करने के लिये पर कैजाते हुए नर से रहित हो। गयो अधःः उससे उसका वियोग हो गया ॥ १२ ॥

तथा तु तं द्रिजं इश्वा निपादेन निपालिततः ॥

अष्टेष्टमात्मनस्तरस्य अधारण्य समपत्तः ॥ १३ ॥

1 पापनिःस्चयः—सतिसमचेरीचिपरस्मनस्तरस्य (सौ.) २ वैर-निःखः—अकरणगोहाः (र०) ३ द्रिजेन—पक्षिणा (सौ.) ४ पत्रिणा—सम्भोगर्ज विस्तारितपत्रिणा (सं.)
वहेलिया द्वारा पत्थर की गिरा हुया देख, धर्ममा भूषि के मन में बड़ी दुःख आयी। ॥ १३ ॥

तत् कर्णेवदित्वादर्थमोऽयमति भ्रिषः।
निशाच्य स्त्रियोऽक्षीरिद्व वचनमृद्वीती। ॥ १४ ॥

इस पाप पुरी हिंसा कर्म और विलाप करती हुई कौंची की देख, महात्मा वाल्मीकि ने यह कहा। ॥ १४ ॥

मा निपादः पतिः त्वमगमः शादवती समाः।
पत्राच्यमिधुनादेकवधीः काममोहितम्। ॥ १५ ॥

हे वहेलिये! दूते आ इस कामोग्नत नर पत्थर की मारा है, इस लिये भ्रमक वर्ण तक तु इस वन में मत आना; प्रथमा तुम्हें खुल शान्त न मिले। ॥ १५ ॥

तस्यैवु नुहात्रितिन्ता वच्चूण हुसी वाङ्सतः।
शोकार्तनाय क्रुड़िते किमिदं व्याहुतं मया। ॥ १६ ॥

यह कह चुकने पर और मन में इसका प्रथम विचारने पर, वाल्मकि जी की बड़ी चित्ता हुई कि, इस पत्थर के कष्ट से किष्ट हो, मैंने यह फ़ा कह डाला। ॥ १६ ॥

चिन्तयन्तस महापापकर मतिमानम् पतिषय।
शिप्यं चैवाच्यधवाक्यपिदं स मुनिपुज्वस। ॥ १७ ॥

बड़े कुडिमानु और शाक्त हवालौकि जी सोचने लगे, तदनलार मुनिश्रेष्ठ ने जिन शिप्य मर्दान्त से यह कहा। ॥ १७ ॥

| मतिमान्—शाश्वानवान् (भो) |
पादवाचरास्तन्नीठ्ठत्वमनिविन्दतः।
श्रोकात्स्य प्रहृतोऽरे श्लोकोऽरे भवतु नान्यथा॥ १८॥

देखो, यह यहौः हमें सुख से श्रोकात्स्य हो निकाला हैं, इसमें
चार पाठ हैं, प्रदेश पाठ में समान प्रत्यक्ष हैं और वो यह
भाव जा सकता है। धन्यं: यह यशोहरू हैं प्रयोगः यह प्रसिद्ध हो
कर मेरा यथा वचने वाले, अपयश नहीं॥ १५॥

शिष्यस्तु तत्र युवतो युनेनाभियमनुच्छमु॥
प्रतिज्ञाह वेगुप्रस्थतं तुह्येऽभवद्वृहिः॥ १९॥

वाल्मीकि जी के इन वचन को सुन, उनके शिष्य भर्गोत्र ने
प्रति प्रस्थत है। यह यशोहरू कहते हारे कर लिया, इस पर गुरु जी
शिष्य पर प्रसन्न हुए।॥ १६॥

शैवभिपैक्ष: कृत्या तीर्थं वस्मिन्यशाविश्वि।
तमेव चिन्तयन्तर्यौपावर्तते वै सुनिः॥ २०॥

व्याविश्वि उस तीर्थ में स्थान कर और उसी बात की मन ही
मन आते विचारते रूपितमार वाल्मीकि अपने आधाम में लौट
आये॥ २०॥

भर्गोत्रस्त: शिष्योऽविनितः श्रुतवान्द्वविनी॥
कल्पं पूर्णमादाय पूर्णोत्तुज्ज्ञातम हृ॥ २१॥

उनके पौड़े पौड़े धाति नाम भोर शाखाह भर्गोत्र जी भी जलाम
का हरा कल्प लिये हुए, चले आये॥ २१॥

१ श्रुतवान्—शाखवान्, अच्छत्वाच्छन्ना (पौि्)
ब्राह्मण में पहुँच और देवपूजनादि धर्मरूप्यां कर तथा 
शिष्य के सहित बैठे अष्टेंद्र विविध पौराणिक कथायाँ मनोयोग 
पूर्वक कहते लगे || २२ ||

आज्ञागं तता तख्ता लेकरती स्वर्ण मंगलः

चतुरुपुष्या पद्मान्जा द्रष्टुः तथा सुनिनुष्ठम् || २३ ||

इसी वीरच में महतेजस्वी, चार्यविनाश, लेकरती तख्ता 
जो वाल्मीकि जी से भेंट करने के उनके प्राथमिक में स्वर्ण 
पहुँचे || २३ ||

वाल्मीकिरथत त्र द्वारा सद्यवेतावथाय वाग्यतः

माधविन्द्र्र प्रयतो भूलता तस्यो परमविनिष्मितः || २४ ||

पूजयामायत तदैव पाण्डायुक्तसनवन्दनेः

प्रणम्य विधिवत्तेन पुजार्जनामयमव्यवर्तम् || २५ ||

जी जो की प्राणि देव, वाल्मीकि जो भट्ट उठकः खड़े हुए भीर 
नाम है उनका प्रगाम किया और प्रत्यतर आदर पूर्वक श्रीलक,

| धर्मरूप — इत्तेंद्रपूजामिथम्: (गौ.) | २ अन्तरंक्यार:—पुराण- 
| पारायणिनी (गौ.) | वाग्यतः—अतिसंघमयशायात्वांक मौनमतन प्रत्यतोति 
| (रात.) | नमः: (रात.)

* चढ़े होमां के सामने देख होग स्वयं चढ़े होगे, होते हैं; इसलिए कारण 
चढ़े होमां में यह गति गया है।

धैर्य प्रणालज्जकमन्ते युन्म: विवर्तायकाते

प्रत्येक्यश्चाम्बिवद्यायां पुनःसत्तान्यत्रिपियने (गौ.)

वातृ रात्—३
वालकायुक्ते

भ्रष्ट, और पाठादि से उनकी यथाविधि पूजा कर कुशल पूं छठी ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथापविश्व भगवानासने परमावरीते

वाल्मीकि च ं रपये संडित्रासनैन ततः ॥ २६ ॥

पूजा प्रहण कर, ब्रह्मा जी प्रासन पर विराजे और वाल्मीकि जी से भी बैठने की कहा ॥ २५ ॥

ब्रह्मणा समजतां स्नायुपाविश्वदासने

उपविश्वे तदा तस्मिन्वाल्लोकपितामहे ॥ २७ ॥

प्रह्मा जो की प्राज्ञा पाकर, महर्षि भी बैठ गये। जब सातार लोकपितामह प्रह्मा जी प्रासन पर विराज चुके, ॥ २७ ॥

तद्दृढ्यतनेय सन्सा वाल्मीकिण्यांनास्थितः

पापासना कुर्त कर्वं वैग्रहण्ड्रिना ॥ २८ ॥

यस्तादर्वा चाषर्वा कौश्यं हन्यादःकारणात्

शोचनेव श्रुवः कौशीपुष्प काक्षमिं पुनः ॥ २९ ॥

तव महर्षि का ध्यान उसी वात की और गया कि, पापी बहुलिये ने वैस्वूयदि से ज्ञानद्र से वेलते हुए पत्ती का वाक्य व्यर्थ ही कर डाला और कौशी की याद कर, वे बार बार वहो स्थोल-प्रयात्

"मानिषाद्" पद शोचने लगे ॥ २५ ॥ २६ ॥

जगावन्तर्गतस्या भूतवा शोकपरायणः

तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहस्य सुनिपुजाम् ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकि की बिलासतुर और शोकान्वित देख, ब्रह्मा जी ने हृश कर कहा, ॥ २० ॥
द्वितीयः सर्गः

श्लोक एक त्या बाह्रो नाच कार्या विचारणा।
मच्छन्ददेवः ते व्रहन्याद्वाते। सरस्वती।। ३१।।

हे क्रिप्ष्ट। यह तो तुमने श्लोक ही बना बाला है, इस पर कुछ विचार न कोई यह। मेरी ही भ्रेणा चे या इच्छा से वह श्लोक तुम्हारे मुख से निकला है।। ३१।।

रामस्य चरितं कृतस्नं कुरु त्वस्मपिस्ततम।
धर्मात्मनं गुणवतो लोके रामस्य धीमतः।। ३२।।

dृतं कथय वीरस्य यथा ते नारदाच्छुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्यत्रं तस्य धीमतः।। ३३।।

लोकों में धर्मात्मा, गुणवतो और वुदिमान श्रीरामचन्द्र जी
के द्विपये हुए प्रथमा प्रकट सम्पूर्ण चरित्रों का वर्णन, तुम वैसे ही
क्लेश तौ ही, तुम नारद जी के मुख से छुन छुके हो।। ३२।। ३३।।

रामस्य सह सैमिते राजस्वानां च सर्वशः।
वैदेहाचैव यहृंच प्रकाशं यदि वा रहः।। ३४।।

tद्वारापिनिदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागंतूता काल्यं कालिदात्त भविष्यति।। ३५।।

श्रीरामचन्द्र, श्रीलक्ष्मण और श्रीजानकी जी के तथा रात्रियों
के प्रकट प्रथमा गुर्ज तो कुछ ऋततान हैं—वे तुमको प्रथम
वें पहुँचे और इस काव्य में कहां भी तुम्हारी कहां हुई कोई वात
विद्या न होगी।। ३४।। ३५।।
कुरुं रामकथा पुण्यं श्रीकवर्दनं मनोरमाम्।
वाचस्थास्यन्ति गिरयं सरितक भ्रेततः॥ ३६॥
ताबद्रायणकथा थोकेषु प्रचरिण्यति।
ताबद्रायणकथा त्वकृतं प्रचरिण्यति॥ ३७॥
ताबद्रुवेकोपथ त्वं मल्लोकेषु निवस्यति।
इत्युक्तः भगवानर्हा तत्तद्वान्तर्गीयत॥ ३८॥
अतपतु तुम श्रीरामकथा की मनोहर धीर विचित्र कथा शोक-वचन (पदो में) बनाशी। तब तक इस धराधाम पर पहाड़ धीर नहीं, तब तक इस लोक में श्रीरामकथा जी की कथा का प्रचार लगेगा धीर जब तक तुम्हारी रचनी हुई इस रामायण-कथा का प्रचार लगेगा, तब तक तुम सी मेरे बनाये हुए लोकों में से जब तक श्रीर लगेगा तब तक पुण्यिक पर धीर तद्दृश्नार ऊपर के लोक में स्थिर रहो। यह कह कर नहीं जी नहीं अन्तर्धीन है। गये॥ ३८॥ ३७॥ ३८॥
तवं संस्यो भगवानपुर्वनिविस्मयमायोः।
तस्य शिष्यास्ततः सर्वेन जगुः। स्थानमिं पुनः॥ ३९॥
यह देख महर्षि को तथा उनके शिष्यों का वह धार्मिक हुआ।
महर्षि के शिष्य प्रस्थत हो चार चार वह श्येक पढ़ने लगे॥ ३६॥
श्रुहुः हुः श्रीमाणश्रुहुः महर्षि भूषिन्यस्मिता।
समाससर्वार्थिः पादिवस्त्रोऽघरिणा॥ ४०॥
ये प्रस्थत है धीर वह विशिष्ट हो, आपस में कहने लगे कि,
महर्षि ने संप्राण प्रस्थतोऽधीर चार पद्र वाले जिस श्येक में महार्षि

पुरस्थितवतः। २ गीतः—वक् (गौ.)
द्वितीयः सर्गः

प्रकट किया है उसके बार बार पढ़ने से बह तो श्लोक ही बन गया है ॥ ४० ॥

साङ्गुन्याहरणाद्भुतः शोकः श्रोकलक्षमागतः ।
तत्स्य वुद्धरियं जाना वाल्मीकेशीर्विवितात्मनः ॥
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदंशः करत्वाण्यहस्तः ॥ ४१ ॥

तद्वन्नन्तर ध्याते मनं में परमात्मा का जितन करते हुए वाल्मीकि
जो की समझ में यह बात आयो कि, इसी ढंग के श्लोकों में, मैं
सारा रामायणकाय बनाईं ॥ ४२ ॥

उद्दार्श्चतारथ्यंभूतः

स्तनं स रामस्य चक्षर कीर्तिमान ।

समाधरः श्रोकशर्तरःशशिरिः

यास्तरं काव्यसुदारभीपुःनः ॥ ४३ ॥

यह विचार, यशस्वी वाल्मीकि जो परम उद्दार शङ्कर श्लोक
मनेाहर धौरामचंद्र जो का नारंभ, समान प्रत्य सारे तथा यश को
बढ़ाने पाले श्लोकों में नर्मन करने लगे ॥ ४४ ॥

नदुपगतसम्प्रसारसंभियोगं

समस्यधुरापनतारथ्यऽवक्यचन्द्रमू ।

रघुरवचरित्र श्रुनिष्णीत

द्वाशिरसश्च वधं निशामथस्यम् ॥ ४५ ॥

इति द्वितीयः सर्गः

१ भावितालमः—विनितारसभालमः (गो०)
वालकायडे

सत्यियों समासों तथा अन्य व्याकरण के अंगों से समप्र, मधुर श्रीर प्रस्तुत करने वाले वाक्यों से युक्त, श्रीरामचरित्र परं रावणवध हुए काव्य को महंति वाल्मीकि जी ने लेखिकाकारार्थ
रचा ॥ ४५ ॥

वालकायड का दूसरा सर्ग पूरा हुआ—

---

तृतीय: सर्गः

---

श्रुत्वा वस्तूः समुखः तद्मर्मत्वा धर्मसंहिताय ॥ १ ॥

व्यक्ति नेत्रते भूये पद्मृत तस्य धीमतः ॥ १ ॥

धर्मः, धार्मः, काम श्रीर मे भवः का देवे वाला, श्रद्धिमान श्रीराम-जी का चारित्र, नारद जी के धुम से लुत श्रीर उससे भी प्राधिक चरित्र जानने की कामना रे, ॥ १ ॥

उपस्रूपयोद्भाकं सम्पदधृतिः स्थिता कृतान्नजिः ।

प्राचीनान्ग्रेषु दर्शेपुर धर्मं णान्वीवशस्ते गतिमुः ॥ २ ॥

जल से हाथ पैर धो, प्राचमन कर, हाथ जोड़, कुशासन पर पूर्व को श्रीर मुख कर बैठे झुप महंति, धार्वकल से श्रीरामचन्द्रादि के चरित्रों को देखने लगे ॥ २ ॥

रामलक्ष्मणसीतागी राजा दशरथेन च ।

समार्थेन सराष्ट्रेण यत्वायं तत्र तत्त्वतः ॥ ३ ॥

---

१ वस्तु—कवासरी (गो) २ धर्मसंहिताय—धर्मसंहिताय (गो) ३
२ धर्मों—नाममाल्याचरश्रीरामस्वामिन (गो), यद्यगजवलन (स०) ४ गतिमुः
—रामादिबृत्व (गो)
हसितं भाषितं चेतन गतियों यत चेष्टितम् ।
तत्तत्वं धमर्मक्षेपं स्थावत्सांमपत्यतिः ॥ ४ ॥
वृष्टीन च तथा पत्तां च चरता बने ।
सत्यसंघेन रामेण तत्तत्वं चान्तवेंश्चितम् ॥ ५ ॥
श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण सीता धौर कैशित्यादि सहित महाराज
कृत्यं का धौर सम्पूर्ण राज्यसंगठन का जेठ कुमार हैं। बैलव, ब्राह्मण धौर और चरित्र जी श्रीरामचन्द्र जी ने वन में
जो कुछ चरित्र फिरें ये सात महायान वाल्मीकि का रस्मा जी के वर्णन
के प्रभाव से व्यों के त्यों सब हेतु पड़ने लगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

tतं पदयति धर्मत्मा तत्तत्वं येगमास्तितः ।
पुरा यत्चर निर्देशं पाणावालकं यथा ॥ ६ ॥

eyagamastra से महायान वाल्मीकि ने उन सब चरित्रों को जै.
पहले ही चुके थे, हायली पर रहे हुए श्रीराम की तरह देखा ॥ ६ ॥

tतत्तत्वं तत्तत्वं ह्या धर्मं सा महाचुति: ।
अभिरामस्य रामस्य चरितं कत्मुखः ॥ ७ ॥

c व्यों व्यों का रस्मा जी के वर्णन के प्रभाव से स्थायर्थः
( व्यों का व्यों ) जान लेने के पदवाल महायुद्धमाव धौर वाल्मीकि
लोकाधिकार श्रीराम जी के चरित्रों का श्लोकवल करने के लिये
तपर हुए ॥ ७ ॥

कामार्थगुणसंयुक्तं धमर्मिमुण्यपितस्तरस्य ।
समुद्रपिन्न रजाधिन सर्वशुरुतिमनाहसम ॥ ८ ॥

1 धमर्मीपयेः—महावर्षभद्रकल्याणम् (मो)
स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महर्षिणा ।
रघुनाथस्य चरितं चकार भगवान्तिपि: ॥ ९ ॥
धर्मं, धर्मं, कामं और मैत्र को देने वाला समुद्र की तरह
पत्तों से भरा पुत्र सौ लूटने से मन की। हरने वाला; श्रीरामचन्द्र जो
का चरित्र जैसा कि नारद जो से खुद चुके थे, वैसा ही महर्षि
बालरामीकी जो ने वनाया ॥ ७ ॥ ६ ॥
जन्म रामस्य दुमहद्यर्ष रवानिकृतकल्लताम् ।
छायस्य प्रियतां श्वान्ति साम्यतां सत्यश्रीछल्लताम् ॥१०॥
नानाचित्रकथाशचाया विश्वामित्रसहसाने ।
जानक्यापुर विवाहं च वनवस्च विभेद्वनम् ॥११॥
श्रीरामचन्द्र का जन्म, उनका प्रकाश, सव का उन पर प्रस्थ
रहना, उनके प्रति लोक-भिव कार्य, उनकी जीमा, शैलम्यता, सत्य-
शोभाकालिकृहस्व-सम्पत्तिता, विश्वामित्र को सहायता करना, विश्वामि
त्र का श्रीरामचन्द्र जो से नाना प्रकार की कथाएँ कहना वा
उनका छुनना, धनुष का तोड़ना, जानकी जी के साथ उनका
विवाह होना, ॥ १० ॥ ११ ॥
रामरामविवाहं च गुणान्दावरथेरस्वतः ।
तथा रायाभिषेकं च कैकेर्या दुष्टभावताम् ॥ १२ ॥
श्रीरामचन्द्र जी च परशुराम जी का चालविवाह, श्रीराम-
चन्द्र जी के गुण तथा उनके रायाभिषेक की तैमारियाँ, कैकेर्यो
का उसमें बाधा डालना, ॥ १२ ॥
विवाहां चालिकवस्य रामस्य च विवासनम् ।
राज्य कैकेरियां च परशुकर्षस्य चालयस्मु ॥ १३ ॥
तृतीयोः सर्गः

प्रभुवेके कार्येः में विरह का पढ़ना, ध्रुवराण्ड जी का युगमनम, महाराज उदय का चित्र तथा उनका परलोक-गमन, || १३ ||

भवानीं वंपां न मुक्तीनां विसर्जनम्।
निषादाधिपसंतानां सुतोपशर्तवं नथा || १४ ||

प्रवेशाधारिणियोः का संकल्पनहित देना, फिर उनका मार्ग से प्रागृहा के लौट भागा, निषादराज का संबाद, सुमत की विवाह, || १५ ||

गद्दाराध्यापि संतारं भर्ताजस् दर्शनम्।
भर्ताजाभ्युदयानाचिन्तकृस्य दर्शनम्। || १५ ||

ध्रुवराण्डः का ध्रुव गद्दा जी के पार उतरना, महाजाज जी का दर्शन, उनकी सम्प्रथा में चिन्तकृत गमन, || १५ ||

वास्तुरम्भविवेशां च भरतागमनं नथा।
प्रवाहीं न रामस्य पितुरं सिंहि-क्रियायाम्। || १६ ||

वहीं (चिन्तकृत में) धाराने विधि से पर्घुमूड़ी बना कर उसमें घास फर्ना। महर्षि जी ध्रुवराण्ड जी के मनवते के लिये प्रागमन, ध्रुवराण्ड जी का गिथा का जलद्रम, || १६ ||

पादुद्धायाधिपर्यं न नन्द्ग्रामन्त्रवासनम्।
उपनेषदकारण-गमनं विराज्ञया वर्ण तथा || १७ ||

ध्रुवराण्ड जी की पादुकाथों का भरत जी द्वारा प्रभुवेके।
उनका प्रयोग पादुकाथों का राजनिष्ठातन पर प्रभुवेके कर नन्दि-

1 वालुक्गम—वालुक्गमकन्तकप्रशारणपथोपिचितमन्त्रित्यंश (गो.)
प्राम में रह अयोध्या का शासन करना, श्रीरामचन्द्र जी का द्रष्ट-कार्य-गमन, विचार-चर, ॥ १७ ॥

dर्शनं शर्मजनस्य गुरूतिक्षणापि संगतिः ॥
अनन्दूयानस्यां च अक्षरागस्य चार्पणम् ॥ १८ ॥
शर्मज्ञ का दृश्यन, खृतीर्घण से भेंट, अनुसूत्या जी से मिलना
वैर उनके द्वारा सीता जी का अनुग्रह का दिया जाना, ॥ १८ ॥
अगस्त्यदर्शनं चैव ज्यायोपरिसंगमम् ॥
पञ्चवधानाच्य गमनं शुरुपण्यावच्च दर्शनम् ॥ १९ ॥
पञ्चभग्नय जी का दृश्यन, जदायु से भेंट, पंचवधन में जाना,
शुरुपनखा का दिखलाई पड़ना, ॥ १६ ॥
शुरुपण्यावच्च सन्वादं विशिष्टकरणं तथा ॥
वर्षं क्षरत्रसङ्गरायस्यांं रावणस्य च ॥ २० ॥
शुरुपनखा से वातचीत और उसको विक्षप करना, खर शिखिरादि
का मारा जाना ( वध ) रावण का निकलना, ॥ २० ॥
मारीचस्य वर्षं चैव वैदेहा हरणं तथा ॥
रायवस्य विलापं च गुरुराजनिवर्गम् ॥ २१ ॥
मारीचवर, सोतायण, श्रीरामचन्द्र जी का ( सीता के
बेदयाग में ) विलाप करना, जदायु की रावण द्वारा हिंसा, ॥ २१ ॥
कवन्यदर्शनं चैव प्रस्पायाचापि दर्शनम् ॥
शवयाः दर्शनं चैव हनुमदर्शनं तथा ॥ २२ ॥

१ वधान—निर्गमसन्म (शोक)
कवच का मिलना व पंपासर देखना, शावरी का मिलना धौर हनुमान से मेंट होना, ॥ २२ ॥

ऋक्ष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमस्य

पत्येयोपावनं सर्वं वालितुम्रीवचित्रश्च ॥ २३ ॥

ऋष्ण्मूक पर्वतं पर हमनं सुग्रीवं समागमं सुग्रीवं को वालि-
बध का विभास दिलाना, उनके साथ मेचौ का देहणा, वालिसुग्रीवं
की जडाहि, ॥ २३ ॥

वालिमथनं यें सुग्रीवविरतििपादनम्

ताराविलापं समयं वर्णरात्रीनिवासनम् ॥ २४ ॥

वालि का वध, सुग्रीव का राज्यासिपेक, तारा का विलाप,
वर्ण्यप्तम में पर्वत पर श्रीरामचंद्र जी का निवास, ॥ २४ ॥

कैप राज्यसिंहस्य वलानामुपसंग्रहम्

दिश: प्रस्तापणं चें ध्रुवया सिवनिवेदनम् ॥ २५ ॥

सुग्रीवं पर श्रीरामचंद्र जी का कैप, वानरी सेना को जमा
करना। शिकारों के सीता जी का पता लगाने के लिये भूमपट्टत का
घुचाँत समस्या कर भेजा जाना, ॥ २५ ॥

अंगुलियुक्तसमान च ऋक्षस्य विलङ्क्षुणम्

प्रायोगवेदानं चापि संपतेश्चैव दर्शनस्य ॥ २६ ॥

श्रीरामचंद्र जी का हनुमान जी के अंगुली देना, वानरों का
(स्वर्णप्रमा के) विल में प्रवेश, उपवासादि कर समुद्रतट पर
स्वतं की भ्राकात्त करना, सम्पति का दर्शन, ॥ २६ ॥
चार्दीय चौथ सागरस्या च लक्ष्मणम्।
समुद्रवचनाचैव मैनाकस्यापि दर्शनम्॥ २७॥
पर्वत पर हर्षमान जी का चढ़ना, यूर सागर का नौकाना,
समुद्र के कथनातुसार मैनाक पर�त का समुद्रजल के ऊपर
nिभाना,॥ २७॥

सिङ्कहायाच निधनं लक्ष्मणलयदर्शनम्।
रात्रिः लक्ष्माकेशं च एकस्यापि विचिन्तनम्॥ २८॥
क्रयागहणं करने वाली सिङ्कह रात्रिकी का वध, लक्ष्मा की
देखना, रात्रि में हर्षमान जो का लक्ष्मा में प्रवेश करना, ख्रेबते
सोचना,॥ २८॥

dर्शनं रावणस्यापि पुष्पकस्य च दर्शनम्।
आपानभूमिसनपवरायासः दर्शनम्॥ २९॥
रावण का देखना, पुष्पक स्विमान की देखना, उस घर में जहाँ
रावण शराब पीता था वहाँ हर्षमान जी का जाना यूर चौं फ्लाथुपर
प्रार्थित रावण की खिलारते के रहते की जगह का प्रवचनक,॥ २६॥

अभोकनिकायानं सीतापरायास्यापिदर्शनम्।
राक्षसशत्रजनं चैत्र जिज्ञासखसदर्शनम्॥ ३०॥
अभोकनिकाय में जाकर सीता जी का दर्शन करना, राजसियों
की सीता जी को देखना, जिज्ञासा राक्षसा का स्वर देखना,॥ ३०॥

अभिन्ननिम्नद्रानं च सीतापरायास्यभाषणम्।
मणिद्रानं सीता देहभेदं तथैव च॥ ३१॥

¹ अवरोधधार्म — भन्तचुर्रधार्म (मा००)
हनुमन जी की सीता जी की पहचान की देना, सीता जी के साथ हनुमन जी की वातचीत, सीता जी का हनुमन जी के चूड़ामणि देना, हनुमन जी द्वारा चंद्रकावाट्का के बूझों का नए किया जाना, ॥ ३१ ॥

राक्षसींविद्रवं चेव किंड्राणां निवर्णम ।

ग्रहणं नायुमनोषच ऋषाद्वाहामिगजनम् ॥ ३२ ॥

राजसियों का भागता, श्रीर रावण के नौयों का मारा जाना,
हनुमन जी का पकड़ा जाना तथा हनुमन जी के द्वारा गर्ज, गर्ज
कर लक्ष्मा का दृष्टि किया जाना, ॥ ३२ ॥

प्रतिव्रुतमहेष्वर मध्यां हरण तथा ।

रायरायस्वासरं चेव मणिनियतनः। तथाः ॥ ३३ ॥

समुद्र की पुनः नांधना, मधुवन के मधु फल की खाना, श्री-
रामचंद्र जी की धोरज वंधना, तथा उनकी चूड़ामणि का दिया
जाना; ॥ ३३ ॥

संगमं च समुद्रेण नलसेतोत्ततः वन्धनम् ।

पतारं च समुद्रस्य रात्रिः ऋषाद्वाहरोयनम् ॥ ३४ ॥

श्रीरामचंद्र जी का समुद्र तत् पर पहुँचना, श्रीर नल नील
का समुद्र पर पुल वाङ्गना, समुद्र के पार होना, राजः में लक्ष्मा
का घेरना। ॥ ३४ ॥

विभीषणेन संसर्गं वधौपायनिवेदनम्

कुम्भकरणस्य निधनं मेघनादनिवहनम् ॥ ३५ ॥

१ मणिनियतनस्—रामचंद्र चूड़ामणिप्रदान (गोर)
वालकायदे

रावण के भाई विभीषण का श्रीरामचन्द्र जी से समागम होना,
श्रीरावण के वध का उपाय वतलाना, कुम्भकर्ण का मारा जाना
श्रीराम मेधनाद का वध, || १५ ||

रावणस्य विनाशं च सीतावस्थितेर्थे पुरे ।
विभीषणाभिपेक्षं च पुष्पकस्य निवेदनम् || ३६ ||

रावण का नाश तथा शत्रुपारी लड़का में सीता जी का मिलना,
विभीषण का लड़का की राजगद्ध पर अभिपेक्ष, पुष्पक विमान का
विभीषण द्वारा श्रीरामचन्द्र जी की मंडह में दिया जाना, || ३६ ||

अयोध्यायायं गमनं भरतेन समागमम् ।
रामाभिपेक्षक्षुद्दरं सर्वसैन्यविसर्जनस् || ३७ ||

श्रीरामचन्द्र जी का अयोध्यायाय, वहाँ भरत से समागम,
श्रीरामचन्द्र जी का रामाभिपेक्ष तथा वायुध सेना की विद्राई, || ३७ ||

स्वराष्ट्रर्जनं चैव चैद्यागारं विसर्जनस् ।
अनागंतं च यहर्मिद्रानयं वधुधातः ।
तत्कारोतरे काण्ये वाल्मीकिंयथंवाजवानुष्ठिः || ३८ ||

इति कृतीयः सर्गः ||

श्रीराम जी का, राज्य सिंहसनासन होने पर प्रजाजन की खुशी
करना, वैद्वी का त्याग, इनके ध्यानिके श्रीरामचन्द्र जी ने इस
भुमिक्षा पर श्रीराम जी जै चारिद्राने किये, उन सब का वर्णन भी
इस काव्य में स्पष्टवाद वाल्मीकि जी ने किया || ३८ ||

वालकायद का दीक्षर सर्गः पूरा हुआ ।

१ अर्थं: पूर्व इति कृतीयतिमयकः उत्तरत्रचालयः: (गो)
चतुर्थ: सर्गः

प्राचराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिकिंग्वैतत्रपिः।
चक्रार चरितं कृत्तां विचित्रपदार्थात्मावान।। १।।
जव श्रीरामचन्द्र जी प्रवेशण के राजसिंहासन पर भास्कर ही चुदे थे, तव महार्षि वाल्मीकि जी ने विचित्र पदों से युक इस सम्पूर्ण काव्य को चना को ॥ १ ॥

[नोट—इस श्रोत से स्पष्ट है कि, यह हिन्दुस्तान श्रीरामचन्द्र जी का साम्राज्य समाप्ति है।]

चतुर्वंश संहीराप्रथै! श्रीकान्तसुत्रवान्थः।
तथा सर्गशतानपथ पर्स्वातानि तथेऽचरणस्।। २।।
वेदीय संहीराप्रथै! से विनाशा सर्ग, चूंकि काण्ड श्रीराम साथ ही उत्तरकायड़ की मी रचना महार्षि ने की ॥ २ ॥

कृत्वापि तन्महायाज्ञः समभूवः सहोवंचरणस्।
चिन्तयामास के नेत्तल्युः श्रीयादिति युधः।। ३।।
इस प्रकार जय वे चूंकि काण्ड श्रीराम उत्तरकायड़ बना चुने तथे वे विचारने लगे कि यह काव्य पढ़ावे किसे ॥ ३ ॥

तस्य चिन्तयामास्य महर्षभावितात्मनः।
अगढ्यवत्तं तत: पादां शुमनिवेषों उशीरवः।। ४।।
वे यह सेवा ही रहे थे कि, इतने में कुश श्रीराम ने भास्कर वाल्मीकि जी के चरण कुप ॥ ४ ॥

१ प्रसिद्ध—वाचित्यमेव ह्योऽद्वितीचित्तयामास ( गै.१० )
कुचीछवियाँ तू धर्मजोति राजपुत्रों यथास्वतिनिः।
शरात्रों स्वरसंपन्नों ददश्रीधर्मनाथसिनिः॥५॥

उन यशस्वी धर्मोत्तमा दोनों राजपुत्रों (धौरामचन्द्र तो के पुत्रों)
के महार्षि ने देखा जिनका कारक्षत्र बंड़ा मधुर था धौर लेले।
वन्हीं के ध्रुपदमें उन दोनों वास करते थे ॥५॥

स तु मेघाविनिः दद्भ्र बेदेपुर विनिक्तिवः।
बेदेपुरजनाथायार्य तात्रागाहयत प्रसः॥६॥

इद्दिमान धौर बेदेयों में निश्चय रखने वाले जान कर, बेद के
प्रवर्तक की श्लोकों में प्रकट कर, महार्षि ने उन दोनों को वह काव्य
पढ़ाया ॥६॥

काव्यं रामायणं कुलस्ते सीतायाचरितं महत्।
पौलस्त्यबन्धितेषु चकार चरितमभवत॥७॥

महार्षि ने सीताराम के सम्प्रदाय चरित रावणवध के बुद्धात्म
कहते इस काव्य का नाम “पौलस्त्यवध” काव्य रखा ॥७॥

[नोट—रावण का जन्म पुत्रश्व ब्राह्मण के दंश में हुआ था, अतः रावण
का पौलस्त्य भी कहते हैं। पौलस्त्यवध अर्थात् रावण का वध, जिसमें चरित
किया गया वह पौलस्त्यवध काव्य कहलाया।]

पाव्ये गेरे च मधुरं रामायनं भिन्निंचिरिन्तिम्।
जातिभिः समस्मिभिः तन्त्रिच्छयसमन्वितम्॥८॥

यह चरित पढ़ने तथा गाने में मधुर, तीनों प्रमाणों से युक्त
प्रारंभ हुआ, मधुर, विलक्षित सहित ।, सातों स्वरों से वंचा हुआ,
गौर विनयादिः भजा कर गाने श्राप्य है ॥८॥
वाचनविवेचन—आयतनिवालवेजनवागवाति क्षुद्रा (गो)।
च १० र ११—८
महात्मानों महायानों सर्वदक्षिणमृदों।
तै कर्मचितसमेतानामपूर्णां भाविताभमानां॥ १५॥
आसिनानां समीपस्थाविदं काव्यमहायताम॥ १५॥
तच्छु त्वा मुनयं सवेम श्रापपयाकुल�्ठेकणां॥ १५॥
एक वार गृहांतु श्रीरामचरित जी के प्रथमेकचजा में, महात्मा महाभाष तथा सर्वांशक्यकुल दोनों भाइयां ने प्राह-निचार-सम्प्रक्ष महात्मा सत्यिनी की भाषा में बैठ कर यह आय काय्य गया, लिखिता कुन कर मुनियां के शरीर रोमाञ्चित है गये और उनके नेत्रों से प्राहु टपकने लगे॥ १५॥ १५॥

साहु साहिति चाप्पूचुः परं विस्मायमागताः।
ते गीतमनस् सवेम मुनया धर्मवत्सलः॥ १६॥
व ध्राक्षर्य वर्चित हे "साहु साहु" कह कर उन दोनों राज-कुमारों को प्रशंसा करते हुए वे धर्मवत्सल ऋषि, ध्राक्षर्य वर्चित हुए॥ १६॥

प्रशार्वसं: प्रशस्तान्यां गायन्तानिः तैं कुशीलवां।
अहों गीतस्य माधुर्यं श्रोकानां च विशेषः॥ १७॥
वन गाते हुए प्रशंसा करने वामें राजकुमारों को प्रशंसा कर, वे बले कि, गान बड़ा मधुर है और स्त्रोकां का मधुर तो बहुत ध्राक्षिक चढ़ बढ़ कर है॥ १७॥

विरिकन्त्मयेतमत्त्वशस्मिन्दर्शितम्।
प्रविश्य ताप्पूचुः सुधु तथा भावमहायताम॥ १८॥

॥ भाविताभमान—निचारीविधिम् (गोः)
क्योंकि बहुत दिनों की बीती घटना प्रत्यक्ष की तरह दिखलाई लो पड़ती है। इस प्रकार ज्ञापियों द्वारा प्रशंसित दोनों राजकुमार उनके मन के मानानुकूल। || १७ ||

सहिता मधुरं रत्नं संपत्तं स्वरसंपदा।
एवं प्रागस्यमानाः तै ल्यापः। श्रावण्यहातमामः। || १८ ||

प्रति मधुर वाणी में प्रथम ् राग से उस काव्य का गाने लगे।
उसे सुन ज्ञापियों ने उन गाने वालों की बड़ी बड़ी की। || १९ ||

संरक्षतरमतयथमधुरं तावगायतामः।
भीतं। करिचन्द्रनिस्तां भयम सस्मितं। कलशं ददीं। || २० ||

प्रसजो वल्कलं करिचंद्रां ताप्यं भोजतापः।
अन्यः कुण्डाजिनं मादान्याभीजीमं भवासुनिः। || २१ ||

करिचत्कपण्डुः मादाग्राजसुनमथापः।
आविद्वरीं वृत्तिमन्यो जपमालायथापः। || २२ ||

आदुध्वमपरे चोजुरुष्टा तत्व यहर्यं।
आधुर्यमिदुमायानं भुनिना संपकीर्तितमः। || २३ ||

राग सहित मधुर काहं से गाने वाले उन राजकुमारों के मधुर गान पर प्रशंसा हो। छुने वालों में से किसी ने हँस कर उनकी कलसा, किसी ने वकल, किसी ने मंगचर्म, किसी ने बहाविरोध, किसी ने कमछड़, किसी ने मोँझी बेखला, किसी ने फ्रासन विशेष, किसी ने कीर्तियां, किसी ने कुश्याक, किसी ने फ्रासन वक्त, किसी ने चीर, किसी ने जटा बाँधने का डोरा, किसी ने कोई।

१ रक्त—रागचुंक (मो०)
वाजकायादे

यहाँपाँच, और किसी ने माला दी। किसी ने प्रसत हो और स्वस्त
और व्रजुध्वाण कह कर प्राशिवाद ही दिया। इस व्रजध्वाणप्रद काव्य
के प्रथौता की प्रशंसा कर वे कहने लगे, || २० || २१ || २२ || २३ ||
परं कनीनामाधारं समांतं च यथाक्रमम्।
अभिगीतिमिदं गीतं सर्वगीतेशु कोचिदिः || २४ ||
यह काव्य पीछे के कवियों का आचार स्वाप है और यथाक्रम
समाप्त दिया गया है। यह अत्य जैसा प्रदृश्य है जैसा ही गीत-
विशार्द इन देवों राजकुमारों ने इसे गाया भी है || २४ ||
आयुष्यं पुष्टजनकं सर्वश्रुतिमनोहरस्।
प्रसतस्यमानं सच्चं कदाचितां गायनों || २५ ||
यह काव्य ग्रोताणों की आयु वढ़ाने वाला तथा उनकी पुष्पि
करने वाला और सुनने के सब के मन को हुले वाला है। इस
प्रकार गुनियों से प्रसाधित देवों राजकुमारों का, || २५ ||
रघुवाणु राजमार्गों दृद्धं भरताग्रजः।
स्वल्पेक्ष चानीय ततो भ्रातारं च कुशीलवं || २६ ||
राजमार्ग पर जाते हुए भ्रात्रिमचन्द्र जी ने देखा और वे उन
देवों माई कुश और लाव को ब्रह्मण सबन में लिवा हो गये || २६ ||
पूज्यामास नूपूजी रामं श्रावनिवर्हणं:।
आसीनः कृत्तेन दिव्ये स च सिन्हासने मधु: || २७ ||
शमु का नास्क करने वाले भ्रात्राम जी ने घर पर उन सकार
करने गावः देवों कुमारों का मली मोति शादी सकार किया और
ब्राह्मण के दिव्य सिन्हासन पर खेड्ढ || २७ ||
उपाधिविषयः सचिवालयानुबंध प्रत्ययः।
द्या तु रूपसंपन्नां तान्मां नियतस्तव। ॥ २८ ॥
मंत्रियों व भाष्यों सहित वै द्यु श्रीरामचरणः जी उन रूपवान
श्रीर सुभवित देवों भाष्यों की देख कर ॥ २५ ॥
उवाच लक्ष्मण रामः श्रुतुः भरतं तथा।
श्रुतामिदमार्गायानमन्योदेशवच्चि। ॥ २६ ॥
ज्ञातमा, ज्ञात श्रीर भरत सें कहने लगे कि, इन देव समान
वेजस्वी, गायकों के गान किये द्यु इतिहास को छुटे ॥ २६ ॥
विचित्रार्थं चतुर्वर्णमात्रा सम्यगार्थविशेष।
तेषां चापि मधुरं व्यक्तं सचिवालयातनिःस्वनम्।
तत्त्वेऽर्थवद्यं विन्यासार्थविशेषाभलम्। ॥ २० ॥
इसमें नाना प्रकार के विचित्र ग्रंथ सहित पद हैं, यह कह
उन्होंने उन वालकों के बच्चे प्रकार गाने की प्राप्ता भी। तब उन
द्वारों दौरे उस भली भक्ति सीखे द्यु गायः की वीणा के साथ स्वर
मिला कर चौंचे स्वर में इष्टे गाया ॥ २० ॥
हादयसंवागार्थाणि प्राप्ति हृदयानि च।
श्रोतास्यलुक्तं गयं तदरो जनसंसदि। ॥ ३१ ॥
उस समा में वै द्यु लेने के मन श्रीर हृदयः उस गान की छुट
कर प्राच्यात्म द्यापहार्दित हो गये ॥ ३१ ॥
इति मुनि पार्थिवलक्षणान्वितो।
कुशीलवो च नेन महातपस्विताः।
ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते
यहातुमारं चरितं नित्रोधत || ३२ ||

श्रीरामचंद्र जी भी कहने लगे कि, राजलक्ष्मण से युक्त इन बड़े तपस्वी कुश श्रीर तव ते प्रभावत तक चरित गाते हैं वे मुमक्त बहुत फर्ज़े जान पड़ते हैं || ३२ ||

तत्तद्वै रामचंद्रभोषिता-
वगायतां मार्गविचारसंप्रदा ||
स चापि रामं परिपुर्णं शनी-
शुभांिसकमना कृत्वा ह || ३३ ||

इति चपुर्ध: सर्गः: ||

इस प्रकार श्रीरामचंद्र जी द्वारा प्रणता हुई, ध्वनियों महत्क, गायन बिंधाकी शीर्षित की चरसा कर, बड़ी प्रचंडी तरह गाेने लगे। लमाएं देहें श्रीरामचंद्र उनका गान ठीक ठीके ठीके उनके गान पर माहिति हो गये || ३३ ||

चैते नर्त सूरा हुआ

---

प्रश्नमः सर्गः:

---

सर्वा पूर्व्यभिः ये येषामातीनीतकस्ता तुसंधि: ||
प्रजापतिस्युपादायं पद्यां जयशास्तिनाम् || १ ||

१ अष्टादश:—दुर्घाम (गो) २ उपाद्रय—आरथ्य (गो)
प्रारम्भः सर्गः ॥

राजा वैवेकानाद गदी जयशाली राजाश्रयों के समय से यह सत्त्वोपात्मिक यथििि पुष्वती, अथपूर्व ही चली गाती है, अथवा महात्मा मनु जो से लेकर जयशाली राजाश्रयों के समय से यह सत्त्वोपात्मिक समस्त पृथिवीमय घाट पर एक्षण शासन रहा है ॥ १ ॥

थेरा स सगरो नाम सगरो येन खानितः ॥

परिः पुत्रसहस्राणि यं यान्तर पर्यवारयन् ॥ २ ॥

जिनक ं वंश में वे सगर नाम से राजा हुए, जिनके साथ साथ हजार पुत्र चला करते थे प्रार मनु जिन्होंने समुद्र खोजा था ( समुद्र का सगर नाम सगर राजा हो से हुआ है ) ॥ २ ॥

इक्ष्वाकुपरिणत सेना राजा वंश महात्मनामः ॥

महादुर्धि मार्यायानं रामायणार्थित श्रुतम् ॥ ३ ॥

उन महात्मा इक्ष्वाकुवंश वाले राजाश्रयों के वंश में यह महाकथा उत्पन्न हुई है, जै रामायण के नाम से जगत में प्रसिद्ध है ( अर्थात् इसमें उन्हीं सगर राजा के वंश वालों का इतिहास दिया गया है ) ॥ ३ ॥

तत्त्वं वर्तिष्ठगीतामि सर्वं निलिङ्गमादितः ॥

पर्यावर्तस्तहितं श्रोतन्यभेनन्दस्याणं ॥ ४ ॥

पर्यावर्तस्य—परितोपात्मिक (गो०) २ वर्तिष्ठगीतामि—प्रवर्तिष्ठगीतामि (गो०) २ श्रोतसंय—नदिवश्चितितिवाच्चनविरीक्षितवं (गो०) ४ अन-सूययां—असयामित्यां श्रद्देतरथः (गो०)
उसी रामायण की कथा के हम प्रायान (प्रादि से प्रान्त तक)
कहनी। प्रति इसे इन्याँ प्राथीख छाए की हदार प्राथीख अदा महित।
खुदा छाविये॥ ५ ॥

कोसले नाम उदित। स्फीते जनपदे महान।
निविष्टः सरस्वतीरे मधुरधनधान्यवान। ॥ ६ ॥
सर्वू नदी के तट पर सन्तुष्ट जनों के पूर्व धनधान्य से महा
पुरा, उत्तरेकर्त उत्तरति का प्रति, कोसल नामक एक वडा
देश था। ॥ ७ ॥

अयोध्या नाम नगरी वर्षासैलोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण ता पुरी निर्मिता स्थमृ। ॥ ८ ॥
इसी देश में मनुष्यों के आदिश्राज़ प्रलिख महाराज मनु की
नगरी वसाई हुई, तीनों लेखों में विख्यात भ्रायोध्या नामक एक
थी। ॥ ७ ॥

आयता देश च देव च योजनानि महापुरी।
श्रीमति त्रिवनि विस्तीर्णं मुविन्धज्ञापनं। ॥ ७ ॥

यह महापुरी वारह योजन (४५ कोहर यात्रा ६५ मिल ) चौड़ी
थी। नगरी में बड़ी लूकर संबंध खौर चौड़ी सड़के थीं। ॥ ७ ॥

1 सुदिता—मनुदेवताः (सौ) २ स्फीता—समुद्रः (सौ)

इस छोटे के नाम यह है कि, यह प्रथम वहाँ जी का बनाया दुआ
होने के कारण तुझे केवल इसके प्राचार करने का आधिकार है। अतः
विचारशीलों की इसे मेरा बनाया दुआ सम्म इस प्रतह से दाह न करना
चाहिये, किन्तू श्रद्धा भक्ति के साथ इसे सुनना चाहिये।
राजमार्गम् महता शुभिवक्षेन शोभिताः ।
शज्जुक्तपुष्पावकृतिः जलसिंधुन निल्याः ॥ ८ ॥

वह पुरी चारों ओर फैली हुई बड़ी बड़ी सड़कों से छूटिया थी। सड़कों पर निक्ष जल ढूँढ़कर जाता था ओर फूल विख्याते जाते थे। ॥ < ॥

तो तु राजा दशरथो महाराजापरिवर्धन: ।
पुरीप्राप्तयामास दिवं देवपतियाः ॥ ९ ॥

इति की धमरावती की तरह महाराज दुःशरथ ने उस पुरी को सजाया था। इस पुरी में राज्य की खूब बढ़ाने वाले महाराज दुःशरथ उसी प्रकार रहते थे जिस प्रकार ख्यात में इन्द्र वास करते हैं। ॥ ६ ॥

कवाटतोरणवती सुविभक्तान्तरपणाम् ।
सर्वधनापुणवतीपत्यां रत्नविलिपिः ॥ १० ॥

इस पुरी में कई तरह द्वार (पौरें) सुन्दर वाज्ञा ओर तोरमण की रचना के लिये चुतुर शिक्षियों द्वारा बनाया हुय सब प्रकार के वंश ओर शाखा रहते हुय थे। ॥ १० ॥

सुतमार्गसंवायां श्रीमतीमतुलभास्म् ।
उच्चाहालध्वन्तां श्रीप्रस्तवसंहुलाम् ॥ ११ ॥

उस में सूत, मागध वंदेव भी रहते थे, वहाँ के निवासी द्वारा धन सम्पत्ति थे, उसमें बड़ी बड़ी ऋषियों धर्मार्थियों वाले मकान, जो व्याज पताकाओं से शोभित थे, जने हुय थे, ओर परश्वों की दीवालों पर सैकड़ों तपें चढ़ते हुय थीं। ॥ ११ ॥
वधूपाक्यस्यां संयुक्तं सर्वं पुराम्।
उच्छान्नक्रणोपेतां महतीं सापेक्षतः। ॥ १२ ॥

शिरों की नाव क्षमितियों की भी उसमें कमी नहीं थी
ढोंग सबक जगह जगह पक्क यानो उगान थे और गाया
नगरी की शोभा बढ़ा रहे थे। नगर के चारों ढोंग साक्षरों के
लंबे लंबे ढोंग चढ़े हुए ये अन्दे जान पड़ते थे, मानों
प्रथमचा रूपवां
करती ही ॥ १२ ॥

दुर्गमभीवेपरिक्षा दुर्गमन्वेंदुरासदामू।
बाजिवारणसङ्गुणार्गभिन्नेऽन्नरसयथा। ॥ १२ ॥

यह नगरा दुर्गम किले ढोंग ढीले से युक्त थी तथा उसे किसी
प्रकार भी शिरु जन प्रथम हाथ नहीं लगा सकते थे। हाथी बोधे
वैल ऊँच हमसे जगह जगह देख पड़ते थे। ॥ १२ ॥

सामन्तराजसंभौं चक्षुविद्वारास्तामू।
नानादेशविवारसैः वाणिज्यशस्त्राशिमासू। ॥ १४ ॥

कर्तव्य राजा ढोंग पहलवानों का यहाँ बढ़ा जमाव रहता था।
उस पुरी में श्रेणी ग्रेहों के लोग व्यापारिदि धंधों के लिये बसते
थे। ॥ १४ ॥

मासां राशिविकल्यातः परतेन्तोषोभिमासू।
कृतागारेः संपूर्णामस्मिद्वयापमार्गरतीमू। ॥ १५ ॥

रथ चढ़वित महलों ढोंग पर्वतों तक वह पुरी शोभाभरती ही रहीं
थी। यहाँ पर शिरों के कोड़ायुग में बने हुए थे, जिनकी खुन्डस्ता
देख यही जान पड़ता था मानों वह दूसरी ध्रुवरात्री पुराज है। ॥ १५ ॥

कृतागारे—क्रिणांकृयापूर्वीः (गो)
चिद्रांमधुरपदाकारं कर्नारीगणेयूतामू।
सर्वरतसमाकृतिः विमानगुहशोभितामू॥ १६॥

राजमभवनं का सुलहला रंग था। नगरी में सुन्दर क्षुपयवती
किर्मांग रहती थी। रत्नों के डुबे वहाँ लगे रहते थे। और आकाशस्पर्शी
सतहने मन्त्रान (विमान गुहा) जहाँ दृष्टे वहाँ दिखलाई पड़ते
थे॥ १६॥

गुहगाड़ामविचित्त्रां समभथूर्णिवेश्तितामू।
शारित्विक्षुद्रसंपूर्णामिद्धुद्ररसादकामू॥ १७॥

उसमें चारस्त्र मूर्ति पर बड़े मजुरों और सचिव मन्त्रान प्रथमत
बड़ी सचिव वस्त्री थी। नगरी में साठी के नावलों के डुबे लगे हुए
ये बिन्दु कुत्तों में गन्ने के रस जैसा मीठा जल भरा हुआ था॥ १७॥

दुन्दुभीभिभुसिद्भ्रंच वीणामि: पाण्वेस्तथा।
नादित्यं भृस्मचत्वर्ष पूर्विच्या तामनुशास्त्राः॥ १८॥

नगादे, मुद्र, वीणा, पनस आदि बाज़ों की ध्वनि से नगरी
सदा प्रतिप्रचारित हुआ करती थी। पृथ्वीतज पर तो इसकी टकर
की दूसरी नगरी थी नहीं॥ १८॥

विमानमित सिद्धानां तपसाधिगतं दिविच।
सुनिवेशितेवेश्मानां नरोजमसमाह्रताः॥ १९॥

---

1. चिद्रा—नानाराजगृहस्वरूपाः (स००)। 2. अध्यायपदाकारं—अध्यायां सुवर्णी
तमज्ञेन कुतः आकारः अध्यायो यस्याहवेकैः (१०)। 3. सुनिवेशिताः—युष्टी
निर्मिताः (स००)।
वालकारंदे

उस पुरी में, तथा द्वारा स्वर्ग में गये हुए सिंह पुर्वों के विस्मानों
जैसे सुन्दर घर बने हुए थे, जिनमें उत्तम कोटि के मनुष्य रहा,
करते थे। ॥ १६ ॥

ये च वाणीं विध्यन्ति विविक्रमपरावरसुः।

शूद्वधर्म च वितरं जयुश्ता विज्ञारदः। ॥ २० ॥

उसमें ऐसे भी वीर थे जो भ्रष्टाचार शूर युद्ध छंद कर भागते
वाले श्रुत का कभी वध नहीं करते थे, तो शूद्रदेवी का वाया चलाते
थे, जो वाया चलाने में चढ़े पुर्वों थे तथा जो प्रश्न-शास्त्र-विधा
में पूर्ण निपुण थे। ॥ २० ॥

सिंहव्याप्रवराराणां मन्त्रानां नद्दतां बने।

हन्तारो नित्यितेवंशेन्द्राहुड़क्षेत्रपिः। ॥ २१ ॥

सिंह, व्याय, वर्रिह आदि कथा पशु का वर्णों में दहाड़ते हुए-
जुमा करते थे, उनको धन्य शारीरों से तथा उनके साथ महायुध
करके वनको मारने वाले मी वीर इस नगरी में ध्यान थे। बारीकी
हस्तलाघवता में तथा शारीरिक बल में यहाँ के बीते वैभव बहुत
कढ़े बढ़े थे। ॥ २१ ॥

वादशानां सहस्रास्तामस्मिन्नः महामयः।

पुरीमात्रासयमास्त राजा दशरथस्तदः। ॥ २२ ॥

ऐसे हजारों महारथी वहाँ रहते थे। महाराज दशरथ ने इस
शकर से धन्यवाद भरकर वहीं थी। ॥ २२ ॥

तामिलखरां गुणवद्विराहं

द्विनेत्यंवेदंपश्चापनः। ॥

१ वितरं—पालितं च (गो०)
पुराणादि सत्यरूपं महात्म्यः
महाप्रकटमेघादिपिंभस्च केवलः

इति पचमः सर्गः

प्रयोधपुरो में शक्तिः साधिकः (नित्य भक्तिव्रत करने वाले
व्रज) सब प्रकार के गुणों, पद्मः पेदः का पारारण्य करने वाले
विद्यानु वायुक, सत्यवादी महाभाषा और तपः में निरल हज़ारों
अष्टि महाभाषा ही मुख्यतः धार्मिक कर्त्तव्य्। वर्षे

पाँचवो सर्गः समाप्त हुँया।

——

षष्ठः सर्गः

—०—

तस्यं पुराणेश्यायं वेदेश्वरसंग्रहः
दीर्घदृशरी महात्मा: पारजानपदेशः
इत्यादि गणातिर्क्तः यज्ञा धर्मरतो वज्री
महाप्रकटस्य राजपिलिङ्गः लोकेन्द्र विश्रुतः
सङ्ग्रहविचारतामिः पिश्चवानिजितेन्द्रियः
प्रभुः संचर्यायणः शक्तिनंदनपोपः
यथा मनुराजात्मा लोकस्य परिनिरंतिता
तथा द्रवसरसो राजा वसज्ञगदपालल्यम्

1 दोव्रव जी—मुद्गः (वि०) 2 दीर्घदृशरी—चिरकालभाविदपदेशःस्वीकारणीयम्
महाभाष्टीविद्या तथा (गो०)
बालकाशणे

दस ग्रन्थावरुणी में वेदवेदार्थ जानने वाले, सब वस्तुओं का संग्रह करने वाले (सत्य संग्रहः—धर्म का विचार रखते हुए सब का, संग्रह करने वाले) सत्यभविस्म, दुर्दशी, महतीजजी, महासिन्धि, इद्वानावंश में महाराजी, अनेक यज्ञ करने वाले, धर्म में रत सब की अपने वश में रखने वाले, महर्षियों के समान, राजाप, तीमून लोगों में प्रसिद्ध, वल्लिका, श्यामिनि, सब के मित्र, इत्यादि के वश में रखने वाले, धनादि तथा अन्य वस्तुओं के संबंध करने में इद्व श्रीर कुंवर के समान, महाराज दुःखरथ ने, ग्रन्थावरुणी में राज्य करते हुए उसी प्रकार प्रजापालन किया जिस प्रकार महाराज मनु किया करते थे।

तेन सत्याभिस्मेन त्रिवर्गमुनितिष्ठता ।

पालिता सा पुरी श्रेष्ठ इन्द्रेषुपामरावति।

सत्यसंधि, तथा त्रिवर्ग प्राति (धर्म, अर्थ श्रीर काम) के लिये अनुशानादि करने वाले महाराज दुःखरथ ग्रन्थावरुणी का पालन उसी प्रकार करते थे, जैसे इद्व अपनी यथार्थता पुरी का करते हैं।

तक्षिन्युरवरे हुष्ट । धर्मरत्ननां वहुश्रुताः।

नरास्तुला धनैः स्वेतः स्वेतुक्वः सत्यवादिनः।

उस श्रेष्ठ ग्रन्थावरुणी में सुख से वसने वाले, धर्मरत्न वहुश्रुत अध्यक्ष तोहुबल जयानाथ को जीतने माले हुए, अपने अपने धन से सत्तुष, निरंभो, तथा सत्यवादी पुरुष रहते थे।

नायपित्यंगः कनिष्ठासीतक्षिन्युरोत्तमे।

कुटुम्बी येथा हसिन्दारथोऽगवारवधनदना धान्यवान।

||

60 अध्यायः—वालकाशणेचतुर्मः (गो०)
उस उत्तम पुरी में प्रर्थी यात्री धनहीन तौ कोई या ही नहीं,
धरिक मह या वाला भी कोई या न था, वहाँ जितने कुछ वाले
ले गए थे, उन सब के पास यह धान, गाय, बैल, और
वे थे। ॥ ७ ॥

अग्नि या न कट्टर या नुशारं शुष्क कृतित।
द्रष्टु शक्यमुनि यायां नाविकम्प च नास्तिकम् ॥८॥

धर्ममुनि में लम्ब, कायर, नृष्ण, मूल, नास्तिक यादृशी
तो हृद्देशः पर भी नहीं मिलते थे। ॥ ८ ॥

सत्य नारायण नायिक धर्मशालाः सुरंगताः।
उदिताः शीषवाचार्याः महर्षि इवामलाः। ॥ ९ ॥

धर्ममुनि वायसः सत्य और क्षत्रिय, सत्य के सब धर्मसमा
श्रीर जितेन्द्रम् थे। वे धर्म के श्रुत और निश्चलसमा
महर्षियों में श्रक्षित थे। ऐसे उन वातों में वहाँ के रहने
वाले सब ले गए धर्मसमा के समान थे। ॥ ६ ॥

नामुकुटी नामुकुटी नास्तिकी नार्यभेदवान्।
नामुकुटी नास्तिकी नामुकुटी नास्तिकवाना। ॥ २॥

वहाँ ऐसा एक भी जन नहीं था जो कामों में कुशल, सिर पर
कुशल तथा गले में शुष्क माला धारण न करता हो, और जी तेल,
सुलेख, चन्द्र के न लगाता हो या जो हर प्रकार से खुशी न हो। ऐसा
वी कोई भी न था जिसके ( स्वच्छ न रहने के कारण ) शरीर
भरे कुद्रवी निकलती है। ॥ २॥

। अल्पनागचन्—अल्पसुकुबचन् ( गो ० ) । मृदु—अभ्यज्ञान:-
श्रुत: (गो ०)
नामृष्टंभोजी नादाता नायनहरू।निर्मलकृपक।
नास्ताबधरोगो वायुजिक दस्यते नायननत्मकान। ॥ ११ ॥

वहाँ ऐसा एक भी जन न था जो ॥अभुधा ॥ अर्थ क्षाता हो ॥ ( ६। आवृत्त वर्तमान न क्षाता हो ॥ ) या जो भूषण का अर्थ न देता हो या
जिसके गले धीर हाथों में धरने के गहने न हों या जिसके धनरेते धन के न जीत रखा हो ॥ ११ ॥

नानाहितात्मानिन्यवादः न शुद्धो वा न तस्करः ॥
कशिचदात्रस्थेयायाः न च निर्जनसंस्करः ॥ १२ ॥

प्रत्येर्याः में न तो कोई रूप ऐसा ही था या जिसे कार्याकार बलि-बैक्षेत्र करता बाहिेर धीर न करता हो या जे चुंबनेता यानी
नीच व्यभिचार का हो, या चैर हो, या वर्षाकुठ हो ॥ १२ ॥

स्वकम्मनरता नित्यं ब्राह्मणव बिजितेन्द्रियः ॥
दानाध्यनशीलाच संपत्तवह् प्रतिग्रहेऽ ॥ १३ ॥

स्ति पर ते धनरेते वर्षामें धराम का नित्य प्रभुपाल करने
बाले, जितेन्द्रियः दान धीर अध्यनशील तथा दान (प्रतिग्रह)
के में हिचकने बाले ब्राह्मण बसते थे ॥ १३ ॥

नातिरतिकों नास्तितत्वो न कर्शिष्टवहुस्रुतः ॥
नानमयको न चाशसो नायनविनिर्केतरे कथितः ॥ १४ ॥

१ नामृष्टमृती—अभुधास्तमृती (सिद्ध) २ नायवा—सत्युपार्ग्यहित्र्या
(सिद्ध) ३ निर्पुंचस्लादः—निर्पुंचाः अनुविषयः, सहस्र: परश्रीतवावृंचायाया
दियेंत सः (गोरी)

४ वाच्येवचदेवादि कम्विचिये विना अध्य शुद्ध नहीं होता ॥
नासपुरवाचीन्नार्वते सानसेदः।
न दीनः सिस्वितो वा व्यथितो वापि कर्मचः।।15।

वहाँ न कोइ ऐसा ही दिन हा जै नित्य पद्धतें दा स्वार्थ्ये न करता है, या जै एकादशो त्वा। इति तो कोई न रक्षता है, या जै पद्मने में कोइ रक्षता है, या दीन हा या पागल हा, या व्यथित हा, 
नायक दुःखित हा।।15।

कृशिचन्द्रो वा नारी वा नायकमानायन्युक्तानान्।
द्रष्ट्यं शक्यम०योध्यायां नायि राजन्यभक्तिमान्।।16।

शख्यायमें वसने वाले कता पुरुष और कता खियां कोई भी निर्धन और कुल न थीं। रस पुरी में ऐसा ही कोई पुरुष नहीं देख पड़ता था, जै राजभक्त न हो रे कर राजदीन है।।16।

वर्णेश्चर्यहर्षतुर्यथे देवतातिथिपूजकाः।
कुलशाहस वदन्यायाच शुरा विक्रमसिद्धता।।17।

वहाँ तो चारों वर्ण वाले लोग वसते थे, जै देवता और 
प्रतियों का पूजन किया करते थे, जै कुलां, वदन्या, ( वचन के 
पुरा करने वाले, द्रानिमुखा ) शुरुवोर और विक्रमशाली थे।।17।

दीर्घसुधियो नरा: सवेः धर्म सत्यं च संभिता:।
संभिता: पुत्रपौरीश्च नित्यं ब्रीमि: पुरोहितम्।।18।

1 एकादशपाददिवसतः (वि.५) 2 नासपुरवाची—अद्वैतम् ( गो.५ )
वा० १०—५
वालकार्यः

सब ध्येयवाचारी दीर्घाकार वाले, धर्म श्रीर सत्य का चालनय
लेने वाले; पुष्च, पौश श्रीर श्रीरय से भरे पूरे थे। १५।

श्रवः ब्रह्माकर्मः चालोत्स्रवः; क्ष्त्रमनुत्त्रमः।
शुद्धः सत्यम निर्याल्लोस्त्रव्यः। १६।

चारी के दान्तियगा श्रावः के श्रावःकारी, श्रेष्टगा दान्तियों के
चारी (धार्मिक कार्य में चलने वाले) श्रीर शुद्धगा धारियों के
धर्माटियार श्रावः, दान्तिय श्रीर श्रेष्ट जाति के लोगों की सेवा
करने वाले थे। १६।

सा तेनेक्ष्वाकृनाथेन पुरी सुन्निरङ्किता।
यथा पुरस्तात्म्यजा: मानवे: द्रवमा द्वस्ये। २०।

महाराज दशरथ उसी प्रकार ध्येयवाचारी का पालन किया
करते थे, जिस प्रकार उनके पूर्वज बुध्मान नरेश महाराज मनुः
कर पुरी थे। २०।

ध्येयानामार्थिक्याणां पेश्चानार्थः अपरिणम्य।
सवृप्तां कृतविधानां गुह्या केसरिणामिब। २१।

प्रियि के समान तेजसी, सरलचित्र, शान्त बल को न सहने
वाले, तल शान्ति परिचालन में निपुण योग्यार्थाओऽ से ध्येयवाचारी
उसी प्रकार भरी हुई थी, जिस प्रकार पर्वत-कूटाय जिन्हों के भरी
हुई होती हैं। २१।

काम्योजविषे जातिविनिमित्त हृदये:।
चनाचुडंकैर्द्वीत्रै पूर्ण: हरिह्योत्तम:। २२।

१. ब्रह्माकर्मः—ब्रह्माणमार्थान्दासः (स०१) २. पेश्चानार्थः—अकुलीकानामः।
पार्वती के घासों के समान कम्बेज, वादुक, वनायुज धौर सिल्कु
केश के समीपवर्ती देवी में उत्पन्न हुए घासों को जाति के उच्चमो-
चुम घासों से प्रयोच्चापुरी सुरूहै य यी । २२ ॥

भिक्खु पर्वतनस्त्रेष्टः पूर्णा हैः बततेष्ठि ।
मद्यान्तित्वितितितत्तवः पर्वतोपयः ॥ २३ ॥
ऐरावतकुलोप्रेषिन महाबहुिजस्तथा ।
अवज्ञानादृष्टि निपपनेखोिमादृष्टि च दृष्टियः ॥ २४ ॥
मद्यान्तित्वितितितत्तवः पर्वतोपयः ॥ २५ ॥

नित्यमेवः सदा पूर्णा नागेन्द्रचित्रसमिधः ।
सा येतने च दे सूयः सत्यनामा प्रकाशतः ॥ २६ ॥

विश्वायचल धौर हिमालय पर्वतोऽ में उत्पन्न मद्यान्त्व, अति
वत्तशाली तथा पहाड़ों को नाहँ ओझे धौर महाबहुि कुल वाले ।
भद्र, मद्यान्तित्वितितितत्तव जाति वाले धौर इन तीनो जातियों के भीतित
लक्षणानुक । मद्यान्तित्वितितितत्तव अहिंसा धौर—इन दे दे जातियों
के भीतित लक्षणयुक्त, पर्वताकार हाथियों से महर, दे येतने
वाली, अपने नाम की सार्थक करने वाली प्रयोच्चापुरी थी।
( प्रयोच्चा का श्रद्धा है—जिससे कोई मुद्दा न कर सके अभावतं
ब्रजेना ) ॥ २२ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

यथायां दामरथो राजा वसंजगद्यशष्टः ।
तां पुरी स महातेजा राजा दसरथो महान ।
शास्त्र शास्त्रितासि नक्षत्राणि च चन्द्रसम ॥ २७ ॥
वालकायादे

इस प्रकार की अयोध्या नगरी में महाराज दुर्योधन रह कर राज्य करते थे। उस पुरी में महाराज दुर्योधन राज्य करते हुए उसी प्रकार श्रीमायामन होते थे, जिस प्रकार नदियों के बीच में चन्द्रमा || २७ ||

तां सत्यनामं द्वदौरूपगांलं
गृहीत्वमिच्छैत्युपशोभितां शिवास्।
पुरीमयोष्यां दृसहस्रसंग्रहं
शाशवः वै शक्समो महीपति: || २८ ||

इति पदः सर्गः ||

यापने नामं के चार्त्तार्थ करने वालो अयोध्यापुरी में, तो
हूँद तोरा अयोध्या क्षेत्रादि ये गुणक थी, जिसमें चित्र चित्र घर बने हुए
थे श्रीर जिसमें हजारों घनी मनुष्य बाल करते थे, महाराज दुर्योधन
इत्य की तरह राज्य करते थे || २८ ||

वालकायाद का डडावं सर्गं पूरा हुआ।

---

सत्तम: सर्गः

---०१---

तस्यामात्यं गुणौरासचिन्त्याकोस्तु महात्मनः।
सुन्नाथाक्षेत्रिष्टाधि निल्यं प्रियहिते रताः। || १ ||

उन इत्याकूर्वंशेऽज्जव महाराज दुर्योधन के मंत्रिगण, सर्वगुण दस्य, सप्तरमान दृष्टि में निपुण, अपने उपाधि (यार्थित महाराज
दुर्योधन) के मन की गति की समस्तने वाले, यार्थित दुर्योधनों
पर काम करने वाले और महाराज की सदृश मलाई चाहने नाले थे।

अथितं वसुदूब्रीरस्य तस्मान्यत्या यशस्विनः।
तययश्चान्तरकार्य राजकृतेऽपि नित्यः॥ २॥

महाराज दशरथ के मंत्रिमंडल में आठ मंत्री थे। वे सब बड़े यशस्वी, हैमानदार और नित्य राज्यकार्य में निरत रहने वाले थे।

इस प्रकार नित्य विजय: सिद्धर्थेऽऽयं साधकः।
अशोका मन्त्रपालद्वै सुप्रसाद्याय गच्छति॥ ३॥

आठ मंत्रियों के नाम ये थे: (१) दृष्टी, (२) जयलं (३) विजय (४) सिद्धार्थ (५) अर्थसाधक (६) दृष्टी (७) मंत्र-पाल और (८) सुमंत्र॥ ३॥

ऋतिने विशा भिन्नतां तस्मानोपमित्वमित्वमेऽऽ।
वसिष्ठो वामेनवस नामग्रंथः तथापरे॥ ४॥

इनके प्रतिरिक्ष ऋग्विषय विशिष्ट, और नामदेव और महाराज की यश से करते थे और मंत्रिपद का भी काम करते थे।

विम्बाविनीता हीमनतः कुशला नियतेन्द्रियः।
परस्परात्मकारण नीतिमन्तो वहुशुलं॥ ५॥

श्रीमद्वर्ध शालीख्य दधिक्रिमः।
कीर्तितमन्तः प्रणिन्हि यथावचनकारिणः॥ ६॥

* किती किमी रामायण की पुस्तर में सुप्रव, जावाढ़, काश्यप, गौतम, मार्कंदेय, और कार्यक मन्त्रियों का भी किया करता है। ये महाराज दशरथ के मंत्रिमंडल में समर्पित हिला है।
वालकार्ये

तेजः स्माययः पासः सिमतून्वलीभीमापिः।
क्रोधार्कामध्ये हिंसा न ब्रह्मुन्नतं वचः॥ ७ ॥
तेषामस्वदिन्तं फिचित्स्येवु नासित परे रुा।
क्रियमाणं कृतं चापि चारेणापि चिन्तितपिः॥ ८ ॥
कुशला व्यवहारेऽथ सौहद्ये परीक्षिता॥
पासकारं तु ते द्रंगं धार्येऽथु सुतेप्यापि॥ ९ ॥

वे सब मंत्री विद्या-विनय-सम्पत्त, सजल, कार्य-कुशल, जितेदिय, श्रापस में सज्जन रखने वाले, नीतिविशारद, बड़े ब्राह्मण, धन सम्पत्ति वे सरे पूरे, महामाया, शाखा के समर का जानने वाले, बड़े पराक्रमी, प्रसिद्ध, ( जागरण ) वाच भाषण, राजा के कथानांसार कार्य करने वाले अथवा अपने वात के धनी ( देश, कहाँ वही कर ही ) तेजसी, तिमाहान, यशस्वी और सदा प्रसन्न मुख हो वचन रखने वाले, कोथ अथवा लोमर्श हो कभी सुषुम्न न बोलने वाले थे। अपनी प्रजा तथा दूसरे राज्यों की प्रजा का कोई भी हाल इन मंत्रियों से खिड़ा न था, क्योंकि वे चरों द्वारा सब वृत्तांत जानते रहते थे। वे व्यवहार-कुशल, सौहार्द में जांचे हुए और अथवा कार्य करने पर अपने पुत्र की भी न्यायेशित दृष्टि देने वाले थे॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ५ ॥ ६ ॥

कौशासंग्रहे युक्ता विल्यां च परिप्रेष्॥
अहितं चापि पुत्रि न विहिंसतुरदूपकम्॥ १० ॥

वे सब मंत्री प्रथम और सैन्य विमानों के कार्यों में चतुर, निर्माणः पराघ श्रद्धा की भी न खताने वाले थे॥ १० ॥
वैराक्र नियतोत्साहा राजशाल्मुवता:।
शुभेनां रक्षितारकच नित्यं विषयवासिनासु॥ ११॥
वे वैर अन्ध उत्साह की नियमित रखने वाले, राजनीति में नियुक्त वैर राज्य में वसने रहने वाले पवित्रात्माओं की रचना करने वाले मे॥ ११॥

अयातश्चमहेज्ञसंतस्ते कोशं समर्पयनु।
शुभेक्षणदण्डा संपेष्य पुरुषस्य वलालचलमु॥ १२॥
वे ब्राह्मणों और लोगों की विना सताये ही राजकौशल की बुद्धि करने वाले, वैर अपराधी की वालाल विचार कर कठोर दिशा की व्यवस्था करने वाले मे॥ १२॥

शुभेनामेषुकु दुःस्वीनयों सर्वेन्यां समजानतामु।
नासीतुरे वा राष्ट्रो वा गृहावादी नरं कृतितः॥ १३॥

करिचन्द दुस्तत्रासीसीत्पर्दारतो नरं।
पशानं सर्वेषासीत्रपपुर्वरं च तदृश॥ १४॥

मंगलों में परस्पर ऐसे और आत्मा ऐसा था कि, राजधानी और राज्य भर में न तो कोई सूक्ता और न कोई लम्फ और दुराचारी ही मनुष्य रहने पाता था। राज्य भर में प्रमुखचैन विराजता था॥ १३॥ १४॥

हुवाससः हुवेपान्त ते च सर्वे हुश्रीणिं।
हितार्थं च नरेन्द्रवस्य जाग्रतो तयच्छुपा॥ १५॥
वे लोग प्रच्छ वस्त्र पहनते वे और प्रच्छ वेशेन्नृपा रखते थे तथा कष्ट सुश्रीन थे। वे सत्ता राजा का हित चाहने वाले और नीति से चलने वाले मे॥ १५॥
गुरूं गुणश्रीतार्थ प्रस्वातार्थ पराक्रमे।
विदेश्चापि विलुयाता: सर्वत्रा उद्दिनिश्चयात्। ॥ १६॥

वे अच्छे गुरों के ग्रहक, श्रीराव प्रसिद्ध पराक्रमो ये। वे ध्याने उद्दिवल से सिद्धास्त्व पुरुषों के भी गुण द्वारा ताड़ लेने के लिये विलुयात ये॥ १५॥

संधिविश्रुतत्वज्ञा: प्रज्ञत्या संपदान्तिता।
मन्त्रसंवरणे युक्ता: श्रावणा: सुरसातु उद्दिपु। ॥ १७॥

वे संविध श्रीराव विग्रह को नीति के मर्मद, वास्तविक संपर्चि वाले राजकाज सम्बन्धी सलाह को किया कर रक्षके वाले, प्रतिभावान, श्रीराव सुलभ विचार करने के लिये सदा तत्वर रहते ये॥ १७॥

नीतिविशेषिक्षा विशेषिक्षा: सत्तां स्थियावादनः।
ईदवेंद्रमालयेश्च राजा द्वारणथोऽसवगः। ॥ ८॥

उपप्रो गुणोपेतार्नवशासनसिदसौररासु।
अवेसप्राणारणिक प्रजा ध्येयं रस्थयन्। ॥ १९॥

वे नीति शास्त्र के विशेषन प्रकार सदैव स्थिरत्व वाले वाले ये, इस प्रकार के मुख्युक्त महामहावाल से युक्त, महाराज द्रव्यरथ सेविया पुलिस द्वारा राज्य के समाचार ज्ञान कर, प्रजा का मनो-
रंजन करते हुए, पृथ्वी पर राज्य करते ये॥ १५ १६॥

प्रजानां पालनं कुर्वलचर्मं परिवर्जयन।
बिश्रुतिशिल्ला लोकं बदान्यं सत्यसंगरं। ॥ २०॥

वे प्रथम त्याग कर प्रजा का पालन करते ये। वे सत्य वैल श्रीराव वह द्वारावत के लिये तीनों लोकों में विख्यात ये॥ २०॥
शत्रुशासनः शरीरः

स तत्र पुरुषव्याहः शशासन पृथिवीमिमासूः।
नाल्यग्नचछलिशिष्टे वा तुल्यं वा श्रावुमात्रं।। २१।।
वेपुरुषसिंह महाराज दृश्य त्रस्ते त्रस्ते का शासन करते हुए,
अपने से धार्मिक व अपने समान, शत्रु की कसी न देखते थे।। २१।।

समत्रावन्तसान्तः भलापभट्टकण्ठः।
स शशासन जंगप्राणा दिव्य देहपतित्यः।। २२।।
अपने प्रायोगिक त्रेक के जनानों के सम्मानित और मित्रों के
पुरुष महाराज दृश्य अपने प्रताप से हन्द्र का तरह राज्य करते
थे।। २२।।

प्रार्थिनिष्ठार्थविश्वत्रहिते नियुक्तः
त्र्योजन्तुरकः कुशले�ः समर्थः।।
स पाणिनी दीर्घमिब्राप युक्तः
स्तेनायम्यायोंगोऽग्निविद्वेदितोज्जः।। २३।।

इति सत्यः शरीरः।
हितकारी, तेजस्वी, समर्थ, अनुरागी, मण्डियों सहित, महाराज
दृश्य प्रवेश्य को रत्न करते हुए, अवृष्ट की तरह तपते थे।। २३।।
वालकारण का सातवां संग्रह पूरा हुआ।

—*—

शष्ठम: संग्रहः

—::—

तस्य त्वैंभावस्य धर्मं धर्मं महात्मनः।
सूतर्थ तप्यमानस्य नातीदंशकरः सूतः।। १।।
बालकाव्योः

ऐसे प्रतापी, धर्ममहाराज दुःशरय के तपस्या करते पर भी वंशदुःख करते वाला कोई पुत्र न था ॥ १ ॥

चिन्तयान्य तस्येषु वुद्रिरासिन्महात्मनः ।
सुतार्थीं वाजियेतन क्रियाः न यजाम्यहम् ॥ २ ॥

तत्र वुद्रिमान महाराज दुःशरय ने मन में सोचा कि, मैं पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रथमेव यह क्रिया न करूँ ॥ २ ॥

स निशिद्धता माति क्रत्वा पद्धत्यमिति वुद्रिमानः।
मन्त्रिपिं यह भर्मात्मा सवेरेव क्रतात्मिभि। ॥ २ ॥

इस प्रकार यह करते का मली माति निध्यय करते, परमभावी महाराज ने अपने वुद्रिमान संतिरों की गुलामा ॥ २ ॥

ततोऽश्रवीदिर्म राजा शुमन्त्र मन्त्रसचम्रः।
श्रीग्रामान्ये मे सर्वन्गुरुस्ततान्यपुरेहिविदा ॥ ४ ॥

सब संतिरों में श्रेष्ठ सुमंत्र से महाराज दुःशरय ने कहा कि, तुम हमारे सब गुरुओं और पुरोहितों के शीघ्र बुला लाओ ॥ ४ ॥

ततः शुमन्त्रस्वरितं गत्ता नवरीतविक्रमः।
समाशर्तस्त तान्तर्गुरुस्ततान्यवेद्प्रारंगानाः ॥ ५ ॥

श्रीग्रामान्यो शुमन्त्र चति श्रीङ उन सब वेदपारं गुरुओं का बुला लाओ ॥ ५ ॥

शुम्ह वामदेवं न जावालिष्ठ्य काथयपस।
पुरोहितं दसिष्टं च ये चाणये द्विजसचमा: ॥ ६ ॥

शुम्ह, वामदेव, जावालिष्ठ, काथयप, और पुरोहित वशिष्ठ के भौतिक अन्य उदम प्राणों की मी सुमंत्र बुला हो गये ॥ ६ ॥
प्रार्थना: सर्गः

तान्नुज्जगित्वा धर्मात्मा राजा दुशर्यस्तदा ।
इदं धर्मार्थसहितं शुभेण चचनमधवेदत ॥ ७ ॥
उन सव का धर्मात्मा महाराजः दुशर्य ने सम्मान किया और
धर्म और अर्थ युक्त उनसे यह मघुर वचन कहे ॥ ७ ॥
भम लाहुप्यमानस्य पुत्रार्थे नासिते सैं शुभदः ।
तदर्थं ह्यमेघेन हस्यामीति मतिंभम ॥ ८ ॥
पुत्र के लिये बहुत चिलाप करने पर भी मुझे पुत्रमुख प्रास
नहीं हुआ। इस लिये पुत्रप्राप्ति के लिये प्रस्वेत्त यह करने की
मेरी इच्छा है ॥ ८ ॥
तदर्थं यष्टुम्रिस्चायि शास्त्रपणैन कर्मणा ।
कर्म शास्त्रस्य जामस्य कार्य गुद्रितरं विचार्यतास्य ॥ ९ ॥
किन्तु मैं जान नहीं की विचि के प्राप्ति यह करना चाहता हूँ।
प्राप्त लोग सेवा विचार कर वलाने कि हमारी इशिधि किस
प्रकार है। सकती है ॥ ६ ॥
ततः साधित्वम् तदार्थायु व्राहणं शत्युप्ययन् ।
वलिङ्गमुखः सर्वे पार्थिवमन् सुसेवनिन्दम् ॥ १० ॥
महाराजः के यह चचन चुन कर, सव उपस्थित्व ब्राह्मणोऽन
महाराजः के विचार की प्रजापा की, और विश्वास बोले कि, भ्रापने
बहुत प्रचंड कार्य करना विचार है ॥ १० ॥
अजसुरास परम्परीः सर्वे द्वारमेय वचः ।
संभारः संधियनां ते तुराश्रम वियुत्यतास्य ॥ ११ ॥
वेस व्रत्यत्र व्रतम् हि महाराज से चाले कि, यदि 
वामस्थ्री उक्त करके घोड़ा ढ़ढ़िये ॥ १२ ॥

सर्वभाषोचारे तीरे यज्ञमन्त्रितंत्रयतामू।
सर्वथा श्रीस्वयं पुज्ञनमिद्वाब्राह्मण। ॥ १२ ॥
सर्वूः नदीः के तर्क तद्द तत्त्व पर यज्ममहादेश चन्द्राब्राह्मण। हे राजन्!
देव्ये करने से आपका पुज्ञ-प्राप्ति का मनोभाष्य अवस्थय पूर्ण होगा ॥ १२ ॥

गर्भ ते सांस्कृतिक तुद्वितिय पुज्ञार्थमागता।
ततः महीतेः चात्राजा श्रुत्वेद्विविद्वारापैतितम्। ॥ १३ ॥
पुज्ञ-प्राप्ति के लिये आपने यह उपाय बहुत हो चर्चा विचारा 
है। उन प्राङ्गणों की बे वाऩ सुन महाराज दुःस्वय प्रसन्न हुए ॥ १३॥

अपाल्याधारचात्राजा हर्षपार्वकृतस्थे।
संहारम्: संभिरयंत्रा मे गुरुणा वचनादिः। ॥ १४ ॥
चौर प्रसन्न हो मंत्रियों के श्राङ्गा दो हो कि मेरे गुरु की श्राङ्गा के 
अनुसार वहा की सैन्यमियाँ की जायें ॥ १४ ॥

सम्सर्गाधिकारशावातः संपाध्याये विवेच्यतामू।
सर्वभाषोचारे तीरे यज्ञमन्त्रितंत्रयतामू। ॥ १५ ॥
उपायांग के साथ समय रत्नों सहित घोड़ा ढ़ढ़िया जाय, चौर 
सर्जू के तद्पर यहा के लिये स्थान ठीक किया जाय ॥ १५ ॥

शान्तयंपश्चात्तथर्भन्ता स्थायिकं यथा०
शाख्यः कर्तुमयं यजः संवेणापि महीस्विता। ॥ १६ ॥
विष्णुवारक कियाकलाप यथाक्रम और यथाविधि किये

जैयः। क्योंकि सब राजाभेदों के लिये यथवेदन यह करना सहज

काम नहीं है। १६॥

नापराबेन भवेत्कर्षो यथसिनक्तूसचमे।

छिद्रेष हि मुगयन्तेन्त्रा विधाते स वधारासः। १७॥

एक वाट का ध्यान रखा जाय कि, इस यह की विधि पूरी करने
में न तो कोई अपचार हो, और न किसी के काम होने पायें। यदि
कहीं ऐसा हुआ तो किसी विधाते वधारास यह में बड़ा विश्वास
ख़ड़ा कर देंगे॥ १७॥

विद्युत्स्य च युक्तस्य सचः कर्ता विनिष्ठति।

तथ्यता विधिपूर्व में कतुरेि समायते। १८॥

विधिहीन यह करने से यह कर्ता का नाश होता है। अतः वह
विधिपूर्वक यह पूरा होना चाहिये॥ १८॥

यथा विधानां कियतां समर्थं लकेणिविहः।

तथेति चाथुव्यवस्थें मन्त्रण्यं भाौपूजयन्। १९॥

आय लोग ऐसा प्रयत्न करें जिससे यह यह यथाविधि हो।
यह कार्य आय ही लोगों पर निर्भर है। महाराज के इन चरणों की
खुन लब मंगों लोगों ने कहा—“ये आयाफः,” । १६॥

पार्थिवेनृत्स्य तद्वाक्यः यथाज्ञस्व निशास्यते।

तथा हिजास्ते वर्मण्त वर्मयन्तो नुपोतमृ। २०॥

अनुज्ञातास्तते सर्वं पुनर्जातिबिभागतम्।

विस्मृतिद्वा लान्तिज्ञानस्थितिविद्यमानवतृ॥ २१॥
वालकार्याने

ऋतिविभिष्करिणश्रोत्यः यथार्थकृतुरार्थताम्।
इत्युक्तवः तपशार्दूलः सन्तिकर्मसुपरस्थितान्॥ २२ ॥
विसर्जिनित्वा स्वं वेषम प्रतिब्रेक्ष महाधूतिः।
ततः स गतव ताः पविनरीतेन्द्रे हृदयमिव॥ २३ ॥

ब्रह्मस्वामि भी महाराज का आशीर्वाद हैं और महाराज से
विदुष्मान बोध अपने अपने घरों के लौट गये। ज्ञानों के विद्वान कर
महाराज अपने मंत्रियों के कहने लगे—ज्ञानियों ने लेकर विद्वान
चलाई है यह यह उसी विद्वान के अनुसार निर्विभ्रम पूरा हो—इसका
शान्त श्राप ही लोगों पर है। यह तब तक महाराज ने अपस्थित
मंत्रियों के भी विद्वान किया और श्राप भी वहाँ से उठ कर
शिवम में चले गये और अपनी प्रातापारी रानियों के
बेले॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

उचाच दीर्घं विशच यष्टेर्य्यं सुतकारणात्।
तासां तेनातिकान्तेन वचनेन शुचर्वसाम्।
मुखप्रभाम्यश्रोभं पदानीव हिमालये॥ २४ ॥

हस्तं गुड़-प्रस्ति के लिये यह करने, तुम भी वडबर्ता के नियमों
का पालन करे। महाराज के शुक से यह प्वारे बचन खून रानी
बहुत प्रत्याहार हुए। इस खुफतृती संवाद के खुन रानियों के खुब-
कमल ऐसे खुशीमित ही गये, जैसे वसन्तकाल में खिले कमल के
फूल शेषा के प्राप्त होते हैं।॥ २४ ॥

वालकार्याने का भाषावान सम्पूर्ण हुया।
नवमः सर्गः

---

एतच्छू त्वा रहः शूलो राजानिधिमश्रवीतः।
ऋत्विनिमित्तिः पदनिपुष्यो महावर्त्तो भया श्रुतः। ॥ १ ॥

यद तलं छर्तं छुन, सुमंज ने एकान्त में महाराज से कहा कि,
मैंने त्वस्तियों से एक पुराणो बात छुटी है। ॥ २ ॥

सत्कुमारो भगवानपूर्व धनाकवान्क्रयासः।
ऋषीणां संतिवा राजस्वव पुष्पागमः प्रति। ॥ २ ॥

प्राप्ति मन्त्रान के बारे में भगवान मनु ने ऋषियों के
यह कथा कही थी। ॥ २ ॥

कृष्णपत्य हु पुश्चोकितिविभाषक इति श्रुतः।
कृष्णशुद्ध इति व्यासस्वय शुनो भविष्यति। ॥ ३ ॥

कृष्णपुत्र विभाषक के कृष्णपुत्र नामक पुढ़ होगे। ॥ ३ ॥

स वने नित्यसंजंग० भुनिन्द्रनः सदा।
नानां जानाति वियेन्द्रो नित्यं लिखनुवर्त्तनात्। ॥४॥

वे वन ही में रहकर शूल वन में विता के पास रहने के
कारण घनी घनी घनी घनी के नहीं जान पाते। ॥ ५ ॥

दैवित्यिः वहाऱ्यमस्त भविष्यति महात्मनः।
हेयजयु प्रथितं कालनिद्रपृष्ठ कथितं सद। ॥ ५ ॥
बालकायाप्रे

अन्नस्यस्तु हीनो प्रकार के प्राणस्य, जो धार्मिकों के लिये वतताये
गये हैं, और लोक में प्रसिद्ध हैं, धारण करेंगे॥ ॥

[नोट—मेलाला अभिन धारण करके एककु ठ में मैठिक व्यक्ति के
रूप में रहना मुख्य व्यक्ति है और सत्तान कामना से नाते में ही पल्ले का
समाप्त करा गौरव प्राप्त है। पर यह व्यक्ति है। इस पर यात्री
वाहनलय के रिश्व हैं कि, पोड़ावुनिस्नाक favasatam मुम्माहुरविवैद्व।
व्यक्ति वर्णाश्चाद्वांश्च प्रवज्ज्यते॥
]

तस्येवं वर्तमानस्य कालं समभित्ततेः।
अन्नं श्रुतिप्रमाणस्य पितरं च यथाच्छिन्नम्॥ ६ ॥

धार्मिक श्रीर अपने यशस्वी पिता की सेवा करते हुए तब अण्य-
स्त्रद्धं को बहुत समय बीत जायगा॥ ६ ॥

एतस्यनम् काले तु रामपादं प्रतापवान।
अद्वैतु प्रथिते राजा भविष्यति महावधः॥ ७ ॥

तव महावधेश में महावधी श्रीर प्रतापो रामपाद नाम का एक
प्रकार राजा होगा॥ ७ ॥

तस्य व्यतिक्रमाठर्जी समभिष्यति सुदार्शना।
अनात्युत्पि सुंगरार नै सर्वभूतभयायवाह॥ ८ ॥

कुछ तिनों वाल रामपाद के, प्रत्याचार से चर्पि बंद होने के
कारण महावधि विक्राशत सव प्राणियों के महदायो दुर्मिश्च पड़े॥

अनात्युत्पि तु दुःखायं राजा दुःखसमन्वितं।
ब्रह्माण्डश्रुतिनाथ समानीय भविष्यति॥ ९ ॥

तव यह राजा उस धनात्मक प्रेरित है, सुभित वर्ष शास्त्र
आहार्यों को कुलाकर पूजित॥ ६ ॥
भवन्तः श्रुतधर्माणो लोकाचारित्रवेदिनः।
समाधिशन्तु नियमं प्रायशिचरं यथा भवेत्॥ १०॥

त्यः राजप लोकाचार श्रौर वैदिकधर्मणें के जानने वालेः। त्यतः
राजप हमारे उन कर्मों का जिनके कारण वर्ष समय नहीं है। रही, प्राय-शिष्ठत वल्लाहें॥ १०॥

वस्त्र्यति ते महापालं ब्रह्मवणं वेदपारगः।
विभण्डकस्तुं राजनस्वर्पायंरिहिनय॥ ११॥

राजा के इस प्रकार के हुन, वेदपारग ब्राह्मण उच्चर होने कि,
राजन्। इसे वह वैसे विभण्डक मुनि के पुत्र अनुष्ठित की यहाँ
ले भायें॥ ११॥

आनीय च महापाल अनुष्ठित्त्व वसल्लकतमः।
प्रयाच्छ कन्या शान्ताः वे विभिन्ना वसल्लकतः॥ १२॥

श्रौर उनके यही लाकर उनका सत्कार की जिंदा श्रौर यथा-
विचि उनके साथ अपनी कन्या शान्ता का विचार कर
दीजिये॥ १२॥

तेषां तु वचनं श्रुतवा राजा चिन्ता मनस्वतः।
केनोपयोगे वै शक्य इहानेव त सर्वर्ज्ञन्॥ १३॥

उनके इस कथन के हुन राजा की यह चिन्ता होगी कि, वे
जितेन्द्रिय मुनि अनुष्ठित्त्व किस उपाय से यहाँ लाये जा सकते
हैं॥ १३॥

ततो राजा विनिष्ठित्व सह मन्त्रिविहारात्मवान्।
पुराविनिष्ठमापायंश ततं मन्त्रयतिः सत्कुंगतान॥ १४॥

वार १४—२३
वालकाभे

कहत सेव विचार के बाद राजा भवने पुराहित और मंत्रियों
के मुनि के पास जाने का कहेंगे || १४ ||

ते तु राजो वचः श्रुतवा व्यथिता विनताननां ||
न गच्छेदुप्रेशिंता अनुन्यति तं न्युम || १५ ||

किन्तु, वे विनित लोग मुनि के शाप के दर से भयमील है।
राजा से निवेदन करारे कि, हम लोगों के स्वयं अबाहा जाने से क्रृष्ण के
शाप का दर लगता है || १५ ||

बिश्यिन्त विनतित्वा ते तस्योपायांश्र तत्समान।
आनेयामो वर्य विर्य न च देशो भविष्यित || १६ ||

परंतु हाँ, हम दश्य किशी ऐसे उपाय से उन मुनि का यहाँ ले
प्राप्तें कि, जिससे हमको देश न लगेंगा || १६ ||

एवमज्ञाधिपेनेव गणिकाभिः तुतः।
आनीतोव्रथिंहेवेव शान्ता चास्मे प्रदीयते || १७ ||

राजा अवश्यायो द्वारा अक्षरिपुर ते कुलावरें और उनके
वा प्राप्ति होगी और राजा द्वारा कहया शान्त। अक्षरिपुर की
व्याह देने || १७ ||

अक्षरिपुरः जामाता पुरान्त्रस्व विप्राभियते।
सन्तुमा रक्षितमेताल्लोच्याहृतः मया || १८ ||

वे ही अक्षरिपुरां श्रापको पुत्र देने—यह वात मुख्त सन्तुमारे
जी न घर्ते ही कह रही है और वही मैंने श्रापको कही
है || १८ ||
अथ हृद्यो दशरथं सुमन्त्र मृत्युभाष तः।
यथर्यश्रुकःस्तवानितो विस्तरेण त्यायोऽच्यताम्। ॥ १९ ॥

dhitu navam: sarpa: ॥

यह सुन महाराज दशरथ प्रसन्न हुए। और सुमन्त्र ने बताया कि जिस प्रकार रामपाद ने अरुष्यश्रुकः को गुजाया वह हाल हमसे ज्योरे बार कही। ॥ १६ ॥
वाल्कायाद का नवां सरं समाप्त हुआ।

—*-—

dasham: sarpa:

—:१०:—

सुमन्त्राधिकृतो राजा भोवाचेंद्र चर्चत्तदा।
यथर्यश्रुकःस्तवानितं श्रृणु मे मन्नित्रिष्ठा: सह्य। ॥ १ ॥

महाराज दशरथ के इस प्रकार पूर्ण हुए। और सुमन्त्र ने विस्तार पूर्वक बुटान्त कहता घास्म किया। सुमन्त्र बोले, हे महाराज। जिस उपाय से रामपादः के मनिवर्ग अरुष्यश्रुकः के लाय, ते मैं कहता हूँ। उसे आप मन्निरोहित सहित छुनिये। ॥ १ ॥

रामपादःभोवाचेंद्र सहायत्यः पुरीभिः।
उपायो निरपयोऽवयम्माभिबिन्नित्वत:। ॥ २ ॥

मंत्री और पुरीभिः रामपादः से बताया कि हमने निर्विर्त क्रमकारं होने का एक उपाय लेता है। ॥ २ ॥

अरुष्यश्रुकः वन्नचरस्तपः लाभ्यायने रतः।
अनभिन्तं स नारोणां विपायाणं सुखस्य च। ॥ ३ ॥
गणिकास्त्र गच्चन्तु रूपऽत्यः सङ्केतः।
प्रधान्यो विवरेणायरैण्यंतीह सत्त्वः। ५ ।।
हरवती और अल्पकाल युक्त वेश्याः संकार पूर्वक भेजी जायः
वे शरा को तरंगों तरंगः के प्रलोमनं दिखा लिचवा लाभे गराः। ६।।
अतः तथेऽति राजा न पत्युवाच पुरोहितसः।
पुरोहितो मन्त्रिषः तथा चक्रुः ते तदा। ६।।
यह छूँ राजा से पुरुङ्खित को और पुरोहित ने मन्त्रियों को
तदृशार करने का कहा। ६।।
वारसुधास्तु तच्चूँ ल्या वर्ण प्रविष्कर्मेऽहः।
आश्रमस्याविषदेरोंसिन्यं कुरवेर्यति दृष्टे। ७।।
इस प्रकार को वालें छूँ वेश्याः वेर वर्ण में जहाँ कृष्णमुखको
का प्राधम था गयो और आश्रम के निकट पहुँच कर सदा आश्रम
में रहने वाले और घोरं ऊष्णिपुः के दर्शन करने का प्रयत्न करने
लगी। ७।।
कृष्णपुर्णस्त्रय धीरस्य नित्यमाधूर्मवासिनः।
पितुः स नित्यसन्तुष्टो नातिचक्राम चार्मात्राद।

फ्रोक्को अनुभवस्त्रय रप्ता के लाजन पालन से सर्वत्र हनकर कर्मी भि आश्राम के वातिर नहीं विरुलते थे।

न तेन जन्मभूति दृष्ट्पूर्वं तपस्विना।
क्रो या पुष्पाय यचान्यांतत्त्वं नगरान्ध्रजस्व।

तपस्वी अनुभवस्त्रय ने भ्राज तक क्रो, पुष्प, नगर व राज्य के जन्म जीवन के कर्मी नहीं देखा था।

ततः श्रदाचीरं देशमाजगम यह्च्चया।

विभुक्तकृतस्तत्र ताथापश्चिमहाद्राङ्ग।

देशयोग से एक दिन प्रपने भ्राप जिस जगह वे वेश्याएँ उस चन में ठिकी हुई थीं, अनुभवस्त्रय पहुंचे ग्राह के उन बेश्यासंग को उठाने देखा।

ताथिरहेपः श्रमधा गायत्र्येया मधुरस्वरः।

अनुभवस्त्रय सर्वा चतुर्रम्ममवान।

निर्म सिद्धाल्य धेत्य मधुर स्वर से गाती हुईं वे खव वेश्याएँ अनुभवस्त्रय के पास जाकर गेलीं।

कस्तवं कि वचनमें प्रमहार्जातस्तिनिच्छामेइं वयस्म।

एकस्तवं विजने धेरे वने सरस शंस न।

हे राहुकेव। तुम किस जाति के हैं, किसके लड़के हों, तुस्करा क्या नाम है ग्राह तुम यहां कथा करते हैं। तथा हम, जानना
चाहती है कि, तुम किस लिये इस विज्ञन वन में प्रकीर्ण घूमते, फिरते हो? || 12 ||

अद्वैतसांत्वेति कामक्षयाण पुनः स्वायः || 13 ||

हार्षित्वयते मतिरूप्यता गुर्ज्यांतु पितरं स्वायम् || 14 ||

भूपक्षुः नै तो इसके पूर्व कामोऽ (कमलीय कामती वाली) स्वायः (वन में) देवी हि न था—उनकी बुद्धि मेहनित हो गयी। और वे हद्द ले ध्यान मे ध्यान देने पिता का नाम बतलाने का सूचाय हो। गये || 15 ||

पिता विभद्धकोच्छर्कृं तद्यां शुचि औरसः ||

अद्वैताः इति भन्तर्नां नाम कर्म च मे शुचि || 16 ||

मेरे पिता विभद्धक हैं और मे उनका व्यक्त पुनः हैं। में नाम भूपक्षुः हैं। में कै यहाँ करता हूँ। वह सभी को विदित हैं || 17 ||

ह्यांग्रमदेवस्तरां सभीपे शुभद्विश्वासं: ||

करिष्ये वेश्या पूजां वे सर्वें विशिष्यपूर्वकम् || 18 ||

है। शुभानां! यहाँ से सभी ही मेरा व्यक्ति है। वहाँ चलिये, में चिंता पूर्वक उपाधिक पालक सलाह कहाँ || 19 ||

अोपुत्राचः श्रुता सर्वाः मतिरास वेः ||

तदान्त्यायं दृष्टा जगम् सर्वाः तेन ताः || 20 ||

मुली के यह वचन हुं और उनके व्यक्ति की देखने की इच्छा से वे वेदार्थेः सुन से साथ उनके व्यक्ति में गयी || 21 ||
आगतान्त्रत तत्तः यूजामृपितानुचरकर हः
इद्दम्यमिदं पावमिदं सूरमिदं फलम् ॥ १७ ॥
उनके ब्राह्मण में पहुँचने पर कृष्णकुमार ने उनका सलाम किया और प्रार्थ, पाध, फल, मूल उनके दिव्ये ॥ १७ ॥
शरीरका तु तां पूजां सर्वाः पुत्र रामसुतताः ॥
ऋषिभाषाधातु शरीरं तत्सनाय मति दृष्टुः ॥ १८ ॥
अस्मासमपी मुख्यानि फलानीपानि वै दिव्य ।
श्रृद्धारण प्रति मूः ते भक्त्यत्स च मा चिरसू ॥ १९ ॥
तदन्तराः स्वेदार्थं क्षणमयं तिद्वन्द्वाय ॥
मेद्यकान्तदृष्टस्मै भक्ष्यांम विविधावधान ॥ २० ॥
तदन्तर उन सभ्य ने प्रस्तुत हो मुनिकुमार को गले लगा,
अर्थ स्वाधीत तरह तरह के लड़के तथा खाने को फल्य विविध
वस्तुमें उनके द्रीये ॥ २० ॥
तानि चास्वाच तेजसी फलानीति सम मन्यते ।
अनास्वादितपुर्वाणि नेत्व विन्यन्वितानामय ॥ २१ ॥
उद्धे चन्दने पर भो कु पितुर फल हि समक्षते रहे। क्योंकि
हमेशा वन में रहने के कारण उन्हें इसके पहले कभी मिटाई तो
वालकार्ये

खाई न थी, फिर वे क्या समझे कि, मिठाई धीर फल में सो कुम
पूर्त होता था। || २१ ||

आपृण् च तरा निमं विकारं निवेचः ॥

गच्चनिति स्मापदेशाचार्यः भीतास्तत्त्त्व पितुः स्त्रियः ॥२२॥

वे बेश्यार्यः विचारमकर्षणी के प्रारंभ में लौट कर था जाने के
भय से सह शोष वर का वहांना वना प्रारंभ से चलो श्रायाँ || २२ ||

गतासु तासु सर्वसु कार्यस्यमाप्ता धिजः।

अस्यस्यहृद्यशास्थासीहुः सातङ्गारविपरेििः। \n
उन बेश्यार्यों के लौट घरे पर अभ्यस्तत्त्व हुःख के मारे उदाह
हुए || २३ ||

ततोपरेयः देशमाजंगम स चिरेवानं।

मनेज्ज्ञ यत्र ता द्याय वायुहुः सखाक्ःः। \|२४\|।

अनिले दिन वे स्वयं फिर वहां पहुँचे जहां पहले दिन उनको
सेट उन मन को मेहनत वाली को निर्याय बेश्यार्यों से हुई थी। || २४ ||

द्यूवः च तदा विमायायानं हृथ्यामानसः।

उपर्यत्य ततः सर्वस्तत्त्त्वमूच्रितं कचः। \|२५\|।

अभ्यो कुमार के घाते देख बेश्यार्यः प्रस्त्र हुःख, धीर उनके
पाल जाकर यह कहने लगी || २५ ||

एषां श्रायां सम्य हस्ताक्षरिति चाक्रुवनः।

तत्राप्येष विधि: श्रीमान्तिश्चेषण महिष्यति ||२६||.
ये चेलो—महाराज। भाई, हमारा प्राणम भी रखिये।

खार की प्राप्ति वहाँ प्राप्तका सरकार अधिक होगा॥ २५॥

शुद्धा तु वचन नासं मुनिस्त्रदृष्टिगम्मु।
गमनाय मनि चक्रे तं च निन्युस्तदा स्वियः॥ २७॥

यह चुन्द्र स्वपा-कुमार के मन में उनके साथ जाने की इच्छा
उत्पन्न हुई और वेदोपाध्याय उनके प्रपने साथ ले गये॥ २७॥

तत्र चारीयमाने तु विमे तस्मन्यात्मनि।
वर्षं सहस्रे देवो जगत्यहादारंस्तदा॥ २८॥

मुनि के नगर में पहुँचते ही इत्यादि ने रामपाद के राज्य में जल
वर्षाया जिससे सब प्रायो प्रसन्न हो गये॥ २५॥

वर्षणेवगातं निमं विषयं स्वं नाराधिपः।
पद्मंदम्य मुनि गीतः जिससा च मही गतः॥२९॥

अर्थं च प्रदृशंम तस्मै मिर्यत् खुसमाहितः।
त्रै प्रसादं विकेन्द्रान्या विरितं। भविष्याविशेषः॥ ३०॥

वर्षण होते ही रामपाद ने मुनि की भावा जान, और मुनि के
पास जा वही नत्रता से उनका प्रशासक किया और यात्रिपि अर्थ्यय
पाथार्धि प्रद्धान कर उनका पूजन किया और उनसे वह वर मांगा
कि, उनके पिता विभगडक रामपाद पर कोप न करें॥ २६॥ ३०॥

अन्तःपुर मुनियास्मै कन्या दृष्टि यथाविधि।
शान्तो शान्तेन मनसा राजा हर्षमचाप सः॥ ३१॥

—विभगडक पाठर् (वि०)
वालकायदेः

फिर श्रमपादः, अष्टि-कुमार को रनिवास में लिया ले गया श्रीर शान्ता का उनके साथ यथाविधि विवाह कर वह बहुत प्रसन्न हुया ॥ ३१ ॥

एवः स न्यवसत्त्र सर्वकामः सुपूर्जितः।
ऋत्यम्युष्म्य भाषिते जन्या सह भाष्यया ॥ ३२ ॥

इति दशमः वर्षः ॥

ऋत्यम्युष्म्य भी शान्ता के साथ सब प्रकार से खुली हो रामप्र की राजधानी में रहने लगे ॥ ३२ ॥

वालकायद का दसवा संग समाप्त हुया ।

---

एकादशः संगः

भूय पति हि राजनेत्र भूषु मे वचनं हितसु।
यथा स देवभवः कथायामेवमनवीदत् ॥ ३२ ॥

इतना कह द्रमस्य ने महाराज दुःशर्य से कहा कि, हे राजनृ! इसके उपरांत देवभवन सतकुमार ने ले श्रीर कहा क्या भी! लोखिये ॥ ३२ ॥

इत्यवृत्ताणां कहे जाते भविष्यति सुधारिकः।
राजा दशरथे नाम भीमानस्त्यकंततंवः ॥ २ ॥

इत्यवृत्ताणां महाराज के चंश में बड़े धमोभ्य श्रीर सत्यप्रतिः भीमानु महाराज दुःशर्य होगी ॥ २ ॥
अङ्गराजेन सर्वथा च तस्य राज्ये भविष्यति।
पुत्रस्तु सोऽज्जराजस्य रामपादः इति श्रुतः।।२।।
उनकी मैत्री प्रभुक्षेत्रायचिति रामपादः से होगी।।३।।
तं स राजा दृशरथो गमिष्यति महायानः।
अनपत्योगस्ति धर्मात्मन्यगर्भान्ताभरः पम क्रतुमू।।४।।
आहरे त्यासः संतानार्थ कुरस्य च।
श्रुतवा राजऽरथ तद्यथाभन नमसापि चिन्तत्स्य च।।५।।
ध्रुवरजः के पुत्र रामपादः के पास महायानाक्ष्मी महाराज दृशरथ
जायगे चीर कहके कि, मेरे सन्तान होने के लिये यह कराने के
प्राप्त शान्ता के पति अश्रुष्यकुंज की मेरे यहाँ भेजिये। यह छुन राम-
पादः मन में सेवा विचार कर,।।६।।

पदार्पणे पुत्रवन्त शान्तायत्तरिमात्रवान।
भविष्यति च तं चित्त स राजा विगतज्वरः।।६।।
शान्ता के पति अश्रुष्यकुंज के पुत्र सहित भेज देने। अश्रुष्यकुंज
की पाने से महाराज दृशरथ को चित्ता हुर होगी।।६।।

आहरिष्यति तं यद्य श्रुताज्ज्वनातंतामन।
तं च राजा दृशरथो यज्ञाकामः क्रताजळिष।।७।।
उद्ययों च दिजत्रेण्ति च वर्यन्यतिः धर्मविविवित्त।
यज्ञार्थं प्रसवायं च स्तगांधिः स नरेश्वरः।।८।।
मन में अश्रृंगत प्रसव हो महाराज दृशरथ उन अमृतिमान को
साथ लायेंगे और यह करने की प्रभुमार्गा रखने वाले महाराज
बलकायादे

द्रशय हाथ जोड़कर ध्रुवत्तमा अपृथ्यगर्ज़ को यह श्रवण कराने के लिये वरण करें। ध्रुवत्तमा पुनर के लिये और स्वर्ग ध्रुवत्तमा के लिये उनके-भ्रमण में लघुविज्ञ पवनावरींगे।

लगभग च स तं कार्य हिजुष्कुषयादिभिः पतिः।
पुज्याध्याय भविष्णुनि चत्वारोऽर्णिनितिविक्रमः।

इस यह के प्रभाव से प्रयोग फल स्वर्ग महाराज द्रशय के आन्तिक पराक्रमी चार पुज्य उत्पन्न होंगे।

वंशमतिप्रान्तकरः सर्वेऽवेकुः विश्रुताः।
एवं स देखवरः पूव्वं कथिन्यं वानक्षाश्च।

एवं स देखवरः पूव्वं कथिन्यं वानक्षाश्च।

सन्तकुमारे भगवान्पुरे देवसुंदरे रुपः।
स तन्म पुरुषशारीरे तमानय चुस्तक्रितः।

सन्तकुमारे भगवान्पुरे देवसुंदरे रुपः।
स तन्म पुरुषशारीरे तमानय चुस्तक्रितः।

स्वयमेव महाराज गतवा सावलवाहन।
अनुमान्य वसिष्ठे च सुवाक्त्यं निमायणः।

स्वयमेव महाराज गतवा सावलवाहन।
अनुमान्य वसिष्ठे च सुवाक्त्यं निमायणः।

बृहदे नवन्देवाती राजा संपूर्णमानसः।

सान्त्पुरुः सहामात् अधिष्ठित स घिनः।
पकाद्रशा: सर्गः  


तव वधिष्ठ जी ने भी भपनी भ्रुमति दे दी तव महाराज 
-द्वाराधि दड़ी लालसा के साथ, भपनी राशियों और संभियों के 
भपने साथ लं चढ़ी गये, जहां अस्थाय रहते थे ॥ १३ ॥

वनानि सतिश्चेव व्यतिक्रम्य शुनें शनें: ॥

अभिचाराप तं देशं यत्र वं सुनिपुनजः ॥ १४ ॥

भनेक वगीं और नदियों का पार कर महाराज धीरे धीरे उस 
देश में जा पहुँचे जहां वं वर्णप्रवर निवास करते थे ॥ १४ ॥

आसाधं तं द्विजश्रेष्ठो रामपादश्रीपिपगमः।

ऋग्विनुङ्ग द्रग्गण्डार्थ दीप्यमानमिनिवानस्य ॥ १५ ॥

इहां जाकर महाराज द्वाराधि ने प्राप्ति के समान वेदज्ञी अस्थ- 
उत्तर का रामपाद के समय बैठा देखा ॥ १४ ॥

ततो राजा यथान्यायं पूजा करे विशेषतः ॥

सतिहितनास्य वं राजं महर्षेणान्तरात्रमा ॥ १६ ॥

रामपाद ने मित्रवर्म द्वारा प्रेषित हूँ प्रस्ताति के साथ 
न्यायात्मकः महाराज द्वाराधि का विशेष ध्वनिर संकार किया ॥ १६॥

रामपादेन चाल्यनात्मकपुष्पत्राय धीयते।

सत्यं संवेदन्यं चैव तदा तं पत्यपूजयतु ॥ १७ ॥

उन गुरुदिमान्य मुख्यत्तुः द्वाराधि के साथ भपनी मैथी होने का 
चुम्बन्त होता, जिसे इन मुख्यत्तुः भी प्रस्तर हुए प्रीतं द्वाराधि की 
प्रशंसा की ॥ १७ ॥

एवं सुसृत्तकस्ते सहोपित्वा नरपरमः।

सम्प्राय द्विपानराजा राजानिदित्वविवैतु ॥ १८ ॥
इस प्रकार सकार के साथ दशरथ भांग सात ाठ दिन रह कर रामपाद से बैठे। १५।।

शान्ता तब सुहुता राजनसह भरता विशांतः।
मदिय नगर यात्रा कार्य हि महदुख्यम्। १६।।

इंग राजन्। यदि त्याको पुजी शान्ता भ्रपने पति के साथ मेरी राजधानी में चले ता बढ़ी कहा हो, क्योंकि एक बड़ा कार्य भ्रा उपस्थित हुआ है। १६।।

तथेऽति राजा संहुत्त्व गप्नन तस्य धीमतः।
उवाच वचनं विसं गच्छ तव सह भार्यया। २०।।

यह सुहुत रामपाद ने “पेया हो होंगा” महाराज दशरथ से कहा, ऊस्थ्यम्। से कहा कि, भ्राप भ्रपने पति सहित महाराज दशरथ वे साथ जाइए। २०।।

ऋषिपुष्टं पतिन्यन्त्र तवेत्यां हुर्तं तदा।
संवेणाभ्युजः। भ्रपलं सह भार्यया। २१।।

अस्त्यम् जाने की राजी हो गये और राजा रामपाद की भ्राप के व्यवसाय भार्य सहित महाराज दशरथ के साथ हो लिये। २१।।

तावन्योपान्तीन्त्र कुत्वा स्नेहासंकृत्यं चारस।
ननद्वृद्धारयो रामपाद्धर्म वीर्यवान्। २२।।

तव वे देवताओं राजा परस्पर हाथ लाड़े और एक दूसरे की गले लगा अत्यन्त प्रसन्न हुए। २२।।

तत: सुहुद्वापात्राय प्रस्थितो रषुनन्दनः।
पैरेवायः। प्रेस्यामास दूतांवे श्रीग्रामायिनः। २३।।
तथा महाराज दुसारथ अपने मिथ्र रामपाद से निदान हो प्रस्थापित हुप और पहले ही शोकमाली हृद अर्योप्या बेजे || २३ ||

क्रियचतां नागरं सनं क्षिप्मेभ स्थलक्षमु ||

घृपित सिद्धसमूप्त पताकाभिरलक्षमु || २४ ||

और उनको श्राण्ड दो कि, तुम नहीं पठान कर राजवधी पी की सफाई और अर्ध मनुष्य सजावट करवायो | सड़क्ष क्रियकाना, सुगन्धित द्रष्य (गुपुलाधि) जलवाणा और ध्वजा पताकाओं के नगरी सजावाणा || २५ ||

ततः महाया: पौराण्ये शुद्धत्रा राजारामभागथमु ||

तथा प्रभुक्षतस्तत्र राजा यत्रे पिंतत ठाणा || २५ ||

महाराज दुसारथ के लोकने का सजावट पा, अर्योप्यावसी बहुत प्रस्थापित हुए और जेसा महाराज ने जनों द्वारा कहताया था, तदनुसार नगरी का साथ कर उन लोगों ने सजाया || २५ ||

ततः स्थलक्षमु राजा नागरं प्रविशिष्ट हु ||

श्रद्धछिदुम्बिनिधिरेपुः सुरस्त्रक्ष्म द्विधपथमु || २६ ||

उस सजी सजाई साफ स्वस्त नगरी में मुनिवर की आगे कर गाजे बाजे के साथ महाराज ने प्रवेश किया || २६ ||

ततः प्रसुद्धिता: सर्वे द्वारा तं नागरा दिसमु ||

प्रवेशमान संस्त्रक्ष्य नरेन्द्रेण्यक्षम्या || २७ ||

अस्स्यद्धु का भुवायाहम से नगर में इत्र समान पराक्षिमी महाराज दुसारथ द्वारा आगत स्वागत हुआ देख, समस्त पुरावाही कहत प्रस्थाप हुए || २७ ||
बालकायदे

अन्तःपुरः प्रवेशयैनं पूजां कुल्वा च शान्तः।
क्रत्तकः तदात्माः मेने तस्यापवाहनात्। ॥ २८ ॥

अन्तःपुरः में उनके (अयुष्यस्तुः के) जाने पर वहाँ भी शान्त
विधि के प्रनुसार उनका पूजन किया गया और महाराज ने गुणि-
प्रवर के आगमन से अपने की क्रत्तकः शान्तः ॥ २५ ॥

अन्तःपुरःणी समर्पणी शान्तताः दृष्टा तथागाताः।
सह मद्यः विशालानाः प्रीत्यानन्दसुपागमनाः। ॥ २९ ॥

अयुष्यप्रवर के साथ उनकी पल्ली के बाज़ वाली शान्ता की
प्रायी देख, अन्तःपुरःवासिनी सब रानियों ने बड़ा खानन्द
मनाया ॥ २६ ॥

पूज्यामाना च तामः सा राजा सैव विशेषतः।
स्ववास तस्म खुल्वता कथितः कालः सहलिनः। ॥ २० ॥

इति पकाद्वयः सर्गः।

रानियों च विशेष कर महाराज दशरथ द्वारा पूजे जाकर
शान्ता, अपने पति अयुष्यस्तुः सहित राजवास में कुछ दिनों तक
खुश से रहे ॥ ३० ॥

बालकायदे का प्यारहवा सर्गः समाप्त हुया।

—*—
द्वादशै सर्गः

—: १: —

ततः काले वचारिते कार्यमित्रित्युमनेहरे ।
वसन्ते समझाते राजो यज्ञु मनोभवत् ॥ १ ॥

इस प्रकार कुँड वसन्त चीतने पर जय मनोहर वसन्त वधु
श्रायो, तव महाराज की इच्छा यह करने की हुई ॥ १ ॥

ततः प्रसाद शिरसा तं विरं देवचन्द्रिनमु।
यज्ञाय नरायणासं तन्तारायथ कुलस्य च ॥ २ ॥

महाराज दशरथ ने अहिन्नीत्रि के पास जा उनका प्रशंसाम
किया प्रावर वंशचुड़ि के लिये होने वाले पुत्रें परले यह में, देवचुल्लु
मुरि की यह के लिये वरण किया ॥ २ ॥

तथेति च राजानुत्थाच च दुसरकृ तः ।
संभाराः संग्रिप्रति ते दुरगथ विगुप्रताषामृ। ३ ॥

तव स्त्रयस्त्र ने दशरथ से कहा कि, हम भागिकी यह करवाइये,
प्राय यह की साम्राज्य इक्षु करवाईये प्राचें शोभा छूटवाइये ॥ ३ ॥

ततो राजानवेदवर्णम् नुयन्त्र मन्त्रवत्कामशु।
नुयन्त्रवहाय श्रिमुनित्वम् वद्वद्वादनिन: ॥ ४ ॥

यह सुन महाराज दशरथ ने धन्यजीवित्र नुयन्त्र से कहा कि, वेद-न
पाठ करने वाले आदित्यों के तुस्त शुक्लवाइये ॥ ४ ॥

सुयद्द वामदेवं च जायुक्लिन्य वारयकमसु।
पुरोहित वसिज्ञ च ये चाने द्रिष्टस्ततमां ॥ ५ ॥

वारो रात्रो—७
बालकायुङ्दे

छुयः, वामदेव, जावालित, काश्यप, पुरोहित वशिष्ठ तथा ग्रन्थ भार्याभ्रेणियों को श्रीगुण बुलवाइये॥ ५ ॥

ततः सप्तन्त्रस्वरित्व गत्वा लघुतिविज्ञम्।
समानयतश् तान्त्रिकमसस्तान्त्रिकमपारागन्॥ ६ ॥

कुर्वलेव छायुः तुरन्त गये श्रीर वेदावर्ग वन सन्त्र श्रेष्ठ ग्राह्यानं को बुला लाये॥ ७ ॥

तान्त्रिकायित्वता धर्मात्मा राजा दशरथस्वर्गा।
धर्मार्थसंहितं युक्तं श्रुत्तन्तं बचनमनविवे। ॥ ७ ॥

तव धर्मात्मा महाराज दशरथ ने उन सब की पूजा कर उनसे धर्म श्रीर अध्याय से युक्त मोठे बचन कहे॥ ७ ॥

प्रय लाल्यमानस्य पुज्यार्थ नास्ति वे सुखम्।
तदर्थ हयंपेशेन यह्यामीति मतिमं। ॥ ८ ॥

पुष्प के लिये बहुत दुःखी होने पर भी मुखे लस्तान का दुःख नहीं है। तक्यमें चाहिला हूँ कि, पुज्यार्थ के लिये धर्ममें यह कहे॥ ८ ॥

तदर्थ वष्टुमिश्रायां शाक्तयात्रे कर्मणा।
ऋषिपुज्यभावेन कामावस्थायां चाप्यहसृ। ॥ ९ ॥

यह यह, मैं शाक्त की विधि से करना चाहिला हूँ। मुख्य विश्वास है कि, श्रुत्तन्त्र की कुपन से मेरा मनोरथ पूर्ण होगा॥ ९ ॥

ततः सार्वज्ञतिः तदावर्त ग्राह्यानं: प्रलयसुधाः।
वसिष्ठपुरुङ्गाः सवें पार्थिवस्य गुरुवाच्यमसृ। ॥ १० ॥
ब्राह्मण: सर्गः ८७

यद दुःख े ६.२ वशिष्ठ प्रभु ब्राह्मणों ने महाराज के मुक्तिविनायक
लू निकली हुई चाँडी की बड़ी प्रमाण की || १० ||
कस्यन स्त्रियाकारा पत्यूलक तद्रा ।
संभारा: संभिन्यन्त्र ने तुस्मन विनुव्याययः || ११ ||
सप्त मथुरा वादि ब्राह्मण कुशल से कहने लगे कि, भाप वाय
उद करने के लिये तब सामान एक रात्रि करवाये गौर यह का चोटा
हुआ है || १२ ||
सर्वथा पापस्ये पुत्राध्वराधिरामितिकिमान।
यस्य ते भार्मिका बुद्धिकय दुष्टाध्बास्मात्मः || १२ ||
जब भापको बुद्धि पुत्र प्रसाद के लिये पेषको धार्मिक हो रही है,
तब निविवत ही भापको धार्मिक पराकमी चार पुत्र उठक होंगे || १२ ||
तत्त: शीतोष्णमन्द्रा शुभता तु धिनभाषितमः।
अमायाद्रास्वरलेखा हुर्णेदां शुभासारसः || १३ ||
वाहनों को कहा इन चणों की दुःख, महाराज दशरथ वहुत
प्रसन हुए धीर मंगियों के यह शुभ धार्मिक सहर्ष प्रसन की || १३ ||
संभारा: संभिन्यन्त्र गुरुणा वचनादिदिः।
समुद्रधितिव्वावः स्वाप्यास्य विनुव्याययः || १४ ||
जेसी कि, इन गुरुवर्षों ने धार्मिक हो है, तदनुसार धार्मिक लेग
यह की सत तैयारियों करें धीर चार आत्मिको धीर चार सो रातको
पूर्ण देखकर में चोटा झोड़ा जाय || १४ ||
सर्वमाध्योत्तरे तीरे यहभूमिविनिष्णीयतामः।
श्रान्तवधापि वत्तन्तं यथाकल्य यथाविभि || १५ ||
वालकायडे

सर्यू के उत्तर तट पर यह शाला बनाई जाय और विद्या प्रशमनार्थ शाखाओं से विकल्पम्य गणित कराइये जायः ॥ १५ ॥

शक्यः कर्तुभयं यहं सर्वेणापि महीनितस् ।
नापराशी भवेत्क्षो यवसिन्कन्तुसचमे ॥ १६ ॥

यह यह कर तो सभी राजा सकते हैं, किन्तु इस उत्तराय यह कार्य में किसी प्रकार का अपचार या किसी का कष्ट न होना चाहिये ॥ १६ ॥

छिद्रः हि गृहयन्तेष्व विद्वासिः व्रहराक्रसः ।
विहतस्य हि यहस्य सचः कर्ता विनश्यति ॥ १७ ॥

क्षमकं विद्वान् व्रहराक्रसं यहकार्यं में विद्वास्वेषयं किया करते हैं और यह का किर्ति में अपचार होने से यह करने वाला तुर्कत नाश का प्राप्त होता है अध्यात्म मर जाता है ॥ १७ ॥

tथाया विधिपूर्वे मे कर्तुरेष समाप्यते ।
tथा विधायां क्रियतं समय्योः करणेन्द्रिः ॥ १८ ॥

ध्रतः अपनी शक्ति मर अपना उपाय को जिसले यह यह विधि पूर्वक संस्कृत्य है ॥ १८ ॥

तथैति च ततः सर्वे मन्त्रिणः पत्यपूज्ययन् ।
पार्श्वेन्तरस्य तदहार्यं यथाज्ञातसमकर्षे ॥ १९ ॥

महाराज के वे वचन सुन, संज्ञि लोग वहुत प्रसन्न हुए और उनके अध्यात्मसार कार्य करने में प्रबुद्ध हुए ॥ १६ ॥
ततो हिजासे धर्मज्ञास्तुन्नविर्धिताश्रमसः।
अजुजातास्ततः सन्ते पुजार्णभग्यागसः॥ २०॥

tadnānā rve āhāra, dharmajña nivātiprāgदशरथ को प्रश्नो
कर श्रीर विद्वा द्वारा से आपने आपने घरों को चले गये॥ २०॥

gateprth hījāṣṭे puṣṭa मन्त्रिन्द्राजाराधिपः।

विसेर्विचित्रा सं् नैशम प्रचिनेश महाधूर्तिः॥ २१॥

प्रति द्वारः सारः॥

गाह्यों के चले जाने पर, महाधूर्तिमान महाराज ने मन्त्रियों
को नियुक्त किया प्रीर श्राप भी प्रनतःपुर में चले गये॥ २१॥

वानकावण्ड का चारहवो सर्ग पुरा हुआ।

———

त्रयोदशः सारः:

पुनः पाते चसन्ते तु पूर्णः सन्तसरोपस्वितः।

सस्वार्थः गते यज्ञैह ह्रदयेशेन वीर्यानान्॥ १॥

एक चर्चा वादः पुनः चसालाकारः आने पर, पुज्यरामाणे के लियेए
प्रताप महाराज ने यज्ञ करने की स्था की॥ १॥

अभिवाच्य वसिष्ठच न्यायतः मतिषभूतः च।

अत्रवीभार्तप्रकर्षां वाचां सस्वार्थः द्राक्षेत्रमसम॥ २॥

वरिष्ठ जी की प्रशान्त कर श्रीर उनका यथाविधि पूजन कर
पुज्याराणे के लिये नक्रता पूर्वेक उनसे महाराज दशरथ बाले॥ २॥
वालकार्ये

यज्ञोऽरे प्रायत्नः, यज्ञन्यथोऽरे सुनिपुष्पवः

यथा न विधः प्रक्त: यज्ञान्नेन, विधियताम् ॥ २ ॥

हे सुनिपुष्पवः। प्रस्वतापूर्वक और विधिपूर्वक यज्ञ भारम्भ कौन्ते, जिसमें यह किैं भी कर्ते में कितने ही है। ॥ ३ ॥

भवानिन्यवः सुहृत्यहरु गुरुः परमो महान् ॥

वाहन्यो भवता चैव भारो गुरुः प्रवेदः ॥ ४ ॥

क्योंकि ग्राम्यकार मेरे ऊपर ग्राम्यस्थान स्तात है और ग्राम मेरे केवल हितेषी ही नहीं भावना मेरे सच्चे से वड़े गुरु भी हैं। इस विषम स्थान का जो बड़ा भारी घास है, उसे ग्राम सम्बाहलिये; भारीत इस महान यज्ञ का सारा भार ग्राम के ही ऊपर है ॥ ५ ॥

तथेऽति न सा राजान्यजयवीदृष्टिनियम: ॥

कारिण्ये सर्वेषीः तद्रवता यत्समार्थितम् ॥ ६ ॥

यह खुन सुनिपुष्पव वशिष्ट जो ने दृष्टि जो ले कहा—था जो नविदन किया तद्दृष्टि हरी हम सच वार्ता कराये ॥ ७ ॥

ततोज्ज्वलसुदृष्टिजन्तुद्दार्यकर्मस्थु निष्ठितान् ॥

स्थापत्ये निष्ठितांशैव द्वाराणिनिरुषार्मिकान् ॥ २ ॥

कर्मनिति ज्ञातिज्ञानकर्मकर्मकिन्तु ननकानि

गणकार्थ्याधिनयनौं तथैव ननत्त्वान् ॥ ७ ॥

तथा सुचन्वालास्विद्: पुरुषानुसुवहुश्रुतान् ॥

यज्ञैऽरे सामीहन्ताः भवतो राजवास्नानात् ॥ ८ ॥

तदुपरान्त वशिष्ट जी ने बुद्ध है और यज्ञार्थ में दुस्कल ग्रामार्थयों के, परम धार्मिक हैं और बुद्ध स्थापत्य विधा (भवन-निरीक्ष-कल्याः)
में कुशल कारोगरों को, विलिययों को, प्रथम लेखकों को, नटों ग्रीर नाचने शालियों को, बहुत जानने वाले ग्रीर सब चे (देवानंदव) शाश्वतगृहाव, राजाओं का, इत्या कर कहा कि, धाप लोगों के लिये महाराज की आत्मा है कि, यह कार्य में मनोवेय पूर्वक धाप लग जाय || ७ || ॥

इत्यादि वहुसहस्तः शीघ्रमानीयतामिति।
अपेक्षाः कियन्तां च राजां वहुपणान्निता: || ७ ||

वहुत ली हैं ग्रीर पक्ष कर, धापने वाले महामान राजाओं के ठहरने के लिये तथा प्रन्य. समस्तान लोगों के ठहरने के लिये सव तरह के उपास के (भ्राम के) पलग घाल घाल घर बना कर तैयार करे || ७ ||

श्राबणास सर्पाच्छ वत्त्वया: शतशा: शभा:।
भक्त्याच्च चारिवर्षु: होभि: समुपेता: खुलिश्चिताः: || १० ||

इसी प्रकार सेकड़ छुट्टर मकान प्राप्तर प्राप्तर जगहों पर वाहनों के ठहरने के लिये बनाए रो जिनमें सेवनादि को सव धाप-ढूंढक सामग्री रहें || १० ||

तथा पौरजनस्थापिणि कर्तव्या वहुविस्तराः।
आवासा वहुभवस्या वेष सर्वकामसम्पलिताः। || ११ ||

नगर निवासियों के ठहरने के लिये भी बड़े बड़े लेवे चैंबर मकान बनाये जायः, जिनमें सेवन ग्रीर सव प्रकार की सामग्री लाकर धापस्यान सजा दी जाय || ११ ||

तथा जानपदस्थापिणि जनस्य वहुश्रोभनसु।
हात्यमन विधिवत्सलकल्य न तु लीखया || १२ ||
बहातियों के लिये भी सब सुविधाओं के मकान बनें। एक वात का व्याय रखना कि, जिसके ध्यानादि मेरजन सामग्री दूर, जाय, उसे सकार पूर्वक दो जाय, दूसरे समय किसी का भी अनादर न किया जाय। ॥ १२ ॥

सबे वर्ण यथा पूणां माधुनिनि सुसत्तुताः।

न चाबज्जा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादिप। ॥ १३ ॥

ऐसा प्रकार हो कि, किसी वर्ण का भी मनुष्य, ता यह में प्राये, बसके वर्ण के अनुसार उसका यथावत सकार किया जाय। लोक प्रथमा क्रोध के वशवत्त हो, ज्वरत्वार! किसी का भी अनादर न किया जाय। ॥ १४ ॥

यज्ञनस्तु ये ज्यां पुरुषाः ज्ञिःपिनस्तथां।

तेषापि विशेषेण पूजा कार्यां यथाकस्मस। ॥ १६ ॥

यज्ञशाला के काम में तव कारीगर काम करें उनकी भी विशेष व्याय से यथाकाम ज्ञातिर्दिशों की जाय। ॥ १४ ॥

तेस च स्यः समुहः सबे नस्तहिम्मयन न।

यथा सबे सुविधिं न ज्ञिःपितर्रिहियते। ॥ १५ ॥

तथा भवनं कुर्वन्तु प्रीतिस्निग्धेन चेतसा।

तत् सबे सङ्गमन्य बस्तिःमिद्मनुवन। ॥ १६ ॥

सेवाकार्य में निरत नौकरों की उनकी मजूदी हो धौर मेरजन दिया जाय, जिससे वे मन लगा कर अपना अपना काम करें धौर, अपना काम न ठीक करें। वह सब लगा मन लगा कर प्रीति पूर्वक उनके साथ बनें जिससे सब काम ठीक ठीक हों। यह छुन वे सब वशिष्ट जी के समय जा उनसे बाले। ॥ १५ ॥ १६ ॥
गद्धोक्तं तस्यस्तिनः न विषिंगितप्रिहितये।
ततः सुमन्त्रमहाय भसिष्यं वाक्यमहनवीत। ॥ १७ ॥
ध्यापनं घेयसी ध्वासा दृष्टि है, तद्विकार ही हम सब करेंगे, किसी काम में घटि न रखने पायेगी। तब चारितं जी ने सुमन्त के शुलवाया और उस्मे गए। ॥ १७ ॥

निम्नत्रयस्त्र नृपतिन्मुषिन्यं ये च धार्मिकम्।
व्राह्मणन्नन्दियान्वेदव्यायंचाव सहस्रशं। ॥ १८ ॥

समानग्रयस्त्र सर्वकाल सर्वदेशेण मानवान्।
मिथिलाधिपति श्रूर्त जनक सत्यविक्रमस्। ॥ १९ ॥

निमित्तं सर्वशास्त्रेण तथा बेदेण निमित्तम्।
तमानय महाभारत्य समवेत सुभलक्षमस्। ॥ २० ॥

इस पूर्वविवेकमहं पर ते धार्मिक राजा हैं, उनके पास निमंत्रन भेज दे। सव देवों के बहुत से ग्राहण, चरित्र, चैत्यों और श्रृंग की भी सादर बुलवायें। सत्यप्राकृति, श्रूर्तिप्रमिया, वेद और सब ग्राह्यों में निरोधत, महाभारत मिथिलाधिपति की स्वयं जाकर ग्राहय सहीत लिखा लाते। ॥ १८ ॥ १८ ॥ २० ॥

पूर्वसंवर्धितम ज्ञातवा ततः पूर्व व्रजीमि ते।
तथा काशीपाल सिन्धुण सततेष निमित्तिन्यमृ॥ ॥ २१ ॥

समहतं देवसंकाशं संयमेवानवयं ह।
तथा बैक्ष्यराजान छहं परमाभिमानम्। ॥ २२ ॥
वश्वुर राजसिन्ध्य सप्तां त्वमिहाणय।
अज्ञेयवरं महाभागं रोपणां सुसत्केरत। ॥ २३ ॥
वयस्यं राजसिन्ध्य समानय यज्ञकिनय।
पाचोपनिन्युसौरीचरार्तोत्रेयंशं पारथचार। ॥ २४ ॥
दार्शिनास्यामरेण्यंशं समस्तानानयस्त।
सन्ति सिन्याष्य ये चायं राजाः पुष्पिरवितते। ॥ २५ ॥
तानानय ततं सिगं सातुगानसहवान्यवान।
वसिष्यान्यं तच्छु त्वा सुमन्नलस्वरितस्य। ॥ २६ ॥
उनको यह घराने का पुराणा व्योहारी जान उन्हें सव से पहले
बुलाने के लिये हम तुमसे कहते हैं। सदैव भ्राम वेलने बाटे, सदा-
चारी, देवतुल्य काशोनरेश की भी सत्कारपूर्वक लिखा लाओ।
इसी प्रकार चुन चौर परम धार्मिक केकयवाज, तो महाराज के
बृहत हैं, पुत्र सहित यहाँ लिखा लाओ। वार्तेश्वरिपति वश्की
महाभाग रोपणां कौ, तो महाराज के मित्र हैं, सत्कार पूर्वक लिखा
लाओ। इसके प्रथितिक पूर्व देश के, खिस्तु देश के, सौतेलि
कै, बुलिश देश के राजाओं तथा प्रस्तीविगत के प्रथ्य प्रचैतने
राजाओं कौ, भाई बंधु नौकर चाकर सहित दृत मेज कर
श्रीग्रह बुलवाते। तब विशिष्ट जी के इस कथन की सुन सुन्मंत्र ने
दुर्ग्न ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

व्यादिश्वपुष्पाः राजामानेन श्रुभानु।
स्ममेव हि धर्मात्मा प्रयत्नो मुनिभास्नातु। ॥ २७ ॥

dेश देश के राजाओं का बुलाने के लिये दूत भेजे और ल्यर्य भी
विशिष्ट जी की भाँड़ा के प्रश्रुतार राजाओं का लाने के लिये रवाना
हुए। ॥ २८ ॥


dेश देश के राजाओं का बुलाने के लिये दूत भेजे और ल्यर्य भी
विशिष्ट जी की भाँड़ा के प्रश्रुतार राजाओं का लाने के लिये रवाना
हुए। ॥ २८ ॥
सुमन्त्रस्तवरितो सूत्रा समानेतुः प्रहसितिः।
ते च कृमान्नित्कः सर्वं वसिष्ठाय च धीमते॥ २८॥

सुमन्त्र वशिष्ठ जी के वतवाये निविष्ट राजाओं की धुलाने के
लिये शोधता से स्वाता हो गये। यह कार्य में लगे हुए मनुष्य विद्वा-
मानू महर्षि वशिष्ठ जी से ॥ २५॥

सर्वं निवेदयन्ति सम यहरे यत्रधक्षिणिपतम्।

ततः भीतो द्रिङ्धेश्वरास्तवान्नरिण्डमवीतुः॥ २९॥

जी कुछ यह सम्भव्य काम करते वह सब कह दिया करते थे।
तव प्रसन्त हि वचिष्ठ जी उन सब से कहते॥ २६॥

अवज्ञाया न न्यायवर्ष कर्मनिलंकित्तरापि वा।

अवज्ञाया कृतं हन्यादातारं नात्र संस्याः॥ २०॥

देखना, किसी के हङ्को हिंभो में भी कोई वह प्राणादि करके
मत देता; क्योंकि प्राणादि करके बैठे वाले दाता का निवश्य ही
नाया होता है॥ २०॥

ततः कृषिच्चर्कहराश्रिष्याता महीनिः।

वहीनि श्वान्यादाय राजेऽद्वं दशरथस्य हि॥ ३१॥

इसके कुछ ही दिनों वाद प्रानेक प्रकार के राजा को मंत्र ले दे
कर राजा लोग महाराज दशरथ की वहशाला में आ पहुँचे॥ ३१॥

ततो वसिष्ठः सुमातो राजानन्दमहद्वीतुः।

उपयाता नरम्याद्या राजबन्स्तव शासनात्॥ ३२॥

तव वशिष्ठ जी राजाओं की घाय भाग देक, प्रशंस भो, महाराज
दशरथ से वाले—प्रायके प्रावेदिकासार सवरा जो लग भ्रा
गये॥ ३२॥
मया च सत्युताः सर्वं यथाहं राजसत्तमाः ।
यक्षिणं च कृतं राजनुपरः सुसमाहिति ॥ २३ ॥

हे महाराज ! मैं भी उनका यथोचित सत्तार कर दिया था और वह की भी सत्ता तैयार ही चुकी ॥ २३ ॥

निर्यातु क भवान्यपूर्वं यस्यातनमनितिकात ।
सर्वकामेश्वरतैत्तियेत्व वै समनतः ॥ २४ ॥

द्रष्टुमहति राजेन्द्र पनसेव विनिर्मितम् ।
तथा वसिष्णुसचनाहशयन्याश्वः चेम्योऽः ॥ २५ ॥

यव ग्राम भी यह करने के लिये यज्ञशाला में पवारिये था और वह की सव सामग्री का देखिये कि, लेखकों ने दैको उच्चतम था और यज्ञवादन के सव सामान सजा कर रखा है। तब वशिष्ष जी था अयाष्ट्रुट्ट्र व्रान्तों के कहने से ॥ २४ ॥ २५ ॥

शुमे दिवसजनक्र नियते सत्यतिः ।
ततो वसिष्णुपुत्रः सर्व एव दुःखोऽचामा: ॥ २६ ॥

ऋष्यश्च तरसक्त पयाकारयस्मातदा ।
यज्ञवाटवाः सर्वं यज्ञशाल्ल स्माभिः ।
श्रीमान्य श्रीबलबीरी राजा दीपाशुकाविचारत् ॥ २७ ॥

इति योद्धशः सर्वः ॥

शुम दिन धौर नज्ञात्र में महाराज दुःशरब्र यज्ञशाला में गये।
तव वशिष्ष प्रमुख सव और वाहनों ने ऋष्यश्च को ध्यान करता था
चतुदेशा: सर्गः

यदुराज में यहकार्य यथाविधि प्रारम्भ किया और महाराज ने राणियों सहित यहदीदिखा की || २६ || २७ ||

वालकायद का तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

चतुदेशा: सर्गः

अत संचत्तरे पूण्य तत्सिन्नाः सुरक्षिते || १

सर्ववारोवरे तीरे राजो यजोभम्भरत || २ ||

प्रत्य पर्व वद्रु तब यह का घोड़ा चारों और घुमकर था गया,

वह महाराज द्वारका का यात्रामेधयथ सरयू के उत्तरत में पर होने लगा || ३ ||

क्रुष्यमेध युरस्कुल कर्म चक्रवर्धिणि || ४ ||

अतवेषे महायज्ञ राजोपस्य सुसमाहतमः || ५ ||

क्रुष्यमेध प्रमुख व्राह्मणदशें ने महाराज द्वारका ये यात्रामेध।

कर्म हर्षित विद्विष्टवाजका चेदपारप्याः || ६

यथाविधि यथान्यायं परिक्रमिणि शास्त्रतः || ७

बेद्र जानने वाले स्वयं का घोड़ा उर्वर, (श्रव्वि) कहताहूँ न कहत यह की विधि के अनुसार सब कार्य करवाते थे || ८ ||

प्रवर्ग शास्त्रः कृत्वा त्यैव बालरं दिना || ९ ||

चक्रवर्धिन विधिवत्त्वसभिन्न कर्म शास्त्रः || १० ||
वालकार्यादे

अभिपुज्य ततो हुश्राः सर्वं चक्रुक्षेठाविषि।
प्रातः सवनपूर्वाणि कर्मणि मुनिपुज्यः। \[\text{II 5 II}\]

प्रवर्ग बौद्र उपस्वद (यज्ञोपकर्म विशेष) द्वारा कर्म शाक्ताजुसार
विविधत करके, बड़ी प्रसन्नता के साथ तत्त तत्त करी में पूज्य देवता-
tाश्रों को पूजा व्राह्याणि ने की बौद्र दूसरे दिन याथि मुनियों ने
प्रातः सवन (यज्ञोपकर्म विशेष) कर के, \[\text{II 4 II 5 II}\]

ऐनद्र विविधततो राजा चामिश्यतो अस्वस्तः।
साध्यंदिनं च सवनं प्रार्थत यथाक्रमस्। \[\text{II 6 II}\]

विधि पूर्वक दृष्टा का भाग दे बौद्र पाप दूर करने वाली
सोमलता का रस मिलाल, मध्यान्वस्व सन्ध्या गया \[\text{II 6 II}\]

तृतीयसवनं चैव राजस्वस्य सुमहात्मनः।
चक्रुते शास्त्रस्तो दृष्टा तथा व्राह्याण्युज्यवा। \[\text{II 7 II}\]

किर महाराज बौद्र व्राह्याणि ने शाक्ताजुसार यथाविशप तीसरा
स्वर्गसवन किया \[\text{II 7 II}\]

न चाहुतमसूचत्र स्वविषि वापि किंचन।
हस्तयते प्रववत्स्य श्रैयुक्तं हि चकिरे। \[\text{II 8 II}\]

इस यह में किसी प्रकार की अत्य नहीं होने पायी। पूर्ण
श्राब्धायी यह करवाने वालों को उपविधाल के कारण, केवल श्राहुति
सूचि के प्रथम विपण्यत नहीं दी गयी, तो कुछ कर्म किया गया
उस फल्यागाकारक ही किया गया \[\text{II 8 II}\]

न तेष्वहस्त्र आन्तो वा श्रुषितो वापि हस्तयते।
नाचित्रान्स्वहीनाःस्त्र नाशान्तानुचरस्तथा। \[\text{II 9 II}\]
छधनाष्ट्र: सर्गः १०५

यह काल में कोई भी ब्रह्माण्ड भूखा व्यासा नहीं रहा। न तो
वहाँ कोई सेवा ही ब्रह्माण्ड देय गढ़ता जो भूख है, और न वहाँ कोई
सेवा ही ब्रह्माण्ड था जिसके पास सैकड़ों शिष्य न थे। ॥ ६ ॥

ब्राह्मण सुखते नित्यं नायरम्यन्त्य सुखते।
तपसा सुखते चापि अभाः सुखते तथा ॥ १० ॥

यही नहीं कि वहाँ जेवल ब्राह्मणों ही की भोजन दिया जाता
था, प्रमुंह शुद्र नाकर चाकरों की भी भोजन मिलता था। इसके
प्रतिरिक तपस्वी, संन्यासी भी भोजन पाते थे। ॥ १० ॥

वुढ़ावः व्यापिताश्चैः स्त्रिया वालास्तथेव च।
अनिन्हः भुजजानानां न दृश्यितं पुष्यते। ॥ ११ ॥

बुढ़े, रोगो, जिया ओर वालक वारंवार भोजन करते थे तो भी
भोजन करने वाले धर्माते न थे। ॥ ११ ॥

दीयतां दीयतामनं चांसांसि विविधानि च।
इति संचंदितास्तर तथा चक्रुरनेकरः। ॥ १२ ॥

महाराज को ब्राह्मण से महाराजी ले गए श्रवण ओर चढ़कर का
ब्याप्त जड़े उद्धरण से जी बोल कर करते थे। ॥ १२ ॥

अचक्रुराद वहेवा द्रष्टयते पर्वतोपमः।
दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विविधताद दा। ॥ १२ ॥

कच्छे पक्षक श्रवण के दौर पहाड़ौं जैसे ऊँचे लगे रहते थे जो
तेजस मांगता उसे नित्य चैता ही भोजन दिया जाता था। ॥ १२ ॥

नानादेशादशुधासा: पुष्का: स्वीगाणस्तथा।
अन्धपानै: तुषिहितास्तस्मिन्त्येऽऽधातमा! ॥ १४ ॥
बालकार्दे

चनेक वेणियों से ग्रामे हुए यो पुरुषों के सुमाद के सुमाद नित्य भोजन से चुत होते थे || १४ ||

अन्ने हि विधिवत्सादु परशसन्ति दिनर्पम्बाः।
अहोरुवातः स्म मद्यं त हिति हृदाभाव राजां।।१५।।

व्याविद्य मोजनों से तुस हुए ब्राह्मणों के आश्रीवां खुचक शब्द महाराज के चारों थोर से स्नान पहले थे || १५ ||

स्वरूप्याश्राधु पुरुष ब्राह्मणान्येजपायन्।
उपासते च तात्नये सुषुभमणिकुण्डलाः।। १६।।

बलों थोर गहनों से जाते हुए धन्य राजाओं के नोकर चाकर जाह्नवों की सव प्रकार में थोर उन लोगों की परिवारों के लिये सणिज्ञति कुड़कलार्कां धन सच सोग थे || १६ ||

कर्मांतरे तद्वा विभा हेतुवादान्हूनर्थि।
प्राहुः स्म वामिनेना थीराः परस्पर जिगीष्या।। १७।।

एक सवन समात होने पर थोर दूसरा सवन शास्त्र होने के चीन के सावत्र क्वता उसमें एक दूसरे की प्राणिविध में हरा देने की इच्छा से निहार ब्राह्मण परस्पर शाक्षार्थ करते थे || १७ ||

दिवसेदिवासः तत्र संस्तरे कुशाला दिजाः।
सर्वकर्माणि चकुस्ते स्थाशस्त्रं मनोहिताः।। १८।।

उस यह में कुशल ब्राह्मण शाखासुकूल नित्य प्रति यहकर्म करते कराते थे || १८ ||

नापद्विन्द्रशाससीवावत्वा नावुक्षुटः।
सदस्यास्त्रस्य वै राजो नावादकुशाला दिजाः।। १९ ||
दर्श यह में ऐसा आयाम न था जो वेद या वेदांतात्मात्रा न हो, ब्रह्म या महाराज का कोई ऐसा सदह न था, जो अत्यधिक न हो, वचनव व्युद्ध पर न हो अथवा त्रिमाण में कुशल न हो। १६।।

पार्वती पूजनाच्छे तस्मिन्निष्क्रियान: वैद्य: स्वादिरास्थ्या।
तात्र तत्त्वलीलासाहितः परिणाम तथापि। २०।।

श्लोकालक्षमप्रस्तुतीती का देवद्वास्तूः।
द्रार्थं विविषिता तत्र वाहुव्यस्तपरिश्रमा। २१।।

उस यह में लकड़ी के प्रकार भर मेटे इकोस खंबे गाँठे गये थे। इनमें से ६ वेल के, ४ खेल के, ३ डाक के, १ जिस्से का यह देवदार के थे। २०।२१।।

कारिता: सर्व एवंते शाष्ट्रज्ञेयत्तथेवर्तमान।
शुभार्थः तस्य यज्ञस्य कालाच不同ताः भवन। २२।।

इकोसमें चतुर शास्त्रियों ने यज्ञशालाको श्रेढा बढ़ाने के लिये इन खंभीं का सरकार के पत्थों से मढवा दिया था। २२।।

एकत्रितलिहितपासे एकत्रिक्षरतवः।
वासेभिकृति: विविषयादिट्रिरेकैं समलक्षणतः। २३।।

इकोस: खंबे इकोस इकोस अर्थिः ऊँचे थे यह यह सब खंडे से सजाये गये थे। २३।।

विन्यस्ता विविषितसर्वेव स्मितिभि: सुकृताद्यायः।
आयुष्याः सर्व एव श्रुतेणुपसमन्विताः। २४।।

* अर्थिः—सुधी; यानो हाथ की बंधी हुई सुधी।

वार ५०—६
यथाविचि शिलियों ने वना, इनको बड़ी मजबूती से प्रथिवी में गड़ा था, जिससे हिले नहीं, और ये खंभे बड़े चिकते थे। ॥ २४ ॥

आच्छादितास्ते वासेभि: पूष्पैर्गन्तः भूपिताः।
समर्पणो द्रैसिंतो विराजन्ते यथा दिनि ॥ २५ ॥

इन खंभों पर वन लपेटे गये थे और ये पुष्प और चन्दन से
सजाये गये थे। उस समय इनकी शोभा आकाश-मणिवल में
समर्पणों की तरह देख पड़ती थी। ॥ २५ ॥

इत्तकाश यथान्यायं कारितान्य प्रमाणतः।
चितोज्ञािर्वाहणेतस्तु कुशः शुचवकर्मणि ॥ २६ ॥

स चित्यो राजसिन्ह्य संचितः कुशलैऽदिनेः।
गच्छो वक्षपातो वै त्रिज्ञाणोऽङ्गादशात्मकः। ॥ २७ ॥

जितनी बड़ी और जितनी अपेक्षित थीं, उतनी ही इंद्र तैयार होने
पर शिल्पनिरुपा ब्राह्मणों ने उन इंद्रों से यथाकृती वनाया। राजसिन्ह
महाराज दशरथ के यदि ने चतुर ब्राह्मणों ने कुशलों के इंद्रों
पर्छ बना भाटारह प्रस्तार का एक गठित बनाया। ॥ २६ ॥ २७ ॥

निन्यत्कास्तु पारावर्तवत्तुद्धिवस्य दैवतम्।
उर्मा: पश्चिमव्रैव यथाशास्त्रं प्रेणकिताः। ॥ २८ ॥

जैसे शाखाओं में विचित्र बतलायी गयी है, तदरुसस्तार जिस इंद्र
के लिये तो पुष्प चाहिए वह वाँचा गया। यथाविचि खर्म ब्राह्मण
पक्षी भी यह शाखा में लाये गये। ॥ २८ ॥
शामिले तु हयस्त्र तथा जलचरान् ये ।

शतिविभः सर्वेऽनेतनिनुभुनं श्रास्त्रतस्तदा ॥ २९ ॥

प्रत्येको ने धारे धारे जलचर जन्तु कच्चिन् प्राप्ति शाखरिति
से यथास्वान वाया ॥ २६ ॥

प्रांत्रां श्रीरत् तत्र गृहेपु निर्गतं तथा ।

अवस्तुबोत्तमम् तस्य राजः द्वारशस्य च ॥ ३० ॥

उन द्वारों में नीन सो पशु धारे प्रवेक दिशा में प्रूम्छ फर प्राया
हुँमा महाराज का प्राति बचम घोड़ा बोवा गया ॥ ३० ॥

कौशल्या तं हृयं तत्र परिचयं समन्त: ।

कौशलया तं हृयं तत्र परिचयं समन्त: ।

कौशल्या जी ने उस वेर्दे को प्रचीर तरह पूजा की धीर द्रस्त
ही, नीन तलवारों से उस वेर्दे के दुक्हे किये ॥ ३१ ॥

पतिणिया तदा सार्थ सुस्थितेन च चेतसा ।

अवसन्नतेजनोऽकौशल्या कौशल्या धर्मकामया ॥ ३२ ॥

फिर धर्मसिद्धिः को कामना से कौशल्या जो उस ( मृत ) ध्रुव
की रच्या करते का एक रात्रि श्रवस्त्रा की मृता रहित मन से
उसके पास रहीं ॥ ३६ ॥

हातार्थवृहस्पत्योद्गाता होने सम्योज्यन ।

पहिण्या प्रतिपत्या च बावातां च तथा पराय ॥ ३३ ॥
फिर होता, यशवंत और उद्योगात्मक ने कौशल्या जी का, परिच्छन्द की तथा वावातार का प्रभाव के साथ नियोजित किया ॥ ३२ ॥

पत्तिरणस्त्रय वपायुद्ध्य नियतेत्रिद्रियः ॥
अतिक्षरतः संस्पन्नः अपयामास राज्यः ॥ ३४ ॥
जितेत्रिय चुल्लिजे न उस घोड़े की चर्मी ले यथाविचित्र प्रभो पर चढ़ा उसे पकाया ॥ ३४ ॥

धूमगनुः वपायतस्तु जिगृति स्म नराधिपः ॥
यथाकालं यथान्यायं निर्युद्यनप्रथमात्मनः ॥ ३५ ॥
महाराज भृरस्थ द्वारकायें चर्मी के पकाने पर निकली हुई गन्धः का शाखा की विधि के प्राप्तार सूच सूच फर, अयने पापों की नष्ट करने लगे ॥ ३५ ॥

हयस्य यानि चाङ्गानि तानि सर्वानि राजाणाः ॥
अथौ श्रास्यन्ति वितिवस्तस्यन्त्रः पोद्धर्विजः ॥ ३६ ॥
सेल्ह युद्धिज उस घोड़े के श्रेण काट काट कर विधिवत ब्राह्मि में ह्वान करने लगे ॥ ३६ ॥

प्रक्ष्णारागसु यज्ञानामन्येण क्रियते ह्रविः ॥
अश्वमेधस्य चैकस्य वैत्सो भाग ह्वष्टे ॥ ३७ ॥

* राजा की महान स्वी; परिच्छन्द वैद्य । ॥ राजा की वैद्या स्वी वावाता कहलाती है।
चतुर्दशः सर्गः

प्रत्येक युग्मों में पाकर को लकड़ी से हवियों की प्राकृति दर्ज होती है, किंतु ध्यान धरने प्रथमहीन हों में यह काम वेत से लिया जाता है।

न्योध्याबर्तमाणे संस्कारतः कल्पमूर्तेण नराणीः।

चतुर्दशमहस्तस्य प्रथम परिकुलितम्। २८।

उक्ख्यम् द्वितीयं संस्कारत्तमतिरात्रं तथाचारस्य।

कारितास्त्रूम् वहलो विहिता: शास्त्रदर्शनानां। २९।

क्षत्रियां श्रीराधारणा भाग ने, प्रथम यद्य प्रथम दिन सन्तुक्तिया करते के वतलाये हैं। उनमें प्रथम दिन प्रथितिहोम दिन है, दूसरा उक्ख्य, तोसरा प्रतिराधि—से ये भी शाखा-विधि के अनुसार तथा प्रत्येक पहुँचे ने विश्लेषण किये गये। ३५। ३६।

ज्योतिष्ट्रोमाधुपी वैवधतिरात्रौ च निर्मिता।

अभिज्ञ्यि वज्ञिनिः समस्यां महाकालः। ४०।

ज्योतिष्ट्रोम, प्रायुक्तां, प्रतिराधि, अभिज्ञान, विषयं, ब्राह्मण महायज्ञ किये गये। ४०।

प्राचीन हेत्रेते दर्दा राजा दिर्ग्या स्वकुशलग्नः।

अन्धरे मने प्रतिच्छि तु ग्राहणे दक्षिणां दिनस्रू। ४१।

उद्वर्त्त्रे च तथादेवीरी दक्षिणेप्लविनिर्मिता।

अवस्थेये महायज्ञे स्वयंभूविहिते पुरा। ४२।

कतुः समाप्त्व तु ददा न्यायं पुर्वपर्वः।

कृतिच्छयो हि ददृशा राजा धराओ तां कुशलग्रंवः। ४३।
सर्वकुल-चूरू-कारक महाराज दृश्य ने इस महायज्ञ को यथाविधि समापति पर पूर्व दिशा का राज्य होता कि, पथिम का व्रतमय को, दृश्य दिशा का व्रतमा का त्रैर उत्तर दिशा का दर्शाता के यह की दृश्या में दिया। स्वरंभेमुद्रनु ने इस प्रकार अपने महायज्ञ में, पूर्वकाल में, दृश्या दृषि थी, उसी प्रकार दृश्यावजी ने दरी। तब यह को शाक्तानसार विधिवत समास कर, पुरुष्यगिर महाराज ने अंतिमो' की पूर्विवोदाम कर दरी || ४२ || ४२ || ४३ ||

वर्तिजस्त्वद्वृद्वनसिवं राजानं गतकल्यपस्य।
भवानेव भवेद वलत्नामेको रक्षितमहिति || ४४ ||
न भूम्य कार्यसमां न हि श्रवाः स्म पाठने।
रताः स्वाध्यायकरणे वर्य नित्यं हि भूमिप || ४५ ||
निष्क्रयं किचिदेवह प्रम्भचुतु भवानिति।
मणिरतनं लुक्कं वा गायत्री यथा समुच्छतस्य || ४६ ||
तत्परचु नरश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनस्य।
एव्युको नरपतिर्वेदाणांवेदपार्गेन: || ४७ ||

जव दूरार्थ ने अपने राज्य की सारी भूमि यह कराने वाले ब्राह्मणों को हो दो, तब सब ब्राह्मण निशाप महाराज दृश्य के उपर बाइके, हे नरपाव! इस भूमि की रचा तो चाप ही कर सकते हैं। न तो हये भूमि की खासोत्कता है और न हये इसका पालन ही करने, में समर्थ हैं। क्योंकि हये लोग बद्रिपाठ में लगे रहते हैं अयोद्ध हये जूवेहारी या राज्य के सम्बन्ध में पड़ने की फुर्तक सहायता है।
चतुर्व पर तो हये इस भूमिद्रान के व्यदरे मार्ग, रक्त, डुल्लर,
गोर्भ—जो ध्रुप देना चाहें, वे दूं। हम भूमि ले कर क्षुर करेंगे?
ब्रडुपर्णा ग्रामशास्त्रों के भे वचन शुरू || ४५ || ४५ || ४५ || ४५ ||
गर्वं शतसहस्राणि दुष्टे तेस्या दृश्यो दृश्यो नृपः।
कृष्णकाठी: लुकरणस्य रजस्तव चतुर्गुरुसम् || ४८ ||
महाराज ने एक लाख पैँ, त्रम करोड़ सेने की मेहरें,
चालीस कणोड़ चौरों के रूपक स्त्रियों का दिया || ४५ ||
ऊर्जिरि-सत्ता तत: सर्वें प्रदेणु: सहिन्ता वसु।
ऊर्जिरि-सत्ता शुनके विकिरितां च भीमते || ४९ ||
उन स्वने दृशिकी में सर्वोक्ष पाके ले सब चौरों भौटने के लिये
वगित्त जो व ऊर्जिरि-सत्ता जो के सामने रख दीं || ४६ ||
तथस्ते न्यायस्तेष्व: कँस्ता प्रविघारं द्विजालमांः।
सुवीतमनसः सर्वें प्रतीक्षुप्रिंतिता भूष्मम् || ५० ||
उन्होंने न्यायसुधार हिस्सा कर, सब के वह धम बौट दिया।
वे ध्यान ध्यान हिस्सा बौट पर कर और प्रसन्न हो बोले, हम बहुत
प्रसन्न हैं || ५० ||

ततः प्रसर्वके-स्यस्तु हिरण्य शुस्माहिति:।
जाम्भूनन्द कोटिष्ठां ग्रामप्रकोश्ये दृश्यो ततदा || ५१ ||
किर महाराज ने उन लोगों की जा लंबे देखने ध्यान थे मेहरे
बौटी और जाम्भूनन्द के सेने की कई करोड़ मेहरे प्रत्य प्रावर्णों
के दृश्यों के दृश्ये || ५१ ||
दारिद्रय द्विजायाय हस्ताखरणमुकलमसमुः।
कस्मेच्छित्राचारमानाय दृश्यो रायवननन्दन: || ५२ ||
तदनन्तर महाराज दशरथ ने एक दृष्टि भिड़क को, उससे मौजूदे पर, अपने हाथ का गहना उतार कर दे दिया।

तत् प्रीतेपु नृपतिर्गंधुपु द्रिज्जवत्सलः।
प्रणाममकरोतेपा हर्प्ययंकुलेरकणः।

ब्राह्मणों के प्रसन्न देश, महाराज ने अतीव प्रसन्न चिह्न से उनका प्रशाम किया।

तस्याश्रिकीस्थविविधा ब्राह्मणः समुदारिताः।
उदारस्य नृवीरस्य धरण्यां गणतन्त्र च।

इस पर उदार, वीर ध्वनि विरोध पर पता कर प्रशासन करते हुए महाराज के, ब्राह्मणों ने विविध ब्राह्मणवंदनी दिये।

तत् प्रीतमना राजा प्राण्य यथामन्त्रमृश्।
पापापहै स्नातयनं दुष्करं पारिवर्त्यः।

उदारविचित्र महाराज दशरथ, पाप नाश करवावे वाले, स्वर्गब्रह्म पाये प्रक्षण राजाओं के लिये दुष्कर, इस यज्ञ का कर।

ततोभविष्यवस्थृतं राजा दुःस्वाग्नथस्तदा।
कुठस्य वर्धनं तवं तु कर्तृभार्यासि सुनवत॥

अत्यंत से बोले—“है चुक्त। अब भ्राप मेरे कुल को वृद्धि के लिये उपाय कीजिये।

तथेति च स राजामुनिवाच द्रिज्जवत्मः।
भविष्यति सुता राजश्रीवास्ते कुठोदझः।

हति चतुर्दशः सभाः।
पाषाण: सर्ग: ।

यह मुनि धौर तथास्तु कह कर अन्यप्रस्थ बाले—‘हे राजनूँ!
आपके तल की श्रद्धासे चार पुत्र होंगे॥ ४५ ॥
वालकाण्ड का ओढ़हरण सर्ग समाप्त हुआ।

—५—

पाषाण: सर्ग: ।

—५—

मेधावी तु ततो ध्यात्मस स किंचिदियुत्रयस्म।
लम्ब्रसिंहस्तस्तूते तु वेद्यो शुभमवतीद॥ १ ॥
मेधावी, वेद्य अन्यप्रस्थ हो कुछ काल तक ध्यान कर के,
महाराज दृश्यसे बाले कि, ॥ २ ॥

इष्टे तेजस्करिक भविष्याचूर्णां पुत्रकारणाद।
अर्यनिविर्धत: प्रोक्तम्बर्तेः सिद्धां विधानतः॥ २ ॥
हे राजनूँ! में ते लिखे वायर्यवेद में कही हुई पुत्रेशि यह की
विभिन्न के प्रकुलार सिद्धि की वाला पुत्रेशि यह कलाका जिससे
तुरुआ ममार्य पूरा होगा॥ २ ॥

tतत: प्रकम्प्त ताभिष्टि पुत्रीयां पुत्रकारणाद।
जुहावात्मात: तेजस्वी मन्त्रहस्तेन करमणा॥ २ ॥

यह कह पुत्रप्राप्ति के लिये, उन्होंने पुत्रेशि यह प्रारम्भ किया,
अति विविधत मंथ पढ़ कर, वे प्राधुति देने लगे॥ ३ ॥

tततो देवा: समन्यर्वा: सिद्धार्थ प्रसर्स्यः
भागप्रतिग्रहार्थ वेन समतेता यथाविधि॥ ४ ॥
तब ते देवता, गन्ध्रव, सिद्ध और महदी, यहैं यहैं यहैं यहैं
साग लेने को शाय कर लामा हुए ॥ ४ ॥

ta: समेतय यथान्यार्य तस्मीशन्दसि देवताः
अनुवस्त्वकर्तर वहार्य वचनं महत् ॥ ५ ॥
इस यह में यथाकाम एकत्र हो देवताओं ने स्पष्टिक्त जाने जाने
से विनय की ॥ ५ ॥

भगवस्वत्वलादेम राजणो नाम राष्ट्रः
सर्वन्तो बायश्च चेराल्चक्षुं तः न शक्तमुः ॥ ६ ॥
हे भगवन्! आपकी कृपा से रावणा नामक राष्ट्र, हम सब के
बहुत सत्ताह है, ब्रह्म हम उसका कुष्ठ मे नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

tva तस्मां चेरो दच्च प्रीतेन भगवनपुरा
माययन्त तं नित्यं सर्वं तस्य श्रमामहे ॥ ७ ॥
क्योंकि आपने प्रवर्थ हो उसे पहले वर्णन दे दिया है, इस लिये
हम सब सहते हैं, ब्रह्म कुष्ठ नहीं बालते ॥ ७ ॥

उदेजयति तेळांश्चत्वान्नकन्तटान्देशी दुर्मतिः
श्रुं जिदशराज्यं मध्यप्रियतुमति ॥ ८ ॥
बह तीनों लोकों के सता रहा है, ब्रह्म लोकपालों से
शानुता वाङ्क कर, स्वार्ग के राजा इन्द्र का भी नीचा दिखाना
चाहता है ॥ ८ ॥

ऋषीन्यसान्त्वन्त्वोऽन्त्वण्वथरान्त्राहाराण्स्तथा
अतिक्रामति दुर्योधनं वयद्देन मोहितः ॥ ९ ॥
पद्धति: नग्नः

फळ फलियो, फल यज, फल गन्धर्व, फल दंशता, क्षाय ग्राहण, नाबोध धरोण के प्रभाव से, वह दुर्योधन किसी की भास्करी ता नहीं समभागत ॥ ६ ॥

नंतन स्नेहः प्रत्यति पात्रैः वाति न मातः ।
तन्त्रार्पिताय तं द्वीपः समुद्राँग्नि न कर्पते ॥ १० ॥

उम न ते स्नेह चे गर्मी पर्द्वमा सकते श्रीर न वायु देव ही उसके समायं धंग से चमक सकते हैं । उसे देखते ही समुद्र भी ध्वनि लहराना चमक कर, जीवन ला जाता हैं ॥ ६० ॥

सुपद्ध्वा भर्य तस्मादारसाद्यः योद्धर्जनानात् ।
वधार्यः तस्य भगवन्नुपायं कर्मप्रतिस्वि ॥ ११ ॥

उम भगवानक रात्मण्य का डूंगने ही से हमें बढ़ा डर लगता है ।
अतः हे भगवान् ! उसके नाथ के लिये कोई उपाय कीजिये ॥ ११ ॥

एवमुक्तः मुरैः संवद्धित्वेन ततोज्वत्वीतः ।
दत्तायं विहितस्तम्य वधपायो दुरातमः ॥ १२ ॥

उन सब द्रव्यायों के ये अचन गुण, उक्तियो जो कुछ सेवन कर भोज्य—में उस उस दुरात्मा के मारने का उपाय सेवन लिया हैं ॥ १२ ॥

तेन गनयवः यस्याणां देरवानवरकश्चामः ।
अवध्योक्सीति वायुत्तरत्वस्युत्तर च तन्मया ॥ १२ ॥

रात्मण्य के वर मौगने पर हमने उसे गन्धर्व, यज, देवता, दानव और दशरथों द्वारा अवध्य होने का कारण ता अवध्य दे दिया हैं ॥ १३ ॥
नाकीर्तियदवजानात्रज्ञाते मानुपार्श्वदा।
तस्मात्स मानुपार्श्वो मृत्युनान्योज्यस्य विषये ||१५॥
किन्तु उसने मनुष्यों की हुई भी न सकक वर्गवान में मनुष्यों का नाम नहीं लिया था। अतः वह सिवाय मनुष्य के अन्य किसी के द्वारा नहीं मारा जा सकता || १४ ||

एतच्च त्वा प्रियं वाक्यं व्रजनणां समुदहारात्।
देवा महर्षिः सर्वं महःप्रस्तेभवास्तदा॥ १५॥
ब्रह्मा जी का यह प्रिय वचन लूट, सर्व देवता महर्षि अर्धे बहुत प्रसन्न हुए॥ १४॥

एतस्मिनान्ते विष्णुव्यातो महाचुर्दिः।
शांतचक्रणामाणि पीतवासा जगत्यति॥ १६॥
इतने ही में शांतचक्र गद्य धारणा किये व्याते पीतवास्वर धारणा किये महा तेजस्वी जगत्यति विष्णु भगवान् नहिं पर भाषे॥ १६॥

ब्रह्मणकं स समागम्य तत्र तस्यं समाहितः।
तपस्ववनसः सर्वं सममिश्स्य संस्तः॥ १७॥
जव विष्णु भगवान् ब्रह्मा जी के मिल कर उनके पास बैठे तव देवताओं ने वहीं नजःता के साथ उनकी स्तुति की श्रांवे बोले || १७॥

त्वां नियोश्वायामेव विष्णो लोकानां हितकार्यो।
रात्रो दर्शनरथ्य तम्योपाचारिते: प्रभोः॥ १८॥
पर्यक्षायन्त्रवदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
तस्य भार्यसु तिम्रस्य होश्यकीर्त्यपमासु च॥ १९॥
पद्मारङ्ग: सर्गः । ९२३।।

विष्णो पुनर्वमागच्छ कुट्टास्स्तमानं चतुर्विधम् ।
ततः त्यं मातुरो भूता मद्वदं लेककण्ठकम् ॥ २० ॥
अस्यं द्रव्यर्विष्णो समरे जहि रावणस् ।
स ति देवानसगमन्धवनिभ्निद्राश्च मुनिसत्वसान् ॥ २१ ॥
रासःैव रावणो मूल्यं वीयेिल्लेकेन नाथते ।
ऋष्पच्छु तत्सतिन गन्धर्वायपवरसस्त्था ॥ २२ ॥

हम लोग ध्याय सव की भलाई के लिये यह प्राच्यतन करत है कि ध्याय धर्मायमा, द्रव्यो ध्याय धर्मायमा ध्रुविक ध्रुविक ध्रव्यवाच्याधिपति महाराज दुशरथ की गी क्री और क्री के तमान तीन ध्रुवों में प्रपने चार ध्रुवों से पुष्माय स्वीकार करें। ध्याय मन्य शरीर)धारण कर, महा ध्रुविक लोककारक उस रावण की, जो हम (द्रव्याभों) से मी प्राच्यतन है, तुडं में परास्त करज। क्योंकि वह मुर्ल राणम रावण द्रव्यता, गन्धर्व, ध्रुव और मुनियों को प्रपने वल से बहुत सताता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

क्रीडान्तो नन्दनवने कृर्षण किल हिसिताः।
वधारं वधायातालस्य मनुमिशिः सह ॥ २३ ॥

देविये, उस हुए ने (द्रु ने) नन्दनवन नामक उद्यान में क्रीडा करते हुए भ्रान्त गन्धर्वों तथा प्रस्तराओं का मार डाला।
फ्लोका सरच्ये के लिये, हम यहां मुनियों सहित प्राये हैं ॥ २३ ॥

सिद्धगंधर्वभ्रष्टम तत्सत्वां शरणं गता:।
लत्त गति: परमादेव सर्वपानं न: परस्तप ॥ २४ ॥
हम सिद्ध, गन्धर्व और यत्राः सहित प्राप्ते शर्मा में आये हैं।
हे देव! हमारी श्रोत्र तो भ्राप ही तक है॥ २४॥

वधाय देवश्रुतानां नृणां लोके मनः कुर्यः
एवसूक्तस्तु देवश्रुते विष्णुविद्येशपुजनः॥ २५॥

प्रतः भ्राप देवश्रुताओं के गद्रु रावण का वक्त करने के लिये
मनुष्यलोक में भ्रापकों हुजिये। इस प्रकार देवश्रुताओं ने भगवान
विष्णु की स्तुति की॥ २५॥

पितायहुपुरोगस्तनपर्वतेऽकृष्णमस्तुकः
अन्तःवृद्धाशानस्यमेतान्यर्थसंहिताया॥ २६॥

सर्वोत्थनों से नमस्कार किये जाने वाले अधीनत हरूपूय स्वग-
वान हुजिये, गद्रु भ्राप हुए प्रकरित व्रजाधि देवश्रुताओं से यह
कहा॥ २५॥

भयं त्यजत मद्यं देव हितार्थं युद्धि रावणम्।
सपुष्पपौर्वं सामायं समित्रतत्वतिर्थनम्॥ २७॥

हत्वा कूर्तु दुरात्मानं देवपिरुण्य भयावहः।
दश वर्षसहस्त्राणि दश वर्षशतानि च।

बत्स्यामि मातुपे लोके पालयनुष्ठिविमिनाम्॥ २८॥

हे देवश्रुताः। तुमारा मद्य है। हे भ्राप मद्य है। तुम्हारे
हित के लिये में रावण से लहँगा। में पुत्र, पौत्र, मनि, थ्रिया,
जाति वालों तथा कत्यु व्याब्व कहिये, उस कुर्तु, हुए और
देवश्रुताओं तथा सूक्ष्मेऽं के लिये मयप्रद रावण को मार खोर ग्यारह
हज़ार वर्ष तक मनुष्यलोक में रह कर, इस पुष्पिको का पालन
करँगा॥ २७॥ २८॥
पञ्जाबरः सर्गः

एवं दत्ता वरं देवा देवानां विप्रुरात्मवान्।
मानुपे चित्तायमास जन्ममूर्मिमथात्मनः। ॥ २९ ॥

इस प्रकार भगवानु विप्रु देवताओऽयों के वर्द्राण दे अपने जन्म लेने यथाय मनुष्यजीव मध्य स्थान राखने लगे। ॥ २५ ॥

ततः पञ्जापलाश्राशः कुत्तास्तमां चतुर्विधम्।
पितरं राज्यामास तदा दानरथं दृष्टम्। ॥ ३० ॥

कमलनन्दन भगवानु विप्रु ने अपने चार शरों के महाराज द्रवरण के अपना पिता बनाना, प्रत्यालं उनकी गर में जन्म लेना प्रसंज्ञ निया। ॥ ३० ॥

ततो देवरपिण्यन्तर्वः सर्वः साप्सरोगणाः।
स्तुतितिनिर्देश्युत्पापाभिसुतुष्टिुर्द्वृद्धुद्रुदनम्। ॥ ३१ ॥

तथा देवर्पीं, गंभर्व, कद, अपस्वरागः—इन सव ने मधुरुद्वर भगवानू की स्तुति कर, उनको मन्तुए निया। ॥ ३१ ॥

तस्माद रावणमूलेजनसं
पद्धतदार्थ तिर्जयोश्वरदेितिपम्।
निरावरण साधु तपस्विकण्ठकं
तपस्विनायुद्वरः भगवाह्रम्। ॥ ३२ ॥

तमेव दत्ता सवरं सवर्गः
निरावरण रावणमूलेजनसं
स्वरूपम्यागच्छ गतक्ष्यर्तिरं
सुप्रेम्यादार्थ साप्सरोगणाः। ॥ ३२ ॥

इति पञ्जाबरः सर्गः। ॥
बालकायदे

श्रीर कहा, हे प्रभो ! इस उद्यूष, वड़े तेजस्वी, अत्यन्त ग्रहणारी, देवताध्य ने सृष्टि लोकों के रूपाने वाले, साधु तपस्वियों के सताने वाले श्रीर सत्यदत्ता रावण के, नाथ कीजिए। उस लोकों के रूपाने वाले श्रीर उग्रपत्रार्धी रावण का भंधु, वानव्र तथा सेना सहित मार कर श्रीर संसार के दुःख का दूर कर, इन्द्रपालित तथा पाप एवं हेप्षुअन्य लघु में पधारिये॥ ३२ ॥ ३२ ॥

बालकायद का पद्धर्वाँ सर्ग समाप्त हुआ।

---**---

षोडश: सर्गः

---**---

ततो नारायणो देवो नियुक्तः सृष्टिमः।
जाननन्दि सुरानेवं श्रुत्तक्ष्णं वचनमात्रवीत्॥ १ ॥

देवताध्यों की स्तुति छून, सब जानने वाले साधु रावण नारायणो, देवताध्यों के समानार्थ यह मधुर वचन बेले॥ १ ॥

उपायः के वध तथा राक्षसाधिपते: सुराः।
यमहं तं समास्थ्य निहृत्यामृतक्रिकण्टकस्तु॥ २ ॥

हे देवताध्यों ! यह तो वलत्तोषो कि, उस राज्यों के राजा श्रीर घुनीतों के केतक के हम किस उपाय से मारें । ॥ २ ॥

एवभुत्ताः सुराः सर्वं मत्युन्धर्विष्णुवन्यनुसरः।
सातूरी तन्त्रस्थाय रावणं जहि संयुगे॥ ३ ॥

यह छून देवताध्यों ने ध्वन्य विष्णु से कहा—मन्यय रूप में
प्रवतीर्ण हो, रावण के युद्ध में मारिये ॥ ३ ॥
स हि तेने तपस्वीं दीर्घकालमरिन्द्रम ।
येन तुष्टेवरदद्वाहा लोककुल्लेक्षणुनित्तिम्॥४॥
हे प्रारिन्द्रम । उमने वहुः दिनं तक कठोर तप कर लोककर्ता
श्रेय लोककृषित्व तबा का प्रसन किया ॥ ४ ॥
संतुष्टं मद्धं तस्मि राक्षसाय वरं मृह ।
नानाविनिधेभ्यो सूतेभ्या भयं नान्यत्र मातुपात ॥ ५ ॥
तव बन्धुने प्रसन्न है उस रात्रि का वह वर दिया कि, मनुष्य के
सिवाय हमारी खुशी के किती भी जीव के मारे हम न मरींगे ॥ ५ ॥,
अवज्ञाता: पुरा तेन वरदानेन मानवः ।
एवं पितामहास्वातं प्राप्य स दर्पितः॥ ६ ॥
वह मनुष्य की तुच्च समभाता था। प्रत: उसने मनुष्यों से प्रभाव
दु:ना न मोगा । प्रह्लाद जी के वर वे वह गवित हो गया ॥ ६ ॥
उत्साधयति लोकांत्रीन्द्रयङ्गास्यपकर्षति ।
तस्मात्सर्व नभेय द्विग्रे मातुकेभ्यं प्रन्तप ॥ ७ ॥
इस समय वह तीनों लोकों के उजाड़त है स्मृति स्मृति की
पकड़ कर ले जाता है, प्रत्यह वह मनुष्य के लाभ ही से मर
सकता है ॥ ७ ॥
महेत्त्वर्चन भुत्त्व सुराणां विश्वासत्वाय ।
- पितां रामायामास तदा द्वारारथं नृपम ॥ ८ ॥
पुत्र नावाः जो इन वातों के द्रुत भगवान् विष्णु ने महाराज
दृश्याय का प्रथमा पिता बनाना परस्पर किया ॥ ८ ॥

वाण रा०—६
स चाप्यपुत्रो उपजितस्मिन्काले महाधूलिः।
अयजतपुत्रायामिषि पुत्रेयपुरस्वरिस्युद्दनः॥ ९ ॥

उस्सी समय भुज्यीन, महाधूलिमान, श्रमुखता महाराज दृश्यत के पुज्यप्राप्ति के लिए पुजेप्रियता करता दार्शन किया ॥ ६ ॥

स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्यच भिष्मसहृदयोऽन्तर्यां गतो देवेऽपुज्यसानो महापिष्ठः॥ १०॥

इस प्रकार महाराज दृश्यत के घर में जम्मू लेने का निश्चय कर और भ्राता जी के वातचीत कर समयान विष्णु वहाँ से अन्तर्यां हो गये ॥ १० ॥

ततो वै भजनानस्य पावकादतुलक्षणः।
प्रद्युभूतं महाभूतं महावीरं महानवम्॥ ११॥

कृष्णं रक्षामवर्धरं रक्षासं दुन्दुभिसिन्नम।
स्त्रियाभरस्तुतुज्ञमशुभंवर्मूःपुर्वसं ॥ १२॥

शुभक्षणसिंहं दिव्याभरणघृपितम।
शैलभृत्रसुस्त्रे दनाङ्गारूढविक्रमम्॥ १३॥

दिवाकरसमाकारं दीपतान्त्रशिक्षोपमम।
तस्मृणां राजवीरविरच्छदाम॥ १४॥

दिव्यपायससङ्गिनं पात्रं श्रीरामत्मिश्रयाम।
महाशुश विपुः कोण्यं स्मायमायगीपिम्॥ १५॥

उधर महाराज दृश्यत के भारक्कुड़ के भार से महावली, अन्तुल प्रभा वाला, काले रंग का, लाल वह धारण किये हुए,
महाराज दुशर्य के पुत्रशिव यह में भक्ति से यह देव का प्रकट होकर महाराज को पायस देना
लाल रंग के मुँह वाला, नगाइं है समान शन्द करता हुआ; सिंह के
से ब्राम्हु जैसे राम श्रीर मु अऽ वाला, श्रम लज्जा से खुद, खुदर
आभूषण के धारण किये हुए, पर्वत के शिखर के समान लंबा,
सिंह जैसी चाल वाला, सुर्य के समान तेजस्वी, ओर प्रज्वलित तपस्वि
शिखर की तरह रुप वाला, दोनों हाथों में सेई ने के धाल में, जो
चंद्र ने ठहरने से इसका हुआ था, पली की तरह प्रिय ओर दिखा
लिये हुए, सुभूषण तुम्हा एक पुरुष निकला || ११ || १२ ||
१३ || १४ || १५ ||

समनेव श्रावणे विद्यावद्ध कृतिः

आज़ादत्व नरं विदिः मामिहाभ्यागत ध्रुप || १६ ||

वह महाराज दशारथ की ओर देख कर यह वेळा——“महाराज इ
में प्रजापति के पास से यहाँ ग्रामक हूँ || १६ ||

तत्ते परं तदा राजा प्रत्युवाच कृतान्तः

भगवन्नागत तेकस्तु किंवदं करवाणि ते || १७ ||

यह सुन महाराज दशारथ ने हाथ जोड़ कर कहा——भगवः
आपका में स्वागत करता हूँ कहिये, मेरे लिये क्या भाव है || १७||

अथो पुनर्दं वाक्यं प्रजापत्यो नरेशब्रीत्

राजनस्वयंत देवानं शास्त्रविदं लया || १८ ||

इस पर प्रजापति के मेरे उस मनुष्य ने फिर कहा——देवताओऽ
कृत पूजन करने से धार्मिक तुमको यह पदार्थ मिला है || १७ ||

इदं तु नरशार्तेश पायसं देवनिर्विन्दः

प्रजाकरं ग्रहणं तवं धन्यमारोपयःगर्नसमा || १९ ||
वालकांपदे

हें नरशार्दूल। यह देवताओं की बनाई हुई छीर है, जैसे सत्तान की देने वाली तथापि धन और पेशव्र की बढ़ाने वाली है। इसे धार्मिक जीवित है। २६॥

भार्त्ताणामनुख्याणामश्रीतैतित प्रच्छ वे।
तासु लवं दुःस्यस्य पुत्रान्यद्धर्म यजसे तुप। २०॥

भीर इसके अपने चर्चुरुष राणियों की खिलाई है। इसके प्रभाव से धार्मिक राणियों के पुत्र उत्पत्ति होने, जिसके लिए धार्मिक यह यह किया है। २०॥

तथये तित्तिः पौरि: गिरसा प्रतिविश्व तासस्।
पार्श्वी देवानांस्पूर्णा देवदत्तां लिङ्ग्यायुः। २१॥

इस बात की दुःख महाराज ने प्रस्तुत है, अब देवताओं की बनाई हुई भीर में छीर ले मरे खुशराज को ले अपने साथ चढ़ाया। २१॥

अभिवाच्च न तदस्मृतमेवं सिद्धश्रेष्ठस्मृ।
युद्ध परस्य युक्तकारार्यासंदर्शिनाम्। २२॥

तदन्तर इस अदृश्य एवं सिद्धश्रेष्ठ पुरुष का महाराज ने प्रस्तुत किया और परम प्रस्तुत है, उसकी परिक्रमा की। २२॥

ततो दश्यरथः प्रायः पायसं देवनिर्मितमुः।
चतुर्भूत परमप्रीतिः प्रायः विचलिकावधनः। २३॥

इस देवनिर्मित छीर को पा कर महाराज दश्यरथ उसी तरह प्रस्तुत हुए, जिस तरह कैसे निर्धारण मनुष्य धन पा कर परम प्रस्तुत होता है। २३॥
संवर्तित्वा तत्कस्म तत्रावृत्तं हृदय कर् ॥ २४ ॥

तत्सत: दुःखमेव भूत्व प्रसभासरम् ॥ २५ ॥

महाराज की रानियां भी यह खुल-संवाद में, शहीद कालीन चन्द्रमा की किरणों से प्राकृतिक भान्ति की भांति ( प्रसन्नता से ) खिल उठीं; प्रायोगिक गोमयमान हुईं ॥ २६ ॥

पायसं प्रतिगृहीत पुत्रीयं तिर्द्दात्मणः ॥ २७ ॥

महाराज कृशरथ रत्नवास में गये और महारानी कौशिका जो है यह बालैः "ले यह खौर है, इससे हुमके पुत्र की प्राप्ति हुईं ॥ २८ ॥

कौशिकायें नववति: पायसार्थं ददूः तदा ।
अर्थार्थं ददूः चापि सुभिमत्रायं नवाधिष्ठितः ॥ २९ ॥

तदन्तर महाराज दुःखरथ ने उस खौर में से आधी ते कौशिका जो के बालै बची हुई आधी में से आधी सुभिमत्रा की दीं ॥ २७ ॥

कैफक्केयं चावशिष्ठार्यं ददूः पुत्रार्थकारणात् ।
पद्दति चावशिष्ठार्यं पायसस्यास्तोपपमः ॥ २८ ॥
अनुचिन्त्य सुभिमत्रायें पुनरेव महीपतिः ।
एवं तासं ददूः राजा भार्यार्णं पायसं पुष्क्रः ॥ २९ ॥
कुल खोर का छात्र दिनागा देखते ही दिना प्रार देव
प्रमुतोष मैर का चित्र हुआ छात्रों भाग, कुत्ता नेककर किरू कुमिता की दे दिया। इस प्रकार महाराज ने अपनी रानियों को प्रलग प्रलग हिसाबे कर खीर बीटी। २२ २३

तास्त्रज्ञानाय माण्य नजनः गांवाचायः चिन्यः।
सम्मान में रे सर्वः प्रभृपरिनिचतेः ॥ २० ॥

उस खीर को ना कर, महाराज की छीनन्यादि मुद्रिते रानियों वहुत प्रसन्न हुई खीर प्रफने की वास्तव माण्यवती माना ॥ २० ॥

तत्सत्तुता तां माण्य तद्युज्ञमया
महीपत्तेन्द्रमायं पृथक्।
हृताशालादित्यसमानतेजस-
धिरेण गर्भान्वितपेदिरे तदा ॥ ३१ ॥

तदनंतर वन बुझ माणियों ने, महाराज की प्रलक्ष पृथक नी हुई खीर खा कर भास्मार खीर सेरे के समान तेज बाले नरम शीघ्र धारण किये ॥ ३२ ॥

तत्सत्तु राजा प्रसभीक्ष्य तां स्त्रियाः
प्रज्ञानन्दि: प्रतिदृष्ट्यायां ॥
विभवू हुत्या स्वरीदिवे धने हृरिः
खुसरेन्द्रसिद्धांगणामिस्लीजितः ॥ ३२ ॥

इति वेदाः सर्वः ॥
महाराज द्वारा भी अपनी रानियों के गर्वत्वी खीर प्रसन्न मनेरथ पूर्ण होता देख, उसी प्रकार प्रसन्न हुय, जिस प्रकार भगवान्
सतद्रशः सर्गः  

विषयं देवताः योर सिद्धों से पूजित हो, स्वर्ग में प्रस्थर होते हैं।॥ ३२ ॥

वालकागद का सेलहवर्ष सर्ग समाप्त हुआ।

—*-—

सतद्रशः सर्गः  

—१०—

पुनःतः तु गते विषयं राजस्तत्र महात्मनः।

उन्माच्च देवताः सर्वसिद्धमूर्य्यवाचानिदमु।॥ १॥

महात्मा महाराज द्रव्यस्य के वर में सभावन्तो विषयं के दुःख क्व थे से प्रवतीर्य होते देख, ग्रहा जो ने सव देवताः के कहा॥ १॥

सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वस्य नो हितैषिणः।

विषयं: सहायान्वलिनः सुजर्वः कामश्रुयिणः।॥ २॥

मायाविविद्य श्रुताः वायुवेगसमाज्ज्वे।

नयजान्वुद्रिद्वस्यवाचानिद्वकुल्यपरार्कम्।॥ २॥

अरस्त्रायूपायज्ञानिःसंहवननान्विताः।

सर्वस्त्रमुण्डसस्यवामतासाधनानिव।॥ ३॥

अप्सरस्ख च मुख्यासु गन्धवर्णाः तनूहु च।

किनरीणां च गान्धेषु वानरीणां तनूहु च।॥ ५॥

श्यामर्कन्यासु ऋसिविद्वाधरीसु च।

सुजातः हरिकुम्पेण पुत्रांस्तुल्यपरार्कम्।॥ ६॥

सत्यसंघः वीरं, ग्रहेत्र ग्रहं का हितं चाहने वाले: सभावन्त विषयं की सहायता के लिए तुम लोग भी वलवान, कामश्रुय (लैका वाहे
वैसा रूप बनाने वाले ) माया को जानने वाले, केवल में पवन तुल्य, नीतिज्ञ, वुद्रिमान, पराक्रम में विषय के ही समान, जिनके कोई मार न सके, उचमो, दित्य शरीर वाले, ध्यान विधार में निपुण और देवताओं के सहुल वालों का, धर्मस्ताचार्यों, गार्हस्त्य की खियों, और यज्ञों तथा नागों की कन्याओं, ज्ञातियों, विचारधारियों, किन्नरियों और वानरियों से उत्पन्न करे। ॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ॥

पूर्वेश तथा छठो जास्ववान्तुर्सुपङ्जः ।

जृष्णमण्डस्य सहसा मम वर्गाद्राद्यायत ॥ ७॥

मैये भी पल्ले क्षुद्राओं में श्रेष्ठ जास्ववाने नामक रीढ़ का पृथ्वी किया था, वह जमुहाई लेते समय मेरे तुःक से सहसा निकल पड़ा था। ॥ ७॥

ते तथोऽत्त भगवता तत्पतिष्ठर्थ्य शासनम् ।

जन्यायामातिरते ते पुत्रानवाणरकृष्णः ॥ ८॥

ऊपशंश महदात्मणं सिद्धविध्वाचरोह्वरणः ।

चारणाश्च सुतानवारससुजुर्वनचारणः ॥ ९॥

इशा जी के इतु आज्ञानुसार, चुड़ैं, सिद्दों, चारणों, विचारधारियों और नागों ने वानर रूप पुछे की उत्पत्र किया ॥ १०॥ ६॥

वानरन्तः महेन्द्राधिमिन्द्रो वाळिनमूर्जितम् ।

सुग्रीवं जन्यायास तपनस्तपतां वरः ॥ १०॥

वृहस्पतिस्त्वजनयन्तां नाम महाराजीः ।

सर्ववानरपुख्यानां बुद्धिमत्तनित्याम् ॥ ११॥
धनदस्य सुतः श्रीमान्तानरो गन्धमादनः।
विश्वकर्मा त्वजनयवर्गः नाम महाहरिम्। १२॥
पारकस्य सुतः श्रीमान्तालोकित्रियस्माभः।
तेजसा यशसा चीर्दित्यरिच्यत वानरानः। १२॥
स्य्यद्रविणाशंपन्नावशिच्यनाः रूपसंयोगः।
मैनः च द्विविधं चेव जनयामासस्तुः स्वयम्। १४॥
वरुणो जनयामास िसुःरिण नाम वानरस्यः।
शरमं जनयामास पर्जन्यस्तु महावर्षम्। १५॥
मार्गस्यात्मजः श्रीमान्हुसुमाननाम वानरः।
वज्रसंहननापेतो वैनतेयस्मो जवे। १६॥

इन्द्र ने महेन्द्राचल की तरह वालिका, चूर्ण ने चुन्नीक, भुजस्वति ने
तार, जो सभी वानरों में सुख्य ध्रोि यात्रि चतुर था, कुआरे ने गन्ध-
मादन, विभक्तमा ने नल, ग्रांि ने नील जो ध्रोि के समान
ही तेजस्वी था तथा यश ध्रोि पुराक में जो घरपीता था नी से बढ़
कर था; ध्रोिकृष्णारी ने मैनः ध्रोि द्विविधः, वरुण ने सुबेश, वेद
ने शरम ध्रोि पवन ने हनुमान नामक वानर उज्जवल किया।
इन्द्र ने भुद व्रज के समान द्रढ़ थी ध्रोि यह वेद में गहन्दः के समान
ग्रे। १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥ १६॥

सर्ववानसमुख्येपु शुद्धिमान्तलवानिपिः।
ते स्मा वहुसाहस्सा द्वाग्रीववधे रता:। १७॥
हनुमान जी उद्दित धीरे पराक्रम में क्षण सब वानरों से चढ़ बढ़ कर थे। इनके श्राद्धिक हृदार धीरे भी वंद्र, रावण के वाले, के लिये उत्पन्न किये गये। 17।

अपमेयवर्दा दीरा विक्रान्ता: कामस्पर्श।

tे गजाचलसंकाशा वुप्पान्तो सहाचारा: 18।

जितने वानर उत्पन्न हुए वे सब के सब प्रत्यक्ष चलवान, स्वेच्छाचारी, गन धीरे शूघराकार शरीर वाले हुए। 18।

ऋषयारनगुप्तचा: शिमपेवार्किज़िरे।

यस्य देवस्य यदुपुर्व वेषो यश पराक्रम: 19।

अजायत समस्तेन तस्य तस्य खुलत: पृथक्।

गोलाब्युलोलेशा: चेततत्त्वकिरमं। 20।

रीं, वंद्र, लंगुर सब ऐसे ही थे। जिस देवता का जैसा हुए, वेष व पराक्रम था, उनके अलग अलग वेष ऐसे वेष ही पुढ भी हुए—वलि इन तेमनां में विशेष पराक्रम हुए। 16। 20।

ऋषीष्टि च तथा जाता वानरां: किनरीष्टि च।

dेवा महर्षिनगर्वास्ताक्षर्या यक्षा यज्ञालिनः। 21।

नागाः किपुशालेव्व सिद्धविचारोरेगा:।

वह्वो जनयामासुरह्ष्टास्त्र सहस्रः। 22।

इनमें से कोई तो लंगुरीतों म सो कोई रूढितियां से, धीरे कोई, किर्तिनियों से अत्यन्त उत्पन्न हुआ। यहाँ देवता, ऋषि, गन्धर, वर्ग, यज्ञ, नाग, किर्तिविचार ग्रामदि ने हुज्जारों हुए पुढ उत्पन्न किये। 21। 22।
वानरानसुमहाकायानस्वाने वनचारिणः।
सिद्धशालूकसद्धा दर्पण च चलेन च॥ २३॥
यो सव वानर वदे भारी डोल डोल के ये श्रीर दर्प तथा वल
से शिंह श्रीर शार्दूल के नमण ये॥ २३॥
शिलाग्रहणः सवः सवः पादपणेरिणः।
नवद्रुपशुः सवः सवः सर्वस्त्रवकोविदः॥ २४॥
सव के सव शिलाभ, पर्वतो, नकों श्रीर दूरो से प्रहार करने
वाले तथा सव बच्चों के चलाने में परिवत ये॥ २४॥
विचालयेयः श्रीनद्रान्तेर्षयेयः स्त्रियानुभुमानः।
सामिहेयुः बृहं समुद्र सरितां पतिम्॥ २५॥
ये लोग वदे चों पर्वतों का हिला देने वाले, वदे वदे जमे हुए
पेड़ों के उल्लास देने वाले, श्रीर अपने बेग से समुद्र की भी
विचालित करने वाले ये॥ २५॥
दायेयः सतित द्रचामाधुकुद्रहारिनयः।
नमस्त्रल्य विशेयुः शुभीयुः तोयद्रान्॥ २६॥
ये अपने पौर के प्रहार से पृथिवी की फोड़ने वाले, समुद्र के
पार जाने वाले, श्राकाश में उड़ने वाले, श्रीर वालों की भी
फक्कने वाले ये॥ २६॥
शुभीयुः मात्रज्ञान्यत्रभान्यजनो बने।।
नर्द्मानाथ नादेन पादेयुर्विहर्भ्यमान॥ २७॥
ये वानर, जंगलों में घूमने वाले, मदमस्त हाथियों की पकड़ने
वाले, श्रीर किलकारी मार कर, श्राकाश में उड़ते हुए पतियों का
गिराने की सामर्थ रखने वाले ये॥ २७॥
इद्दशानां प्रस्तुतानि हरीणां कामश्रिप्रिपाः।
शर्तं शतसहस्राणि यथपानां महात्मनाम्। ॥ २८॥
इस प्रकार कामश्रीचारों की उत्पत्ति हुई। वे ऐसे महावती
लाखों चारों के युद्ध के यथार्थ प्रवृत्त हुए। ॥ २५॥
ते मध्ये युथशुप हरीणां हरिगृह्यापाः।
वसूलुर्दुध्वमाणां बीरांजान्यनन्दन्हरीः। ॥ २९॥
इन प्रथम युथों से अनेकों बीर यथार्थक्रिया युद्ध उत्पन्न
हुए। ॥ ३६॥
अन्ये कुशायत्वः प्रस्थानुपत्तस्यः सहस्रः।
अन्ये नानाविविधायश्लेषानेति कान्तानि च। ॥ ३०॥
इनमें हरीणां युद्ध के शिक्षकों पर शीर्ष शाश्वत युद्ध
जगह जगह समक्ष करने और युद्ध में वस्त्र लगे। ॥ ३०॥
सुर्यपुत्रं च सुमीरं श्रक्रुण्डं च वाहिनिम्।
प्राताराज्यपत्तस्य सर्व एव हरिवर्ताः। ॥ ३१॥
सुर्यपुत्र सुमीर और श्रक्रुण्ड वाहिनी, इन दोनों भाष्यों के पास
वे सब युद्ध रहने लगे। ॥ ३१॥
नलं नीलं हस्यानुपत्तन्यांश हरिगृह्यापाः।
ते तार्थवस्त्रस्पन्नाः सर्वं युद्धविशारदाः। ॥ ३२॥
और वहुतों ने नल, नील, हस्यानुपत्तन और अन्य युद्धहस्तियों
का सहारा लिया। वे सब गद्दे के समान जलवान और युद्ध में
कुशण थे। ॥ ३२॥
विचरन्तोद्धयन्तरक्षितं श्वसनमहस्तोगाः।
तांश सर्वं महावाहवाहों विपुलचिक्रमः। ॥ ३३॥
चुगाप भूजवीर्यन ज्ञासगोपुच्छवानरान्।
तैनिथ पृथिवी शृः सप्रत्वतंत्रान्नार्था।
कृणः विविधसंयुत्त्वांनानान्युक्तानन्दश्रृणः॥ ३४॥

वे सब चार चाहते हुए लिख लिख श्रीर छोटे के सी चर्म
करने लगे। महावली श्रीर महावाण्ड चाली फपने विपुल विकम
श्रीर फपने भूजवीर्यन के बल से बन्दर बीजा श्रीर लंगूरों का व्यापक
करने लगा। उन शृःश्रृः श्रृः श्रृः श्रृः, जिनके विविध प्रकार के रूप
रंग थे, पर्वत, वन, लंगूर श्रीर पृथिवी के अनेक स्थान परिपूर्ण
हो गये॥ ३३॥ ३४॥

तैम्याधर्मन्दाचलकृतिलयः
महार्लिंगानिवयथपारः।
चूः भूमीमार्गार्यः।
समाप्तता रामसहायताहेता॥ ३५॥

इति वस्तुः सम्परं॥
मेघों तर वर्षों के समान भीम श्रीर चाले महावली जो
युयुप बन्दर श्री्रामचंद्र जो को लहायता के लिये उत्तर हुए थे,
उनके सारी पृथिवी मर गया॥ ३५॥ नालकास्थ दा दक्षिणी सम्र पूरा हुआ।

अष्टादः सम्परं:

निर्देशें हु करती तस्मिन्द्रयमेवे महात्मनः।
प्रतियुप्रण पुरा भागान्तिजयर्यथाऽधातम्॥ १॥
महाराज दशरथ का भ्रमण यज्ञ समाप्त होने पर देवता भ्रपना भ्रपना मान लेकर भ्रपने भ्रपने स्थानों की चले गये। १

समासदीशानियमः पञ्चगणसमन्वितः।

प्रवेश पुरी राजा समृत्ववर्लवाहन्। २

महाराज भी यज्ञदीर्घा के नियमों को समाप्त कर रानियों, सेवकों, सेना और वाहनों सहित राजधानी में चले गये। २

यथाहै पूज्यतात्सेतेन राजा वै पृथ्वीश्वराः।

मुदिताः प्रयंदेशान्नमण्ये सुनिमुद्वचस्। ३

वाहिन से व्योति में ग्रहे हुप राजा भी यथोत्पात रूप्या सत्ता

विशिष्ट जी की प्रायाम कर, सहर्ष भ्रपने भ्रपने देशों

की लौट गये। ३

श्रीमतां गच्छतां तेन्यां स्थपुराणि पुराचतः।

वल्लानि राजां श्रुताणि महाशानि चकाशिरे। ४

वहाँ से भ्रपने नगरों की राजाओं के जाने पर उन राजाओं की

सेनाँ नाना प्रकार के भूषण वचादि पा कर शीर्ष प्रकार है,

प्रवेशा से भ्रपने भ्रपने पुरों के विदा हुई। ४

गतेशु पृथ्वीश्चपु राजा दशरथस्त्रदा।

प्रवेश पुरी श्रीमानपुरस्य कल्य दिजोचाचन। ५

सब राजाओं के बिदा हो जाने के बाद महाराज दशरथ ने

श्रीमु ब्राह्मणों को ग्रामे कर पुरी में प्रवेश किया। ५

शान्त्या प्रयोग सार्थशृष्टिमृगं शुपृजितः।

अन्नवीयमाने राजस्थान सांयायाणे श्रीमता। ६
चुंबंदकुमार भी अपनी पत्नी शान्ता सहित महाराज से बिदा होता दिखाई पड़ता है। महाराज उसकी पुत्राचार्य के लिए कुछ दूर तक उसकी साथ गये।

एवं विस्मृत्य तान्त्रिकार्ध सम्पूर्णामानसः।
उवास तुहितस्त्र नुक्त्रोपनि विचिन्तमेन्। ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन सब को बिदा कर महाराज दूर्योग सफल मनोरथ हो, सत्तानीति की प्रति चर्चा करते हुए रहने लगे। ॥ ७ ॥

तता यह जग मपाते तु रत्नां पत्र सम्पलयुः।
तत्तथ ढाक्षे मासे चेत्रे नागिनी स्तिः। ॥ ८ ॥

यह होते के दिन से जब ब्रह्मण वीर्य चुनां और वार्षिकों गुणों लगा, तब वेद मान की नवमी तिथि की। ॥ ९ ॥

नक्षत्रेणहमित्रत्वमेव स्वाच्छसरस्थेपु पश्चा।
श्रेयं तस्कर्ते लघु वाचपतासिन्धुना सह। ॥ १० ॥

पुनःचुंबकुमार में चर्बु, महान, शानि, बुद्धिपति और श्रुति के उद्वक्ताओं में मात्र होते पर ग्राम्यं कमशः, मेघ, मकर, तुला, कर्क, चौंग मान राष्ट्रियों में आने पर, जो जब चतुर्भूमि वृद्धिपति के साथ हो गये, तब ज्ञान तंत्र के उद्वय होते ही। ॥ ११ ॥

श्रोधयाः जगन्नाथाय सर्वदेकात्मस्तुत्सूः।
कौसल्याः वझन्याय दिव्यहस्वरणस्यस्युः। ॥ १२ ॥

सर्वकथा, जगत् के खासी दिव्य लोकों से बुक श्रीरामचन्द्र जी का जन्म कौशल्या जी के गर्म से हुआ। ॥ १२ ॥
विष्णुर्वर्ण महाभाग पुत्रमेश्वर्ध्वजयनम् ।
कौसल्या गुहुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा ॥ ११ ॥
यथा वरेण देवानामदितिर्जपाणिना ।
भरतेन नाम कैकेय्यां जने सत्यपराक्रमः ॥ १२ ॥

इत्यादि वंश क्रो बदलने वाले विष्णु संगमान का आया भाग
कौशल्या के गर्भ से पुत्र रुप में उत्पन्न हुआ। इस आयतन तेजस्वी
पुत्र के उत्पत्त होने पर कौशल्या जी की बेटी ही शोभा हुई, जैसे
कि, देवताओं के नरदेव से हुं द्वारा प्रभुत्व की हुई थी। सत्य
पराक्रमी भरत कैकेय के गर्भ से उत्पत्त हुए ॥ ११ ॥ १२ ॥

साष्ट्राक्षणोशतुर्गी: सभाः समुदितो गुणेः ।
अथ लक्ष्यणालयु मुहित्राजनयत्सुति ॥ १३ ॥

भरत जी विष्णु संगमान का चतुर्ष्राण थे और तव गुणं
से युक्त थे। अरुणा के गर्भ से लक्ष्मण और श्रीकृष्ण उत्पत्त
हुए ॥ १३ ॥

सर्वास्त्राकशलो भीरी विष्णुर्वर्षसमन्निती ।
पुष्पे जात्रसं भरतो मीनणी प्रसन्नयोः ॥ १४ ॥

वे तव द्वारा विष्णु के सर्वास्त्राक थे और सर्व प्रकार के श्रुति
क्षाण की विधा में कुशल शुरुवार थे। पुष्प न्याय और मीन
लक्षण में, खडा प्रसन्न रहने वाले भरत जी का जब्त हुआ ॥ १४ ॥

सार्व नाती च सौभिर्युलिगायुदिते रथौ ।
राजः पुत्रा महाभाष्यतत्तव्यो जन्मे पृथक् ॥ १५ ॥
श्चलं नत्र श्रीर कर्ण नाश में, खुर्ददृष्ट्र के समय जलमग्न
प्रशुभुन का जन्म हुआ। महाराज के चारों पूर्व पूर्वक् पूर्वक् गुणों
वाले पैदा हुए। १४||

गुणवत्तोरुतुपाय रच्या प्रत्यवेदापमाः।
जगुः कलं च गन्धर्व नन्तुद्वापरोगणा॥ १६॥

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पश्चार्थि खाण्च्युता।
उत्तसवक्ष महानासोद्योध्यायां जनाकुला॥ १७॥

चारों पूर्व गुरावान छोर पूर्वा व उत्तरा महाराज के तुल्य
कान्ति युक्त थे। इनके जन्म के समय गन्धर् ने मधुर गान किया,
चंसारेय नाची, दंवताओं ने बजें चंसारे सूर बाजाय, छोर छाख्या से पुष्पों
को चर्चा हुई। इस प्रकार ध्रुपन्था में बड़ी धुरूघम से ऊपर
हरा छोर लेगी को बड़ी भीड़ हुई। १६॥ १७॥

रायथाय जनानंदाय नतन्तकुलादः॥

गायनं धर्षिरविधयो बादकृष्ट तथाभयं॥ १८॥

ध्रुपन्था में घर घर छान्दो को व्याध्याय बजाई लंगी। गली कूचों
में जिभर देवो उत्थर लेगों की भीड़ लंगी हुई थी। छोर वेघो, नट
नटी गादिस्ता बजा रहीं थीं। १८॥

मदेयांच ढौं राजा सूतमागमधवन्दिनास्॥

महायणेम्यो ढौं बिच गाधनानि सहस्राद॥ १९॥

इस उद्यव में महाराज दुर्गन्ध ने खूत, सामग्र छोर बन्दीरणा
के परितापिक यानी "सिरोधा" छोर महायणों की धन छोर बहुत
ही नैरुचि दीं। १९॥

अत्रैत्येनाद्वारां तु नामकर्म तथानन्दरूतः।

ज्वेष्ठ राम महात्मान्य भरतं कैक्रपीयसूतम्॥ २०॥

चा० सा०—१०
वालकायदे

बारहवें दिन चारों शिष्यों का नाम-करण संस्कार किया गया। सब से बड़े प्रथम कौशल्याधार-वर्धन का नाम श्रीरामचंद्र श्रौर कैकेयी के पुत्र का नाम भरत रखा गया। || २० ||

सौभिंत्री रुक्मण्यमिति श्रुतुमुर्मपरं तथा।
वसिष्ठ्य परमपीती नामानि कृतांवास्तदा। || २१ ||

सुभिंत्रा जी के पुत्रों का नाम लक्ष्मण श्रौर श्रुतुमुर्म रखा गया।
यह नाम-करण संस्कार बड़े हर्ष के साथ वसिष्ठ जी ने किया। || २१ ||

ब्राह्मणन्भोजधार्यमास पौरजनपदानपि।
अद्दृढ़ब्राह्मणानां च रत्नायपरमितं बहु। || २२ ||

इस दिन पूर्ववासियों के बीए बाहिर से ब्राह्मणों हुए ब्राह्मणों
के महाराज ने भेजा कराये श्रौर ब्राह्मणों के बहुत से रूह
बंदे। || २२ ||

तेषां जन्मक्रियादृढ़िनि सर्वकारण्यकार्यतृः।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामेव रतिकरः पितुः। || २३ ||

इन सब बालकों के जातकर्म, श्रीरामन्वादि संस्कार महाराज
ने यथासमय करवाये। इन चारों में कुल की पताका के समान
श्रीरामचंद्र प्रपने पिता दृश्यरथ के प्रत्यंत प्यारे थे। || २३ ||

बहुव शूरो भूतानां स्वर्यंभूरिष संपतः।
सर्वेऽद्विद्व शुराः सर्वेऽलक्ष्मिने रताः। || २४ ||

यही नहीं, वसिष्ठ जी की तरह सब लोगों के प्रेमास्पदों
थे। चारों राजधर्म। बेद के जानने चाले, शुर श्रौर सब लोगों
के हितेषी थे। || २४ ||
भ्राद्या: सर्ग: १४३

सर्वे ज्ञानोपसंपन्नपनां सर्वे समुदिता गुणे: ।
तेपामपि महत्तेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ २५ ॥

हयांपि सव राजकुमार परम हानी श्रीर नवंगुला सम्पन्न थे।
तथांपि उनमें महातेजली श्रीर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी ॥ २५॥

इंग: सर्वस्य लोकस्य शायफळ इव निर्मलः ।
गजस्कन्धङ्गस्वपुर्दे च रथचर्यातु संस्ततः ॥ २६ ॥

निर्मल चन्द्रमा की तरह सव के न्यारे थे। उनकी हाथी के
कंधे पर श्रीर बेहड़े को पीठ पर तथा रथ पर बैठना बहुत पसंद था।
श्रीरांत हाथी, बेहड़ा श्रीर रथ लख्य हाँकने का श्रोत था ॥ २५॥

भनुवेदि च निरंत: पितुषुभृपणे रतः ।
वाल्याल्पभृति खसिनाथे लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्यन: ॥ २७॥

रामस्य लेकरामस्य भ्रातुर्यथ्युस्य निल्यवः ।
सौरविश्वसरस्य रामस्यापि शरीरः ॥ २८ ॥

वे बघुर्निविद्या में निरुष थे श्रीर और सदा पिता की सेवा में लगे
रहते थे। लक्ष्मण के बढ़ने वाले लक्ष्मण जी लक्ष्मीन नी से अपने
लोकहिंदुथो अथवा लोकासिनाम लोक श्राता श्रीरामचन्द्र जी की
आदा में सदा रहते थे और श्रीरामचन्द्र जी के अपने शरीर से
बढ़ कर चाहते थे ॥ २५ ॥ २५॥

लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्तो वाहिर्माण इवापरः ।
न च तेन विना निद्रां नभस्ते पुरुषोत्तमः ॥ २९ ॥
मृगपत्नयुपानीतमश्शाति न ति तव विना ।
यदा हि इमामहो मुग्या यति रायवः ॥ ३० ॥
बालनाथे

लज्जा से सम्पत्त लज्जा जो की श्रीरामचंद्र जी अपना दूसरा भाव ही मानते थे श्रीर इतना चाहते थे कि, विना उनके-अंगे से तैयार न कोई मिठाई ही खाते थे । जब श्रीरामचंद्र जी बेड़े पर सवार हो कर शिकार खेलने जाते ॥ २६ ॥ ३० ॥

तदैव पृष्ठोक्षेपम्यति सत्रुषः परिप्रालयनः ।
भरतस्यापि श्रुत्वे लक्ष्मणावर्जो हि सः ॥ ३१ ॥

पाणि: स्मितरो नित्यं तत्स्य चासिन्यथा पियः ।
स चतुर्भिरपाणिमायः पुत्रेद्विजरथः मियेः: ॥ ३२ ॥

तव लज्जा जी बलुप हाथ में ले उनके पैरों पैरों ही लिया करते थे । सरत जी को भी श्रुत्वे उसी प्रकार भाषाये के समान ग्यो थे, जिस प्रकार श्रीरामचंद्र जी की लज्जा । इन चारों महामायाशाली पुत्रों से महाराज दुर्गवधः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वभूत परमर्थीतो वेदेषरि रितामहः ।
ते यदा ज्ञानसंपन्ना: सर्वे समुद्रिता गुणः: ॥ ३३ ॥

वैसे ही प्रसन्न रहते थे जैसे चारों बेटों से ब्रह्मा जो । उन चारों ज्ञानी, सब शुभायों से युक्त ॥ ३३ ॥

हीमन्तः कीर्तिमन्तोः सर्वः दीर्घदृषिनिः ।
तेषामेवमभावानां सर्वः दीपतेजसाम् ॥ ३४ ॥

जज्ञासु, कीर्तिमन्त, सर्वः, दृष्टर्शी पुत्रों का प्रभाव व तेजः देख, ॥ ३४ ॥

पिता दशरथो हृषो ब्रह्मा लेकाचित्वे यथा ।
ते चापि महुजन्याप्रि वैदिकाध्ययने रता: ॥ ३५ ॥
उनके पिता महाराज दृशरथ वैसे ही प्रस्तुत होते थे जैसे ग्रहों जो लेकपालों से अथवा विनक्षालों से । वे चारों पुरुषसिंह रोज़कुमार वेदाध्यक्ष में निरंतर रहते थे ॥ ३५ ॥ ।

विद्युश्रूपणारः घनुरङ्गे च निन्दिताः ।
अथ राजा दृशरथस्तैषु दारक्रियां प्रति ॥ ३६ ॥

चिन्तयामास धर्मात्मा सपाच्याः सवान्वयः ।
तस्य चिन्तयात्मानस्य मन्त्रमद्ये महालनम् ॥ ३७ ॥
अभ्यंगच्छन्ययात्तेना बिन्वामित्रो महामुनिः ।
स राजो दर्शनकाङ्क्षी दाराध्यायानुवाच ह ॥ ३८ ॥

वे शिता की सेवा किया करते थे और भूनिच्छा में निन्दा रखते थे । उनके नित्राह के लिये महाराज दृशरथ उपाध्यायों और कुटुंबियों तथा मंत्रियों से मलाह कर रहे थे कि, इसी वीच में महामुनि महात्मकुशी निवामित्र पवारे । वे महाराज से मिलते की अभिलापा से व्योरोदनासे बोले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

श्रीग्रंथायपाल मां प्रासं कैलिकां कादिनः सुतस्य ।
तत्त्वः त्वा बचनं त्रासाग्राहो भैरवः पुदुपुष्पः ॥ ३९ ॥

तुस्तं ज्ञातर महाराज को सुतना देव कि, गादिके पुत्र आये हैं । यह लुत सौर अभयास्त्र हो दारानाम राजगृह को शोर दौड़े ॥ ३६ ॥

संभान्त्यसः सचेवेन वाक्यकुं चोदिताः ।
ते गत्वा राजभवं निर्वामात्मायुधः तदा ॥ ४० ॥
प्रासापेदयामापुरुषायैवन्त तदा ।
तेषां तद्रजनं श्रुत्वा सपुरोधः समाहितः ॥ ४१ ॥
विश्वामित्र जी के कहने पर उनहोंने बड़े श्राद्ध के साथ राजभवन में जाकर विश्वामित्र जी के राजने का संवाद, महाराज दृश्यम ने निवेदन किया। उनका भ्रामण लुन, महाराज प्रसन हो और वशिष्ठ जी के साथ ले। II ५० II ५१ II

प्रत्यज्जगाय तं हृषैः ब्रह्माण्मिन्व वासवः।
स ह्रद्या ज्वलितं दृष्ट्या तापसं संशितव्रतम्। II ५२ II

विश्वामित्र जी से मिलने उसी प्रकार भय, जिस प्रकार ब्रह्मा जी से मिलने इद ज्वलि हैं। तेज से दृश्यमान, महातपस्वी, ब्रह्म कड़े निम्मों का पालन करने वाले और प्रसंविवक विश्वामित्र जी की खड़ी देख। II ५२ II

प्रह्यन्तवर्जो राजा ततोध्यां सम्प्राश्चार्यतु।
स राजः प्रतिगृहार्य्य शास्त्रप्रेतेन करणा। II ५३ II

महाराज ने प्रसन ही शास्त्र-विधि के भ्रामण के उनका भ्राम किया। महाराज से अर्थ ले। II ५३ II

कुशलं चाव्ययं चैव पर्यंप्रच्छन्नराध्यपि।
पुरे कोशे जनपदे वान्यमेशु सहस्त्रु च। II ५४ II

विश्वामित्र जी ने महाराज से पुर, कोश, राज्य, कुशल और इथिमित्रों की कुशल पृृवं दी। II ५४ II

कुशलं कौशिको राजः पर्यंप्रच्छन्नाध्यामिकः।
अपि ते सनन्ता! सर्वे� सामन्ता रियतना जिता। II ५५ II

विश्वामित्र ने कुशल पृृवं रूढः हुए भ्रामन्त्र धार्मिक महाराज से रूढः—भ्रापक समस्त सामन्त भ्रापके अधीन रहते हैं? भ्रापने भ्रापने शात्रुओं को ते जीत कर भ्रापने वशे में कर रखा है? II ५५ II
दैवं च मानुषं चापि कर्मं ते साध्विः।

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं गृहिः। ॥ ४६ ॥

यजादि देवकर्मं, तथा प्रतिष्ठायों का सकार आदि कर्मं, महो भौति हैं? फिर विश्वामित्र जी ने मुनिकेश्वर वशिष्ठ जी से कुशल पूर्ण हो॥ ४७॥

कशीत्वान्यत्रन्यायार्य महाभागाजुनाच ह।

ते सवेः हुष्ट्रमस्तस्त्य राजो निवेशनस्व। ॥ ४७ ॥

इत्यक्र वाद्विश्वामित्र जी ने यथार्थम् प्रत्येक अनुभियों (जावाजादि) से कुशलं मनस्तल पूर्ण। तव वे तर प्रस्तम महाराज के समाज में गये॥ ४७॥

विविषः पूजितात्वात् निपंदुः। यथावतः।

अथ हुष्ट्रमना राजा विश्वामित्रः महासुनिम्। ॥ ४८ ॥

तवं वे लोग यथयोतित पूजे जा कर यथयोतित भासनोऽपि बैठ गये। तव महाराज दुश्यं धर्म, हो महासुनि विश्वामित्र जी से बाले॥ ४८॥

उपाध्रं परमोदायो हृष्टममिनिम्यनन।

यथार्थस्वत्त्वं संभासितम् वर्मनमुदके। ॥ ४९ ॥

यथा सहस्रादेशु पुनःसन्नामनस्य च।

मनः तथा थायो यथा हर्षा महर्षीये। ॥ ५०॥

तथवास्थानम् मन्ये स्थागतं ते महादुने।

कं च ते परम्क गायम्य करोमि किसमु हर्षितः। ॥ ५१ ॥

परमद्राता महाराज भाद्र पूर्वक बैले—हे महर्षे। श्राकें

द्रागमन ते सुने वैसा हि सुख धार्म हुया है जैसा कि, प्रस्तुत के
मिलने से, सुनती हुई खेती की चर्चा होती से, प्राप्त की पुत्र के जन्म से ओर टोटा उठाने वाले की लाम होती से सुख प्राप्त होता है। है महामुने! मैं ग्रामका सहर्ष स्वागत करता हूँ; कहिये में लिये का भाषा है। ॥ ४६ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अध्यात्म विसेसे नृहार्दिश्तया ग्रामाण्डिसि धार्मिक।
अध में सफलं जन्म जीवितं च सुनीतितुमः ॥ ५२ ॥

ग्रामकी खुपाहिदु मेरे ऊपर पड़ने से में सुपात ओर धार्मिक बन गया। ग्राम मेरा जन्म सफल हुआ ओर मेरा जीवन सुनीतन हुआ ॥ ५२ ॥

पूर्व राजपरिवादो तपसा ध्यानितमयः।
व्रजार्थित्वमनुमासः पूर्ण्योक्षसि वहुया मया। ॥ ५३ ॥

ग्राम प्रथम जव राजपि थे, तभी ग्राम बड़े तेजस्वी थे, फिर यव तो ग्राम ब्रजपि पदवी को प्राप्त होते से सब प्रकार से मेरे लिये धार्मिक पूज्य हैं। ॥ ५३ ॥

तदनुत्तमिं ग्रामन्यरिव वर्ग मम।
श्रुधार्शन गतुत्वाः तव संदर्शनात्मभो। ॥ ५४ ॥

ग्रामका ग्रामाण्डन धार्मिक पवित्र ओर अवदृढ़ होते से ग्रामके अवद्धर्षन कर मेरा श्रीरे भी पवित्र ही गया। धार्मिक यह स्थान पवित्र हो गया। ॥ ५४ ॥

व्रूहि वत्सार्थितं तुभयं कार्यमाणगमनं प्रति।
इच्छास्यन्तुग्रहितात्सि तवदर्शपरितदा॥ ॥ ५५ ॥

ग्राम जिस काम के लिये पधारे ही वह वस्तुवादाय। मैं चाहता हूँ कि ग्रामके देवा कर मैं अनुग्रहीत होऊँ। ॥ ५५ ॥
कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुपहर्षिः कैशिकं।
कर्ता चाहमश्रेपेन दैवतं हि भवान्मयम्। ॥ ५६ ॥

हे कौशिक! आप किसी वात के लिये संकेत न करें; मैं आपके सत्त न कर्म करूँगा। क्योंकि आप ते मेरे देवता हैं। ॥ ५६ ॥

प्रभ चायमनुवासो महान्युद्योगः द्विज।
तचायमनः कृतस्व धर्मश्राप्तः समं। ॥ ५७ ॥

हे श्राध्यत प्रभ आपके पदार्थ से मेरा मानों भावन जागा और वड़ा पुण्य हुया। ॥ ५७ ॥

इति हृदयसुखं निशाम्य वाक्यं
शृद्धितस्वस्मात्वन्ता विनीतस्वयं।
प्रविष्टवाणयशं सुधैविन्द्रिष्ट।
परमक्रियः परमं जगायं हर्षम्। ॥ ५८ ॥

इति प्रभादशा: सर्गः।

वालकाव्य का प्रशारश्वां सर्ग समाप्त हुया।

—*—
एकोनविंशः सर्गः

तच्छुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्वृत्तविस्तरसः।
हस्तरोमा महातेजा विश्वामित्रेऽस्मयभापत् ॥ १ ॥

राजसिंह महाराज दृश्यमे भ्रद्युत्त श्रीर विस्तृत चचन सुन
महातेजस्वी विश्वामित्र हरित हो कहने लगे ॥ २ ॥

सदृशा राजशाहूदूल तबैतुर्वरि नान्यथा ।
महावर्षसोत्सर्य वसिष्ठ्यपद्देशिनः ॥ ३ ॥

हे राजशाहूदूल! ऐसे चचन भ्राप जाते हृद्यालुकंशी श्रीर वंशिष्ठ
जी के यज्ञमन को छोड़ श्रीर बौन कहेंगा ॥ ४ ॥

यतु मे हृद्गर्त वाक्य्त तस्य कार्यस्य निश्चयम् ।
कृष्ण राजशाहूदूल भव सत्यमतिप्रवः ॥ ५ ॥

हे राजशाहूदूल! भ्राप मे अपने मन की वात कहता हूँ। उसके
प्राप्त श्रावर कार्य कर के भ्राप अपनी प्रतिज्ञा के सत्य को जिन्ये ॥ ६ ॥

अह्म नियममातिबे विश्वास्य पुरुषर्षभ ।
तस्य विविषकरौ द्रौ तु राशसौ कामरूपिणिः ॥ ७ ॥

हे नर्श्रेष्ठ! मैं जव फल प्राप्ति के लिये यहदिस्वा प्राप्त करता हूँ
तव हे कामलाची राजस मारक विद्वत किया करते हैं ॥ ८ ॥

त्वते मे बहुश्रीरेण समाप्त्याः राशसारियमेऽ
तै मासंविहर्गैण्येण वेदिद् तामस्यपर्ष्टताम् ॥ ९ ॥
जब बहुत दिन तक किया हुआ यह पूरा होने के प्रति है, तब न त्युष्ण सार्व यज्ञेद्रो पर मांस ढेर रथिर रखने के हैं। ५

अवभृते तथापूवे तस्मिननियमनिवेदे।

क्रुःथसम् निर्मलासाहस्वप्तेश्वराक्रमे। ६

इससे मेरा यज्ञ धार्मिक हो जाना है और में निर्मलाहित हो कर यहाँ से हट जाना है। ७

न च मे क्रोधमुखतः वुद्भिरविवर्ति पारिव।

नराधमा हि सा चर्म न श्रापस्त्र मुच्यते। ८

हे राजन! ऐसे यज्ञ में क्षोभ करना बत्रित होने के कारण मे उनकी आराम भी नहीं है। सकता। ९

खपुत्र राजशाही राम सत्यपराकपमू।

काकपशर्यि शुरु ज्वेप्ति मे द्रात्महसिः। १०

प्रत्येक हे राजशाही। मत्यपराकमी धोर सीता पर श्यामीं
खायें हुए धोर शुरु अपने ज्येष्ठ राजकुमार धीरामचन्द्र के मुखे
दोजिये। ११

शक्ति हेप मया गृहो दिव्येन स्वेते तेजस।

राक्षसा मे वीराकर्तव्यापायि विनाजाने। १२

ये मेरे तपस्वी के तेज से रक्षित है। मेरे यज्ञ को रक्षा करने
धोर विजयारारी राजस्वो की भी नए करेंगे। १३

श्रेयशास्त्र स्वदेश्यापि वन्यस्व न संशयः।

त्रयाणामपि लेखानां येन स्वार्थिगमिर्यति। १०
वालकायुदे

में इन्हें कल्याण के लिये पेसी पेसी आनेक विधियाँ श्रीर, कियाएँ इन्हें बतलाउँगा; जिससे इनकी श्याति तीनों लोकों में होगी। १० ॥

न च तैं रामप्रायशच चक्षूः स्थातुः कर्षणन।

न च तैं रायवादन्यो हनुमतसहि पुमान्। ११ ॥

श्रीराम जी के सामने वे कमी टिक न सकते श्रीर अन्य मनुष्य का वे कुछ भी न गिनेंगे। प्रथात् श्रीरामचन्द्र जी की छाड़ श्रीर कोई भी मनुष्य उन्हें नहीं मार सकता। ११ ॥

वीरेन्तिकृत्रिं हि तै रापो काठपुत्रन्वण गते।

रामस्य राजशाहीलुः न पर्यसौ महातमः । १२ ॥

क्योंकि वे देवों गर्विते पापी वडे बलवान् हैं; किन्तु अधि उनके मुर्ति का समय आ गया है। वे राजशाहीलुः पर श्रीरामचन्द्र जी को वर्णकर्ता नहीं कर सकते। १२ ॥

न च पुक्रक्तं स्नेहं कार्तुमहिंसि पार्थिव।

अहं ते प्रतिज्ञानामिष हताऽऽ ता विन्दु राक्षसाः। १३ ॥

हे राजजि। इस समय ध्राप पुक्रक्तत्ते के वशवर्ती न हैं। मैं ध्रापसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, ध्राप उन राक्षसों के मरा हुआ ही समक्षहै। १३ ॥

अहं वेद्य महात्मासं रामं सत्यपराक्रमसु।

वसिष्ठकोषि महातेजा वे चैमें तपसि स्थिता: । १४ ॥

में, महातेजस्वी वशिष्ठ तंत्रं वे तपस्वी महात्मा, सत्यपराक्रमी। ।

श्रीरामचन्द्र को जानते हैं। १४ ॥
यदि ते धर्मनाधन न यज्ञत्र परस्म युक्ति ।
स्थिरमिच्छिः राजेन्द्र, राम मे द्रातुमहिषि ॥ १५ ॥

यदि प्राप दत्त लेखार मे धर्मने लिये सभ से वह कर पुष्प
आर यज्ञ के ब्याप्ति बनाना चाहते थे, ता हे राजेन्द्र । श्रीराम तो
के मेरे साथ भेज दोकसी ये ॥ १५ ॥

यथायम्बुजां काकुत्स्य दुःस्तते नव प्रतिज्ञाः ।
वसिष्ठपुस्वात: सर्वे ततो राम त्रिसंजय ॥ १६ ॥

प्राप लघुहत आदि धर्मने पंडितों के साथ परार्थ थी
और यदि ये लाग प्राप्त के अनुकूल परार्थ थे, ता प्राप
श्रीराम के मेरे साथ भेज दोकसी ये ॥ १६ ॥

अभिमेत्तमर्तं सक्नकमात्म द्रातुमहिषि ।
दशरथ्र हि यज्ञव राम राजिवलोचनम् ॥ १७ ॥

मेघ यत्र पुरुष कराने के लिये दुस दिन के राजिवलोचन
श्रेष्ठचन्द्र जी के दुमे हुरल्ल दे दोकसी ॥ १७ ॥

नातविति कालो यज्ञव यथायप्य मम रावव ।
तथा कुर्मिभई तेस्ते मा च श्रीके मनः कथाः ॥१८॥

प्रेम कोकन जिस्ते मेरे यज्ञ का समय न निकलने पावे ।
श्रापका फलाण ही । प्राप मन मे दुखी न हो ॥ १८ ॥

इत्येवसुक्त्रा प्रयत्नमा धर्मरीत्सहिं वचः ।
विराम पद्धतेता विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १९ ॥
वालकायडे

प्रवेशमा महातेजस्वी महादुति विश्वामित्र जो धमोर्मियुक्त इन्
वचनों का कह कर खुप हो गये ॥ १६ ॥

स तविशम्य राजेन्द्रो विद्वामित्रवचः शुभम्।
शेषप्रभ्यागमतीत्रें व्यपीद्यत भयानिति: ॥ २० ॥

विश्वामित्र की इन शुभ वातों का खुन कर, महाराज दुःशरय
भूलत देते तेह्र अत्र हुक्की हो उदास हो गये ॥ २० ॥

इति हृदयमनोविदारणे
शुनिवचनं तद्तीव शुभुवनाः।
नरपतिरगमद्रयं महद्-
व्यक्तिपत्ना: प्रचरा चासनादु ॥ २१ ॥

इति प्रकाशनिविषाः सर्ग: ॥

महाराज दुःशरय हृदय और मन के चिन्तित करने वाले वचन
खुन और प्रत्यक्ष भयोत्त और विकल हो कर सिंहासन से
मुक्त हो गिर पड़े ॥ २१ ॥

वालकायड का उद्देश्यकर सर्ग समाप्त हुधा।

—*-—

विंश: सर्गः

—२०:—

तच्छुद्वा राजशाहुरऽ विश्वामित्रस्य भाषितस्मृ॥
श्रूहत्तमिन निःसङ्गः संहारानिदमस्वरूः ॥ १ ॥
उनके जीवन के स्वरूप में राम राजीववेदेचनः

न युद्धयोग्यतामत्य पश्यामि सह राक्षसः

मेरे राजीवलोचन प्रोफेसर व्यस्त के चल पत्रदर्द वर्ष हो की ब्रह्म हैं। मे कुछ सिसियों में तथा राक्षस के साथ लड़ते थे। यहां नहीं समयता

द्यमकान्हिणी पूरा यस्याहं पत्तिरिन्द्रः

अन्या संत्रोगो गत्ता येदं जांति: कैलं खांशाचारः

मेरे पास जा बड़ी भारी लेना है, उसका साथ ले कर में उन राक्षसों से लड़ता गया

इने श्रृंगार विकान्ता भूलया पेत्तत्रिशारदः

पाया वशोगले न रायं नेतुममीति

ये मेरे शुरू, पराक्षी प्रीति युद्धविख्यात में दृष्टि, वेतनमानी तोड़ ददा राक्षसों से युद्ध करने योग्य हैं। वापर राम का न ले जाये।

अधमेत धनुर्याणिगोस्स सपस्मूर्धिन।

ग्यालमण्डन्तरिक्यामि तावश्योत्ये निशाचारः

मे स्वयं धनुर वायु दिये हुए पक्षले में खड़ा हुए, जब तक अक्षर में पाषण स्वरूप, राक्षसों से लड़ता रहता रहता गया

निर्विश्वास ग्रहणयो सा भविष्यति सुरक्षिता।

अहि तत्र गमिन्यामि न रायं नेतुममीति

153
प्राप्तको वन्दनवर्ग निर्विन्ध समार्थ हौगो। में स्वर्य वहाँ जानेंगाँ 
प्राप्त श्रीराम जी की को न ले जाइये \। \।

वालों हुकुमतिविधि न च वेदिति वल्लवस्त्रम।
न चालवलसयुक्तो न च युद्धविकारदः \। \।

क्योंकि श्रीराम अभी निरे वालक हैं, वे न ती अनुभवी हैं,
न शान के बलाकल के समभ सकते हैं श्योर न युद्धविधा में
कुशल ही हैं \। \।

न चालै रससां योग्यः कृष्ट्युद्वा हि ते भुवंस्त्र।
विभयुक्तो हि रामेण महार्थयम्पि नोतस्ये \। \।

प्राप्त जानते हैं रात्रि युद्ध करते समय ढुंढक कपड़े करने में
कैसे कुशल होते हैं। श्रीरामचर्य उनका सामना करने योग्य नहीं।
में श्रीराम का उनके साथ युद्ध करना कभी सहन नहीं कर सकता \। \।

जीवितं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमहिः।
यदि वा रायवं ब्रह्माननेतुमिच्छसि सुवत \। \।

चतुर्वेदसयुक्तं मया. च सह तं नय ।
पश्चिमसरमहस्स्वनामी.जातस्य मम कौशिक । \। \।

हुःथेनानोत्पादितश्यामं न रामं नेतुमहिः।
चतुर्मात्मानां हि मीति: परमिका मम \। \।

श्रीराम के विवेचन में में लगां भर भी नहीं जीवित रह सकता।
प्रत: हि मुनिवर। श्राप उनकी न ले जाइये श्योर यदि उनकी
विषाण: सर्व: १५६

ले ही जाना है ते सुभे श्रीर मेरी चतुर्तिनेना ही को भी उनके माया ही लेते नजरिये। हे किंत्रामित्र! बैठिये, साठ हजार वर्ष के वय में, बड़े पहुँच से ये उत्तम दृष्ट दे हैं। अतः इनका न ले जाइये। चारों राजकुमारीय में मेरा परम स्नेत श्रीरामचन्द्र ही के ऊपर है। ६।

विषाण: सर्व: १५६

निर्णीयाः राजस्वस्ते च क्रम गुणाध्य के च ते। १२।

वह धर्मवाण में वेद लोप हैं। अतः राजकुमार श्रीरामचन्द्र के प्राप्त न ले जाइये। अंज्ञा, यह ते वहनाइये उन राखसों में बत कितना है श्रीर वे किनके बते हैं। १२।

कृष्णममाति के चैतन्यायन्ति सुनिपुज्यव।

रथ न प्रतिकर्तव्य तेपां रामेण राखसामुः। १३।

वे कितने बड़े हैं श्रीर उनके सहायक कीन कीत हैं श्रीर उन्हें श्रीराम निकाल तरह मार सकोंगे। १३।

मामकर्यव वल्लभवनया वा कृतटेपमिनामु।

सर्व में श्रंश भगवनर्थः तेपां मययं रूपे। १४।

स्थायित्वं दुष्प्रभावानां निन्येतितिक्ता हि राखसाः।

तस्य नागचर्य सुत्रा विश्वामित्रोजन्यभापत। १५।

हे भगवन्। यद्य सब मे बतलाई नि, हमारी लेना श्रीर में उन मायार्यायो श्रीर उन हुए प्रभाव चाले बड़े पराकमि राखसों के लाख गुड़ में क्यों कर ठहर सकूँगा। महाराज के वचन जून विश्वामित्र जी चाले। १५।

वाणृ सा०—१२
पुछस्यवत्ताश्रमवो रावणो नाम राक्षसः।
महाविनु दस्तर्क्षेत्रेमण्य पायपि भूतस्मृ॥ १६॥

हे राजन! महाविनु पुलक्ये के वंश में उपच रावणा नाम का राजस्, जिसे प्रहा जो ने वर्धान दे रखा है, तोनं लोकों को बहुत खताता है॥ १६॥

महावत्रो महावीर्यो राक्षससेविहित्वं।
अलूते हि महावीर्यो रावणो राक्षसाशिी॥ १७॥

तथा व्ययं वग्रा वंलगान, तथा वग्रा पराक्रमी है श्रीर उसके अनेक राजस् अनुबायी हैं। युनते हैं कि, वह महावीर रावणा राजस्तों का राजा है॥ १७॥

साथार्धमनश्चाता पुत्रो विश्ववसो सुने॥
यदा व्ययं न व्ययस्य विश्ववाच्य महावलु। १८॥

वह सातारं कुवेश का माई श्रीराव विश्ववा मुनि का गुप्त है।
वह महावली छोटे यहों में स्वयं वा विश्व नहीं करता। फिनु ॥ २९॥

तेन संवेदितो दृश्तु तु राक्षसिंहु मुमहावली।
मारीचशुकवाहु यज्ञविध्यं करिप्यत॥ १९॥

उसंकी प्रवक्षण से वडे वलवाय तु राजस्त जिनके नाम मारीच श्रीर हुवाहु हैं, ऐसे यहों में विश्वाहै हैं। ॥ २०॥

इत्युक्ती सुनिना तेन राजोवाच्युनि तदा।
न हि शत्रुकोहस्म संग्रामे स्वातुं तस्य दुराश्मन॥२०॥
विनं: सर्गः १६१

विद्वामित्र के इन वचनों के सुन महाराज दशरथ उनसे कहने लगे-कि, मैं तो उस तुरात्मा का सामना नहीं कर सकता। २०

स तर्क प्रसादं धर्मं कुछं मम पुत्रके।
मम चैवाल्यभाग्यस्य देवतं हि भवानुरुः। २१

हे धर्मं! आप मेरे बच्चे पर श्रीर मुख पर कपा करें,
फैसले आया तो मुख अत्यन्तमाय वाले के केन्द्र देवता की तरह
पूज्य ही नहीं, किंतु मुख सो हैं। २१

देवदानवगन्धर्वं यथा: पत्तरपूज्या।

न शक्ता रावणं लोहं किं पुनर्यन्त्ववं युधि। २२

जय देवं, द्रानवं, गच्छवं, यत्र, पत्नी, और श्रीर भी रावण के
गुरु में नहीं जीत सकते, तब तिर वेचारे मनुष्य किस गिनती
है। २२

तस हि नीर्मितां नीर्मातां युधि राक्षसः।

ten chaahi n shako méi sanyaah vu tasya va chaale। २३

रावण युद्ध में वानरों के वल का तथा कर देता है, ध्रुतपाल
में उसके यौगिक उसकी फौज के साथ युद्ध कर पार नहीं पा
takta। २३

सच्चि वा न्युनिश्रेष्ठ सहितो वा सुभवस्वः।
कथपययमनाह्व संत्रामाणामकोविदम्। २४

वाले में तन्यं व्रहणैव दास्यामि पुच्छकम्।
अथ कालोपथं युद्धे सुतौ सुन्दौपसुन्दः। २५
बालकायडे

यं नवदास्यामि पुत्रकमः।
मारीच्छुवाहु बीर्यवन्तौ सुशिषिताः।
तयोरन्न्यतरेणाः येद्भा स्यां ससुहृद्गणः॥ २६॥

फिर मैं उन लोगों के साथ लड़ने के लिये, अपने पुत्र को, तो
देवताओं के समान रूप बाजा है, युद्धविदा में अपद्रव है, कैसे मेरा
संकट हैं? हे महाराज! मैं अपने नहीं से पुत्र को न हुँगा। खुद
उपद्रव के पुत्र मारीच श्रीर सुवाहु जो युद्ध में कार के समान हैं,
बड़े बलवान हैं श्रीर युद्ध करने में पूर्ण इज्जत हैं, श्रीर यज्ञ में विधा
करने वाले हैं, उनके साथ लड़ने के लिये मैं अपने पुत्र को न
मेज़ूँगा। उनका छोड़ ग्राम श्रीर जिसे कहैं उसके साथ अपने मित्र
तथा वाणिज्य सहित मैं लड़ने का बैठार हूँ॥ २४॥ २५॥ २६॥

इति नरपतिजयपादद्विजजेन्द्रः
कुशिकसुतं समहानवेशं मन्यः।
सुहुत इव मरवेशिराज्यसिकः।
समभवदुभज्जलितो महर्षिवर्धिः॥ २७॥

इति विषा: सर्गः॥

महायज्ञ दशरथ के इन प्रसंगत वचनों को सुन, विष्णुवामिने जी
प्रत्यंत कुपित हुए। जिस प्रकार मली भावित हो को प्राहुरित पड़ने
से ग्राम धरकती हैं, वसी प्रकार उनका कोलहाति ( दशरथ के
वचन ख़ूफ़ मुत की शाहुरत से ) धरकर लगा॥ २७॥

बालकायडे का वीर्यवाण सर्ग समाप्त हुआ।

—*—
एकविंशः सर्गः

tतच्छू तवा वचनं तस्य स्नेहपर्यंकुलाकरसृ।
समन्युषः कृशिको वाक्यं प्रत्युत्कार महीपतिम्।। १ ॥
महाराज दृजर्षय के पुजानेह से सने वचनों के खुन, सुनिद्रव
विश्वामित्र जी कुट्टा हुए धौर कहने लगे ॥ २ ॥
पूर्वमथं प्रतिशुष्य प्रतिज्ञं हातुमिचछसि।
रायदानामयुत्तोज्यं कुलस्वर्या विपर्ययः।। २ ॥

हे राजाः! भाप महाराज रघु के वंश में जल्पन ही कर वात
कह कर खुकरते हैं। यह ते भापकी वंशंपरं से उलटी
डाल है धौर ठीक भी नहीं है।। २ ॥

यदीदं ते कस्मं राजनापिप्यामि यथागतम्।
मिश्यामित्रं कासुरस्तं हुस्ती भव सावान्धवं।। २ ॥

इत्यादि, यदि भापकी यही इच्छा है ते ते में यह चला। भाप
भापनी प्रतिज्ञा मेंट कर माई वंदों सहित प्रस्तुत रहिये।। २ ॥

tतस्य रायपरितस्य विश्वामित्रस्य धीमतः।
चचाचु वस्तुता कृतना निवेश च भर्यं हुरान्।। ४ ॥

इस प्रकार उद्भिकसु विश्वामित्र के कुपित होने पर समस्त
प्रभावी हिन्द बड़ी धौर देवता लोग दर गये।। ४ ॥

त्रस्तुषं तु विन्द्राय जगत्तवं महाराजरः।
नृपति खुलको थीरेरे। वसिष्ठे वाक्यमभवित्।। ५ ॥
बालकामदे

तब सां संसार के वस्त्र देख, श्रीमंतपरायण एवं श्रीमंत वानि, महर्षि बनिधि जी, महाराज दवरथ से बोले॥ ५ ॥

इक्ष्वाकुणिय कुले जाति साकादेम इवापरः।
धृतिमान्सुग्रतः श्रीमान धर्म हातुभिसि ॥ ६ ॥

आप महाराज इद्वाकु के कुल में उत्तर मानो सावधान धर्म को दूर रहने मूर्ति हैं। आप श्रीमान्, धृतिवाच, और सुमतज्ञारी हो। कर, धर्म का लयाग न करें ॥ ६ ॥

जिनु ताकेशु विश्वालो धर्मात्मा इति राष्ट्र ।
स्वधर्म प्रतिपद्ध सुधार्म वेदीमहसि ॥ ७ ॥

तीनोऽलोकोऽ में आप धर्मात्मा कह कर प्रसिद्ध हैं। अतएव आप आपने धर्म को रत्न कोन्ही, आधारम न कोन्ही ॥ ७ ॥

संभुतैैव करिष्यामीमृत्तिकविग्राणसस्य राष्ट्रव ।
इष्टापूर्तिभेव भूखातस्माद्वर्यम विसर्यव ॥ ८ ॥

हे राजय। ते केवल करके उसे पूरा नहीं करता हैं, उसे इत्यापूर्ति के राष्ट्र का पाप आता है। अन्त: आप श्रीरामचन्द्र जी की मेज बीतिये ॥ ८ ॥

कुताक्षसुक्तवतर्य वा नैन शक्यतिन राष्ट्रसः।
गुंसै कृषिकपुत्रश ज्वलनेवायुतं यथः ॥ ९ ॥

* इत्यद्—इत्यद् शब्दमेखायात्यायः। पूर्तम्—वायादिन निर्माणिन्। अथायः।
शब्दमेखायające इत्यद् इत्यद् कहालाते हैं और कुछापिन, वाच्छी, ताजाव आदि वलनानो
“पूर्तम्” कहालाते हैं।
पक्विशा: सर्गः

श्रोरामचन्द्र चाहें याक्षविद्या मे कुशल हूँ या न हूँ, राजस\\n\[ मुनक \\] कुत्र भी नहीं कर सकते। फिर जब \textit{विश्वामित्र} उनके रक्तक \\
\[ हरे तव श्रोरामचन्द्र का कोई ख्या कर सकता हैं। यदि अस्मृत की \\
\[ रंगां तव अश्चिन्ह के होती हैं ॥ ॥ तव प्र\\n\[ त् अस्मृत की कोई पा \\
\[ सकता है ॥ ॥

एपविश्वामित्रम् एप बीर्यवतां वरः

एप उद्यायिको ठेके तपस्यन परायणम् ॥ १० ॥

यह \textit{विश्वामित्र} गरीर धारण किये हुए घर्म हैं, यह बड़े बलवान \\
\[ हैं, इनसे बह धर बुद्दिमान ध्व्रार तपःपरायण इस संसार में तो \\
\[ इसका केंद्र है। नहीं ॥ ॥

एपोश्वामित्रविवाहान्तिति त्रैठोक्ये सचराचारे

नैनमन्यः पुमान्वेति न च वेष्यवन्ति केचन ॥ ११ ॥

भ्रनेक अर्धां के चलाने की \textit{विद्विभू} को जानने वाले तीनों \\
\[ लोकों में तथा चर पर्चर में यह प्रक्रेत है हैं। इनके ख़ुराक का \\
\[ हान हर की सियो को नहीं ध्वार न हो ही सकता है ॥ ॥

न देवा नर्णं केचिदाशुर न च रासायः

गन्धर्वश्वरचाँ सकिनसर्वहारां ॥ १२ ॥

इनकी महिमा की, देवता, \textit{चुर्ण}, \textit{राथुर}, \textit{राधक्ष}, \textit{लघुवर्ष}, \textit{बच्च}, \\
\[ फिरर ध्वार महिमां—कैव भी नहीं जानता ॥ ॥

सत्रांशाणि कुशाक्षवस्य पुष्या: सरमधामिकाः

कृशिकाय पुरा दुः यदा राज्य प्रभासति ॥ १३ ॥

* महाभारत में किता है कि अस्मृत की रक्षा के लिये उसके चारों ओर \\
\[ चक्काकार आत्मा खाणा करता है।
कुशाख्य भजनपति के परम धार्मिक पुत्रों ने विभावमित्र की, जग, वे पहले राय करते थे, सब धर्म दिये थे। १३।

तेजस पुत्र कुशाख्यवस्य भजनपतिसुतासुतां।
नेकसुपा महावीरा दीसिंमन्तो जयावह। १४।

वे कुशाख्य के पुत्र भजनपति की अन्यत्रों के पुत्र हैं, वे पक्ष के नहीं हैं, वे बड़े वलवान, दृष्टिमान और सब का लीलने में समृद्ध हैं। १४।

जया च सुभमा चैव दशकनये सुमध्यये।
ते सुवातें भीमाध्राणि रति परमभास्वरसं। १५।

दत्त्रभजनपति की वे कन्याओं जया और सुभमा ने सेलंडों प्रति चमचमाते हुप व्रज़ श्राव उपच निये। १५।

मथायात ्रुसते सूताल्लेमेजया नाम परानुरा।
वधायासुरसेन्यातामेयान्कामस्निपिणः। १६।

जया ने ५०० श्राव चूरी पुत्र उत्पत्ति किये धर्मत्व ५०० प्रकार के ब्रजों का प्रश्नाधिकार किया तो कि, धृमित तेज वाले थे और मायावी धुरसेता का संधार करने में समृद्ध हुप। १६।

हुमभाजननयचार्य पुष्त्रान्यवासातुं पुत्र।
संहारानाम दुर्धर्षप्रन्तवाराकामानवलीयस। १७।

फिर सुभमा के भी ५०० श्राव चूरी पुत्र उत्पत्त हुप धर्मवात श्राव का संधार करने के लिये सुभमा ने भी ५०० प्रकार के ब्रज श्रावों का प्रश्नाधिकार किया। उक्तको नाम संधार पड़ा, उक्तका प्रहर फिर भी श्राव सह नहीं सकता। वे कभी निष्कां नहीं जाते, क्योंकि वे बड़े वलवान हैं। १७।
तानि चात्माणि वेद्येष्य यथावतकुशिकात्मनः।
अपूर्वाणो च जनने शक्तो भूयत्व धर्मंचितः। १८ ||

इस सर्वं प्रभुः शाखों की यथावत विश्वामित्र जानते हैं। यहाँ नहीं, वलिक इसके ध्यातिरिक्त और नये नये ब्राह्म शाखा बनाने को सामर्थ्य भी इस धर्मसौभा में है। १५ ||

तेनास्य गृहिनिपुर्वस्य सर्वेऽस्य महात्मनः।
न सिजिद्यविदितं सूर्य भवयं च राघव || १९ ||

eहे राघव! इन मुनिप्रवर सर्व्व महात्मा विश्वामित्र की कोई भी वात, जो है। चुकी है या होने वाली है, ध्यातिरिक्त नहीं है। प्रयोगः इनकी उचित ध्यान प्राप्त है। १६ ||

एवंपीयो महातेजा नियवामित्रो महात्मपाः।
न रामगमने राजनेवाय गन्तुमहसि || २० ||

इन महातेजस्वो, महात्मपाः और पराजयो विश्वामित्र श्री के साथ धीराधरचन्द्र के भेजने में जरा भी न दरियें तथा किसी प्रकार का खन्देह न करिजियें || २० ||

तेपां निग्रहणे शक्तः स्वर्यः च कुशिकात्मजः।
तव पुश्चितार्थः ल्यामुपेत्यासिनाः। || २१ ||

इस विश्वामित्र श्री में इतनी सामर्थ्य है कि, वे उन राजाओं के स्वर्यः मार सकते हैं। यह तो बापके पुत्र की बलाई के लिये ही उन्हें आपसे मांगने प्राप्त हैं हें || २१ ||

इति मुनिवचनात्मसबुष्मितो
रघुनाथभश्म मुण्डोऽ भास्कराः।
वालकायदे

गमनमभिक्ष्येऽच राघवस्य
प्रथितयायः कुशिकात्माय वुद्ध्या ॥ २२ ॥

इति एकविषयः सर्गः ॥

गुरु वशिष्ठ के इतव प्रकार समकाल ते महाराज दशरथ, श्री-रामचन्द्र जी का विभवविश्वाय विभवामित्र के साथ भेजने की राज्यी हो गये ॥ २२ ॥

वालकायद का इकास्वायु सर्ग समाप्त हुआ ।

—**:—

द्वारिष्ण: सर्गः:

—**:—

तथा वसिष्णे बुधवति राजा दशरथं सुतम् ॥

पहुँचने राममातुहार सलक्षणम् ॥ १ ॥

इत्र प्रकार वशिष्ठ जी के समकाल ते महाराज ने श्रीरामचन्द्र श्रीर रत्नमण जी के दुववाया ॥ १ ॥

क्षत्रस्वत्ययु रा भृगु पितार दशरयेन ॥

पुरोथसा वसिष्णे मझंदैरभित्तिंतम् ॥ २ ॥

श्रीर उनकी भेजते समय कौशल्या, महाराज दशरथ तथा क्षलुपूरकित वशिष्ठ जी ने स्क्वतिवाचन श्रीर मझलाचार किया ॥ २ ॥

स पुत्रं मूढ्युपाग्राय राजा दशरथं सिदम् ॥

ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ २ ॥
ततो वायुः सुखस्पर्शी विरजस्कोऽचयं तदा ।
विश्वामित्रगतं द्रष्टा रामं राजीवलोचनस्य ॥ ४ ॥
पुष्पप्रिंचर्महत्यासिद्धेवुन्दुभिनिःखनः ।
शहुन्दुभिनिधिर्प्रज्ञः प्रवाते हु महाजनिः ॥ ५ ॥

विश्वामित्र जी के साथ कस्मलोचन श्रीरामचन्द्र शैर लक्ष्मण
जो के जाने के समय शैल, नदं शैर लुगनियुक्त पवन चलने
लगा, द्राक्षारा से पुष्पों की चर्म छुड़ी शैर देवताओं ने नगाड़े
वजाये । प्रयोज्या में भी जगह जगह राजकुमारों के जाने के समय
शौचनित की गयी शैर नगाड़े वजाये गये ॥ ४ ॥ ५ ॥

विश्वामित्रो यथाय ततेन रामो महायशाः ।
काकपशत्वरोध जन्नी तं च सीमितिरिस्त्यागानु ॥ ६ ॥

सत्र से श्राने विश्वामित्र थे, उनके पीठे महायश्वी श्रीराम-
चन्द्र शैर उनके पीठे हाथ में धनुष लिये शैर सिर पर जुड़के
रखाये सुमित्वान्द्र शैलद्रमण जो चले जाते थे ॥ ६ ॥

कलापिनिः धनुषपाणि श्रीभयानी दिरो द्रा ।
विश्वामित्र: महात्मानं चिरिपिंविविद्र पर्यासः ।
अनुजगमतरक्षुद्रैः पितामहं मिवाशिविनः ॥ ७ ॥

वद्रे उपवान शैर वलवान नृत्तों भईः, पीठों पर तरकट शैर
हाथों में धनुष लिये तथा दृश्यों विद्याओं की सुशोभित करते हुए
चुनि के पीठे ऐसे चले जाते थे, मानों तीन सिर के सर्प चले जाते हों। 

चथवा मानों ब्रह्मा जी के पीठे अर्बिनीकुमार चले जाते हों।

तदा कुसिकपुत्रं तु चनुपापणी स्वरंक्तौ

वज्रगोघाद्रुगुलित्वाणि स्वज्ञतो महायुती।

कुमारो चाक्षुपुषो भ्रातरो रायक्षणो।

अनुयाति त्रियम जुष्ठी श्रामयेतामजनिदृत्वा।

स्थापनु देवमित्रविन्यत्य कुमाराविव पातकी।

अध्यर्थयोजनं गत्वा सर्वत्रा दृश्य्ये तदे।

इस समय भनुष्य भारा किये हुए, अन्तःप्र अन्तःप्र गाहने पाहिने हुए, गोह के बचिने के बने हुए दुस्ताने हाथों में पहने हुए, तजावर लिये हुए, सहायसुलिमान, देवों सुन्दर भाई श्रीरामचंद्र जी श्रोता लक्ष्मण से मुनि उसी प्रकार अभिमानित हुए, जिस प्रकार शिव जी रक्ष्य और विशाल से शेरिज़ हैं। जब यथोव्या से हुः केश हुर सर्गुं के दृष्टिकोण पर पहुँचे।

रायेति प्रज्ञुरां वार्षों विश्वामित्रोक्षभयापत।

ग्रहण वत्स सचितं मा सूतिकालसम पर्ययं।

तव वहाँ विश्वामित्र जी, श्रीरामचंद्र से प्रज्ञुर वार्षों में बताते किन्तु, हे वत्स! जल से शरीर शुद्ध कर डालो, चार्य भारमण करो। जीविवेक मत करो।

मन्नधार्म ग्रहण तर्वा वर्मतिविश्वलं तथा।

न भ्रमोऽन व्यरो न तेन रूपस्थ विपर्ययः।
धार्मिक: स्मृत:  

शरीर छाद है जाने पर हम तुम्हें बला और अतिवला विचारों 'पढ़ावेंगे। इनके प्रभाव से न तो तुम्हें थकावट व्यापेगी न कभी शरीर ज्वारकाल होगा, तुम्हारे रूप की हानि होगी (यानी स्वतंत्र न विगड़ेगी।) १२।

न च सुर्य सवर्न न यथार्थियन्ति नैरह्वतः।
न वाहोः सदधो वीर्येः पुरुषग्यायसः स्यन्॥१३॥

सेरे हुए भी अत्रुद दुःख में राजस लोग तुम्हारा कुक्क मे त कर सके गे। चंसकर भर में कोई भी तुम्हारे वाहुकुल की सामानता न कर पायेगा। १३॥

त्रिपु तोलकूप वं राम न भवेत्सदशवसः।
न सामायये न दशिङ्ये न ज्याने वुढ़िनिर्दये॥१४॥

सोमसाय, दशिङ्य, धन घौर चुंटकाइ में तुम्हें तीनों लेरो में कोई भी न पायेगा। १४॥

नात्रे प्रतिवक्तवयें समें लोरे तवानय।
पुढ़िवारैये लघू भविता नास्ति ते समः॥ १५॥

हे राम ! इन विद्याओं के सीख लेने पर तुम्हारे बराबर उच्च देने में भी तुम्हारी समानता कोई न कर सकेगा। १५॥

वल्ला चातिवला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
धृतिपासे न ते राम भविष्यते नरिरचम॥ १६॥

पुरुषोत्तम राम ! सब विद्याओं की माताएँ इन वल्ला अतिवला नास्त्री विद्याओं के प्रभाव से तुमके भूख और प्यास भी कभी न सतायेगी। १६॥
वालकायदे

चलामतिवला चैनपठतस्तव राधव।
विचारणमधीशायने यागवाक्यस्तुलं त्वमिद् ॥ १७ ॥

हे राधव! इन द्वारा विचारां—वला और अवतारणां के विषय लेने
से तुल्य श्री तुल्य यश सर्वत्र प्रकट रहा याग जागरण ॥ १७ ॥

पितामहसे हेते विचे वेजसमन्निवे।
पंडातु तव कारक्त्व सद्दांस्तव हि यार्थिक ॥ १८ ॥

ये द्वारा तेजस्विनो विचारेण पितामह श्रीहा को पुजनीयां हैं। हे
कार्त्तिक्य! हम तुम्हें ये विचारे पढ़ावेंगे, क्योंकि तुम्हें इनके लिये
याक्ष्य पात्र से ही हो ॥ १७ ॥

कार्मवहुगुणां सर्वे उत्तमाते नात्र संग्रह: ॥
तपसा सम्पूर्ते चैते वहुरुपे भविष्य: ॥ १९ ॥

यद्विपि ते वातेन इन विचारां के पढ़ने से उत्पत्ति होती हैं।
उनमें से अनेक विभिन्न विचार भी तुम्हें मोजुद हैं, ते मो तुम्हें
द्वारा, तपस्या द्वारा प्राप्त इन विचारां के ब्रह्माकार्य किये जाने पर, इनकी
वज्जति हेतु गाँगा यात्रार्थ धार्मिक उपदेश से इनका प्रचार होगा ॥ १६ ॥

ततो रामे जलं स्पृहा प्रह्न्वद्वद् दुर्श्चिन्त: ॥
प्रतिज्ञागाः ते निचे महपेन्नोभवितात्मन: ॥ २० ॥

यह चुन श्रीरामचंद्र जी जल से धार्मिक कर पवित्र हुए और
प्रसन्न चित्त हों कर विचारमित्र से उन विचारां को सौंभा ॥ २० ॥

विचारसमुदि: राम: चुनुरे भूरिविक्रमः ॥
सहस्तरायितंगवाज्यश्रद्धिन दिव्यकर: ॥ २१ ॥
उन विद्याधरों के सीखने पर वढ़े पराक्षमी ध्रीरामचन्द्र जी की
तो ही शेखर हुई जैसे शर्काल के सूर्य की होती है || २१ ||

गुरुकार्योपिनि सर्वांपि निरुयुक्ति कुशिकालमने।
ऋषुस्तां रजनीं तीरे सरस्वातः सुसुखं जयः || २२ ||

इसके अन्नतर द्वारों मात्रों ने गुरु के समान सिद्धांत को
चर्चा करते मांझि कर सरस्वती के तीर पर वह रात मुख्त दे साथ
स्मारित पूर्वक विताई॥ २२॥

दशरथन्त्रप्रदुःसदुप्रमाणाः
त्रष्णाययनेन्द्रिती सहापिताध्यायः।
कृशिकसूतवेचारुठालितामां
सुर्वामिव सा विभवो विभावरी च॥ २३॥

इति द्वाविन्धः सर्गः॥

राजकुमार होने के कारण चटाई पर भूमि में सीता उनके लिये
अनुचित होने पर भी, दशरथन्त्र द्वारों कल्वान राजकुमार ने
विध्वामित्र जी के मधुर वचन हुनते हुए, ज्ञपावक कियों की श्रद्धा
पर वह रात विताई॥ २३॥

चालकायां का वाइसवां सर्ग समाप्त हुआ॥

---

त्रयोविंशः सर्गः
---

प्रभाताया तु सर्वायं विष्वामित्रो महासुनि।
अभ्यभापत काकुस्त्यो ज्ञानों पर्षसंस्त्रे॥ १॥
खूब पत्तों के विक्रेताओं पर लेते हुए राजकुमारों से सन्तति चार
घड़ी तड़के विभावित्र जी बोले।

कौशल्यासन्धजा राम पूर्वा संख्या प्रत्यक्षी।
जिति नरशादृश कर्तव्य देवमालिकम्।

हे कौशल्यानन्दन! (कौशल्या की सपुजती की बनाने वाले)
हे राम! सबेरा देखने का है। प्रव उठ वैठा श्रीराम प्रानःदुःख कर
ढालो।

तस्यः परमेद्धार वचः शृद्धा नरायणाम्।
स्वतः गुप्तोऽन्नोऽन्नी गीतां जेपतु। परमं जयम्।

राजकुमार उन परमेद्धार अध्यात्म के वचन खुट उठ वैठे।
फिर स्नान कर खुट की अर्थ्यद्रिश्या प्रथमा देवता और अध्यातम तिर्थादि
किया। तदुपरान्त वे परम मंत्र गायत्री का जप करने लगे।

कृतार्थिकृ महावीरं विस्वामित्र तपोधनम्।
अध्यात्मारसिसहृद्यो गमनायोपतत्वतः।

इन दृष्टियाँ महावीर राजकुमार ने आधिक अध्यात्म पुरा कर वड़े।
प्रस्थलता के साथ तपस्वी विभावित्र की प्रधाम किया श्रीराम और श्रीगृह
जलने का तैयार हुए।

तात प्रयाती महावीरं दिव्यं त्रिपक्षं नदीमु।

द्वादशवं ततस्तता सर्वर्त्ता संगमे खुमे।

उनकी साथः लिये हुए विभावित्र उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ
श्रीमंगल जी और श्रीसरस्वती जी का ज्ञान सहम है और जिसे वहाँ
उन्हें देखा।
तत्राश्रयपर्यं पुण्यमूर्तिपीणामुश्रेणेजसाम्।
वदनं सहस्रसाणि तप्यतां परमं तपः॥ ६॥
वदनं परर्दृशि उन स्त्रिया अवश्या अन्तरा स्त्रियोके परमपविचारा श्रवणे, जो वहां तद्विषी अवस्था से कटोर तपः कर स्वेदे मे॥ ६॥
तं द्वारा परमशीलो राजनां पुण्यमात्रम॥
उच्चतुस्तं महात्मानं विवाहमिन्निपिं वचः॥ ७॥
उस परम पवित्र श्रवणं का इस श्रुत्या श्रीरुप श्रुत्या महात्मा विवाहितं से यह वो रोले॥ ७॥
कस्यायमात्रम् पूर्णः को न्यासिमन्त्रसते पुजान्।
भगवत्यंतुमिन्निपिं: परं कृतःदुः हि नौ॥ ८॥
है सगरसाथ्! यह परम पवित्र श्रवणं किसलक्ष्मी हैं और यहां अव
कोण पुजारा रहता है। हम देवों का इसका हृदयासत्त छुपने का वादा
कृतःदुः है॥ ८॥

त्यासर्वस्त्र हृद्या प्रहस्य मुनिपुराणः।
अतःबिचूट्य यतां राम वस्यायं पूर्वं आश्रयः॥ ९॥
राजसुधारूं को यह वार छुन विवाहितं हैं वह प्रेम श्रीरुप कहने
लगे है राम! पुनिये, मैं वचनात्मा हैं कि, यह पहले किसका
प्राथम था।॥ ८॥

कन्दर्पोऽभीत्यार्थार्थार्थक्रम इत्युच्यते एवः।
तपस्यन्यन्तरित्व स्थानुं नियमेन समाधितव्॥ १०॥
कन्द्रप, जिसकी पवित्रा ज्ञाता कामरूप कहते हैं, पहले शरीर-/
धारी था। इस स्थान पर निरस्तर व्याख्यात है जिस जी तप
करते थे॥ १०॥
वालकायके

कलोधांहू देवेश्वर गच्छन्तं समस्तेण गणयम्
धर्मायासु दुःमहाभा हुःक्वात्र महात्मना।

जब विवाह कर महादेव जी देवताओं सहित चले चारे थे,
तब कामदेव ने उनके मन में विस्मय उत्पन्न करना चाहा—इस
समय शिव जी ने छुड़ाये की। ॥ ११ ॥

दृश्यस्य तस्य रौद्रेण छक्षुपायाः रघुनन्दनः।
व्यशीर्णते शरीरात्सत्सवस्ववाति ग्राहाणि दुर्मते। ॥ १२ ॥

फिर कुछ ही शिव जी ने अपना तीसरा नेत्र खोल कर उसकी
देखा। देखते ही उस दुर्घटना के शरीर के तत्त्व धर्म प्रत्येक प्रकारগहो
कर विस्मय गये। ॥ १२ ॥

तस्य गार्त्तं हर्तं तत्र निद्रगस्य महात्मना।
अधारीरः क्षतां कामं क्रोधाद्रेशवरेण ह। ॥ १३ ॥

जब से उसका समस्त शरीर महादेव के क्षेप से मच्छ हुआ
है, तब से वह विस्मय शरीर का हो गया है। ॥ १३ ॥

अन्यः इति विस्म्यात्सत्सदाभुतिः राधव।
स चाम्रविष्यः श्रीमान्यान्त्रां स सुमोच ह। ॥ १४ ॥

हे राम। तभी से उसका नाम प्रभुः ( विना धर्मों वाला )
चढ़ा है। कामदेव के भाग्य पर उसके धर्म नहीं पर निर्देश, वह
देश धर्म देश के नाम से प्रक्षाल हो गया है। ॥ १४ ॥

तस्मायामाश्रमां पुण्यस्तस्येमे सुनयः पुरा।
शिष्या धर्मपरा नित्यं तेसं पार्थ न विचित्राये। ॥ १५ ॥
वह प्राधम महादेव जी का है और इस प्राधमवासी समस्त मूलि, परवर्ति से छिव जी के भक्त हैं। वे वहे धर्मात्मा हैं और निष्पाप हैं।

इहां रामचरितमेघ शुभदर्शन।
पुष्पक: सत्तावस्थियो श्वस्तरिप्रायमेह वयस्म।

हे शुभदर्शन श्रीराम! भ्राज की रात हम यही ठहरेंगे और कज इं पुष्पलोक नदियों के पार कर हम लोग छा चलेंगे।

अभिन्नायें सर्व खुशयः पुष्पमाध्रयमी।

स्नाताथं क्रतज्ञ्यायं हुतहन्या नरेचर।

हे राम! प्रथम स्नान कर, पवित्र हो कर तथा जप, हेम कर के, हेम सत्र इस पवित्र प्राथम में प्रवेश करेंगे।

तेपां संबद्धति तत्र तपेदीर्भं चढ़िया।

विज्ञाय परमस्थिता मुनया हर्षमागमन।

वे लोग ते यह यह वातचीत कर रहे थे और उधर तथा प्रसाव से उस प्राधमवासी दृढ़तियों तपस्वी मूलि, इन लोगों का ज्ञान जान बहुत प्रस्तुत हुए।

अद्यं पार्थं तथापतित्वं निवेच कृप्यिकात्म्जे।

रामनामय: पथ्यादुर्वचनमिथिक्रियमु।

उन भूमियों ने किश्वासित ती को प्रार्थ पार्थ प्रमाण किया और पीछे से उनका तथा श्रीरामचन्द्र और श्रीलक्ष्मण का प्रतिविधि संक्षार किया।
सत्कार समनुगाम्य कथामिरिगिरिमन्यन।
यथाईमजपनसंध्यायूप्यस्ते समाहिता:। ॥ २० ॥

इस प्रकार उन प्राणमवास सुनित्रों से सत्कार प्राप्त कर श्रीराम।
नाना कथा वातां सुनन कर उन सवं ने सन्त्योपासन तथा गायत्री
जप अष्टि श्रवणक कर्न किये। तदुपरांत प्राणमवासी सब
उत्तिकश्र विश्वामित्र जी के पास एकत्र हुए ॥ २० ॥

तत्र वालकारानीतम् नमिनि: सुनते: सह।
न्यवसनसुससुरं तत्र कामश्रमपेदे तदा ॥ २१ ॥

कथामिरिगिरामाभिररिमायां तुपात्यजोः।
रघुमानस वर्णतमा कैलशिको वसनपुजः। ॥ २२ ॥

dhiti वैष्णवः समस्यः।

और इसके बत धारण करने वाले श्रुति इसह्म अपने प्राणम है
लिया ले गये। इस कामश्रम में श्रीराम तदमण सहित विश्वामित्र)
ने तुपात्यजो काम किया श्रीराम राजकुमारों के तरह तरह को मनो-
रक्ख कथा कहानियां सुना उनका भन्न दान किया ॥ २२ ॥ २२ ॥

वालकाराद का तेहेस्वर सर्ग समाप्त हुया।

---

चुर्विंशिः समस्यः

—२२—

तत: प्रभाते विमले कुटास्थिकमरितः।
विश्वामित्रं पुरस्तुत्य नापहस्तीरस्मुपागतः। ॥ १ ॥
चतुर्विंश: सर्गः ।

प्रातःकाल हेतृं हि प्रातःकृत्य कर श्रेष्ठो राजकुमार विश्वामित्रे त्री है। प्राणे कर नदी के तट पर पहुँचे॥ १॥

ते च सर्वं महात्माने मुणयं संशितवतः ।
उपस्थाप्य शुभं नावं विश्वामित्रश्राववात्तिरण॥ २॥

इस प्राचर में रहने नाले वन्धारी स्त्रिय भी उनके साथ (विश्वामित्र तथा राजकुमारों के साथ) नदी तट तक गये और एक सुन्दर नाव का प्रवेश कर, विश्वामित्र जो से वैले॥ २॥

आरोहतु भवाचार्यं राजपुरुषप्रस्वतः ।
अरिष्टं गृहं पन्थार्यं या भूलकाण्डस्य पर्यं॥ २॥

क्षण ध्राप विलम्ब न कर राजकुमारों को लेकर नाव पर सवार ले। जिससे साथे में (पर्यायायंति ते) किसी प्रकार का काम में है॥ ३॥

विश्वामित्रश्वेतयुक्तं तारमणिनिर्मिति च ।
ततार सहिष्ठताभ्यां सरितं सागररामामु ॥ ४॥

यह लुम, विश्वामित्र जी ने उन सुनियाँ को पुजा की और सागरसमीती उन नदी के उस पार पहुँचे॥ ५॥

ततः सुखाधिव तं शव्दमंगलतिसरसम्बन्धनसू ।
मध्यमागर्भ तैयास्य यह रामः कन्यापि ॥ ५॥

जब नाव वीच धार में पहुँची तब वहाँ जाक तक पछतें के परस्पर राक्षस का शत्रु ध्वीरमवंद्र और उनके छोटे मारे भाई बलमात्र जी ने खुला॥ ५॥
अथ रामः सरिनमात्ये प्रस्य शुनिनिवाचसः।
वारिणो भिष्माणस्य किमयं तुमले भवनिः॥ ६ ॥

तत् नान्तु पर स्वार श्रीरामचर्या जिनेवा विख्यातिमात्र जो तेषु पूर्व विकृते।
क्षितिजः महाराज! यदि ते तुलिन शब्दे हे रहा है, ते वा ज्ञाते तले करक्षयने का है।
(अथवा इस शब्द का कुलश्रीरकारण है? )॥ ६ ॥

राघवस्य वचः श्रुता कौतुहलसमन्वितमू।
कथयामास वर्मात्या तस्य शन्दस्य निष्प्रयमू।॥ ७ ॥

कौतुहलपूर्णे श्रीरामचर्यां जिनेवा यथा प्रक्ष खुदू, विख्यातिमात्र जिनेवा उस शब्द हेपने का कारण इस प्रकार वर्णन किया॥ ७ ॥

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं सरः।
ब्रह्मणा नरशादूङ्ग तेनेदं मानसं सरः॥ ८ ॥

हे राम! कैलास पर्वत पर ब्रह्मणा जो ने भ्रमने मन से एक घरोवर बनायी। हे नरशादूङ्ग! मन से बनाने के कारण उसका नाम “मानसरोवर” पद्धः॥ ८ ॥

‘तस्मात्तस्तुसाय सरसं श्रायोध्यायुवश्च।
सरःभक्तः सरयूः पुण्या ब्रह्मसर्वत्स्यत्॥ ९ ॥

ब्रह्मणा के उसी मानसरोवर से निकलो हुई पवित्र सरयू नदी
जो अवेस्या होती हुआं वहते है॥ ९ ॥

तस्यायमत्तुः शन्दो नाहिसंवितं विनते।
वारिसंशोभयो राम मणां नियतः कुरु॥ १० ॥
यहाँ गद्दा जी से मिलती है। इन द्वारों सतिरायों के जलों के
पुरुष सरकार कराने से यह शव्द होता है। तुम इनके मनोरंजन दयुक्षः
प्रयाम करे। ॥ १० ॥

ताम्यां तु तावुभां कुत्ता मण्डामसतिधारिनिः।
तीरं दृषिकोणासारं जग्मरुतूहुचिनिः। ॥ ११ ॥

द्वारो रज्जुमारों ने वन जनायों का प्रयाम किया। इतने में
उनकी नाव भी दृष्टिय तट पर साधन में जा लगी। वहां से तालीय
नाव से उत्तर कर गारे चले। ॥ १२ ॥

स वनं चरसंकारं दृश्या नृपवरात्मजः।
अविष्टहलङ्कारस्य प्रमच्छ मुनिपुज्वस्य॥ १२ ॥

द्वारो रज्जुमारों ने चलते हुए एक बड़ा सधनक निर्जन वन
देखा। उस निर्जन वन का देख धीराधीरचन जो ते विचारित जी से
पुछा। ॥ १२ ॥

अहूँ वनमात्रतं दुर्गा भिलिलकागणनादिकस्म।
थराभ: स्नात्सर: कौण्ड शकुन्तलेदार्शनाते। ॥ १३ ॥

कहो! नामिष, यह वन ता बड़ा ही सधनक देख पड़ता है।
इससे भौगुर संकार कर रहे हैं धीर बढ़े बढ़े भयानक जीवों के बाद
से यह परिपूर्ण है धीर वाज़ पत्ती भी बड़ी दासु। वेली भेल रहे
हैं। ॥ १३ ॥

नाणापकारं: शकुन्तलेवश्यद्रिः सर्वनामेः।
सिंह्यग्राधराः हरारणाधोपशोभितस्म। ॥ १४ ॥

बाज़ पत्ती प्रनेक प्रकार का भयाबह वेलियाँ भेल रहे हैं।
इस वन में धेरिये सिंह, व्याय, वराह धीर दासु भी बहुत देख
पड़ते हैं। ॥ १४ ॥
धवाश्र्वर्णकस्मीतिर्विलाक्ष्यतिनदिनुकृत्तांले
संज्ञानं वदरीभिष कि नेत्रदाहाण वस्मु ॥ १५ ॥
धवा, द्रसंघाद, ध्रुवन, चेल, तेंदुवा, पादसी श्रीरे वैरियों
के उज्ज्वृतों से यह वन कैसा श्रधन श्रीर अर्थव दो गया है ॥ १५ ॥
तथुवाच महातेजा विश्वामित्रो महाशुनिनः
अज्जाः वतत कालुः यस्येत्तद्धारण वस्मु ॥ १६ ॥
यह सुन महातेजजी विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र जी से कहा—
हे बेटा श्रीरामचंद्र ! सुनो, मैं बताता हूँ कि, यह विकट वन
किसका है ॥ १६ ॥
पत्ती जनपद्वा स्फीती पूर्वमास्तं नराचम ।
मलद्राश कल्प्नाय देवनिर्माणानिमित्त ॥ १७ ॥
पहले यहाँ पर देवलोक के समान और घनधान्य से मरे
पूरे मलद्र और कहर नाम के दो देश विसे हुए थे ॥ १७ ॥
पुरा द्वारब्रो राम महेन समभिक्खुतसमु ।
छुरा चैव सहस्त्वस्त्र ब्रह्महत्या समाविष्ट ॥ १८ ॥
हे राम ! द्वारब्रो की आर कर जब इन्द्र अपवित्र धवाश्र्वं में
भूखें रहते थे, तब उनके श्रीरी में ब्रह्महत्या ने प्रवेश किया ॥ १८ ॥
तमिन्द्र द्वारापिन्देवा ऋषयथ तपोपनाः ।
कल्ल्ये द्वारापिन्दाशुमर्याच्य प्रमोचयन ॥ १९ ॥
तव इन्द्र की द्वारतारों और तपस्वी ऋषियों ने प्रथम गग्नाजल
से, फिर छद्रों में मरे मंगलवत जल से उनकी अपवित्रता हुए करने के
लिये स्नान करवाये ॥ १६ ॥
इह सूम्यां मलं दत्तवा दत्तवा कान्तवमेव च।
शरीरज महेन्द्रस्य ततो हर्ष मयेदिरे॥ २०॥
इससे इत्र की ज्ञाता श्री और उनका मल यानी अपवित्रता और
मायामया यहां एक, तब इत्र अपर्याय प्रसव हुए॥ २०॥
निम्नलिखित शुचिनिध्वनिन्य चुचिरिन्यो यदाध्यवत॥
उध्राँ केशस्य सुनोतो वरं प्रभुर्नितस्य॥ २१॥
जव इत्र निम्नलिखित, निम्नपाप और पवित्र हो गये तव उन्होंने
प्रसव हो। इस देश का यह उच्चम वर्ण दिया॥ २१॥
इसना जनपदों स्पष्टों स्वाति तोहे गपितय॥
मलदात्र फलशाश ममाृजमलमारिनो॥ २२॥
मेरे गरीब के मल की भाषा करने वाले मलनु और कल्लु
गों से विश्वास और धनधान्य से भरे पूरे हो देश तीनों लोकों में
प्रसिद्ध होने॥ २२॥
साधु साधविति तं देवां पाकशासननुनवन॥
देशस्य पूजां तं देशा कुर्तं श्रेष्ठं भोगता॥ २३॥
इत्र का यह वर्ण खुन और उन देशों की इत्र अप्रियता
देश सव देशता “साधु” “साधु”—कहूं यह भुक्ता हुआ, कहूं
प्रच्छ छुआ—कह कर इत्र को प्रयास करने लगे॥ २३॥
पूतों जनपदों स्वातीय दीर्घकालमरिदम॥
मलदात्र फलशाश श्रद्धिता धनधान्यत॥ २४॥
हे अरिर्म्स। ये देशों मलद और फलस्य देश, कहूं दिनों तक
धन धान्य से भरे पूरे वने रहे॥ २४॥
कर्त्तव्यितथ कार्यस्य यशस्वः वै कार्यकर्मि।

वर्जः नागसहस्सयं भारयति तदा हस्यतु॥ २५॥
कुल्ल दिवसोऽवाद यद्वः पुक्त स्वेच्छाचारिणी बलिणः पैदा है॥ २५॥
उसके शरीर में हज़ार हाथियों का वल है॥ २५॥
ताठका नाम यद्वते भार्यां सुन्दरस्य धीयताः॥

शारीरमा राव्यः पुत्रो यथाः मार्कपराक्रमः॥ २६॥
उसका नाम ताठका है और वह खुल जी है। उसके
मारीच नाम का पुत्र उत्पद खुदा, जो इन्द्र के समान राक्षसी
है॥ २६॥

हटचवाहुमहावीर्य विपुलास्यतुरुपहान्।
रास्से भैरवाकारो नित्य त्रासयते प्रजा॥ २७॥

वह बड़ी बड़ी वाहे, बड़ा सिर शैव वहे में हुँच वाजः तथा व्यति
भयानक शरीर वाजः राव्यः यानी मारीच, नित्य ही प्रजा के
हताय करता है॥ २७॥

इन्हीं जनपदीं नित्यं विनाशयति राष्ट्रव।

मलदांश्च कर्मणांश ताठका दुष्टचारिणी॥ २८॥
है राष्ट्रव! वह दुष्टा ताठका या ताड़का इन देवों मे पूरे
mलदू और कुल्ल पैदा की नित्य ही उजाड़ करती है॥ २८॥
सेयं प्रलयमावृत्त्व वस्त्रयुप्यवे जने।

अतएव च गतन्त्रयं ताठकाय वर्ण यत्॥ २९॥

वह यावनीं इस मार्ग को रेके हुए यहाँ से ब्राह्मव ये।...
अद्यतन्त्व द्वा केस्त बरहते है॥ । अतः घर ताड़का के वन में चलना
चाहिये और॥ २६॥
स्वाहात्मकार्यमात्र जहरीलां दुष्कारिणी!

यस्योगादिम् देशं क्रृष निष्काष्टकं पुनः || १० ||

मेरे कहने से हुम अपने वाहुवल से श्रव यक्षी का

चर कर, इस स्थान के पुनः निष्काष्टक वला दो || १० ||

न च मणिबिंद्मिः देशं शान्तेयाखण्डमुखिनम्

यस्या घेराया राम चतुर्दितमस्वर्ग्या || ११ ||

हे राम! इस दुष्का के देव के मारे, भाने की आवश्यकता होते

हुए भी, कोई यहाँ नहीं धारा। ऐसा कोई जब जब यह अभ्यं

यक्षी क्रृष पवित्र देश के ग्राम उड़ उड़ उड़ पावे || ११ ||

एतने सर्वमण्डत्तार्थं यथेतरं चन्द्रा चन्द्रा

यस्या चाचत्तादित्वं सर्वमहापाणि न निवर्तने || १२ ||

इति चतुर्दित्म सर्गः ||

जिस प्रकार यह स्थान विश्रां वन वना है तथा जिस प्रकार

व्राह्म इस स्थान की रत्नै की जा सकती है तो मैंने तुम्हें

वतला दिया, वह दुष्का यक्षी ग्राहे भी अपनी दुहता से बाज़

नहीं धारा || १२ ||

वालकायद का बैरवसर्वं सर्ग समाप्त बुझा ||

—१२५—
पञ्चविंशः सर्गः

अथ तस्याप्रथमपश्चय सुनेवरचनमुच्चमस्।
शुत्वा पुष्पशार्दूलः पत्मुवाच शुभां गिरसं। ॥ १ ॥

वणित प्रसावशाली श्रविष्णुष्ट विन्ध्यामित्र जो के ये उत्तम तचन
श्रुत, पुष्पशार्दूल श्रीरामचन्द्र यह शुभ वचन वाले। ॥ १ ॥

अल्पवीया यदा यक्षः श्रुतन्ते गुनितपक्षः।
कर्यं नागसहस्रस्य धारणेयत्वचला वलम्। ॥ २ ॥

हे गुनितपक्षः। छुटते हैं यत्र जाति तो श्रुप वल वाली होती
है। तव इस ध्रुवला ( अर्थात् यज्ञकोष ) के शरीर में हजार हाथियं
का वल कथौं कर आ गया। ॥ २ ॥

. तस्य तदचनं श्रुत्वा राधवस्य महात्मनः।
विन्ध्यामित्रोजन्वीदार्क्य ध्रुण येन वलोचनरा। ॥ ३ ॥
श्रीरामचन्द्र जो के इस प्रकार के लघु महात्मा विन्ध्यामित्र वाले—
हे राघव। गुनिते, मैं कहता हूँ, जिस प्रकार यह वलिनी
वलवती हुई है। ॥ ३ ॥

वर्द्धानकृत्त नीरं धारणेयत्वचला वलम्।
पूर्वसारीमहायमः सुकेतुर्काम वदर्भवानः। ॥ ४ ॥

यह ध्रुवला वर्द्धन के प्रभव से इतनी वलवती हो गया है।
सुकेतुर्क का एक बड़ा वलवान यह था। ॥ ४ ॥
अनपलः शुभाचारः स च तेषे महत्तपः।

पितामहस्तु सुप्रीतसस्य यक्षपतेष्ट्रदः॥ ५ ॥

हे रामः सद्विचारः हाने पर भो। उसके काही स्नान न था।

चतुर्थम उमने यह तप किया। तब प्रस्तुत हि उस यज्ञपति का प्रहा

जो ने॥ ४ ॥

कन्यारत्नं दृढः राम ताटका नाम नामतः।

बलं नागसहस्तस्य दृढं चास्यः। पितामहः॥ ६ ॥

tाटका नाम कर एक उत्तर कन्या प्रदान की। ब्रह्मजी ने

उसके शरीर में हजार हायियाँ का वल भी दिया॥ ५ ॥

न तेव्रे पुज्रं यज्ञाय दृढः ब्रह्मा महायज्ञः।

वां तु नातां विनयवेद्विती रूपायवनशालिनीम्॥ ७ ॥

किन्नु, महायज्ञारी ब्रह्मा जा। ने भम यज्ञ के पेशा बली पुजा

दिया। जब वह लड़की बढ़तीं बढ़तीं रुप और योजनशालिनी

खी छटी॥ ७ ॥

जम्भपुज्ञाय सुन्दरः दृढः भार्या यशस्विनः।

कस्यचित्तवर्यान वायस्य दृढः पुरुषं व्यज्ञायत॥ ८ ॥

tव उनके पिला ने उमका बिवाह जस्म के पुज्र सुद के साथ

कर दिया। भैरे दिनो वाद इस यज्ञकी के एक पुज्र अवस्था

दिया॥ ८ ॥

मारीवं नाम दुर्घर्षं यः शापादासासः।भवतः।

हुन्दे हु निहले राम सागस्तं शुनिपुष्ठवम्॥ ९ ॥
उस का नाम मारीच है और यह बड़ा बलवान है। यह वह होने पर सो शापवान राजस्थ नुभा है। हे राम! जब ध्रुवंकु र जी ने छूट की शाप दे कर मार डाला।। ६।।

ताटका सह पुत्रेण प्रभर्पितमिक्षति।

अश्वायं जातसरस्मा गर्जन्ति साक्ष्यथावत्।। १०।।

तब ताटका ध्रुवेन पुत्र सहित ध्रुवस्य जी को खाने के लिये गरजती हुई दौड़ी।। १०।।

आपतनां तु तां द्रष्टा अगस्त्यो भगवानुपि।

राहसतलं मनोत्स्तोति मारीच व्याजाहार स।। ११।।

उस यज्ञोक्ति के ध्रुवेन और भगवान ध्रुवस्य अार्यी ने उसके पुत्र मारीच के वह शाप दिया कि, "तू राहस हो जा।"

अगस्त्य: परमकुज्जलतांकामपि बलमान।

पुरस्वादी महायस्ती चिन्हा चिन्हानना।। १२।।

फिर ध्रुवस्य जी ने प्रत्यक्ष कूदित हो ताटका के भी शाप दिया कि, तू मनुष्यसम्बन्धी हो। तू घोर तेरी शक्त जूरी और समय-

इदृं रूपम् विहायाय दार्शण रूपस्त्तु ते।

सैवा शापकतांस्यं ताटका क्रोधसूचिता।। १३।।

तेवा यह रूप न रहे। तू विकराल रूप वाली हो जा। यह शाप। ।

छूट ताटका प्रत्यक्ष कूदित हुई।। १३।।
पालेविष्णूः सन्: ॥ १५६ ॥

dेषसुरसायतयः पेनमगस्त्यचरितं शुभस्।
पत्रां राघव दुर्गेत्तां यव्हिं परमदारकाण्। ॥ १४ ॥
गोवर्धनविनायकं जलिं दुर्गपराक्रमां।
नहेनां शापसंसूट्यं कथितुस्तां पुमान्यं। ॥ १५ ॥

वेद एत राधां तातका इस पवित्र देवेन तुज्जाड़े वेदी हैं। प्राकृत प्रागस्थ्य जो दृष्टि देवेन में तपस्या करते थे। अल्पवाल है राम। भाष इस दृष्टि, परम द्राक्ष श्रीर दुर्ग पराक्रम वाली तातका का मार कर मै भाषाप्प का वित्त साधन किया। प्रवाके
प्रीत देवरी मनुष्य देव आपसुक्तां की नहीं मार सकता। ॥ १४ ॥ १५ ॥

निर्माणुः त्रिशु दोक्षेषु त्वामृतं रघुनन्दनं।
न हि ते व्रीणूपत्रे घृणा काय। नरेजयय ॥ १६ ॥

नेनारम। नैनों लोकों में तुमकी ढाड़ पेशा श्रीर और कोई
नहीं है। ते। इसे मार नके। प्रेमी घृणा का वष करने में तुम्हारे मन
में घृणा उत्पन्न न होती चाहिये। ॥ १५ ॥

चातुर्वेदप्रिविनायं करंवं राजसूतुना।
नृत्यसंपत्रेसं वा मनारस्यकार्णणात। ॥ १७ ॥

चारों वेदों का दिलसाधन करना राजकुमार द्वीरवित चाहिय
का कर्तव्य है। प्रजा की रत्न के लिये चाहे घृणे काम करने
पैं चाहें गुरे। ॥ १७ ॥

पातंक वा सद्रापं वा कर्तव्यं रक्षता सदा।
राजभारनियुक्तकानायेः क्षमं सनातन। ॥ १८ ॥
प्रजावचन के कार्यों के करने में भले ही दृष्ट या पाप ही व्या न जगे, किन्तु राज्य को रचना का भार उठाये हुए स्त्रियों के लिये सब प्रकार भ्रष्ट को रचना करना ही, उनका सनातन धर्म है।

अन्यथा जहि कालकृत्य धर्मों ब्रह्मण न विचारे।
श्रवण हि पुरा श्रद्धो विरोधनुष्टि रूप।।
पृथिवी इन्स्थित्स्थिती मन्थरमहान्सुदयथ।
विष्णु च पुरा राम भूगुपति दछात्ता।
अतिरिक्त कालस्थिति काव्यमाता निश्चितिः।

हे राम! इस धर्मस्थिति लाब्धि की मात्रवें, इसमें तेरा तिल भर से धर्म नहीं है। जुना जाता है कि, पहले विरोधन राजा की बढ़कर मन्थरा के, जो पृथिवी का नाश करना चाहती थी, इद्देने से मार डाला था। इसी प्रकार हे राम! भगवन् विष्णु ने भी भूगुपे की पतिव्रता पछी ओर शुक की माता के, जो इद्दे का नाश करना चाहती थी, मार डाला था।। १६ २०।।

एतैरन्येश्वर महुभी राजपुत्र महात्मा।
अथग्निरता नायर्ष हताः पुरुषसम्बें।। २१।।
	सत्ताधैन्य घुप्तां त्यक्तवा
जहि मच्छासनलन्तुप।। २२।।

इति पश्चिमविश सर्गः॥

इसी प्रकार अनेक पुरुषों राजपुत्रों ने समय समय पर अनेक धार्माचरण वाली हिमें का वच किया है। अतएव
तुमको भी मेरी प्राणा से इस दुःख यात्रिकी का मारने में किसी प्रकार का विचार न करना चाहिए। ॥ २१ ॥ २२ ॥

वालकागद का पचीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

---

पद्विश्वः सर्गः

मुनेवरचनमढ़कीवर्षु श्रुत्वा नरचरात्मजः।
राघवः प्राणलिप्ल्लवा मत्युवाच जठातः ॥ १ ॥

इड़कत व्रजरथनंदन श्रीरामचक जी ने अभिप्रवर विश्वासित जी के बाध्यव अखान्त, उत्साहवक वचन सुन हाथ आइ फर यह उच्च दिया ॥ २ ॥

पितुरचननिन्दे सातिनित्तिवर्चनारवादः।
वचनं कौशिकस्येति कर्त्त्यमयविशक्त्या ॥ २ ॥

प्रपने पिता की प्राणा से और उनकी शतर रखने के लिये, प्रायके कणनात्सार नि:गृहु दै। कर कार्य करना, मेरा कर्त्त्व हैं ॥ २ ॥

अनुशिष्टा कृपायेवेत्याया गुस्साधि महात्मना।
पित्रा दशरथेनाहं नावजे न हि तयथा ॥ ३ ॥

क्योंकि महाराज ने गुरु वशिष्ठ जी के साथे प्रायोज्या से प्रस्ताव करते समय मुनेके यह प्राणा दी है। ज्ञातः भी उस प्राणा की प्रवश्या नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

चारं दशं—१३
साज्जिं पितुर्वेचः श्रुत्वा शासनादृशमवादिनः ।
करिष्यामि न सन्देशस्वत्तकावधसृष्टिम ॥ ४ ॥

प्रतः पिता को प्राणानुसार आपके कहने से तात्का का वचन निस्संदेह हो करुँगा ॥ ४ ॥

गैत्राब्दिकादितार्थाय देशस्त्यास्य सुखाय च ।
तव चैवापमेयत्य वचनं कर्तुमुद्रतं ॥ ५ ॥

में आपके कथनानुसार तात्का की मार कर गैत्राब्दि का हित साधन करने तथा इस देश के वासियों की सुखो करने की तैयार हूँ ॥ ५ ॥

एवमुक्तवा धनुर्मध्ये वद्दा सुषिदासिन्द्रमः ।
व्याघातमकरोजित्रं दिशं श्रद्धेन नातुवनं ॥ ६ ॥

यह कह वीर धनुष हाथ में ले, श्रीरामचर्य जी ने दृश्यों
दिशाओं की प्रतिभानिषिन करने वाला, प्रत्यस्त (धनुष को डेढ़) को टंकार कर, घेर शब्द किया ॥ ६ ॥

तेन श्रद्धेन विच्रस्तास्तात्तकावनयासिनः ।
तात्का च सुरसुकुंडः तेन श्रद्धेन मोहिता ॥ ७ ॥

उस शब्द की चुन तात्का के वचन में रहने वाले जोगधारी
वहुत हरे । तात्का उस शब्द की चुन बहुत झुपित हुई वीर उस
समय ध्यान कर्तुव्य निष्ठित न कर सकी ॥ ७ ॥

तां शद्भदमिनिध्याय राजसी कुपसूचिता ।
श्रुत्वा चाभ्यद्रवेगङ्गायत: शब्दो विनिन्द्वतः ॥ ८ ॥
वह प्रत्यक्ष कि पिता राजसिक उसी बेग जिस बेग शन्त श्रद्धा या बड़े बेग से सफ्पति || ॥

तां हस्त्रा रायवः कुट्रं विकृतां विख्यताननाम् ।
प्रामाणेनातित्रा च लक्ष्मणं सागरभाषात ॥ ९ ॥

इस नहो संस्कृत बेग, बेग विक्रमर छप वाली, जलमुखी, कपपित राजसी की द्रौपदी भ्रामरमाण जी ने लक्ष्मण जी से रहा ॥ ६ ॥

पत्रलक्ष्मण यशस्विन्याः भैरवं द्राश्चां वचः ।
भिच्छेदन्तर्जनादाया भीरस्त्र दृश्यानि च ॥ १० ॥

देशो लक्ष्मण। इस यथिसिष्ठ का शरीर केषा मध्यकर ब्राह्मण विकट है। इसे देखते ही हर्षाएकों के दृष्टि में काँप उठते होते ॥ १० ॥

एकं पत्रलक्ष्मण दुराराध्यां मायावचसर्मान्तिताम् ।
चिन्तात्त्रा करोम्यच हृतकर्ण्यानन्तिकाम् ॥ ११ ॥

देशो, इस विकट मायाविनी ब्राह्मण हुर्जे या के कान और नाक काट कर, मैं प्रभो संगाये देता हूँ ॥ १२ ॥

न हृतकर्णस्ते हन्तु स्रीवंभोजः रक्षिताम् ।
वीरं चास्या गति चापि इन्द्रियापाति मे प्रति ॥ १२ ॥

क्योकि छोटी की जान लेना ठीक नहीं, छोटी की ता रेता करनी चाहिए। किन्तु मैं इससे हाथ पैर तोड़ कर इसे धार अगे हुए करने अभाव न रहने हुए ॥ १२ ॥

परं भूवणे रामे हु तात्का कोषमूर्छिता ।
उद्रम्य वाहू गर्जन्तिरी राममेहाम्यभावत ॥ १२ ॥
श्रीराम जी पेशा कह ही रहे थे कि, प्रत्यय कुपित ताटका हाथ बढाये और गरजती हुई श्रीरामचन्द्र जी की श्रीरामचन्द्र सफही। १३।

विश्वामित्रस्तु वहाँईहुँद्रारेिणाभिभत्त्य तासू।
खससि राधवेिस्तु जयं श्रीवाम्यभापत ॥ १४॥

यह देख भक्ति विश्वामित्र ने “हूँ” कह कर, उसे हपटा श्रौर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण का श्रीरामचन्द्र देश कर कहा कि, तुम्हारी जय है। १४॥

उज्जव्वाना रजो धेर ताटका राधवादी।
रजोमेिहिन महता श्रृःति सा व्यमोहयतु। १५॥

इतने पर भी ताटका ने इतनो घूल उड़ायो कि, कुछ देर तक राम श्रौर लक्ष्मण के कुछ में न देख पड़ा। १५॥

ततो माया समस्थाय शिलावर्गः राणवः।
अवारिकसुभला शतशक्रोऽराषवः। १६॥

ताटका ने पेशी माया रची कि, वह दिखी दिखी श्रीरामचन्द्र जी श्रौर लक्ष्मण जी पर पत्थरों की वर्षा करती रही। यह देख श्रीरामचन्द्र जी प्रत्यय कुछ हुए। १६॥

शिलावर्ग महतस्यां शरवर्गः राणवः।
प्रत्यष्ठया प्रशालनां करै चविच्छेद पत्रिभि। १७॥

श्रौर श्रीरामचन्द्र जी ने उस महती शिलावर्गी की वाणों हें। वंदू कर दिया श्रौर वाणों ही से उसके दूसरों ताहों को भी कोड़ा। १७॥
तत्त्विको सर्गः ।

तत्त्विकक्रमशुर्जमा श्रान्तामण्याशो परिवर्ज्यतीत्म ।
सौमित्रिकरोअलोकाद्वितकरणान्तसिकायु । १८ ॥

भुजामा के तत्व जाने से यात्रा, किन्तु तिस्त पर भी उसे गरजते हुए ध्यान समीप भारते देख और कुछ द्वारा, नद्वार जो ने उसके नाम कान काट दाले ॥ १५ ॥

कामखुजहरा सधं कृत्र ख्याप्यनेकर्षः ।
अन्तर्गतं गता यशस्म मैहिन्ती च मायया ॥ १९ ॥

वह कामखुजहर तुर्लत प्रदेश प्रकार के रूप धार्य करते लगी और राजकुमारों को धृष्टांता देने के लिये कभी कभी ध्विग मी जाने लगी ॥ १६ ॥

अक्षमवर्ष भिन्नकुन्ती भैरव विचार ह ।
तत्त्वावश्यप्रेषण कौर्यमाणी सम्भानम् ॥ २० ॥

प्रदेश ध्विगे ध्विगे वह विफल विद्याधर पूर्व धृष्ट कर पत्थर बरसाने लगी । जानो और से राजकुमारों पर पत्थर बरखते ॥ २० ॥

हृद्य गाधिःसुतः श्रीमानिव वचनमचवीतुः
अर्थ ते घृणया राम पापैः ह्रद्वारारिणी ॥ २१ ॥

देश, श्रीमान। विलयामित जो ने श्रीरामचन्द्र जो से कहा—हे राम । वस, कहत हुआ । प्रब इस पापनी दुःख पर अधिक द्वार दिखलाने की आवश्यकता नहीं है ॥ २१ ॥

यज्ञिन्द्राकरी यशसी पुरा वर्षेन मायया ।
वध्यतान तावदेवशा पुरा सन्यास प्रवत्तर्ते ॥ २२ ॥
बालकायदे

यदि इसकी छूट दौगे, तो यह यह में विश्व डालने वाली माया
द्वारा फिर प्रवाल पड़ जायगी। सन्न्या होने के पहले ही तुम इसे—
फलपत्र मार डालो। || २२ ||

रक्षासिं सन्न्याकालेपु दुर्योगाणि भवति हि।
इत्युक्तस्तु तदा यशोमथ्यस्त्याभिवर्त्तीसू। || २३ ||
दुर्योगाचालद्विधितं तां खोय स सायकः।
सा रूढा शरजाजेन मायावलसमन्तिता। || २४ ||
अभिहुद्राव काकुस्तथः क्षमणं च विनेदुपी।
तमापतन्त्वैः वेगेन विकान्तामजानीविव। || २५ ||

क्योंकि सन्न्या वेला में वचनों का वल वढ़ जाता है। यह
कह कित्वामित्र ने पत्थर वर्षाने वाली वही की श्रीरामचन्द्र की
दिखा दिया। श्रीरामचन्द्र जो ने शन्येभी वायों से उसे चारों और
से बेह लिया। वह मायाविनी और चलती पलिनी शरजाल में
विरी हुई दोनों राजकुमारियों पर गर्जती हुई सपनों। उसे विजली की
तरह वड़े बंग से वर्तनी और प्राप्ती हुई देख || २३ || २४ || २५ ||

शरेरोगरसिं विचार सा पपात ममार च।
तां हतां भीमसंकाशां हृद्रा सुरपतिस्तदा। || २६ ||
श्रीरामचन्द्र जो ने उसकी चार में एक वाणा ऐसा मारा कि,
वह पृथ्वी पर जिर ढोंगी और मर गयी। उस विक्राल धप वाली
चिन्ही का मारी हुई देख, इत्यादि || २७ ||

साहु सावित्रि काकुस्तथं शुरुशं सम्पूजयन।
वच्च भरमणातः सहस्रायं पुरुर्द्रो || २७ ||
पद्विराज सर्गः

प्रादि देवता श्रीरामचंद्र जी की स्तुति करते लगे ध्रुव और इंद्र
परम प्रसाद द्वारे ॥ २७ ॥

सुराष्ट्र सर्वं संहुष्णा विश्वामित्रमथाब्रवुः।
मुनि कौशिक भृद्धि ते तेनान्त्र सर्वं मन्द्रवणः ॥ २८ ॥

सब देवतागण मनस  हा विश्वामित्र जी से बोले—“हे कौशिक
मुनि! आपको कल्याण ही, इंद्र सहित हम सब देवता ॥ २५ ॥
तापिता: कर्मणा तेन स्तेन दर्श्य राघवे।
प्रजापति: कृष्णश्वस्य पुत्रान्त्वतप्राकरमाः ॥ २९ ॥

श्रीरामचंद्र जी के प्रसन्न कार्य से परम संतुष्ट द्वारे हैं। अब तुम
श्रीरामचंद्र जी पर विश्वास स्तेन प्रसन्नित कर, कृष्णश्व प्रजापति के
सत्यपराकर्मी अध्यक्ष गज भृद्धि अज पुनः हैं, ॥ २६ ॥

tपाशुतह्वत्तानप्रहन्राजवाय निवेदय।
पानबन्धुने तै बहसवंतवानवजने श्वतः ॥ ३० ॥

दे सब तत्पती एवं बलबान श्रीरामचंद्र जी का दे हो।
क्योंकि दे इतने आपवान हैं और आपकी इंद्रतुलकार काम करने
वाले हैं। प्रथम आपको सेवा शुभ्रण मन लगा कर करते वाले
हैं ॥ ३० ॥

कर्तव्यं च पहलूम सुराष्ट्रां राजसुनुना।
एकमुख्त्वा सुराः सर्वं जगमुहुः यथागतमू। ॥ ३१ ॥

विश्वामित्रं पुरस्कृत्य ततं सन्न्या प्रवतंते।
ततो गुरुनिः प्रीतस्ताकारकृत्यतोपितः।
सूर्यि रामसुपाद्राय इदं वचनयववीतः ॥ ३२ ॥
वालकायडे

शैर ये राजकुमार देवताओं के वड़े बड़े काम करते। यह कह शैर विष्णु बिष्णु मित्र जी का पूजन कर, तब देवता जहाँ से प्रायोजन, वहाँ प्रसन्न न बूढ़े लौट कर चलो गये। इतने में सत्य ही गये।
तव मुनिवर विष्णु मित्र ताटका के तध से प्रसन्न ही। शैर श्रीरामचंद्र जी का माथा दूँग कर यह बताये॥ ३१॥ ३२॥

इहाच रजनी राम वसेम श्रमदर्शन।
श्रमभाते गमिष्यामस्तदाश्रयपद्म मम॥ ३३॥
हे श्रमदर्शन राम। ब्रज की रात यहीं विधाम कर, प्रातःकाल होते ही हम यथापने आश्रय को मैं चले।॥ ३३॥

विष्णुमित्रवचः श्रुता हृद्यो दशरथामजः।
उवाच रजनी तस्मात ताटकाया वने सुखमुः॥ ३४॥

विष्णु मित्र जी के हन वचनों को सुनने श्रीरामचंद्र जी प्रसन्न हुए। रात मर सुखपूर्वक ताटका के वन आ से विधाम किया॥ ३४॥

सुखशापं वनं तत् तस्मात सुधर्मवे तदाहिनि।
रसणीयं विव्रजाज तथा चैत्यरथं वनमुः॥ ३५॥

ताटका जिस दिन मारी गयी उसी दिन से ताटका के वन का शाप छूट गया और वह चैत्यराथ वन की तरह ज़्यादात रमणीय हो गया॥ ३५॥

निहत्य तां यस्मात् स रामः।
भवस्यमानः सुरसिद्धसंताः।
उवाच तस्मिन्मुलिना सहेम
मन्त्रवेलों मतिवोध्यमानः॥ ३६॥

इति पद्मविषः अर्धः॥
सत्यिविश्व: सर्गः

अथ तां रजनीगुप्त विश्वामिश्रो महायातः।
प्रहस्य राज्यावं वाक्यमुवाच मधुरालः।
उद्ध रत्म बहुं विवास कर महायानवी किश्वामिश्र ने मुख-
हुद्रा कर मधुरसागरोऽसे श्रीरामचन्द्र जी ने कहा।
परितुःश्रीमस्मि भृद्रू ते राजपुत्र महायातः।
शीत्या परयः युक्तो द्राक्ष्यालाणि सर्वशः।
हे महायानां राजयुक्तः में तुमस्ते बहुत सन्तुः हैं श्रीराम
तुमकी प्रसन्नता पूर्वक सयध्रा देता हैं।
देवान्त्विसनाल्यापि समष्टीविरागानपि।
पीरिमिश्रानसहायो वशीकृत्य जयिस्यिः।
इन चक्र्योऽसे तुम तुर्त, घन्तर, गन्धर्व श्रीराम नाना भावि अपने
नाम्योऽसे अपने चक्र्योऽसे फर जीत लोगोऽसे।
तानि दिव्यानि भृद्रू ते द्राक्ष्यालाणि सर्वशः।
द्राक्ष्यालाणि महादिवः तव दास्यामाणि राज्याव।
चर्मचर्मं ततो बीर कालचर्मं तथेऽवः
विश्वचर्मं तथात्स्तयुग्रमात्मस्य तथेऽवः
हे बीर ! यह लोक चर्मचर्म, कालचर्म, विश्वचर्म, बड़ा पैना बुद्धाक्षः

वज्रमस्त्रं नरशेष्ट्र शैवं शूलवरं तथा
अस्त्रं वहनसिरवै ऐणीकषिपि राधवः
हे नरशेष्ट्र ! यह लोक वज्रार्क, महावीरार्क ! हे राधव ! यह है वहनशिर श्रीर ऐणीक्षिपः

दद्रामि ते महावाहो व्रह्ममालस्तमुच्चम्
गदे द्वे चैव काकुतस्थ मेद्रकी शिखरी उभे
हे राम ! में तुम्हें तव र्स्यों से बढ़ कर यह व्रह्माल्स्तमुच्छ देता।

सदीसे नरशेष्ट्रुज्ञ प्राच्छामिन तुपालम्
प्रमपाश्रमेव राम कालपाश्रं तथेऽवः
हे राजकुमार राम ! में तुम्हें यथार्थ त्रेव प्रमपाश्र श्रीर काल-पाश्र नामक व्रह्म देता हैः

पाण्डवाच्छामि च दद्राम्यहमस्तमुच्चम्
अश्वनी द्वे प्राच्छामिन शुक्कार्के रघुनन्दनः
यह लोक व्रह्माल्स्त्र, शुक्क श्रीर अश्वनी नामक दो वज्रः
उद्धारे चार्यं पेनाकम्प्रं नारायणं तथा।
अग्निमस्त्रं दृष्टिं शिखं नाम नामतं।॥ १०॥
यद लोच पेनाकम्प्र, नारायणां श्रीर ग्राम्येवास जिसका नाम
शिखरं है॥ १०॥

वायुव्रं जाहनं नाम दृष्टिर्च च तत्तवः।
अम्बं हयशिरो नाम कौशिमस्त्रं तथेऽव च।॥ ११॥
शालक्षिर्यं च काकुलस्त्र दृष्टिर्च तव राखव।
केदारं मुसलं श्वारं करालमथ कुद्रणम्।॥ १२॥

इह राम! यद लोच प्रथम नामक चायवाल्ल, हयशिराधश श्रीर
कौशिमस्त्र। मैं दी शालक्षिर्यं भी तुम्हें देता हूँ। मैं तुम्हें प्रव अयणुर
कुद्रणमथ नामक मुराल, कराल मोर कुद्रणमथ देता हूँ॥ ११॥ १२॥

धारणलुमा यानि दृष्टिर्चतानि सर्वत्रः।
वेघारं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः॥ १३॥

मैं तुम्हें वे तप महा हृदता हूँ। जो राज्यों के वर के लिये
शिखरं है। यह वियाल्लराल्ल है और यह नन्दन नामत॥ १३॥

असिरतं महावाहो दृष्टिर्च नवरातमन।
गार्भेमस्त्रं दृष्टितेव मानवं नाम नामतं।॥ १४॥

उच्चम नलवार, है राजसुमार! मैं तुम्हें देता हूँ। यह लो
altimore, श्रीर व्या रामानवार॥ १४॥

/ प्रस्थापनमथमने दृष्टि संग्रं च राखव।

दृष्टिपं शालणं चैव संतापनविलापने।॥ १५॥
वालकावेद

ये हैं प्रज्ञापन और प्रशान, सौर, द्वर्ण, शोपश, सन्तापज और ज्ञानपन || १५ ||

मद्या चैव दुर्थरं कन्दर्पद्वितं तथा।
पेशाचार्यस्त्रू द्वितयं मोहनं नाम नामतं। || १६ ||

(ये हैं) कन्दर्प देवता का प्यारा दुर्थरं मद्याज्ञानं और यह है
पेशाचार्य, जीरर प्यारा मोहनाज्ञानं || १६ ||

पतीच्छ नरशारूढः राजयुज्म महायशं।
तामसं नरशारूढः सामनं च महावलं। || १७ ||

हे महायशश्च सरस्वती राजकुमार! यह ले तामस और महावली
सामनं || १७ ||

संरत्नं चैव दुर्थरं मौसलं च चूपात्मज।
सत्यमस्त्रं महावाहो तथा मायाधरं परम्। || १८ ||

हे राजकुमार! हे महावाहो! ये हैं संरत्नं, दुर्थरं, मौसलं,
सत्यमस्त्रं, और परमायाधरं मायाधरं || १८ ||

वहाँ तेजस्वी नाम परतेजापनकर्षणं।
सैन्यस्त्रं शिशिरं नाम लघुग्रस्त्रं सुधामनं। || १९ ||

ये हैं तेजस्वी नामक प्रकाश, जिसके श्रुति का तेज खींचा
जाता है। (और ये हैं) शिशिर नामक सामाज्ञा, लघुग्रस्त्र || १६ ||

दारुणं च भगुस्वापि शीतेलमः मानवसम्।
एतानाम महावाहो कामस्वानयहावलं। || २० ||

(ये हैं) दारुणं महावाह, शीतेलं और मानव (नाम के प्रकाशं)
हे महावाहो! राम! तुम इन महावलों कामस्वान || २० ||
सत्विविशः समः

श्रद्धाप परमोदारानिर्माणेऽव न्यात्मजः
स्थितस्तु भाद्युक्तो भूतवा श्रृंगित्विनिवरस्तदा || २१ ||
तथा परमोदार ख्येत्रं के हे राजकुमारः शीघ्र श्रद्धाः करेः
तदन्तर शुद्धिशेष विश्वासिन मे पूर्वः को भौर भुखः करः पवित्र
हे || २१ ||

dृढ़ं रामवय सुमृतो मन्त्रग्रामानुच्छायम्
सर्वसंग्रहः चेष्या देवतरेपी दुर्लभम् || २२ ||

d्वादशः प्रास्तर हे, वन सम्पूर्णः ख्येत्रः के मंत्रः (प्रायों चलाने
झोलास के बिधि) वतनायें, जिन सब ख्येत्रः का प्रास्त औरा
देवताओऽ के लिये मां दुर्लभ हैं || २२ ||

tान्याच्छाण तथा निषो रामवाय न्येवद्रयत्
जपस्तु गुनस्तस्त निष्क्रियायिनय स्थीतः || २३ ||

d्वपतस्तुपर्यायार्णिः सर्वाण्यार्णि रायमस्
ञ्जुषु मुद्यिताः सर्वेऽ रामः प्राणलयस्तदा || २४ ||

d्वे सत्य प्रार्थना विश्वामित्र जी ने श्रीरामचन्द्रः जी के दे लिखे।
(स्वयं श्रीवार्धन विश्वामित्र जी उन संतानों का वचारण करनें
लगे लेहरी) वे मंत्र अपना खातात्रू प्रार्थण कर श्रीराम-
चन्द्रः जी के सामने हाथ धार्डः कर प्रा छढ़े हुए जोर कहने
लगे || २३ || २४ ||

d्वे नम परमोदाराः किंत्र राजस्तथः राजविनः
प्रतिमृगः च काकुत्स्तः समानत्वः च पाणिनाः

d्वैसतः भेः भविष्यभविति तान्यम्बोधियतः || २५ ||
हे परमेश्वर राघव ! हम सर ग्राम द्राक्षे हैं | जो काम ग्राम द्राक्षे लेवा चाहेंगे वही हम करेंगे | तव श्रीरामचन्द्र जी ने कुछ ग्राम द्राक्षे हाथ से कुछ और बेलें—में जव तुम्हारा स्वर्ण केलें । तुम ग्राम द्राक्षे मेरा काम कर जाना !! २५ !!

ततः श्रीमणा रामो विश्वामित्रं महाशुनिम्सू।
अभिवाच महातेजा गमनायोपचक्र्ये !! २६ !!

इति सत्यविष्णु: सर्गं: !!

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने मुनिप्रवर एवं महातेजस्वी विश्वामित्र जी को प्रश्न किया जौर कहा कि, प्रदात्र ( श्रीराम ग्राम द्राक्षे चलिये ) !! २६ !!

बालकावड का सत्राइसवां लघु समस्त हुआ।

---+---

अष्टाबोधिशः सर्गं:

---+---

प्रतिश्रृष्टि ततोवज्ञानि भ्राह्मविद्या गुच्छिः।
गच्छनेव च काकुटस्यो विश्वामित्रमथात्रवीत् ।।१।।

उन सब श्राक्षों की प्रविद्ध पूर्णक प्रहाश कर ( भ्राह्म उन श्राक्षों का से श्रार उनके चलते की विधि जान कर ) मार्ग में चलते चलते श्रीरामचन्द्र जी प्रस्तर हो विश्वामित्र जी से बोले देने !! १ !!

गृहीतान्वितस्मिन भगवन्दुरारस्ते: युरायुरे।
अख्ताण्न तवहमिच्छामि संहारां गुनिपुङ्कव !! २ !!
प्रारंभिकः सर्गः ॥ २०५ ॥

है महावन्। प्राप्तके शान्तग्राह से मुनेके ये प्रस्थ तता सूर घौर प्राप्तरें के लिये भी दुष्प्राप्त हैं, मिल गये, ( घौर उनके चलाने नीचिदि भी मालूम हो गयी, किन्तु अन्य ) मुनेके प्राप्त इनके संहार ( अन्यावल् प्राप्त चलन कर यसे चापस लेने की चिढ़ि ) भी चतला दीजिये ॥ २ ॥

पर्यन्त नुसति काँटअर्ध विश्वामित्रो महापति।
संहारे व्याजदाराय व्यतिमानुवर्त! शुचि ॥ ३ ॥

धीरशन्तक जो ते यह जलने पर महावुद्रिगर, धौर्यवान, खुचर घौर पवित्र कियामित्र जो ने उन मयं मंशाख्यों का संहार भी चतला दिया ॥ ३ ॥

सत्यवन्न सत्यकीति भूर्टं रघसचेत न इ
प्रतिहारतरे नाम पराह्युक्तयथायुक्तमु ॥ ४ ॥

किर घौर भी मंशाख्य चतलाये जो प्रयास चतलाने से रह न हैं ( रे ) उनके नाम ये हैं—सत्यवन्न, सत्यकीति, नृप, रघस प्रति-
हारतरे, परायुक्तमु, अवायुक्तमु ॥ ४ ॥

श्यामरिम्यो चेन्न द्वनामसुनामको।
द्वनामशनको च द्वनामिर्नसतोदरी। ॥ ५ ॥

लद्य, शल्मय, द्वनाम, मुनाम, ब्याजल, शतवक, द्वश्वरी, शतोदर। ॥ ৫ ॥

पदनामहानामसु द्वनामसुनामको।
व्योलियं क्रणं चेनन नेरायम्मिमालारुम। ॥ ६ ॥

पदनाम, महानाम, हुनुनाम, मुनाम, व्योलियं, क्रण, नेरायम्म, निमल। ॥ ६ ॥
योगन्धरहरिद्रो  च  दैत्यप्रमथनं  तथा ।
शुचिवापूर्वहावाहरुपरिभिविचिन्तस्य ॥ ७ ॥
योगन्धर, हरिद्र, दैत्यप्रमथन, शुचिवापूर्व, महाबाहु, निष्ठुल, श्रीर विचिन ॥ ७ ॥
सार्चिराज्जी श्रुतिमाली द्रुतिमाली द्रुतिमालिचिन्तस्य ।
प्रियं स्मारसं चैव विभूतस्वकराणं ॥ ८ ॥
सार्चिराज्जी, श्रुतिमाली, द्रुतिमाली, शब्दोर, पिथ्य, स्मारस, विच्छप, स्मक्र ॥ ८ ॥
करवीरकरं चैव धनधान्यो  च राघव ।
कामस्यं कामवचिं मोहमावरणं तथा ॥ ९ ॥
करवीरकरं, धनं, धान्यं, कामस्य, कामवचिं, मोहं श्रीर आवरणं ॥ ९ ॥
जुम्मकं सर्वनाथं  च सन्तानवरणं  तथा ।
कुशाशवतन्यानान्नयं भासरानामानकरं ॥ १० ॥
जुम्मकं, सर्वनाथं, सन्तानं, भ्रात्र वचशं । विशालित्रत जो कहने लोग । ये तव कुशाशव के पुत्र बड़े तेजस्वी श्रीर कामवचि हैं ॥ १० ॥
प्रतीच्छ  पम  भवं  ते  पाण्यभूतासिसं  राघव ।
वादित्येव काकुष्ठसं प्रहुप्रणान्तात्मा ॥ ११ ॥
इनकी  तुम ग्रहण करो । तुम्हारा कल्याण है । फ्यारे न है राघव तुम इनके ग्रहण करने  के योग्य हो । यह तुम श्रीरामचंद्र जी ।
प्रसन हो कहा “  बहुत ग्रहण ।”  ॥ ११ ॥
दिव्यभाष्यास्तेदाह्रेष्ठेश्वरलोकमरु शृङ्खला:।
केशिर्काश्रयसत्या: केशिर्कपापमातथा:। १२।।
तव देवदर्शन, देवीप्रेमन, मुर्तिमान, श्रीर लखचार ( वे श्रीराधा)
श्रीरामचन्द्र जी के सामने उपस्थित हुए: ) उतने कोई तो दुखकते
हुए श्रीराधा ( श्रीराधा ) के सामने, कोई भुपे के रंग बाले:, ॥ १२ ॥
चन्द्राकंससहस्र: केशिर्कप्रहःधिपुषास्तथा:।
रामं प्राणलोके भूतानांवन्धरभापिणं:। १३॥
कोई चन्द्र श्रीर लखचार के समान थे श्रीर श्रीराधा हाथ जोड़ते हुए थे।
वे श्रीरामचन्द्र जी के पत्री नदिये के साथ बाले: ॥ १३ ॥

इमसं प्र सरसार्णेश्वरे भाषी यिने कारबाह:।
मानसा: कार्यकलेपु साहायये मे करियथ: ॥१४॥

हे नरशार्टून! हम उपस्थित हैं, फलता पासा है? ( इस पर
श्रीरामचन्द्र जी ने सहने कहा: ) अपने मेरे मन में वास करी श्रीराधा
श्राम पड़ने पर मेरी सहायता करना: ॥ १४ ॥

गम्यतार्थिति तानाष्ट्र यथेष्टं रघुनन्दनः।
अथ ते रामरामनमर्य कृत्तवा चार्य प्रदुषिणयू:। १५॥

प्रती तुम नहीं चाहेंगा वहां जा सकते हैं। श्रीराधार जी के
यद वचन हुए तथा उनकी प्रायत्न के प्राण प्रदुषिणया करें, ॥ १५ ॥

एष्टप्रस्तुतानि कालपथसुलब्धः जगपथयायात्मसः।
स च तानाष्ट्रवो ज्ञात्वा विषानामि महामुनिमस । १६॥

वाणं यतं—१४
वालकायणे

"वहुतं वचनया" वह ज्ञात न कर जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। इस प्रकार इन घटनाओं की पा कर, श्रीरामचंद्र जो ने अवतारिक्ष किया मोक्ष ही से।

गच्चनेवाध मधुरं शृङ्खलं वचनपत्रवीत।
किन्वेतमेघसंकारं पर्वतस्याविदूर्तः। 17।

चलते चलते पूँजी—महाराज। पहाड़ के समीप जो गाले में जेया देख पड़ता है वह फर्जा है।

दृश्ययुगितो भागि परं कौतुहलं हि में।
दुर्शनीयं सूक्ष्मकौर्णिं मनोहरसतीवं च। 18।

वह तो हरभों का समूह जेया जान पड़ता है। उसे देखने से बुझे बड़ा कुछ जल हो रहा है। वह धोने के वर्षवर्षीयों से युक्त, देखने शैव एवं ग्रुणि मनोक्षण सा जान पड़ता है।

नानाशकारः सखुर्वेवर्युनादैरूप्तकुतमः।
निःशतः सम सुनिशेषेष्य कान्ताराध्रोमह्यणाव। 19।

वहाँ तो मीठी बेली बेली छोटे छोटे बेल रहे हैं। जान पड़ता है, बाबू हम्ले ने आव रामाज्ञा रामाज्ञा जन के पार हो गये। 19।

अनयं लवगच्छामिदृशस्य सुखवचयाः।
सवं मे श्रंशं महावनस्याभासंपर्द तिद्वमः। 20।

वहाँ चल कर उन्नी देखने की नेरी इच्छा है। समय धुता वतलाइये कि, यह किसका द्रास्त्र है? 20।

संभासा यज्ञ ते पापा भवनं दृष्टचारिणः।
तव यज्ञस्य विद्याय दुरालमानो महासमें। 21।
एकोनान्तिन्य: सर्गः  

हे महामुनि! पशु हम लोग अपने उस भ्राम में पहुँच गये, 
जहाँ दुराचार ग्रामहान्यारे रात्रि स्थान यह में विचल किया करते 
हैं? || ॥ २१ ॥

भगवानस्त्रय के देश: सा यत्र तत्र यात्रिकी।
रक्षितप्रेया क्रिया श्रमन्मया वध्यास्त राष्ट्राः।
पुनःस्वर्ग मुनिश्रेष्ठ श्रीसुभिम्चक्ष्माह रमो || ॥ २२ ॥

इति भवानिण्य: सर्गः ॥

हे भगवन्! वत्सलाये, धारका यह स्थान, जहाँ धारका यह करते 
हैं किसे हैं? हे भगवान्! में रात्रिसों के सार कर धारका यह को रचना 
करणा। हे मुनिप्रभा। हे प्रभो! ये सब वाते में जानवा चाहता हूँ || ॥ २३ ॥

वालकामद का प्रदुहादवां सर्ग समाप्त हुया।

—॥९॥—

एकोनान्तिन्यः सर्गः  

—२१—

अथ तस्माप्येशस्त्रय तदनं परिपुच्छत:।
निर्वास्विनिवं महातेना व्याल्ल्याल्ल्युत्पुष्टकन:। ॥ १ ॥

प्राचीन वैभव जाने धीरामचन्द्र जो के इस प्रकार वह वन के 
विषय में पूँछने पर, महातेज जो निर्वासविनिव जो कहने लगे || ॥ १ ॥

इह राम महानाहो विपुर्दयवारः प्रश्नः।
वर्णाणि सुवृष्टिनेव तथा सुवृष्टिनेव च। || ॥ २ ॥

हे राम। यह यह स्थान है, जहाँ देवताओं में श्रेष्ठ महावर्ण, 
विपुर्दय ने बहुत बहुत वर्ण श्रोतर सैकड़ों सुतांत्र तत्तक || ॥ २ ॥

—॥१०॥—
पद्यश्रयोगार्थम् सुमहातपः
एष पूर्वांश्रयो राम वायनस्य महात्मनः
तपस्या करने के लिये व्रत किया था। यह धार्मिक पहले महाक्षा वायन जो का था
सिद्धार्थम् इति स्वातः सिद्धो हेतु महात्मपः
एतस्मिन्नव काले तु राजा वरीचनिर्विन्धिः
यहाँ पर उन महात्मपा का तप सिद्ध हुआ था, इसीसे यह सिद्धार्थम के नाम से प्रसिद्ध है। उसी समय राजा विरोधन के पुष्ट वंश ने
निर्जिल्य दैवतगणान्सेन्द्रांथ समस्तगणानु
कार्यामास तदायथ श्रम अष्टकुपु विश्रुतः
इन धीर महादृष्टि सहित सब देवताओं को जीत कर, जगहि-
वहेस्तु वजमानस्य देवाः साधिपुरोगमाः
समागम्य स्वर्य चैव विश्वमूर्तिहास्यवे
वल्लि ने जब यह करना आरम्भ किया, तब सब देवता श्रद्धा
वल्लि वरीचनिर्विन्धिः यज्ञे यज्ञदात्रमू
असमासे क्रतो तस्मिन्नकार्यमभिचतासू
विरोधनपूर्व राजा वल्लि एक उत्तम यज्ञ कर रहा है। उसके
हो की कॉन्वीनेंस के पूर्व देवताओं के हितार्थ लेकि कुछ करना
प्रभावित्ति: सर्गः: 

ये चेतनमयम्यर्थलोचने याचितार इत्यतः।

गच्छ यज्ञ यथाच्च सर्व तेष्यं प्रयंच्छिति। ॥ ८ ॥

उत्तर्यं यदं मेधं देवं रूपं सुधारे हुष्टा, याचर्य तेजं कुजं मार्गते स्वः, यह उन्हें कसी देवता है। ॥ ९ ॥

स त्यं भुगतार्थम् महायोगमुपष्टिः।

वामनल्लं गतो तिष्णो कुजं वल्लणप्रभुवसम्। ॥ ९ ॥

प्रति: अपि देवताभिः के हित के लिये अपनी माया के रूप के प्रथम बल से वामनावतार वार्षिक तर, इस्म लोपों का कव्यांक कोजिते। ॥ १० ॥

पुनयित्यन्तरे राम कर्येपिन्यसमर्थः।

अद्वित्या सहिते राम श्रीप्रमाण इत्याबुक्षा। ॥ १० ॥

हे राम! इसी वैष्णव में श्रद्धा के समान प्रभु चाले श्रद्धाप जी अपनी छो प्रश्नित सहित तपोभाव के देवीप्रमाण ये॥ १० ॥

देवीशाहोभो महायोगिणिवर्षसहस्रसम्।

जर्त समाप्ति वर्षे वुधव महुसूलनसम्। ॥ ११ ॥

देवी के सहित कव्य जो, सहंक चरणों की तपस्या का वर समाप्त करे, वरदानी भगवान महुसूलन की सहित करने लगे। ॥ ११ ॥

तपोमयं तपोराशि तपोमूर्ति तपाते।

तपस्या त्यं भुतर्गेः प्रयाप्ति पुरुषोत्तमसम्। ॥ १२ ॥

हे पुरुषोत्तम! अपि तपद्राय ध्यायने हैं, तव का फल देने चाले हैं, धान्य स्वरूप हैं श्रीर तपोभावान हैं। इस्म प्रभुम अपने तप: प्रभाव से प्रभुकी प्रेमता है॥ १२ ॥
वालकावादे

शरीरे तव प्रत्यामि जगत्सरिकिंद्र प्रभो।
त्वमहाद्विर्निदेश्यस्तवामहं शरणं गतं। ॥ १२ ॥

हे प्रभो! मैं तपस्ये करके शरीर में यह चेतन में देवतात्माक का सार जगत् देख रहा हूँ। तपस्या देवता हैं। अन्यतः उत्पत्ति पहिँ हैं, श्रीनिदेश्य हैं, (अन्यतः तपस्या के महिमा का वर्णन के कारण तकनीकी अन्यतः अनुसरणीय हैं) मैं तपस्ये करके शरण में चाहा हुआ हूँ। ॥ १३ ॥

tapvasa hac hi: priti: karyaṃ dhūtakaphrayam ।
varṇ varṇa bhadra te varāḥśaśi mato mām ॥ १४ ॥

(इस स्तुति से प्रस्थ प्रस्थ कर) यह सुन भगवान्, विष्णु, पाप रहित कृत्यपाल जी से प्रेमके—कृत्यपाल। तुम्हारा कल्याण है, तुम वर सांतो, मैं तुम्हें वर्दः दे ने देवता समक्ष हूँ। ॥ १४ ॥

tacu ātma varṇaṁ tasya mārīcāḥ: karyapadaśvaśritāḥ ।
ādirśaḥ devatānāṁ ca mām ācārayaḥ ॥ १५ ॥

यह सुन मारीच के पुत्र कृत्यपाल जी ने कहा—पीया, मेरी लोक श्रद्धा की तथा देवताओं की आर्थिक है कि, ॥ १५ ॥

varṇ varṇa śuñjito dāātumāhārisi suvarṇ ।
pustucchha bhagwanāh śrīmām chānapām ॥ १६ ॥

हे वर्द! तपस्या प्रस्थ प्रस्थ कर सुन! यह वर्द! कि, तपस्या मेरी निष्पादक लोक श्रद्धा के गर्भ से पुत्र रूप में जन्म लेन। ॥ १६ ॥

भ्राता भव र्वीर्यास्तवं श्राक्ष्याकुरस्तुदन ।
श्रीकार्त्तानां तु देवानां साहाय्य कतुमाहसि ॥ १७ ॥
एकानिमित्रः सर्गः  

हे प्रदुषे कै इन्द्र के द्वारे भाई वन कर धार्य धा कार्य नैभारैसिवाणि को महायता फोजिये ॥ १७ ॥

अर्थ सिद्धार्थेऽय नाम प्रतादाचे भविष्यति ।
सिद्धं कर्मणि देवेश उत्तिष्ठ भगवनिनि ॥ १८ ॥

यद धार्मिक धार्मिक क्रया से सिद्धार्थमे के नाम से प्रकट होगा ।
हे देवेश ! तव काम सिद्ध है जाय तव प्राप्त यह वसे उठिये ॥ १७ ॥

अथ विन्युष्ठहतेन अदितियां समजयत ।
वामनं रूपमत्राध्याय वेवेचनिमहाप्रागमतः ॥ १८ ॥

यह चुन महात्मजस्वी भगवान्विष्णु प्राधिति के गर्भ से वामना-चतार धार्य फर राजा बलि के पास गये ॥ १६ ॥

श्रीनमानाथ भिन्नित्वा प्रतियुक्त च माननः ।
आक्म्य ठौकालोकात्मा सर्वशोकहिते रतः ॥ २० ॥

श्रीर उस्ते तीन पण भूमि को धार्मिक को श्रीर तीन पण भूमि पा फर, सव लोगों के हितार्थ, तीन पण से तीनों लोक नाम हाले ॥ २० ॥

महेन्द्राय पुनः प्रदानिनयम्य वलिमैदासा ।
श्रेष्ठाक्ष्य स महात्माथःक्र श्राक्षरं पुनः ॥ २१ ॥

फिर इन्द्र की तीनों लोकों का राज्य दे, बलि को धार्मिक बल प्रभाव से वैन्य लिया (श्रीर पातल को थेया) इस प्रकार उन भव अनुभवे ने तीनों लोकों को पुनः इन्द्र के धर्मन कर दिया ॥ २१ ॥

तेनेष पूर्व माकान्न्त आयमः अर्थम् अभनासानः ।
मयापि भक्त्यातर्स्यं वामनस्यापित्यते ॥ २२ ॥
वालकाांडे

अभ्यन्तराके यह धार्मिक उद्घाटन है। में भी उन्हीं चामुड़े पञ्चगीति की भक्ति कर इस धार्मिक का उपभोग करता हूँ। ॥ २२ ॥

एतमाध्यममयानि राक्षसाः विन्द्रकारिणिः।
अत्रेव पुष्पवाचः हन्तव्या दुष्ट्रचारिणिः।
अंग गच्छामि राम सिद्धांश्रमणुयुजः ॥ २३ ॥

इसी धार्मिक में मे कर राखास उपद्रव मचाया करते हैं। हे पुष्पसिंह! यहाँ रह कर उन दुष्ट्रचारियों का वचन कदना होगा। हे राम! आज उसी उद्यान सिद्धांश्रम को हम लोग चलते हैं। ॥ २३ ॥

तदाध्यर्थं तात तत्वापनेतच्यथा मम।
प्रविश्चाद्यर्थं व्यरोचत महायुनिः। ॥ २४ ॥

हे वत्स! वह धार्मिक उद्धार मेरा है। वैशार्द्व ही तुम्हारी भी है, यह कह धीरारमचार लहराणी को साथ लिये हुए, विश्वामित्र ने अपने सिद्धांश्रम में प्रवेश किया। ॥ २४ ॥

श्रीव गतनोहारः पुनर्सुवसमिति।
तद्द्वा युनय: सर्वे सिद्धांश्रमविनवा। ॥ २५ ॥

उधर समय ऐसी शोभा जान पड़ी मानों पुनर्सुवस के साथ श्रद्धाकालीन चल्रमों शराभा दे रहाँ हो। विश्वामित्र जी के देख सब सिद्धांश्रम वासियों ने। ॥ २५ ॥

उपर्योगुल्ल्य साहसा विश्वामित्रपूजयनु।
यथाई चक्षुः पूजाः विश्वामित्राय धीमते। ॥ २६ ॥

उद्ध उद्ध कर और प्रसन्न प्रसन्न हों। विश्वामित्र जी का पूजन किया। जिस प्रकार तीमान् विश्वामित्र का पूजन किया गया। ॥ २६॥
तथैव राजपुत्राम्बायमकुब्जतिथिचिनियमः।
शृष्टिस्मिति विश्वान्तौ राजपुत्रांचनिविन्दम्॥ २७॥
उसी प्रकार राजकुमारों का भी अविचि संस्कार किया गया।
कुछ देर विधाम कर श्रद्धुप्रत्य द्वारा राजकुमारों ने ॥ २७॥

प्रजाली सुनिश्चारूखपूर्वचतुर रघुनन्दनः।
अथैव दीर्घां प्रविष्टः मन्द्रे गते सुनिपुङ्खः॥ २८॥
हाथ जेठ कर विध्वातम मोर से कहते, हे सुनिप्रवः। राज ध्रुवी से प्रपना यह भारम् कोरिये ध्रापका महंज्ज होगा॥ २५॥

सिद्धाध्योपस्य सिद्धः स्वातंत्रयमस्तु वचस्तवः।
पुजयो महातेजा विश्वामित्रो महाध्रुवः॥ २९॥

यह सिद्धाध्यो है। प्रत्य प्राप्तका कार्य सिद्ध है। ध्रौर ध्रापका वचन सत्य है। यह सुन महातेजस्वी सहिप्रवर विध्वातर जो ने ॥ २६॥

प्रविष्ट पत्रात्रा दीर्घा नियतो नियतेन्द्रियः।
कुमारअङ्गिय तान् राजीहिपित्वा सुसमाहितः॥ ३०॥

नियम पूर्वक्, जितेन्द्रियं हे कर यहं करता भ्रारस्मं किया।
ध्रौर दोनो राजकुमार भी उस रात में सावधानता पूर्वक वर्षी रहे ॥ ३०॥

प्रभातकालेऽवरथाय पूर्वां सन्ध्यास्वस्ताः।
रूप्रशोद्यके शुचि जयं समाप्ति नियमेन ॥
हुतार्थीहिपासिन् विश्वामित्रवक्त्रद्वताः॥ ३१॥

इति पकोलानिधि। सर्गः॥
बालकाय्ये

वैर प्रातःकाल हेतु दी दोनों राजकुमारों ने उठ कर लग्जा, 
की। तदन्तर नियमायुल्लर ब्राह्मण पूर्वक पवित्र हो, जप किया। 
फिर अनित्वत्र करके ब्राह्मण पर विराजमान विश्वामित्र जी को 
उन्होंने प्रणाम किया॥ २१॥

बालकाय्ये का उन्मीतवां सर्ग समाप्त हुआ।

---*

त्रिशः सर्गः

---*

अथ तै देशकालवऽरा राजपुत्रावरिन्दं॥

देशे काले च वाक्यश्रवत्रां कौशिकं वचः॥ १॥

देश वैर काल के जानने वाले श्रीर शत्रु के मारने वाले दोनों 
राजकुमार देश काल का विचार कर विश्वामित्र जी के वाले॥ १॥

भगवतंश्रोतुमिच्चायो यस्मिन्त्येके निशाचरी ओऽ

संकर्षणयाः तै ब्रह्मणातिवरतेऽतं तत्सृणु॥ २॥

हे भगवन्। इम जानना चाहते हैं कि, वे दोनों राजस यहं 
विचार करने किस समय धाते हैं, जिससे वे हमारी प्रज्ञाजन में 
आक्रमण न कर पाएँ॥ २॥

एवं बुधाणों कामक्ष्यो त्वरमाणो सुयुत्सया। 

सर्गे ते यन्तरः भीताः प्रशास्तरुप्तपातमण।॥ ३॥
तजस्विनाम सर्गः

जव सिद्धार्थसमस्त जुनियो ने राजकुमारों को यह बात खुनी और उनके रणसे से तुर्क लड़ने के लिये ताप देखा, तब वे तना राजकुमारों की प्रशंसा फर कहने लगे || २ ||

अच प्रमुनि पद्मार्ण रक्षण रायस युवासु।
दीक्षां गतो श्रेण मुनिमहिंनिन्तय च स गनिन्त्यति ॥ ४ ॥

दी राजकुमारों! प्राप से प्राप लोग इं दिन तक यह की मंड़ा करें। विश्वामित्र जी यह दृष्टिरा ले चुके हैं, प्रातं प्रथ के इं दिन तक न बालिगे प्रायंत मैन रहेंगे ॥ ५ ॥

ता च वद्वचन श्रुत्या राजपुराण यशस्विनिः।
अनिद्राप पद्मार्ण तपस्वनिरस्ताम ॥ ५ ॥

मुनियों के बचत सुन वे दीनों युक्तयो राजकुमाृ, इं दिन उत्थत गिना श्रयन किये गिना, मिर्गतर एव तपस्वन की रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

उपासाचककुर्वरी यतो परमधनिन्विन्वः।
रक्षतुकुमारिन्स विश्वामित्रारिज्ञम् ॥ ६ ॥

दीनों वीर राजकुमार धनुष वाश धारण किये विश्वामित्र और उनके यह की रक्षा दृढ़ता पूर्वक प्रायंत अध्यंत साध्यान्त के साथ करते रहे ॥ ६ ॥

अथ काले गते तस्मिन्यपदेश्वरिः समागते।
सामित्रिमक्षकृष्णदीप यतो भव समाहितः ॥ ७ ॥

पाण्डी दिन तो निर्विर्भ नीत गये। इं दिन दिन श्रीरामचत्र जी ने लज्जित जी से कहा—साध्यान रहो प्रायंत, उपायद्वार हो ॥ ७ ॥
रामस्येवं नुवाणस्य त्वरितस्य युक्तस्या।
श्रवणवातर ततो वेदिः साप्ताह्याःपुराहिता॥ ८॥
सत्यधर्मसतुका सतसमित्कुंभोच्या।
विक्राणित्रेण सत्तिता वेदिष्वर्च्छाय तत्तित्रा॥ ९॥

जव गुद्द करने की हिम्मा से श्रीरामचन्द्र जी ने पेसा कहा, तब धृक्षमातृ यज्ञवेदि भी से जल उठी श्रीर उपायथ, पूरागि चतुि तथा विश्वामित्र जी के देखते देखते हुश, चमत, झुवा, पूष क्रादि यही यदार्थ पदार्थों के सहित वेदिय सभी भंडम
वटी॥ ५॥ ६॥

मन्त्रवच यथान्याझेयं यद्रोहसौ संभारते।
आकाशोऽय महामवब्या प्राच्यासुवत्यानक॥ १०॥

यथापि विश्वामित्र जी का यह विधि विधान ही से हे रहा था (श्रीर केवल विधि नहीं होना चाहिये था); तथापि इतने में आकाश में वड्ड महान्यानक प्राप्त हुआ॥ १०॥

आवार्त्य गगनं शेषोऽय नाधष्टि निर्गतः।
तथा मायणं विकृष्टाणिं राससावनस्याचावतामु॥ ११॥

जिस प्रदोष वर्ष्ण द्वितीय में भें आकाश के दक्ष लेने हैं, उसी प्रकार राजस्यवादराज्यसी मायां करते हुए (आकाश में) दौड़ने जाने॥ ११॥

मारीच्छ्य सुवाहुध्य तयोरुत्तरास्य ये।
आगम्यं भीमलंकांशं रघुराध्यमवाहासंज्ञन्॥ १२॥
मारीत, हुवाहु और उनके साथे अन्य सुप्रस्तुत राजाओं ने प्राण कर वेदो पर रूठिर को वर्ण को || १२ ||

सा तेन कविरौणेण वेदिन्ता तामस्यवर्णताम् ।

दुष्टा वेदिन्ति तथाभूतां सानुजः क्रोधवंडुतः ॥ १२ ॥

सहस्राक्षिदुतो रामस्तानपर्यतलो दिविः ।

तावापतलो त्सहस्र दुष्टा राजीवलौचनः ॥ १४ ॥

वेदों को कविरौण में हुवाहु देख और कुद्र है। लक्ष्मण सहित जब सहस्र श्रीरामचंद्र जो दौड़े तव वह भ्राकाश में मारीतादि राज्य देख पड़े। उनकी ध्यानी श्रीराम दौड़ कर आते हुए देख राजीवलोचन श्रीरामचंद्र जो ने ॥ १२ || १४ ॥

लक्ष्मण त्वथ समेत्य रामो वचनमङ्गवित ।

प्रथम लक्ष्मण दुष्टचाचारसानिपथिताशाननान ॥ १५ ॥

लक्ष्मण के देख उनसे कहा—माई! जरा इन मौखवाहरे तथा

दुराचारी राज्यों का तो देखो ॥ १५ ॥

मानवाच्छिस्माधृतानिलेचन यथा धनान्न ।

मातवर परमोदारस्त्रं परमभास्मरम् ॥ १६ ॥

चिकित्स परमकुद्रो मारीचारसि राजवः ।

स तेन परमाणुयेन मानवेन समाहतः ॥ १७ ॥

मैं इनके मानवायु से वैसे ही उड़ते हुए जैसे पवन-वादुल

को उड़ा देता है। (यह कह कर) परमोदार श्रीरामचंद्र जो ने

प्रत्यक्ष कुद्र हैं, नचमचनाता मानवायु मारीच की छाती में मारा।

मारीच उस परमाणु मानवायु के लगने के वातावरण है ॥ १८ ॥

|| १७ ॥
संपूर्ण योजनावत्त शिस्तः सागरसंघुः
विचेतनं विगृह्नातं श्रीतेपुत्रवर्षोपिदितः ॥ १८ ॥
मारीच वहाँ से १०० योजन की दूरी पर स्थित में जा गिया?
बस मुर्खित, चकक करते हुए थेर साह गांव से पीड़ित ॥ १५ ॥
निरस्तं हश्य मारीच रामो लक्ष्मणमहश्चीते ॥ १९ ॥
पश्य लक्ष्मणश्च श्रीतेजु मानवं मनुसंहितम ॥ २० ॥
मारीच के देख श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा—
लक्ष्मण! श्रीतेजु नामक मनुस्मितित लक्ष का प्रभाव तो
देखा ॥ २१ ॥

योहितला नयतेन न न श्रापैरियुज्यते ॥
इमानिः वधिष्यांमि निष्ठ्राणान्तुः चारिणः ॥ २० ॥
राजसन्यापक्षमस्थान्यमहान्निर्मितिस्तावनानः
संगृहास्त्रे ततो रामो दिव्यमाग्नेयम्भुदतम ॥ २१ ॥

इसने मारीच को मुर्खित कर दूर तो कर दिया, किन्तु इसका
मक्ष नहीं किया। न्याय ने इस हुए, निदर्शी, पापो, यह में विच्छेद
दालने वाले, बिचर जै योनि वाले राजसों की सी मारता हैं। यह
कह कर श्रीरामचन्द्र जी ने यागेयास्य विकाला ॥ २१ ॥ २२ ॥

सुचाहूतरसि विषेष सं बिन्दः मापतुद्वतः
शैपान्यायन्यसाधार निन्दियान महायानः ॥ २२ ॥

श्रीर सुचाहू की आज्ञाती में मारा। सुचाहू उसके लगते ही
पुष्पिती पर धाराम से गिर पड़ा थेर मर गया। तब अन्य बोले हुए
राजस्वोऽन कौरामचन्द्र जी ने वायव्याख्या कर नष्ट किया ॥ २२ ॥

राघवः परमेश्वरे युनोनां युद्धाभधन ।
स हस्यः रशसानस्वर्णविश्वानश्चुनन्दनः ॥ २३ ॥

इस प्रकार परमेश्वर कौरामचन्द्र जी ने मुनियों को प्रसाध किया। उन यह विष्णुकारे समस्त राजस्वोऽन को मारने के प्रवाह में कौरामचन्द्र जी को ॥ २३ ॥

कुपिभ्यः पूजितस्त्रये नेत्रोऽविजये पुरा ।
अथ यद्य चाज्ञे समाप्ते हु विष्णुमित्रोऽधधायुतः ।
निरीतिका दिशोऽद्वा हस्या काक्षस्थिमिदमविवेद ॥ २४ ॥

वन मुनियोऽने हस्य की नीली पूजा की। वहाँ के निर्विभाजन पमात हонें पर महाभीष्णविश्वामिनि जो, इसों दिशाओऽने उपद्रव स्वतं देख, कौरामचन्द्र जी से यह बोले ॥ २४ ॥

कृतार्थस्विम महाभाषोऽनुतः गुस्तवस्तवया ।
सिद्ध्राश्मपिदं सत्यं कुर्तं राम महायशः ॥ २५ ॥

इति त्रिशः सर्गः ॥

हे महाभाषोः में ध्वज कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु की ध्वजा का खुल पालन किया। हे महायशायी राम! तुमने इस स्थान का नाम सिद्धासन सत्य कर दिया ॥ २५ ॥

वतलण्ड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।
एकांशः सर्गः

अथ तां रज्जनी तत्र कृताय रामलखण्यः ।
ऋषितुर्गिताः बैरागी महुष्टेनान्तरात्मनः || १ ॥
बौद्धवर श्रीर दुर्गित श्रीरामचन्द्र घोर लक्ष्मणः ने, विश्वामित्र का
काम पूरा कर घीर प्रशस्त हो, रात मर उसी श्राध्मः में श्रवण
किया ॥ १ ॥

भागायां तु शर्यां कृतपौर्वाहिकः ।
विश्वामित्रश्रुणीश्चान्यानसहिताविसमस्मिन्नः || २ ॥
वदेति होने पर शौचार्जी कम्रः से निधित्त हो, होनानाहैं
विश्वामित्राः स्वर्णाः कृष्णः का प्रशासन करने गये ॥ २ ॥

अभिबच शुनिश्रेष्ठ स्वजनतमच पावकम् ।
ऋषितुर्गिताः श्राधुर्यादाराः बाक्यं शुनिश्रेष्ठाः ॥ ३ ॥
श्री के संभान तेजस्वी सुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र का प्रशासन कर
वे होनानाहैं शुनिश्रेष्ठाः मधुर एवं वदारां बाक्याः से उनके बोले ॥ ३ ॥

इसी सु शुनिश्रेष्ठाः किंद्रो समुपापातः ।
आज्ञापय यथे वे शासन करताह किमु ॥ ४ ॥
हे शुनिश्रेष्ठाः ! हम होनानाहैं श्रापके क्रास उपस्थित हैं । यथेष्ठ
श्राप दौभी हैं, हम लोग श्रापकी क्र्या केरें ॥ ४ ॥

एववश्चास्ततस्ताध्यां सर्वं घु महर्षयः ।
विश्वामित्रं पुरस्त्रते रामम वचनमबुवनः || ५ ॥
उन श्रेष्ठो राजकुमारों को इस प्रकार बोलते लुम, विख्याति जी के अध्युता बना, सब महाराजों ने श्रीरामचंद्र जी से कहा।

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति।

यद्यः परममर्यायस्य धार्मिकमेव वयः।

हे नरश्रेष्ठ। परम धर्मिक मिथिलाधीश महाराज जनक के यहाँ यहाँ होने वाला है। हम लोग सब वहाँ जायेंगे।

तत्रं चैंत नरशारुौँ सहास्मारितगमिनिस्य।

अनुतं च धनूरौं तत्रंकं द्रष्टप्रमहिनिः।

हे नरशारुौँ। तुम मे हमारे साथ चलना। वहाँ तुम एक अदृश्य एवं श्रेष्ठ धनुष भी देख सकेगे।

तद्धि पूर्व नरश्रेष्ठ दर्तं सदसि दैवते।

अपमेयवलं ध्याम सर्वे परस्माप्वस्मृ॥ ८॥

पूर्ववक्ताल में देखताओं ने वह धनुष जनक की दिया था। वह धनुष बड़ा भारी और बहुत ही चमकदार है।

नास्य देवा न गन्धवर्ज्ञा नासुरा न च राखसाः।

कर्तमारोपण चक्का न कर्थवं मानुषाः॥ ९॥

महत्त्वों को तो विश्वास ही स्था है, इस धनुष पर देखा चढ़ाने के लिये पर्याप्त वल न तो गन्धवर्ज्ञा में है, न नासुरा में और न राखसाः में॥ १०॥

धनुषस्मारित्य वैर्य तु जिज्ञासन्तो महीनित्व।

न शेषकरोपण्यत्वं राजपुत्रा महावलया॥ ११॥

वार० ६००–६१५
उस धनुष का बल आजाने के लिये छाने वाले वालन राजा खाये; किन्ता कोई भी उस पर रोदा न चढ़ा लो। ॥ १० ॥
तद्वुर्द्वारा दाहुः भैरिक वर्ण महत्तम। ॥ ११ ॥
तत्र द्रस्यसि कामाख्य यह चादुतर्दश्नम्। ॥ १२ ॥
हे नक्षादुः हरा वह चल कर महात्मा मिशिलाधीन के उस धनुष का श्रीर उनके प्रदीयत यह की देखना। ॥ ११ ॥
तद्व यह कर तेन मयिलेन्त्रायं यदु। ॥ १३ ॥
याचितं नरशादुः जुगाम सर्वं स्वर्णवतः। ॥ १२ ॥
हे रामचर्य! एक समय महाराज अनंते ने यह किया और उस यह का फल सकल जुगाम नामक उच्च धनुष उन्होंने सय देवताओं से मांग लिया। ॥ १२ ॥
आधागधूत सुपुरुषता वेशमं रायव। ॥ १२ ॥
अर्थितं चिन्तियर्गणेनेव पश्चागर्गायिष्ठं। ॥ १२ ॥
वह धनुष मिशिलाधीन के वर में पूजा के स्वाम पर रक्षा रखता है और ध्रुप तोपात्र से निय उसका पूजन किया जाता है। ॥ १३ ॥
पुष्पकुट्ट सुनिवरः प्रस्थानमकरोत्तरः। ॥ १४ ॥
सर्पिलः सकावक्त्य आयन्य वन्देवतः। ॥ १४ ॥
खसिट बालसुत गमिल्यामि सिद्धं सिद्धास्मात्त्वमू। ॥ १५ ॥
उच्चरे जाह्नवीरे हिमन्त्व चिंतोत्वयय। ॥ १५ ॥
वह रह कर सुनिवर विन्दामित्र ने वहाँ से प्रस्थान किया। ॥ १५ ॥
नक्षत्र सायं गोविन्द राजसमार तद्यथ कुपित्य मी गये। ॥ चलते समय
प्रकरित: सर्ग: २२५

विश्वामित्र जो ने वर्णभाषाओं की उत्सुकता कर उनसे कहा—कुमार
कृत्तिका हो। तिहार यथाक्रम लुप्तसम्प छुए। अब मैं सिद्धांतम
से घोषणा जो के उत्तर तद्द लगे के हिन्दीय पर्वत की तराई में
दिशा (जनकपुर) जाऊँगा। १४। १५।

प्रदशिण तत्त्व: क्रत्व: सिद्धांतमनुचयम्।
उत्तरं विनामुर्दिक्य प्रस्थातमुपचक्रमे। १६।

तदनितर उस उच्च सिद्धांत की परिक्षा कर वो उत्तर को
प्रेयर रचाना हुए। १५।

तं प्रयात्म युनिवर्यन्यादुनुसारिणम्।
शक्ति शतामर च प्रयते व्रहवादिनामाः। १७।

विश्वामित्र जो के चलते ही व्रहवादी अध्यागि भी चले प्रेयर उनके
काफ़ी दूर भी चले। १७।

मूर्गपशिणावभें सिद्धाध्मसनिवासिनः।
अनुजयन्यावहत्स्तान्त विनामित्रं महायुनिस्मृ। १८।

वह सिद्धांत के रहते वाले दिन में प्रेयर पतली भी महर्षि
महात्मा विश्वामित्र के पीढ़ी हो लिये। १८।

नित्तयामास तत: पक्षङ्कुम्भनस्मानं।
तं गताः हृतस्मानां बम्बमाने दिवाकरे। १९।

परभु विश्वामित्र जो ने उन सव पद्म पत्रियों को लोदाधि लिया।
जव वे लोग बहुत दूर विकल गये और बहुत ग्रांताचलगामी होने
लगे। १६।
वार्ष चक्रुदिनिगणा। शोणकूले समागताः।
तेजस्त गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशाना॥ २०॥
तब सव लोगों ते श्रीश नद्री के तट पर डेढ़ पाले। सूर्य के
श्रव्द होने पर उन लोगों ने श्रावन कर स्वाभोपासन और ब्रह्मि-
होत्र किया॥ २०॥

विश्वामित्रं पुरस्कर्तः निपेतुरुपिताजः॥
रामो हि सहस्तीभृत्रिकं नबननस्तानभीत्य च॥ २१॥
तदन्तर सव मुनि। विश्वामित्र को ध्यान कर वैठे। श्रीरामचर्य
और वज्रवा ने सव मुनियों का पूजन किया और॥ २१॥
अग्रतो निपसादाध विश्वामित्रस्य स्थीतः।
अव रामो महातेजः विश्वामित्रं महासुनिनिः॥ २२॥
वृद्धिमान् विश्वामित्र जी के सामने जा वैठे। महातेजस्वि श्री-
रामचर्य ने महाभरत विश्वामित्र से॥ २२॥
प्रस्फ नरशादृकं कौशल्लहस्यानि।
भगवनकोनवर्थ देशः समुद्वणस्यामितः।
श्रीतुमिच्छामि भद्रे से वक्तुमहिंस तत्तवः॥ २३॥
कौशल तुरंत पुर्वक पूँछा कि हे भगवन्! यह हरे भरे वन वाला
देश कौनसा है? मे यह जानना चाहता हूँ। दुर्योधन मुझे इसका
कुछ ठीक बताता वतलायें॥ २३॥

चेदितो रामवाच्येन कथयामास सुत्रतः॥
तस्य देशस्य निखिलसुब्रह्मण्ये महातपः॥ २४॥

इति एकांशः सर्गः॥
श्रीरामचर्ये जी के इस प्रकार पूजा छोड़े पर महातपस्ती धृशुरुबत
गिरिवासिय जी ने प्रसन हो, उन सब अमीयों के बीच वैद्य कर,
उन्हें देख का मारा हायल बनाया। ॥ २४ ॥

वालकावाव का इकतोमां सम पुरुष हुमा।

---※---

द्रारुणेश्वरः सर्गः

आत्मानिर्मिष्टानासीत्कुशो नाम महातपः।
अक्षिणतयथः वर्णनमनकत्वः। ॥ १ ॥

है राम! प्रसन्ना जी के पुष्प, बड़े तपस्वी, अवश्यित विनाशी,
अभिसन्धित भवानी, रम्यान्तरों सजनों का संकार करते थे वाले हुश नाम के पक
राजा थे। ॥ २ ॥

स महात्मा कुजनायां युज्यायं गुणोलक्षणान्।
वेदेऽयां जनयापास चतुरं सत्यानसुस्तान। ॥ ३ ॥

उन्हें दूधम हुल में उठान प्रवेश अनुरूप वेदेः मानक रानी
के गर्भ से प्रवेश समान, चार गुड़ ज्यात्रा किये। ॥ २ ॥

कुशाम्यं कुशाम्यं च आभूर्तरंबस्वसी वसुस्मृ।
दातिन्युक्तामस्तासाहस्त्रभर्ष्यांनित्यिपिपियम्। ॥ ३ ॥

उनके नाम कुर्माय नाम बुधवं उपलब्धरं रंगवं बस्य। वे
चारों राजहुमार बड़े तेजस्वी ध्रोण असलाह हुए। वेदन्तवर चान-
धम्म के बढ़ते की हुन्दा थे। ॥ २ ॥
तालुवाच कृपा: पुनान्थरिष्टानसत्यवादिनः।
क्रियातां पालनं पुत्रा धर्मं साप्तथ पुष्करलम्॥ ४ ॥
धर्मिष्ठ श्रीर तन्वादिरु पुनर्से राजा कृपा ने कहा, हे पुत्रे।
भवा का पालन करे इससे बढ़ा पुष्कर होगा॥ ४ ॥
कुसाम्य वचनं सुख्ता चत्वारो तेकसंपता:।
नवेंश स्थिरे सर्वं पुराणं द्रवरास्तद।॥ ५ ॥
पिता का यह वचन हुन चारों श्रीरं राजकुमारों ने अपने अपने
नाम के चार नगर वसाये॥ ५ ॥
कुशाम्वस्तु महातेजाः कौशाम्बीयकरोत्पुरीम्।
कुशानाम्बस्तु धर्मेन्मा पुरं चक्र महोदयम्॥ ६ ॥
महातेजस्वी कुशाम्ब ने कौशाम्बी नाम की पुरी वसाई। धर्मेन्मा,
कुशानाम ने "महोदय" नामक नगर वसाया॥ ६ ॥
आयुर्विकजस्वा राम धर्मरण्यं महीपति:।
चक्रे पुरवर्त राजा वसुद्वके गिरिविजस्।॥ ७ ॥
हे राम! राजा आयुर्विकजस ने धर्मरण्य, श्रीर राजा बसु
गिरिविज नामक नगर वसाया॥ ७ ॥
एषा बसुमती राम वसोस्तस्य महात्मनः।
पुत्रे शैलवराः पथ्य प्रकाशते समन्तत:॥ ८ ॥
हे राम! गिरिविज का दूसरा नाम बसुमती हुक्षा। इसके चारों
श्रीर प्रकाशमान राजा बड़े बड़े पर्वत है॥ ८ ॥
सुमागथी नद्री पुण्या मगधानिषुचुता ययों।
पश्चाने शैलसुख्यानां मध्ये मालेव श्रोमते॥ ६॥
मगध देश में घडने वाली यह मागथी नद्री, जिसे शेष (क्षेत्र)भी कहते हैं। पाँचों पर्वतों के बीच (पर्वतों की) माला की तरह श्रीमायमान है॥ ६॥

सौपा हि मागथी राम वसोसस्त्य महात्मनः।
पूर्वाभिनिर्विता राम मुखेश्वर सस्यमालिनी॥ १०॥

dे राम ! बस्तु की वहाँ मागथी नद्री पूर्व दिशा की धरी बहती हैं धीर इसके दोनों नटों पर पङ्कज के धरी में प्रवेश केले हैं॥ १०॥
कृष्णाभस्त्रु राजपिरि कन्याश्रीमातुज्ञमस।
जनयामास धर्मात्मा घुटाच्या रघुनन्दन॥ ११॥

dे रघुनन्दन ! घुटाचे नाम की अपसरा से धर्मात्मा राजपिरि, घुटाच्या के मौं घुटरी कन्यारं उत्पन्न हुई॥ ११॥
तात्स्तु योवनशालिन्यो रुपवत्: खंडकृतः।
उद्यानभूमिमागम्य भास्पिव शतहड़॥ १२॥

dे जजानी में पक्षियों पर वहाँ रूपवती हुईं धीर (एक दिन)सजथज कर कुलवाड़ी में जा वहें दी ही श्रीमायुक हुईं, जैसे वर्षा-काल में विजली श्रीमायमान होता है॥ १२॥

गायन्यो वृत्तमानाय वादयन्यथ सर्वणः।
आमेदः परसं नगर्वरामरणमूलितः॥ १२॥

dे गहने फक्कड़ों से सुखजित उस वाटिका में चारों धीर भाती, नाचती धीर वजे वजाली हुईं, बड़ा धानन्द मनाने लगी॥ १३॥
अथ तास्याभिराज्ज्ञो रूपेयायतिमा श्रविः

उदायनशुभीमागम्य तारा इति घनान्तरे ॥ १४ ॥

उनके सब ब्रह्म सन्दर्भ थे, वे पृथ्वीतल पर तोन्दर्य की मृत्युओं
थी। वे उस वाक्म में बैसे हो शृगामित है। रही थीं जैसे प्राकाश
में तारागण शृगामित होते हैं। ॥ १५ ॥

तत् सर्वगुणसंपन्ना रूपयोचनस्युताः।
हट्टा सर्वनित्यको वायुरिदं वचनमन्ववकि ॥ १६ ॥

उन सब गुणवत्तियों और शृगामितियों को देख, सब जग
रहने वाले वायुदेश ने उन सब से कहा ॥ १६ ॥

अहं वः कामये सर्वं भायम् मम भविष्यथ।
मानुषस्तन्ययातं भावे दीर्घमाॅॅरवाप्यथ। ॥ १६ ॥

में तुमकी चाहता हूँ, तुम सब मेरी पत्नी करो। तुम मानुषयों
का द्वारा ल्यानो; जिसके तुम दीर्घजोकिए हो सको। ॥ १६ ॥

चरनं हि योग्यं नित्यं मानुषपे विशेषपः।
अक्षरं योग्यं प्राप्ता अमर्येश भविष्यथ। ॥ १७ ॥

क्योंकि योग्य तै कभी किसी का रहता नहीं—फिर विशेष
कर मनुष्य जाति का योग्य तो श्रीव ही चलायमान अर्थात् नए
होता है। प्रत: ( यदि तुम मेरी पत्नी करो तो ) तुमस्मात का
हीं हो जाओगी। ॥ १७ ॥

तस्य तद्भवं श्रुत्वा वाक्यायाक्रिष्ठकर्मणः।
अपघात्यं ततो वाक्यं कन्याशतमहात्रवीत। ॥ १८ ॥
द्वारिष्ठः सर्गः ।

प्रापतितं कर्म करने वाले वायुदेव की इन वातों के लुच, जो राजकन्यारः वायुदेव का उपहास करती हुई बोलीं। १५।

अन्तकरसि भूतानां सर्वेऽपि तव सुरोचम ।

भानुज्ञानः ते सर्वः किमस्मानश्वनयस्ये। १६।

ते देव! तुम तो सथ के प्रभुकर्म की वात जानते ही हो दौर इस भी प्रापके प्रभाव की ताजी नरह जानती हैं। पेसी दृष्य में (पेसा प्रतिष्ठित प्रस्ताव कर) प्राप हमारा प्रस्ताव करते हैं। १६।

कृयानभृताः सर्वः समर्थस्त्राः सुरोचम ।

स्थानान्वय्याविनिं द्वें राजास्मि तया वयम्। २०।

हे देवताओँ में उत्तम वायुदेव! हम सब महाराज कुशनाम की कल्याँच हैं। हम अपने नेपाल से तुर्मे तुम्हारे लोक से नीचे गिरा सकती हैं: पर पेसा इस्लाई नहीं करतीं कि, पेसा करने से हमारा नेपाल व्रत जायगा दौर तथा प्रदातना हमें प्रस्ताव नहीं हैं। २०।

भूतस काले दुर्मथः पितरं सत्यवादिनम् ।

नान्यत्वनस्त्रयं पर्ययं स्थय्यवस्मुपास्ये। २१।

हे दुर्वश्वः! वह समापि (इश्चर करे) न आिः कि, हम अपने स्थवराही पिता को प्रबुधिता कर, हम स्थवराह होवें। प्रारूपात्त हम स्थवर अपने लिये पक्कः पसन्द करें। २१।

० हस्ते जन पद्मात् है कि स्थवर की प्रथा उस ज्ञान में अच्छी नहीं लम्बी जाती थी।
पिता हि प्रमुहस्मकं देवतं परमं हि नः।
यद्य ने दास्यति पिता स नेा भर्ता भविष्यति॥२३॥
क्र्योऽक पिता हमारे, हमारे लिये देवता स्वस्थ हैं, श्रीर श्रीर हमारे मालिक हैं—वे हर्म जिसे दे दुःगे वही हमारा पति होगा॥२३॥
तासां तदर्थम् श्रुतवा वायुः परमकोपनः।
प्रविशय सर्वगात्रणि वर्द्धं भगवान्मयुः॥॥२३॥
उन सब कन्याओं को इस (प्रपानजनक) वातों को छुन पवनवेद प्रस्थतं कुपित हूँ श्रीर उन राजकुमारियों के शरीर में छुड़ कर उनकी कुड़ी बना दिया प्राथवा उनके शरीर के अंगों का देहमेठा कर उनका सौन्दर्य नष्ट कर दाला॥॥२३॥
तः कन्या वायुना भया विविशुन्त्यपतेऽहस्मु॥
प्राप्तन्युक्ति संभ्रान्ता: सर्वज्ञा: साशुहीरुक्ताः॥॥२४॥
जव वायु ने इनके प्रस्फुट कुरुप कर दाले तब वे लजित हुईं। श्रीर व्यायामल सिर है रेती हुईं। श्रीपने पिता के वर स्थार॥॥२४॥
स च ता दशिता दीना: कन्या: परमश्रोभनाः।
हस्त्वा भगवाहवस्त्रो राजा संभ्रान्त इत्यंतबीत॥॥२५॥
राजा, श्रीरपनी प्र्यारो वर्ष परम कुन्दरी कन्याओं की हुः कहीं श्रीर कुरुप बनी हुई देख, विकल हुए श्रीर यह बोले॥॥२५॥
क्रिमिदं कथयां पुजयं को धर्ममवमन्यते।
कुन्ना: केन कुत्ता: सर्वा वेद्यन्यो नाभिभापो।
प्रवं राजा विनिवस्य समाधि संदिर्ये ततः॥॥२६॥
इति द्याजिष्ठ: सर्वः॥
मथुरिलो ते यह क्या हुआ? किसने धर्म का प्रताप कर तुमको कुँवड़ी कर दिया? तुम जान बुध कर भी क्यों नहीं जोलातीं? इस घटना से राजा वड़े व्यविधि और विविध हुए।

बालकाण्ड का चतुर्दशो अर्ग समाप्त हुआ।

---

तस्य निधनं श्रुतः कुशनाभस्य धीमतं।
शिरोभिन्नरणों सूक्ष्मः कुन्याशात्तमभापत।

इति भृदियान राजा कुशनाम के पूः कुँवरी पर सौभ्र राजभृतियों के पिता के चरणों में सीस नवाय ग्रोह दिया।

न्यायः सर्वात्त्मके राजमहर्षिपिदतियूच्छति।
अभिन्नं मार्गमार्गश्याय न धर्मं प्रत्येक्षेन।

यथापि प्रवचनश्रव स्वर्ग के आत्मामों में विराजते हैं, (भृत: बहि हरेक काम सेवा विचार कर करना चाहिये) तथा पिरे धार्मिक में प्रबुद्ध हो हमारा धर्म विगाहन चाहते थे।

पितृस्वाय सम भ्रम ते सच्चन्द्रे न वर्य स्थिता।
पितारों ने हृष्णोप्य लं यदि ना दास्यते तव।

हमने उनसे कहा कि, हमको मनमाना काम करने की स्वतंत्रता नहीं है; प्रायोद्ध हम स्वेच्छाचारियों नहीं हैं। हमारे पिता विचमान
हें, यदि उनसे हमें श्राप मांग ले, तो हम श्रापकी ही सकली हैं॥ ३ ॥

तेन पापानुवन्धेन चरणं नवतीक्ष्वता ।
एवं श्रुत्वं सर्वं स्म चायुना निन्हता भृदभृम्॥ ४ ॥

हमारी इस वात दो न मान कर, उस पापों ने हमारी सच की यह दृष्टा कर दी॥ ५ ॥

तासा तद्रचनं श्रुता राजा परमाथर्मिकः ।
प्रत्युत्वच महातेजा तुष्याश्वलसुन्तस्मृ॥ ६ ॥

राजकुमारियों की इन वातों की सुन परम-धार्मिकः राजा
कृष्णनाभ उन शत खुदारी राजकुमारियों से वेले॥ ७ ॥

क्षणं समावता पुनः करतव्यं सुमहलक्षतमस् ।
एकमप्यसुपागम्य कुरुं चारेसिन्स मम॥ ८ ॥

तुमने पवनदेव के अनुभवे श्रमा प्रविन्नति कर, बहुत ही प्ररुढ़ा
काम किया है, हे राजकुमारियों ! तथा शाशि त्यों, का श्रेष्ठ ही होता
चाहिये। तुमने ( पवनदेव के श्रमा करके ) हमारे कुल की सी
रचा की है॥ ९ ॥

अबढ़ारो हि नारीणां श्रमा तु मुखस्य वा ।
दुःखरं तच्च यत्सान्ति निद्वशुपु विश्रोपत॥ १ ॥

खियों अचरवा पुरुषों के लिये तो श्रमा ही आपुर्वण है। तुमने
पवनदेव के श्रमा कर अन्त दुःखर काम किया है। हय श्रीरा
पश्चिम स्मृत कालों के लिये ता अपवाच-सहिष्णुता विशेष करके
दुःखर है॥ १ ॥
यादवी व: क्षमा पुज्य: सर्वासामविशेषत: ।
क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञं पुनिका: ॥ ८ ॥

जसी तुमने त्योऽ खृष्टलाई विक्रेष कर वैसी त्योऽ सव में नहीं
देती । हे फलग्रामो । त्योऽ ही दान है, त्योऽ ही सत्य है और त्योऽ
ही यज्ञ है । प्रार्थित । ते पुरुष दान देते, सत्य भेलने श्रृङ्खला यज्ञ करने
ने होता है । यही क्षमा से श्राम होता है ॥ ८ ॥

क्षमा यतः क्षमा धर्मः क्षमा विनिलं जगत ।
विनिल्य फल्या काकुल्य्य राजा निद्राविक्रम: ॥ ९ ॥

इसी प्रकार त्योऽ ही यज्ञ है, त्योऽ ही धर्म है और त्योऽ ही
संसार का आधार है । हे धर्म । इस प्रकार राजकुमारियों को
समका कर श्रृङ्खला उनकी दिन्दा कर । देव समान पराक्रमी राजा
कुजनाम ने ॥ ६ ॥

मन्नाजो मन्त्रयामस्स पदार्नं सह मन्त्रिभिः ।
देषो काले पदार्नस्स सहजस्स प्रतिपादनम् ॥ १ ॥

यह तथा सव मंत्रियों को झुला कर उनसे यह सलाह की कि, उन
राजकुमारियों का विवाह अनुभव उदेशकाल व वर में चिका
जाय ॥ १० ॥

एतस्मिन्नेव काले हूँ चूरी नाम प्रह्मणिनः ।
उत्त्रेताः शुभाचारो व्रहां तय उपागमत ॥ ११ ॥

उसी समय चूरी नाम के एक बड़े तेजस्वी, उत्त्रेता, एवं
सहाचारी महर्षि ने प्रह्म की श्राणि के लिये तय अर्थस्स
किया ॥ ११ ॥
तप्यन्तं तस्मिनं तनं गन्धर्वं पर्युपासते ।
सोमदा नाम शुद्धि ते ऊर्मिलातनया तदा ॥ १२ ॥

उस समय वहं तपस्या करते हुए उन शुद्धि की सेवा, ऊर्मिला
नाम की गन्धर्वी की सेवा जिसका नाम सोमदा था, करने
लगे ॥ १२ ॥

सा च तं प्रणता भूत्वा श्रुत्सुपणपरायणा ।
उवास काले ऊर्मिला तस्यास्तुत्रोभवद्गुरुः ॥ १३ ॥

जब सोमदा ने बहुत दिनों तक उन महार्षि की बड़ी श्रद्धा के
साथ सेवा की तब वे महार्षि उस पर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥

स च तां काल्यणोऽन प्रोचच रघुनन्दन ।
परित्यौग्रस्तम् भून्ः ते किं करोमि तव प्रियम् ॥ १५ ॥

हे दया ! समय पा कर महार्षि ने उसके कहा—यह तुम पर
प्रसन्न हो, तो काम टु कही खूं ते उसे लिए कहे ॥ १५ ॥

परित्यौ शुद्धि ज्ञाता गन्धर्वो मधुरस्वरा ।
उवाच परमपत्यत्राक्यां वाक्ष्यकोविदम् १५ ॥

शुद्धि की अपने कारण प्रसन्न जान वात्स्रोत करने में परम
प्रवीण गन्धर्वी मधुर स्वर में बड़ी प्रसन्नता के साथ वाक्यकोविद्
न्यूती स्वरूप से वहाँ ॥ १५ ॥

हृदयमा समुदितिव व्राहय च जहाृहृतः महातपः ।
व्राहयेन तपस्या युक्तं पुरुषोस्माः वाक्ष्यकोविदम् ॥ १५ ॥

हे महाराज ! व्रतहृदय से युक्त, ब्रह्म में निश्चित रखने बाला, ब्रह्म
वाक्ष्यकोविद् पक्ष पुज्य में चाहती हूँ ॥ १५ ॥
अपतिथार्थिम भद्र ते भार्या चारम न कस्यचित्
ब्राह्मणोपगतायाय दातूर्मृत्सि मे सुत्तम्॥ १७॥
पर न ता मेरा कंतिपति हे श्रीर न मैं किषी को खो दोहा चाहती हैं।
क्योंकि मैं ब्रह्मचारिणी हूँ। इससे वह अपने तपोबल से ऐसा मानस पुत्र दृढ़जिको जो धार्मिक हो। १७॥
[ नोट—प्रेरे सनक, मनन्त्र आदि प्रहा के मानसपुत्र थे, प्रेमा ही
एक मानसपुत्र ]
तत्स्या प्रसननः ब्रह्मचिरः पुत्रं तथाविभम्।
व्रह्मचर्य इति रुयार्ने मानसं चूँचनः। सुत्तम॥ १८॥
यह तुम श्रृवत्ति चूले ने प्रसन्न हो ब्रह्मचर्य नामक एक मानस-
पुत्र दसकों दिया। १८॥
स राजा सौमदेयस्तु पुरीमध्यवसच्चयद।
कामिर्यां परा ऊँच्च्या देवराजो यथा दिवम्॥ १९॥
वह ब्रह्मचर्य कामिर्य का राजा हुआ। श्रीर वहाँ की राज-
लक्ष्मिन्द्रा से ऐसा विस्मित दुहुः, जैसे हनु मुसुन र में विस्मित
होते हैं। १६॥
स गुड़िद्र कृतचाराजः कुशनायाः सुभार्मिकः।
ब्रह्मचर्य कामिर्य दृत्रा कृष्णाय तदा॥ २०॥
कुशनायाः ने द्रौही ब्रह्मचर्य की किन्तु कृष्णाकार्यों की
अनुन्वेदन का विचार किया। २०॥
तमाहार्य महात्मेजः ब्रह्मचर्य प्रहारपति।
द्रौही कृष्णायाः राजा सुभावेनान्वितारात्मना॥ २१॥
राजा कुशनाम ने राजा व्रहद्वर्त की शुला कर, उन्हें प्रशस्तता पूर्वक अपनी सौ राजकुमारियों के दौर्घर्षवर्तमान एवं व्रहद्वर्त को महिपालस्तास के दृश्यपरिवर्तन। ॥ २२ ॥

यथाक्रम तत्त्वं पाणीव्रह्म रघुनन्दन ।
व्रहद्वर्तो महिपालस्तासा देवपतियाः॥ २२ ॥

हेमेसकर वैभव में इच्छे के समान राजा व्रहद्वर्त ने यथाक्रम उन १०० राजकुमारियों का पाणिग्रहण किया। (विवाह के समय जी या या नहीं है वह उस काम का, जिसके साथ उसका विवाह होता है, हाथ पकड़ता है) ॥ २२ ॥

स्पृश्माग्रेत्यतं पाणीं विक्रम्या विगत्ववर्तः।
युक्तां परस्या रक्ष्यम् भएः कर्त्यां मातं तदा ॥ २३ ॥

व्रहद्वर्त के द्वारा पाणीवर्षण होते हैं। उन सब का कुन्द्रापन रहा और वे परम सून्दरी हो गयीं। ॥ २३ ॥

स हुँ हुँ वायुना सुक्तः कुशनामेपि महिपतिः।
वभूव परस्यांतो हर्षे अते पुनः पुनः। ॥ २४ ॥

राजा कुशनाम राजकुमारियों के शरीर से वायु का विकार दूर हुथा रखा, ब्रह्मन्त क्षत्र रूप हुए। ॥ २४ ॥

कुलोद्धारं हु राजार्थं व्रहद्वर्तं महिपतिः।
सदारं प्रेष्यामास संपाध्यायगण तदा। ॥ २५ ॥

इस प्रकार व्रहद्वर्त के साथ उनका विवाह कर कुशनाम ने, राजकुमारियों की बिदा कर, उनके साथ अपने उपाध्यायों की भी। भेजा। ॥ २५ ॥
चतुर्थिश्चः सर्गः  

सतामदापि सुसंहुः पुत्रस्य सह्याद्रीं कियाः।
यथान्यांचे गणनवर्मो सुपास्तीः भल्लन्दुः।
इत्या सुप्रदा च तां कन्याः कुशनाभं महास्य च।।

इति चतुर्थिश्चः सर्गः ॥

सतामदास्ते प्रकार अपने पुत्र को पदमयोद्ध के अनुशासन संबंध हुशा देव प्रसन्न हुई, उसी प्रकार सुन्दर वहुओं को देख कर भी वह प्रान्तित हुईं और उनका सत्कार किया, और उन राजकुमारियों को देख और वर्तन्त कर उसने राजा कुशनाम की सहायता की ॥ ॥

वालकार्य का तैत्रिसवं सर्ग समाप्त हुष्या ।

* * *

चतुर्थिश्चः सर्गः

कुतोऽहांग्ने तस्मिन्न्वस्यह्यो च राघव।
अयुत्रः पुत्रस्याय पौत्रिमित्रिमान्त्यंत न।।

e हे राम ! महदुत्त के व्याह कर के चले जाने के पथावत् राजा कुशनाम पुत्रवान् न होने के कारण पुत्रात्मां के लिये पुनःस्थलित करने लगे।। ॥ ॥

इत्याद्य तु वर्तमानायां कुशनाभं महीयतिम।

tवाच परमेश्वरः कुशो अवसर्वस्वस्तदाः।। ॥ ॥

जब यह होने लगा, तब प्रभु जी के पुत्र और परमेश्वर राजा कुशनाम के पिता, राजा कुश चापने पुत्र वे बेरे ॥ ॥

वार १०—१६
पुत्र 'ते सदसः पुत्रो भविष्यति सुशास्त्रांकः |
गांधि भाष्प्यसि तेन त्र कीर्तिः होकै च शास्त्रात्मिः ||३४५ ||
हे वल्ल ! तेरे, तेरे ही समान धर्मसिंह पुत्र होगा । उसका नाम गांधि होगा धीर उसके होने से संसार में तेरी कीर्ति प्रमर होगी || ३ ||

एव सुवृत्ता कुशो राम कुशनाम सहीपतिम ||
जगामाकाशमाविश्व ब्रह्मलोकं सनातनसम || ४ ||
हे राम ! कुश धपने पुत्र राजा कुशनाम से यह कह कर, ध्वजाकाश मार्ग से सनातन ब्रह्मलोक का चले गये || ४ ||

कस्यचित्तवध कार्यस्य कुशनामसयध्वितमः ||
जाते परमपर्यन्ते गाधिरिहिते नामसम || ५ ||
कुश समय वोतने पर दुधिमान् कुशनाम के परम धर्मिष्ट गाधिः
नामक एक पुत्र उत्पन्न हुए || ५ ||

स पिता मम काकुलस्य गाधिः परमभार्तकः ||
कुशवंशमुद्दशोस्यसि कौशिकों रघुनन्दन || ६ ||
हे राम ! वे ही परम धर्मिष्ट मेरे पिता हैं । कुशवंशोद्वर होने के
कारण में कौशिक कहलाता हूँ || ६ ||

पूर्वा भगिनी, चापिं मम राधव सुन्तता ।
नान्त्रा सत्यवती नाम कौशिकः प्रतिपादिता || ७ ||
हे राधव । मेरी बड़ी बहिन का नाम सत्यवती था, ते पतितवता
थी । उसका विवाह कौशिक के साथ हुआ था || ७ ||
चतुर्थिक्रम सर्गः

सशरीरा गता स्वर्गः भूतारमतुमतिनी।
कौशिकी परसंदारा सा प्रस्तुता महान्दिः॥ ८ ॥

सति के शरण के वादः वह सत्यवती पति के साथ सशरीर
स्वर्ग के गयी। फिर वही पर्यम उद्वारः कौशिकी नदी है। बहने
लगी॥ ६ ॥

द्विच्या पुण्येदका रम्या हिमवन्तशुपारिता।
लेखकस्य हितकामार्थ प्रस्तुता भगिनी मम॥ ९ ॥

इत्य रङ्गाय श्रीर धति पतिः जल है श्रीर यह बड़ी रमणीय
है। यह हिमालय के निकल कर बहती है। लोगों के हित के लिये
मेरी बहत ने नदी का दंप धारण किया है॥ ६ ॥

ततोश्च हिमवन्त्यां सत्यमिनि निरतः सुखम्।
भगिन्यां स्नेहसंयुक्तः कौशिक्यां च द्वाहः।॥ १० ॥

हे राम! अपनी बहत के स्नेहवश में हिमालय के समीप
कौशिकी के तड पर ही रहता था॥ १० ॥

सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मः प्रतिप्रियता।
पतिन्त्रता महाभागा कौशिकी सतिरतावरा॥ २१ ॥

सत्यमें स्थित, बड़ी पतिन्त्रा वही सत्यवती, नदियों में
श्रेष्ठ, महाभागा कौशिकी नदी है॥ १२ ॥

अहे हि नियमाद्राम हिंत्वा तां समुपागतः।
सिद्धयामयुग्याय सिद्धोरसिम तव वेङसा॥ १२ ॥
हे राम ! यह यह पूजा करने के लिये में उसकी हर्षी सिद्धांत में चला आया था। वहाँ तुम्हारे प्रताप से मेरा काम निन्द हुआ। ए ||

एक राम मयोत्पचि: स्त्रय वंशस्त्र कीर्तिता।
देशस्त्र च महानाहो यन्या तव परिपुर्ःचिसि || १३।।
हे राम ! हे महानाहो ! मेरे तुम्हारे प्रथान के उत्तर में इस देश का तथा अपनी उत्पचि धीर अपने वंश का चुनाव कह सुनाया || १३।।
गतोंस्त्राकमः काबुक्स्त्र कथा: कथयतो मर्।
निद्रामद्येहि अद्वै ते मा भूतिनेत्रोजनीह न।। १४।।
हे राम ! यह वदनात्म तुम्हारे मर्ने प्रथा अधिक रात वीत खुकी।
तुम्हारा मद्वल हो, अव जा कर श्रवण करो; जिससे कल चलने में विपश्न न हो। १४।।
निष्पन्दास्तर्कः सवेन निःदीना संगपपक्षिः।
नैशों मभुसा न्यासा विश्रध्व रघुनन्दन || १५।।
हे रघुनन्दन ! अव किसी बुद्ध का पत्ता तक नहीं हिलता,
पशु पत्ती तक अरुणपाप हैं। निशा का धीर बर्मकार सव दिशाधिघो में हो अव हुआ है: १५।।
शरीरविन्युज्यते सन्त्या नमै नेत्रीरिवाहकांत।
नक्षत्रतारांगहं ज्योतिः सिंहिन्यमाते || १६।।
धीरे धीरे सन्त्या का समय वीत गया। आकाश तारों के
देवीयमान हो; शोभ्यत हो रहा है। पैवा जान पड़ता है; मानो आकाश सहस्रों सेवों से देख रहा हो || १६।।
चतुर्क्रिया: सर्गः

242

उत्तिष्ठति च जीतानां: जगी लोकतमोत्तरः।
हाद्यमाणिनां लेकि प्रनासी प्रभुरा विमेषः ॥ १७ ॥
समस्त संसारं के प्रथमकारं को नष्ट करने वालो और शीतल
विरोधं वाला नामम, शासि में मन को हरित करता दुधा
उपर के उठता चलाक्षाता है ॥ १७ ॥

नेशानि सर्वभूतानि प्रचरिति तत्सत:।
यसराकससंस्याया राजाध सिद्धानां ॥ १८ ॥

रात्रि महुरे वाले और मासभती भयंकर यह और राजको
के दूर, प्रथर उद्धर पूरा फिर रहे हैं ॥ १८ ॥

एवमुक्ता महातन्त्रा विराम महाशुनि:।
माधु वाद्यतिति वं सर्वे सुनये वथ्यपुण्यम्। ॥ १९ ॥

इतना कह कर महातिथिक किवामित्र जो चुप ही गये। तथा
शृणुन्यों ने बाद बाद कह कर विवामित्र को प्रशंसा की। ॥ १६ ॥

कृष्णिकामयप्रय संग महान्यमपरं सदा।
अयोपमा महातमां: कृष्णविया नरात्मां। ॥ २० ॥
( कथा फ़हा ) यह कुरं का चंगा सदा से घर में तपार रहा है
और इस चंग के भव रत्ना श्रायति नियम हारे चले बाले हैं। ॥ २० ॥

विशेष्यं भवानेव विवामित्रो महाशाम:।
कौशिकी च सारित्वं गुरुहार्योतकरी तव। ॥२१॥

हे विवामित्रजो! विशेष कर भाषा तो इस वंच में महायश्चेनी
है तथा नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नदी जौ तो इस वंच के उद्घाटक
कर दिया है ॥ २१ ॥
वालकायरे

इति तैसृनिष्ठादृशः प्रशस्तः कुशिकातमजः।
निद्रामुच्यते मन्निश्रीमानसं गत इवानुम्यान।। २२।।
उन सुनिश्चितः ने इस प्रकार से विश्वामित्र की प्रसंसा की।
तदनन्तर श्रीमान् विश्वामित्र जी शरीर गये, मानों खूब ग्रास्ताचलगामी
हो गये हैं। २२।।

रामायणि सहस्रामिक्षः कित्विदागतविस्मयः।
प्रशस्य मुनिनिर्द्वूलः निध्रां समुपसेवते।। २३।।

इति चतुर्भजः सर्गः।
श्रीमान जी मे लक्ष्य जी सहितः कुछ कुछ चित्रित हो
शरीर विश्वामित्र की प्रशंसा करते हुए सा गये। २३।।

वालकायरे का चाँदीवार शर्मा पूरा हुष्या।

—:—

पञ्चकुंतिशः सर्गः।
—:—

उपायस्य राजरौंशेषं हु श्रेणकूले महर्षिभि।
निशाया नुनभातायाः विश्वामिनिहःभवापि।। १।।

विश्वामित्र जी ने उन सबः भ्रष्टियों सहितः शरीर शोषण नदी
के तट पर बिताई। जब प्रातःकाल हुष्या, तव विश्वामित्र जी
रामचन्द्र जी से बाले। १।।

सुभाषा निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रत्यते।
उत्तिष्ठोचिष्ठ भ्रम्ते ते गमनयाभिरोचय।। २।।
पद्मार्दिका संग्रहः

है राम! उठिये, प्रातःकाल हो चुका। तुम्हारा मजल है, घब
क्षोपसून कर चलने की तैयारी कीजिये।

तच्छुः त्वा वचनं नस्य कृत्वा पैवाणिकाः कियाम्।
गमर्ने रीत्ययामास वाक्यं चेदमुनाच ह।

प्रोपामचन्द्र जी, मूनिवर के यह वचन खुन प्रातःकिया से
निकृत हुए हो चলने की तैयार हो वे बेले।

अर्थ ग्रन्थ: गुहजनेगाथः पुलिनयपितः।
करत्रेण पथा नद्यन्तन्त्रिप्यामेव वचम्।

देव प्रशान। इस गीता नदु में जल तो कम है, बालू चित्रोप है। तो
वतलाई किस रस्ते से दम लेगा उम पर चलें।

पुनः मुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रभवसर्वप्रविदिदिः।
एष पत्थरं परहेड़िरो येन यात्रर्च महर्षयम्।

यद्रूण विश्वामित्र जी बेले जिस रस्ते से खब महर्षिं जाते
हे यह रात्रा में वतलाता है। यह यह है।

एवमुख्ता महर्षयो विश्वामित्रेन धीमता।
पदयन्तरस्ते प्रयाततां वेचनानि विविधानि च।

सुदिनमा महर्षिं विश्वामित्र जी के यह कहने पर वे रस्ते में
विविध बनों की देखते हुए चलने लगे।

ते गत्वा दूरसमवानं गात्मश्रुद्धं दिनसे तदा।
जाह्न्वी सरितां श्रेष्ठां देवर्मन्तरितन्त्रम्।
बालकाः खदे

वें जब बहुः दूर निकल गये तथा दो पहर के उनके मुनियों

द्वारा लेखित श्रीगृह जी देख पड़ीं। ॥ ७ ॥

तां हृद्या पुण्यसङ्गिनिः हंससारसेविताम्।

वश्युद्धनयं: सर्वं सुदिता: सहराधवः। ॥ ८ ॥

शोरामचन्द्र जी श्रीर जलमण सहित संव मुनि, हंस सारसों

से सुगोचित पुण्यसङ्गिनि जातहि के दर्शन कर बहुः हरिष्ट

हुए। ॥ ७ ॥

तस्यास्तीरे तत्त्वशकुस्त आवासपरिणामः।

तत: स्नात्वा यथायाय सन्तत्यं पितृदेवताः। ॥ ९ ॥

वें सर्व श्रीगृह जी के तट पर ठहर गये श्रीर यथाथिति स्नान

कर, पितृदेवत्परिणादि कर्म सम्पन्न किये। ॥ ६ ॥

हुत्वा चैवाकायेनाप्राणि प्रायं चानुत्तमं हुवि:।

विचित्राविज्ञानीतीरे खुची सुदितमानसः। ॥ १० ॥

फर वश्युद्धन कर श्रीर कवे हुद विलित्वादि दो सार्वत्र

के पश्चात्, वे लोग प्रसन्नविनाश हो श्रीर आसनों पर गढ़ जी के

पवित्र तट पर बैठे। ॥ १० ॥

विश्वामित्रं महात्मानं परिवारं समन्तं।

संस्मृतमाना रामो विश्वामित्रमधास्माधवः। ॥ ११ ॥

हर वश्युद्धन के बीच में विश्वामित्र जी (श्रीर उनके सामने

दोनों राजसर्व) वैठे। उस समय प्रसन्नविनाश श्रीराम जी ने

विश्वामित्र जी से कहा। ॥ ११ ॥
भगवन्त्रेतृहस्वामिच्छामि ग्रज्ञा त्रिपथगां नदीम् ।
श्रेष्ठाक्यं कथमक्रमः गता नदवन्दीपतिएः || १२ ॥
हे भगवन् । में त्रिपथगा ग्रज्ञा जी का वृद्धि शुनना चाहता हूँ । वे किस प्रकार तोमों लोकों के नाथ कर समुद्र से जा सिली ॥ १२ ॥

चाहिये रामनाक्येन विश्वामित्रो महाशुनिः ।
उद्धि जन्म च ग्रज्ञा व गृहुवेराधकिमे || १३ ॥

इस प्रकार ध्रुवमकक्त्र जी के पूर्वः ने पर महर्षि विश्वामित्र जी ने ध्रुवग्रज्ञा जी की उद्धि व जन्म की कथा कहना धार्मिक की ॥ १३ ॥

श्रेष्ठान्ते ध्रुवजनाम धाराप्रमाकरो महान् ॥
	तस्य कन्याय जार्त रूपवान्तमि चुरवि || १४ ॥

ध्रुवबालाको ध्रुव िमालाय नामक पर्वत के दो कन्याय हुईं, जो पूर्वेशियो पर सौंदर्य में वेजेजः थीं ध्रुववालाव ध्रुववाल छुन्दरी थीं ॥ १४ ॥

या मेशावहिता राम तोयामाता शुमध्यमा ।
नामना मेना मनाजा वे पती हिन्नतः मिया || १५ ॥

इन कन्यायों की माता का नाम मेना है जो मेह पर्वत की सुन्दरी लड़की ध्रुव हिमाचल की पत्नी है ॥ १५ ॥

तस्यं ग्रज्ञयमभवस्येण हिमवतः सुता ।
उमा नाम दिल्लीयामुक्तिया तस्येव राघव || १६ ॥
हिमाचल की बड़ी बेटी का नाम गझा श्रीर थिरी का नाम पद्रा || १४ ||
अथ ज्येष्ठा सुरा सर्वे देवतार्थिचिकीर्या ।
श्रीरेन्द्र सर्ववामानुर्ग्या त्रिपथ्यां नदीम् || १५ ||
हिमाचल की बड़ी बेटी त्रिपथ्यगान्द्री गझा की सब देवता
मिल कर निज कार्यसिद्ध के लिये माग कर ले गये || १६ ||
दद्रौ धर्मेण हिमाच्छन्नन्या लतकपावनीस् ।
स्वच्छन्दपथ्यां गझा श्रीरेतप्रक्ष्यतिकायम् || १८ ||
हिमाचल ने भी तीनों लोकों को पवित्र करने वाली, स्वेच्छा-
चारियों गझा की तीनों लोकों की महान से लिये, मांगने
चाले का देना चाहिये, अच्छा यह धर्म समक्ष, देवताधि
को दे दिया || १५ ||
प्रतिग्रह ततो देवानिविलोक्षितकारिणं ।
गझामादाय तेजग्च्छन्दक्तार्थ्यंनान्तरात्मनान। || १९ ||
तीनों लोकों का हित चाहने वाले, ज्ञेत्रतागण गझा की
ले कर श्रीर इत्यत्थ हो चले गये || १६ ||
या चान्या शैलटुहिता कन्याससीद्रेष्णानन्दत ।
उग्रं सा त्रंतमास्काय तपस्तेपे तपोधमा || २० ||
हे रघुनन्दन । श्रीराहल की जो दूसरी बेटी उमा थी, उसका
तप ही ध्यान था ब्रह्म दुस्ते उसके ध्यान तप किया || २० ||
उग्रेण तपस्ता युक्तां दद्रौ शैलवरः सुतासु।
झार्यामितिर्याय यम्भं झा कल्नपस्तुतामू || २१ ||
पश्चात्त्वः सर्गः  

कठोर तप करने वाली तथा लोकवंद्विता अपनी बेटी उमा, 
दैत्य राज हिमाचल ने, महादेव को, उसके ( उमा ) लिये उपयुक्त वर 
समझ, उन्हें ज्यादा दी ॥ २१ ॥

पति वे श्रिलराजस्य शुद्ध लोकमस्कुते ।
गंधा च सरिता श्रेष्ठा उमा देवी च राघव ॥ २२ ॥

हे राम ! वे दोनों लोकमस्कुता गंधा नदी वैर उमादेवी
प्रसिद्ध हिमाचल की वैदिकां हैं ॥ २२ ॥

पति रजस्यायां पथा निबधः नदी ।
रघु गाता प्रथम तात गंधा गतिमर्तावर ॥ २३ ॥

हे तात ! हे जलने वालों में श्रेष्ठ ! मैंने तुमसे चिपड़ता श्रीगंधा
जी के प्रथम स्वर्ग जाने का कुंतल कहा ॥ २३ ॥

संगा सुरनद्री सम्या श्रीलराजस्य शुद्ध तदा ।
सुर्लक्ष समास्ता विपाप्त जलवाहिनी ॥ २४ ॥

हिमाचल को वैदिक, रमणीय श्रीराम पाप नाश करने वाले जल से
वहने वाली श्रीराम सुरलक्ष की जाने वाली यही सुरनद्री गंधा नदी
है ॥ २४ ॥

वालकायकं का पैतृस्वरः सर्गः समास हुष्या ।

---**---
पट्ट्रिंशः सर्गः

उत्तवाक्ये दुनौ तस्मिनन्तुभौ राधवलक्ष्मणीः।
अभिनन्द्य क्रथां बौरावृत्तमुनि पुज्यवदम्॥ १॥

मुर्ति विष्णुविश्वमित्र जी के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मनो राज्यकमार
विष्णुविश्वमित्र जी (की जानकारी और स्मरणशक्ति ब्रह्मक जया कहने
की रीति) को बढ़ाहै करते हुए बेलो॥ १॥

धर्मयुक्तमिदं ब्रह्मकृष्णिं परमं लया ।

dुहितुः बौलराजस्य ज्येष्ठाया वज्रमुहिः॥ २॥
हे ब्रह्मबेनं! भापने पुरुष देने वाली उत्तम कही अव हिमालय
की केली वेटे गज्जा जी की कथा मुफ्ते कहिये ॥ २॥

विस्तरं विस्तरज्ञोर्जि दिन्यमानुपसम्भवम्।

श्रीनयेण हेतुना केन प्रायेलोकपावनेऽ॥ २॥

भाप सब जानते हैं, सो इस प्रकार विस्तर पूर्वक यह कहिये कि,
लोकपावनी गज्जा खगे से मनुष्यलोक में क्षों भार्यों और तोनों
लोकों में क्यों कर बर्मी॥ २॥

कथं गज्जा त्रिपथवा बिश्रुता सर्दिदुत्तमा ।

त्रिपु ठाकेशु धर्मं कर्मिकः केः समर्थनता॥ ४॥
हे धर्मसं हदियों में उत्तम गज्जा का नाम तोनों लोकों में
त्रिपथवा किन किन कर्मों के कारण हुआ॥ ४॥

तथा ब्रजति काकुस्य विष्णुविश्वमित्रस्याधिकः।

निरूजेन कथं सर्वगुणिमध्ये त्यज्येदयत॥ ५॥
पद्मचिन्हः सर्गः

श्रीरामचन्द्रके पूज्यने पर तपायन विश्वासित जी ने सारा
ध्यानमन्वित व्यक्तियों के चीव बैठ कर (इस पद्धार् कहा)॥ ६ ॥

पुरां राम कुटोधाहो नीलकण्ठो महातपाः।
द्वार च स्पृहया देवी श्रीमुनायेपचकमे॥ ६ ॥

हे राम! पूर्वकाल में महानर्थी महादेव जी का विवाह प्रार्तवी
जी के साथ हुआ। श्री रे उनके देव, कामवश्वरी हो, उनके साथ
विहार करते लगे॥ ६ ॥

शिरीकण्ठस्य देवस्य दिव्यं वर्षशतं गतस्य।
तस्य संक्रीडात्मस्य महादेवस्य वीमतं॥ ७ ॥

देवताओं के मान से सो वर्ष तक धीमान नीलकण्ठ महादेव जी
के देवी के साथ विहार करते पर भी॥ ७ ॥

न चापि तनयेऽराम तस्यामासीपरत्तप।
ततो देवा: समुद्रिष्ठा: पितामहपुरोगमाः॥ ८ ॥

हे राम! काई संतान न हुया। तव सब देवता व्याकुल हो
ब्रह्मा जी सहित विचारते लगे॥ ८ ॥

यदीहोतप्रते भूतं कस्तल्यतितिशहिष्यते।
अभिगम्य सुराः सबं भौमप्पेदमण्वनू॥ ९ ॥

कि इन देवों के संबंध से जा जीव उत्तर दिखा। उसका भार
कीम सम्हाल लेकर। तव सब देवता महादेव जी के शरण में
जा कर श्री रे उनके प्रशां कर चेले॥ ६ ॥

देवदेव महादेवः लोकस्यास्य हिते रत।
हुराणां प्रणिपतेन प्रसादं करुंपहसित॥ १० ॥
हे देवदेव महादेव! देवताओं के प्रशमन से प्रक्षण हृदये प्रीत इस लोक की रजा कोजिये II १० II

न लोका धारशिष्णति तव तेजः सुरोचय।
ब्राह्मण तपसा युक्तो देव्या सह तपशर II ११ II

हे सुरोचय। आपका तेज कोई भी लोक धार्या नहीं कर सकेगा। अतः आप देवी सहित वैदिक विधि से तप कोजिये II १२ II

त्रेभाक्यहितक्रमार्यं तेजत्सत्तजिषि धार्य।
रश सर्वानंद्यालोकाणं वर्तुमहिः स। II १२ II

तीनों लोकों के हित के लिये आपना तेज आपने शरीर ही में पक्षिये, जिसके तीनों लोकों को रजा है, उनका नाश न कोजिये II १२ II

देवतानां वचः श्रुता सर्वेशाकपहेशः।
बाधमित्यवैसलवान्युनक्षेत्रमुवाच ह। II १३ I

सर्वत्रों के परम निम्नता महादेव जी; देवताओं के वचन सुन बोले, बहुत आच्छा। तद्नित्तर कहने लगे II १३ II

धार्मिक्यायं तेजस्तेजस्येव सहोयया।
त्रिद्वशः पृथ्वी चैव निर्वाणात्मयित्वः। II १४ II

हे देवतागण! में उमा के साथ आपना तेज शरीर ही में धार्या किये रहेंगा। देवतागण एवं पृथ्वियृद्धि समस्त लोक छुए से रहें। II १५ II
यदि श्रुभिः स्थानान्यम् तेजो हर्ततमम्।
धारिपियति कस्तत: नुकत्तु हरससतमा:। ॥ १५ ॥

परन्तु है देवतायो! यह तो वतवासों कि, जै मेरा तेज (बीर्द) स्थानन्यत है गया है, उसे कैन धारा करेगा? ॥ १५ ॥

एवसंकासस्ततो देवा: पस्थयुतुण्ड्रभद्रभन्मू।
बलेजः श्रुभिः बलतल्लरा धारिपियति। ॥ १६ ॥

इस पर देवतायों ने महादेव जो कि यह उच्च दिया कि, आपका जै मेरा तेज स्थानन्यत हुया प्रथात गिरा, तो उसे प्रथिती धारा करेगी। ॥ १६ ॥

एवसंकासं शुरपियति: पस्थयोऽम महीतल:।
बलेजः प्रथित थेन व्यासासारागिराकानना। ॥ १७ ॥

यह सुन महादेव जो ने अपना तेज प्रथिती पर क्रिड़ा, जिससे रन पर्वत सहित प्रथिती पूर्ण हो गया। ॥ १७ ॥

ततो देवा: पुनरिदम्युण्ड्रथ हुताशनम्।
प्रविच त्वं महातेजः रांडौं वायुसम्भितः। ॥ १८ ॥

(जस देवतायों की यह मालूम हुया कि, उन तेज की धारा करने में प्रथितो असमय है तव) वे प्रस्तु के बेले कि, तुम वायु के साथ इस कण के तेज में प्रवेश करो। ॥ १८ ॥

तदर्जिना पुनर्वर्षैं सर्वात्स्वेतपर्वतः।
दिन्य शरणम चैव पावकादित्वसलभम्। ॥ १९ ॥
तव अभिषि के उसमें एवं करने से वाह तीन एक स्थान पर (क्षमित कर) श्रवत परवताकार ही गया। फिर अभिषि श्रवत परवताकार की तरह, चमकीला अभिषिदिव्य सर्वपण का वन ही गया। ॥ २६ ॥

यत्र जातो महातेजः कार्तिकेयाः विष्णुसंभवः ॥

अयेमां च शिवं चैव देवा च सत्यगानस्तदा ॥ २० ॥

उसीसे स्नायुकात्मक अभिषि के समान तेजस्वी उत्पन्न हुय।
तदन्तर सर्व देवतादेवा और श्रुवियो ने उमा और शिव की पूजा की ॥ २० ॥

पूजयामासुरलयं सुभाषितमनस्ततः ॥

अथ श्रैलसुतास्त राम गदन्त्रानिल्मात्रवित् ॥ २१ ॥

हे राम! जव प्रसन मन से देवतादेवा ने पूजन किया, तव उमा (कुछ हेकर) देवतादेवा से यह बोलीं ॥ २१ ॥

अणियस्य कुस्माच्च फलं प्राप्यमेव में गुराः ॥

इत्युत्तत्वा सहिष्ठु गृह पार्वती भास्करसम्ब ॥ २२ ॥

श्रीरे देवतादेवा, तुमने जे मेरे लिये अभिषि कार्य किया है उसका
फल तुमं पावोगे। शृवियो के समान दृष्टिमान, उमा ने यह कह कर
हाथ में जल लिया और ॥ २२ ॥

समपूर्वरुपस्याग्राह्याब्धिरकठोचना ।

यस्माभिवारिताः चैव संजनि: पुत्रकामययः ॥ २३ ॥

शोधे के मारे लाल मेरे नेत्र कर उन सर्व देवतादेवा की यह शाप
दिया कि, तुमने मेरे पुत्र उत्पन्न होने में वापस हाली है ॥ २३ ॥
पद्मकिरि: सर्वः

अरथेऽ स्तेषु दारेपु नात्पाद्यित्वमः।

.अचचन्मुखः युप्स्यानकमयामः: सन्तु पलयः: ॥ २४ ॥

/ सा कैः मौ इत्यत्त्प्रपो छो रे पुष्य उपवर न कर सकेः: ब्रज

से तुम्हारी लिखी संतानरहित होगी। ॥ २४ ॥

एवशुचत्वा सुरान्स्वाण्यश्राप पृथवीमिषि।

अवनेन नैकुष्ठा तव सहुभाया भविष्यसि ॥ २५ ॥

ध्वजाश्रयां की: इत्त प्रकार श्राप नं कर, उमा (शान्ति न हुईं)

ने पृथिवीका: भी श्राप दिखा कि, हे पृथिवी। तू एक की नहीं

रूगो गार ते धनेक पति होने। प्राचौतु समस्त भूमकड़ का एक

राजा न होगा—प्राणेक राजा होगे। ॥ २५ ॥

न न पुनःकृतां शीति पल्कोधकल्पिकृतः।

प्राप्यसि त्वं लुदुम्भ्ये मम पुनःनिन्द्यति। ॥ २६ ॥

/ देह लुदुम्भवे मेरे कौश रे तुम्हें पुनस्कृत न होगा, क्योंकि तूने

मेरे पुनः रा नहीं चाहा। ॥ २६ ॥

तान्म्बत्तिमिन्द्रः सुरान्स्वरसमहस्त।

गमनायोपनक्राय दिष्टं अद्यपाल्लिताम्। ॥ २७ ॥

महादेव जी ने इत्त तथा तव द्रव्यस्रोऽका लाल्ल देख, वस्त्रा-

दिशा (उत्तर) को बार जाने की इच्छा की। ॥ २७ ॥

/ स गल्या तप: आतित्र्यायेर्ये तस्येवविषे गिरे।

दिस्मन्वत्वने गुरुः तस्म देया महेषवरः। ॥ २८ ॥

वा १० चौ—१७
बालकायदे

चहरा जा कर हिमालय के उत्तर भाग में हिमवध्वस्त नामक पर्वतमुख पर उमा सहित वे तप करने लगे।

एष ते विस्तरो राम श्रैल्पुष्या निवेदित।
गज्ञायः प्रभवं चैव गृहु मे सहरङ्गश्रणः।

इति पद्मप्रियः सर्गः।

हे राष्ट्र! हिमालय को एक बेटी की यह कथा मैंने विस्तार पूर्वक कही। भव हिमालय की दूसरी बेटी गृहु की (विस्तृत) कथा लक्ष्मण सहित तुम खुना।

वालकायद का चौथीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

——-**——

सत्तर्निंशः सर्गः।

---*:---

tप्यमाने तपो देवे देवा: सर्जिगणा: पुरा।
सेनापतिस्मील्पस्तः: पितामहसूपापात्रः।

जव महादेव तप करने लगे, तव इद्दार्दि देवता अश्रि की आगे कर, सेनापति (अपनी देवसेना के लिये एक सेनापति) आप तप करने की उच्चा से ब्रह्मा जी के पास गये।

ततोभ्युवन्सुरा: सर्वं भरवन्तं पितामहस्तः।

परिपूर्वे युधं चार्यं सेन्द्रं: साध्विपुरोगमा।

उपर प्रावम कर, इत्युपर अश्रि की आगे कर ब्रह्मा जी से सब देवतां प्रावम पूर्वक जेले।
ये नः सेनापतिंदेव दृढ़ो भगवता पुरा।

तपः परमयास्थाय तप्यते सम सहेष्ठाय।। ३ ॥

हे भगवन्! प्राधि काल में जिन (चद्द) को प्राप्ते हमारा सेनापति वनाया था, वे तो उमा के साथ हिमालय पर जा कर तप कर रहे हैं॥ ३ ॥

[नेट—किन्तु किन्तु पैरी में 'देवा' की जगह 'देव' भी पाठ मिलता है। नहीं पर 'देव' पाठ है यहाँ वक श्रोता का अर्थ यह होगा कि, जिन महादेव जो ने इस होगां से पहले कहा था कि, हम तुम्हें एक मेनार्टि देंगे। वे महादेव उमा नहिं हिमालय पर तर कर रहे हैं।]

यद्वानन्तर कार्य लेंकानां हितकामया।

संविश्वस हिपानाः तत हि नः परमा गतिः।। ४ ॥

प्रत्यय इसके वाद लोकों के हितार्थ जै करना उचित जाने वह कौतुक, पर्याप्त हमारी कृष्ण तो याप ही तक है॥ ४ ॥

देवतानां चन्द्र शुष्का सर्वेऽक्कितापितामः।

सान्त्यन्ययुर्ष्याः यस्मिन्दशानिद्रमवर्षी।। ५ ॥

देवताओं के इन चन्द्र के चुन प्रहा जी मधुर चन्द्रों के देवताओं के सान्त्यना प्रदान कर, प्राधिकाम्यूड़ों वंचा कर, यह देवले॥ ५ ॥

श्रेणि यदुवं यथूक तत्र भ्राता सन्तु पवित्र।

तस्य वचनकिंकिर्ष सत्यमेव न संशयः।। ६ ॥

हे देशगण! उमा देवी ने तुम लोगों को जो याप दिया है कि, तुम्हारी खिलाओं के सन्तान न होगा; यह तो प्रायश्चित्त होगा नहीं॥ ६ ॥
इयमाकाशमा गझा यस्यां पुत्रं हुताशनः ।
जनयिष्यति देवानां सेनापतिसरिन्द्रमसु ॥ ७ ॥
हां, अयङ्ग्रेज इस ज्याकाशगडा से जिम पुत्र का उत्पत्ति करेगे
वह देवताओं के श्रावुद्रास का नाश करने वाहा होगा ॥ ७ ॥

ज्येष्ठा श्रेीनेत्रदुहिता मानयिष्यति वं उत्तमः ।
उमायास्त्रदुव्हृतं भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥

हिमालय के क्षेत्र पुत्री गझा, अपनी श्रेष्ठी वहिन का पुत्र
होने के कारण, उसे निज पुत्रवत् समभोजी श्रीर उभाते उसे
विश्वव ही बढ़ते ही मानेगी प्रार्थन उसे बढ़त प्यार करेगी ॥ ९ ॥

तच्चु त्वा बचनं तस्य क्रतार्थं रघुनन्दनः ।
प्रणिपल सुराः सवेे पितामहपूज्यन् ॥ ९ ॥

हे राम ! ब्रह्मा के ये बचन सुन, देवताओं ने अपने के क्रतार्थ
समभोज श्रीर प्राणामादि कर ब्रह्मा जी का पूजन किया ॥ ९ ॥

ते गत्वा पर्वतं राम कैलासं मातुमणिितमु ।
अर्जुन नियोजयामाः पुत्रार्थं सर्र्देवताः ॥ १० ॥

तदेवन्तर सव देवता अनेक श्रावुद्रास से परिपूर्ण कैलास पर्वत
पर गये श्रीर पुत्रवत् के लिये प्राणि को प्रेम करने लगे ॥ १० ॥

देवकामििदं देव संविधत्स हुताशन ।
श्रेष्ठपुजां महते जो गझांम् तेज बल्लज ॥ ११ ॥
(देवतागण, भाषा से कहने लगे) यह देवताओं का कार्य है।

देवताओं से महातेजस्वी अर्थिते। प्राप्तपी (षोर्य) गक्षा में, छोड़ि। ॥ १२ ॥

देवताओं प्रतिज्ञय गक्षामभयेत्य पावकः।
गर्भ धारय वै देवी देवतानामिदं मिलसु। ॥ १२ ॥

अर्थस्वरुपं गद्वर्त्तन वर्धिण रूपवाकार्यत।
उष्ण्य तन्महिमानं स समस्तदनकर्ष्यत॥ १२॥

अर्थिते का यह कवन लुन गक्षा देवी ने दिव्यखो का रूप
धारण किया। घटि ने गक्षा जो का गस्त्र देव, धारण सब चंगों
में षोर्य छोड़ा। ॥ १२॥

समस्तदा देवीमश्यपिन्नत पावकः।
सर्वस्तरान्ति पूर्णिनि गक्षागा रघुनन्दन। ॥ १४॥

हे राम! गक्षा को प्रत्येक नाहो अभि के तेथ (षोर्य) से
परिपूर्ण है गया—केरी अंग झाली न. रहा ॥ १४॥

तत्तुवाच ततो गक्षा सर्वेदेवपुरोगमसु।
अश्रुका धारणे देव तव तेजः समुद्रवत्सु। ॥ १५॥

तव गक्षा ने अभि से कहा कि, हे देव! वै तुस्वारे बहते हुए
तेज के धारण नहीं कर सकते। ॥ १५॥
द्वारामानास्मिना तेन संग्राम्यः धित्वेतनाः।
अधात्रवचिद्धि गज्ञा सर्वदेवुक्ताशि। ॥ १६ ॥
क्योंकि तुम्हारे तेजः से में जली जाती हैं। प्रोर में ब्रह्मुत दुःखी हैं। यह स्वन श्रावन ने कहा ॥ १६ ॥
इह हैमबंते पादे गर्भोऽवर्य सन्मिवेशयताः।
श्रुत्वा त्वाःश्रव्यवज्ञे गज्ञा तं गर्भमतिभास्यरस्य। ॥ १७ ॥
इस हिमालय के पास इस गर्भ को रख दो। यह स्वन गज्ञा
जी ने वह परम तेजस्वी गर्भः ॥ १७ ॥
उत्सर्जन महातेजः स्रोतोभ्येः हि तदानायः।
यद्युः निर्गतं तस्मात्रास्तजामृतेनद्वम्युः। ॥ १८ ॥
यथे विनं त्रथोऽवर्य स्वन एकत्रित तथे।
जव वह गर्भ भूमि पर गिरा।
तव वह श्राक्ष्ण चामस्सद्वा जामृतेन शुरूवहि हो गया ॥ १८ ॥
काण्डनं घरणी पार्श्व हिरण्यमण्यं शुभमण्यं।
तास्म चार्ण्ययस्मं चेत तेजस्तेज्यस्मन्यायत। ॥ १९ ॥
वही विशुद्ध श्रीर सुन्दर सव सेना है, जो पुष्पिका पर है।
उसके
पास वहाँ जितने पदार्थ थे वे चांदी हो गये। जहाँ जहाँ उसकी
तीष्णता पहुँची वहाँ तांबा श्रीर लेता हो गया ॥ १६ ॥
गर्भं तस्मात्रास्त ज्य श्रीसकमेव च।
तद्वेददर्णम् भ्राप्य नानाधातुज्बर्धत। ॥ २० ॥
श्रीर उसके मैल का जला श्रीर सेता हो गया।
इस प्रकार वह तेजः भूमि पर घने ध्वनियों के लाप में पैल गया। ॥ २० ॥
निसिसमात्रे गर्मेन तु तेजोभिकरिभिरविधितम्।
सर्व पर्वतसंन्य सौवर्णभ्रमणम्॥ २१॥
गर्म ते द्रोपदः हो सम्पूर्ण पर्वत श्रीर वहाँ का नन तेजः से परिपूर्ण हो लुवर्ग्रन द्रम हो। गधा॥ २१॥

जातेणपतिस्तु छायांत तद्वामृती नाधव।
लुवण प्रहसव्यद्र हुसतस्यसममस्मे॥ २२॥

हे राम! रूप से उल्कान होने के कारण तब से यह सोमा जात-मय कहलाता है श्रीर हे पुरुषव्याय। लुवर्ग्रन की, प्रति यसी कार्य को हो गया है॥ २२॥

तुषसखलानागुर्म सर्वं भवति काश्यनम्॥
तं सुकार ततो नार्त सेन्त्रः सहस्रब्रह्मणः॥ २३॥

वहाँ जा दृष्ट, कुल्म, नलाप्रभों, वे भी लुवर्ग्रन हो गयं।
तदन्त्वत्व उस तेजः से कुमार का जन्म हुआ। तव हित्रादि देवतान् नः॥ २३॥

श्रीकरसंवानार्त्य कुस्तिकाः सम्योज्यण।
तः स्रीकर जातमात्रस्य कुस्ति समयविस्ताम॥ २४॥

उस वाक्य के दृष्टि पिलाने के लिज्ये कुस्तिकायं को नियुक्त किया। निज पुद्र कहलाने का करार कर, सव ने दृष्टि पिलाका॥ २४॥

दृढः पुद्रोस्यस्मार्क सर्वसामिति निमित्ताः।
ततस्तु देवता: सर्वाः कार्तिकेय इति लुवण॥ २५॥
नर सब देवताओं ने कहा कि, यह बालक तुम्हारा पुत्र भी कहानेगा और उसका कार्तिकेय नाम रख कर कहा। ॥ २४ ॥
पुनःतैऽमायिष्यातो भंविप्यति न संशयः।
तेषां तद्वचनं शूल्वा स्तम्भ गर्भपरिष्वले। ॥ २५ ॥
यह बालक निस्सन्देह तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा। यह सुनु
कृतिकाश्रृं ने गिरे हुए गर्भ से उत्पन्न उस कुमार की। ॥ २६ ॥
स्मापनययर्या कक्ष्या दीप्यायां यथानन्दयः।
स्तुन्द इत्युत्ततन्द्राः स्तन्त गर्भपरिष्वलाय। ॥ २७ ॥
भ्रषों तथा से स्नान कराये जिससे उस बालक का शरीर
श्रीति के समान दृष्टि के लगा। यह बालक गर्भश्राव से उत्पन्न
था, प्रति देवताओं ने उसका स्तुन्द भी नाम रखा। ॥ २७ ॥
कार्तिकेयं महाभारां काकुत्स्य ज्वञ्जनापमम्।
प्राणदुःखितं तत् स्नातें कृतिकानामज्जतम्। ॥ २८ ॥
हे रामचन्द्र! भ्रषों के महृष महाभारत कार्तिकेय के लिये
कृतिकाश्रृं के दृष्टि उत्पन्न हो गया। ॥ २८ ॥
प्रणां पहाननो शूल्वा जगायां स्तन्त ययः।
पुश्तिल्या तीर्मेकाहास मुकुमारवन्धुदाः। ॥ २९ ॥
यह बालक छ: मुखों से दृश्यों कृतिकाश्रृं के स्तनों का दृष्टि
पान करने लगा। और एक ही दिन दृष्टि दी कर, उस मुकुमार
शरीर बाले बालक ने। ॥ २५ ॥
अजयस्त्रेण वीर्यं दैवसेन्यगणान्निः।
सुरसेनागणपति तत्तस्तपमलयुतिः।। २० ।।

प्रपने पराक्रम से देव्यों की सेना का जीता। तव उस विमल पुत्र वाले कुमार को, देवताओं की सेना के सेनापति पद पर।। २० ।।

अभ्यर्पितनुत्सुरंगण। समेत्यागिपुरोगयं।।
एष ते राम गद्याया विस्तरसभिहितो मया।
कुमारांशवव्येबं चन्द्र: पुण्यस्तैः।। २१ ।।

प्रति प्राद्वे देवताओं ने अभिमिक किया। हे राम! यह गद्य जो फा तथा कार्तिकेय के अभ्यं का नृतान्त विस्तार पूर्वक भीं मेंी

भक्ताथ युः कार्तिकेये काकुत्स्व सुवि मानवः।
आयुप्यायुग्रंतर्घं स्कन्दसालोकयतां वजेतु।। २२ ।।

इति समस्तेः सर्गे।।

हे राम! इस पृथिवीवत पर जा लोग इसे अंकितुर्वक पढ़जिए वे आयुप्यायुं श्रेष्ठ पूर्व पौत्र वाले हो कर, व्यास में स्कन्दलोक में जाकर वास करते हैं।। २२ ।।

वालकावल का सैनिसवर्र्य सर्ग समाप्त हुः।

—:*:*—
अष्ट्रत्रिशः सगीः

तां कर्यं कैशिको रामे निवेच मघुरास्त्राम् ।
पुनरेवापरं वाक्यं काकुत्स्यत्मिदमवबीत ॥ १ ॥

मघुरास्त्री से उपराक कथा श्रीरामचन्द्र जी की खोजा कर,
फिर कविन्त्र जी श्रीरामचन्द्र जी से बोले ॥ १ ॥

अयोद्याधिपति: श्री: पूर्वमासीचराधिपः ।
सगरेण नाम धर्मत्या मनाकाम: स चापाजः ॥ २ ॥

हे वीर! पहले यथायथापुरी में एक सगर नाम के राजा थे।
बनके पुत्र नहीं था, ग्रांत: उन्हें पुनर्गिरि की हिच्छा थी ॥ २ ॥

बैदधृद्विहिता राम केशिनी नाम नामातः ।
बृहेष्टा सगरपनी सा धर्मिष्ठा सत्यवादिनी ॥ ३ ॥

सगर के पत्रानी का नाम केशिनी था। वह विद्वेष्ट देश के
राजा की बेटीं और बृहेष्टा श्रीर सत्यवादिनी थी ॥ ३ ॥

अरिष्णेनमिदुहिता रूपेनाप्रतिमा खुवि ।
हितीय वगरस्यासीतपावो सुमतिसंजिता ॥ ४ ॥

इनकी दूसरी रानी का नाम सुमति था, और वह अरिष्णेन्द्री
की बेटी थी। और वह उन्नत स्वभावी अर्थत: सुन्दरी थी ॥ ४ ॥

ताभि वर तव राजा पवित्रयां तस्वांस्तपः ।
हिमवनं समासाय भूगृहावलो गिरि ॥ ५ ॥
उन दोनों रानियों सहित महाराज सगर हिमालय के सुमुखस्थ वगैः नामक प्रदेश में जा कर तप करते लगे। II 7 II

[नोट—सुमुखस्थ यह प्रदेश का नाम इसलिए पड़ा था कि, वहाँ भूगोल भी महाराज सवार तप करते थे।]

अथ वर्षनेते पूर्णेता तपस्सरसाधने कुनिः।
सगराय वर्ष मात्राभुगः सत्यवतावर: II 6 II
	तपस्या करते हुए महाराज सगर के जब सौ वर्ष पूरे हो गये तव सत्यवती महर्षि सहिं ने सगर की तपस्या से प्रसनन हें। उहें यह वर दिशा। II 5 II

अपत्यारभः सुमहानभविष्यः तवाननं।
कृतिः चामतिमा लोके प्राप्तः पुर्वपर्यं। II 7 II

हे पुरुषग्रेष! हे प्राप्तं। तुम्हें बहुत से पुत्रों की प्राप्ति होगी भीर।
(प्रत्युत् कृतिः सहिं मिलेगे।) II 6 II
एका जनयिता तात पुत्रं बंधकरं तव।
पाट्टि पुत्रसहस्राणि अपरा जनयित्वम्। II 8 II

(इन दो रानियों में से) एक के तो बंधन जानने चाहा केवल एक ही पुत्र होगा और इसी के साथ हजार पुत्र पैदा होंगे। II 5 II
भाषप्याण्य महात्मानं राजपुत्रियः प्रसाधं तय।
ञचतुः परम्परेवं कुतास्तालिपस्ते तदा। II 9 II
जब मुनि ने पेत्र तथा तब दोनों रानियों ने हाथ लेख कर कहा। II 6 II
एकः कस्यां सुतो व्रजसन्निन महान्नन्यिमण्यति।
श्रोतुविच्छायते अन्यत्र सत्यवस्तु वचस्तवः ॥ १० ॥

हेम व्रजसः! श्रीपकार वरदन सत्य हो, किंतु यह तेषाऽन्तराद्ये
कि, एक किसके भ्रात्र साठ हजार पुनः भ्रात्र किसके होगे ॥ १० ॥

तत्त्वात्तत्तचन्त श्रुत्वा भुगुं परमवार्तान्।
वचाच परमां वाणीं खचन्त् वेदः त्रिधीपत्याः ॥ ११ ॥

उन राजायों के इस प्रश्न के उत्तर में भृगु जी महाराज ने
कहा—यह हम दोनों को हजार पर निर्धार है। अथवा जैसा
चाहें हमें उसके वैसा होगा ॥ ११ ॥

एको वंशकरो वास्तु वहने वा महावलाम्।
कीर्तिमन्तो महात्साहाः का वा कं वरभिमच्छिति ॥ ११ ॥

तुम दोनों वलिङ्ग प्रलोकां वत्ताय ते, तुममें से कौन वंश की
बुद्धि करने वाला एक पुत्र और कौं वड़ वलिङ्ग कीर्तिमन्तो और
भामित उसकी साठ हजार पुत्रपति का वर चाहती है ॥ १२ ॥

शुनेत्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी रघुनन्दन।
पुत्रं वंशकरं राम जग्राह द्रपसविष्या ॥ १२ ॥

हेम रघुनन्दन! शृगु जी के इस प्रश्न को छठे केशिनी ने वंशकर
एक पुत्रप्रसाद का वर प्राप्त किया ॥ १२ ॥

पश्चिम पुत्रसहस्राणि सुपूर्णभगिनी तदा।
महात्साहान्त्वीर्तमन्तो जग्राह सुपति: शुनान ॥ १४ ॥
गौर गुरु की यज्ञ सुमति के यज्ञवान कोईमान साठ
एजार पुष्प देने का वस्त्रान सिला || १४ ||

मदरसिनभृपि कुष्ठा शिरसाज्ञिनभिनयम्य च ।
नगाम सुपुरं राजा सभायर्य रघुनन्दन || १५ ||

के राम ! महर्षि भृगु की परिक्रमा पर गौर उनके प्रणाम
कर यज्ञों वाहिन महागात सगर ध्रुपदी राजपरी के लाठ
गये || १५ ||

अथ कालं गनेतस्मिन्नवर्ध्यं पुच्छ व्यजायतः ।
असमासः इति विनां नखिन्नी सगरात्मनयूः || १६ ||

कुद्र समय वांतने पर सगर की पड़ताली नखिन्नी के गर्भ से
ब्रसमासः वार का एक राजकुमार उत्पन्न हुया || १६ ||

सुमतिस्य नार्याणाद गयेन तस्मय व्यजायतः ।
पद्यः पुत्रः सहस्राणि हवमेदादिनिनिन्तः || १७ ||

हे पुनःशोभकं ! चानी सुमति के गर्भ से एक नूँवा निकला ।
उस नूँवे का फोलने पर दम्म से साठ हजार वालक निकले || १७ ||

घृतपूर्णसुकुमरस्य धात्वसात्समसमवर्धयति ।
कालेन प्रहः सर्वं गायनं प्रतिपदिनः || १८ ||

उन सब शी की दृश्यों ने वो से महें द्रुपदी में राख, पाला येसा
गौर इस प्रकार वहत समय वीनते पर वे सब जयान हुये || १८ ||

अथ दृष्टः शर्मा कालेन सहस्राणि सगरस्याभवस्ततः ।
पद्यः पुत्रसहस्राणि सगरस्याभवस्ततः || १९ ||
बहुत दिनों में सगर के बे साठ हजार पुत्र जबान हुए। २६।।
स च ज्येष्ठो नरश्रेष्ठो सगरस्वात्मकस्यं।
वालकालिकाय तु जते सर्वया रघुनन्दन। २०।।
हे गम! सगर का ज्येष्ठ राजकुमार प्रसामस्य अवैयुवाचियों
के बालकों का पकड़ कर सरयूनदीं में फंक दिया करता। २०।।
प्रसिद्ध प्रहसनित्य जन्तवस्तानिर्नियमित्ये।
एवं पापसमाचार: सजजननाथवाकः। २१।।
और जब उन्हें लगते तब वह उन्हें हुवते हुए देख प्रसन
ख्वाता था। वह वड़ा दुरयावरी हो गया और वह सजनों
को स्वतान्त्र वन आचरण सजनों के आचरणों से बहुत
दुर थे। २१।।
पैराणामहिते युक्त: पुत्रो निर्वासित: पुरातः।
तस्य पुत्रोऽयुत्तमानं असम्भवस्य वीर्यवान। २२।।
इस प्रकार महाराज सगर ने पुरवाचियों को सताने बाले
प्रसामस्य को देशविनाशक का दृढ़ दिया। प्रसामस्य के भ्रष्टमान
नामक एक प्रतापमी पुत्र था। २२।।
संसमस्त: नवनान्तकस्य सर्वस्यापि मिबुवचः।
तत्तः कालेन महत शति: समभिज्ञायत।
सगरस्य नरश्रेष्ठ यज्ञयमिति निषिद्धा। २३।।
जे सब की सम्बन्धित से चलता था, सब से पिष्य वचन बोलता
था। बहुत दिनों बाद महाराज सगर की इलज्ज हुई कि, वह
करें। २३।।
एकोनचत्वारिश: संग्रहः

स कुला निध्वर्य राम सोपाध्यायणस्तदा ।
षड्कर्मणि बेद्धो यज्ञु समुपचक्रमे ॥ २४ ॥

इति अष्टविन्यासोऽसंग्रहः ॥

हे राम ! ऐसा निध्वर्य कर, वे अभिलिजों को गुला कर, यह करने लगे ॥ २४ ॥

वालकार्यद का प्रडौलित्व एसंस संग्रह समाप्त हुआ ।

—*—

एकोनचत्वारिश: संग्रहः

विश्वामित्रवचः श्रुता कथान्ते रथुनन्दनः ।
उवाच परमशीतो मुनि दीर्घविवाहलम् ॥ १ ॥

उक्त कथा समाप्त होते पर श्रीरामचन्द्र जी परम प्रीति के साथ
अंशिवतद देवीयमानविश्वामित्र मुनि से बाते ॥ १ ॥

श्रोतुमिच्छामि भवेन ते विस्तरेण कथामिरायो ।
पूर्वको मे कथं ब्रह्मण्यं वे समुपाहरत ॥ २ ॥

हे प्रदने ! श्रद्धा महाजल दृष्टे । मैं विस्तार पूर्वक यह खुलना
चाहता हूँ कि, ये पूर्वक महाराज संगर ने किस प्रकार यह
किया ॥ २ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्या कैलुहलसम्प्रतिवः
विश्वामित्रस्तु कालक्षट्यमुवाच प्रहसनित्र ॥ ३ ॥
तस्याश्वचर्यां काल्कुस्य एक्षणन्वा महाराजः ॥ ६ ॥

हे नर्वाच्य। हिमालय श्रीर विन्याचल पर्वत के बीच की भूमि यज्ञकर्म के लिये उत्तम है। हे काल्कुस्य। इस यह में ढोंढ़े हुए ढेंटी की धज्जा के लिये हुए धनुषधारी, महाराज ॥ ६ ॥

अंगुलमानकरोत्तात सगरस्य मते स्थितः ॥

तस्य पर्वणि संगुरक्षण यज्ञान्नर्व्य वासवः ॥ ७ ॥

अंगुलमान महाराज बगर के धारे से नियुक्त हुए। भ्रान्तर: इस यज्ञान के पर्व दिन इत्य ॥ ७ ॥
राखसीं ततुमास्त्राय यज्ञियांवस्मपाहरतः।
हीयमयस्तु काकृत्य स्त्रिमनश्च महात्मनः॥ ८॥
राजस्र का रूप भर कर यज्ञीय प्रभव हर ले गये। जयं यज्ञीय
प्रभव ले कर देख चलो, तव है राम॥ ९॥

उपाध्यायगणः सर्वं यज्ञमनमथानवनः।
अर्थ पर्वत्ति वेणेन यज्ञियावशोपवीयते॥ १०॥

सव यज्ञिविवाहा नेर राजा से कहा कि, यह का घोड़ा कोई बड़ी
tेजी से छुड़ा कर लिये जाता है॥ ११॥

द्वारां जन्हि काकृत्य हयथे बोपनीयतामु।
उपाध्यायचः शुल्वा तस्मिन्नदसिः वार्तिवः॥ १२॥

प्रत्येक दशसहस्त्राणि वायुमेतदवाच हे।
गति पुत्रा न पश्यामि रक्षसां पुरुषपर्यमः॥ १३॥

अपने लाहों हजार पुजानुमं यह बोले कि, हे पुजारे! यज्ञीय प्रभव
के हस्ते वाले दुर राजस्र नहीं दिखाई पड़ेगे कि, वे किस मार्ग
से घोड़ा छुड़ा कर ले गये॥ १४॥

मन्नपूर्तेमहामागरास्तिहो पद्माळः।
तद्गुण्यात्विचिन्नांग्नि पुत्रका मद्रस्तु वा॥ १५॥

यह वड़े वड़े मंजिले महासाम्राहों द्वारा कराया जाता है, जिससे
किसी प्रकार का विवेक उपश्रवित न है। वह तुम लोगों को चाहिये
fँ, तुरन्त जा कर घोड़े को पता लगाओ, तुम्हारा मन्त्र है॥ १६॥

वा १५ रा १७
समुद्रमालिनी सर्व सृष्टिवीमपुनुगच्छत।
एकैवं योजनं पुज्ञा विस्तारसभिमच्छत। ॥ १३ ॥
समुद्र ते भीतर व्रतार्य विभ्रमण्य विगच्छत। स्वयं हृङ्गन। एक पञ्च
योजन हृङ्ग कर स्वयं विगच्छ। ॥ १३ ॥
वाच्छुरगंद्धर्षस्तावत्ववतन्त मेदिनीसः।
तं चैव ह्यहर्षार्य मार्गमणा ममाज्ज्या। ॥ १४ ॥
मेरी भाषा ते प्राध्वर्घ्छर्ष को हृङ्ग हुए। तव तक प्रथिती वेड़ते
जाना जव तक पेड़का न विकाहै दे। ॥ १४ ॥
दृशिः पैत्रसहितः सेवाच्यायगणो स्वाह।
इह स्थाय्यामि भद्रे वा याच्छुरुरगर्षणमः। ॥ १५ ॥
मैं ते यहोय बोला लिये हुए हैं। सा जव तक में चेड़े का देख
न जुँवै, तव तक मान्यमाण धीरे उपचार्याओऽसहित यथा रहिवा है। जाथे,
लुहारा मक्कल है। ॥ १५ ॥
इत्युतः ह्यमनसो राजपुत्रा महावला।
जगमन्तितवलं राम पितुवबन्यन्तिता। ॥ १६ ॥
हे राम। वे महावली राजकुमार महस्त्र हो धीरे पिता की भाषा
पत्र कर, (बेड़े धीरे बेड़े के दुर्पने बाले को) पुष्पी भर में
हृङ्गने लगे। ॥ १६ ॥
योजनायामविस्तारमंकै नर्षणीतिः।
विभिन्तुः पुष्पिलयाय सुक्ष्रपवशुमंकै। ॥ १७ ॥
हे नरशाक्ति! सारी प्रथिती बोल उकने के पीड़े ध्याने चफ़्ज़ा
के समान नहीं से प्रत्येक राजकुमार एक एक योजन प्रथिती
बोलने लगे। ॥ १७ ॥
शूलाईनिकल्याश्च हृदेश्यापि भुदरणैः।
भिच्चमाना कसुमती ननाद रघुनन्दनः। १८ ||
हेऽ रघुनन्दनः इस समय वहेऽ को स्थायी ब्राह्मण मज्ज्वृत हजारों
पुजिको जोडिते समय पृथिवी पर हाकारक मच मया ॥ १८ ||
नागानाङ्ग क्रथमानानामकुराणाः च रावः।
राक्षसानां च दुर्ष्पः सत्वानां निन्देनाभवतः। १९ ||
पृथिवी खोडनेमें व्यानेतुत नाग, कैसव, ब्राह्मण बड़े बड़े दुर्ष्पः
राजस मारे गये श्रीराव व्यानेतु धायल हुए ॥ १६ ||
योजनानां सहस्त्राणि पश्चि तु रघुनन्दनः।
विभिन्दुर्गणिः शीता रसातलमुक्तमस्य। २० ||
हेऽ रघुनन्दनः उन श्वारोज्जननारो ने शान्त हुजार तेजसं मुरि
हाली श्रीराव खोड़ते खोड़ते वे पाताल तंक पहुँच गये ॥ २० ||
पर्वतसंवायं जम्बूद्रीपं दुर्घातमाः।
क्योन्तो दुर्घातां निर्भरे निर्पिच्छमेतः। २१ ||
हेऽ दुर्घातांृवः इस प्रकार वे राजकुमार पर्वतों सहित इस
जम्बूद्रीप को जोड़ते श्रीराव चारों श्रीराव हुँदते फिली ते ॥ २१ ||
तेन देनः सम्बन्धः साधुः। सहपन्नः। २२ ||
संज्ञानान्तवणः सर्वे पितामहपुगमन। २२ ||
आ ते सव देवता, सभाद, श्रुत्र, द्राक्षुर और पशुग विकल हैं ब्रह्मा
जी के पास गये ॥ २२ ||
वालकायदेः

ते प्रसाद महात्मानं विपण्णवद्नास्तदाः।
ञःपरमसंत्रस्तः पितामहिमं वचः। ॥ २३ ॥

जहा जी को प्रसन्न कर वे उदास मन प्राध्यंत्र भयभीत हो, जहा जी से यह भेजे। ॥ २३ ॥

भगवन्युथिवि सर्वं सहन्ते संगरात्मने।
वहवथ महात्मानो हन्यन्ते जलवासिन। ॥ २४ ॥

हे भगवन्। महाराज सगर के पुत्र सारे पुष्पविच सोदें हालते हैं भी उन लोगों ने प्राणभेद, तथा जलवासियों के सार भाला है। ॥ २४ ॥

अर्थ यहहरोल्मक्षणेन नाश्वरोपनीयते।
इति ते सर्वभूतानि हिष्निति सगरात्मनाः। ॥ २५ ॥

इति एकोनचत्वारिङ्ग। सर्गः। ॥

सगर के पुत्रों के सामने जो पढ़ जाता है, वे यह कह कर मार ढालते हैं कि, हमारे यहोप भर्त्त का चेष्टा यही है, यही हमारा बिहार गोड़ा सुरा ले गया है। ॥ २५ ॥

वालकायद का उन्नतालीसवें सर्ग समाप्त हुया।

-four-

चत्वारिङ्ग: सर्गः।
—०—

देवतानां वचः भुजा भगवान्वेपितामहः।
प्रत्युहाच सुरंस्त्रस्तान्तान्तवभथमोहिताः। ॥ १ ॥
छत्तार्थम् सर्गः

देवताओऽि इन वचनोऽि खुन, अहा जी सगर के पुत्रोऽि खे, जिनके सिर पर काल रहेल रहा था तथा महाशत देवताओऽि खे।

यस्येऽि वस्तुम् कृत्त्वा कार्यदेवस्य भीमतः।
कापिलं रूपमाश्चाय धारयत्यनिन्ति धराम्।

हे देवगणः! यह समस्त भूमि जिन धोमान महवान वासुदेव की, वे ही कलिक के रूप में निर्णय इस पृथ्वी की धारण करते हैं।

तस्य कापार्यिना दग्धा भविष्णविन्ति तुष्पत्तायः।
पृथ्विनासापि निर्पदा दृष्ट एव सनातनः।
वे समस्त राजकृमार उन्हीं कपिल के कौन्तेय के दृश्य है जोयगि। यह पृथ्वी तो सनातन है। निध्यय ही इसका नाश नहीं है सकता।

सगरस्य च पुत्राणा विनाशोऽदिर्घीविनासः।
पितामहावः ह्रत्वा नाहत्रिहादरित्तमः।
श्रीमत नाशानां सगर के पुत्रोऽं का नाश ही होगा; अतः तुम चित्ता मत करो। अहा जी के वे वचन खुन तेतीसः।

देवः परमसंहृतः पुनर्जगय्यथेयागतम्।
सगरस्य च पुत्राणा महादशुसोऽन्महाल्मनासः।
पृथ्विना भियमानाया निष्ठातसमन्निनः।
ततो भित्त्वा यहीं कृत्तानं कृत्या चाभिमदेशणम्।
चैतसा परम प्रसव हि जहाँ से आये ये वहां जाइ कर चले गये। इहर पृथ्वी खोदने वाले चार वेद के पुष्पों का पुष्पित स्नेह खोदने में कोलाहल वज्पात के समान हुआ। ते सारी पुष्पित को खोद देने को वस्त्र की परिक्रमा कर। ॥ ५ ॥ ई० ॥

सहिताः सागराः सर्वं पितरं वाक्यमद्याचन्।
परिक्रमान्त मही सर्वं सत्त्व्यम् स्रविततः। ॥ ७ ॥
देवदानवर्षांति विशालेचरंगशिराः।
न च पद्यमहेश्वरं तमसवहतारस्वेव च ॥ ८ ॥

प्राप्ये पिता से जा कर वाले कि, हमने सत्त्वगार यथस्त मृदुस्तिरी त्रृंढा या नंद, राजस्व, स्नेह, व्यया, युगा प्रार फल तो हमें मिले वहे हमने मार डाला; किंतु हमें न थो यथार्थ प्राप्त का वीर न वर्ष के ज्वाने भाले का पता चला। ॥ ७ ॥ ७ ॥

कि करिष्याम् भूदे ते वृद्धिर्गता विचार्यंताः।
तेषां तद्भवं श्रुत्वा पुच्छाणां राजसत्तमः। ॥ ९ ॥

ग्रामका मधुर हो, ग्रामपी से चरा कर चलाये कि, ध्वनि हम कथा करें। राजकुमारों की यह वात हुन नुम्फ्रेंव। ॥ ६ ॥

सम्युर्मवीढ़ारस्य संगरो रघुनन्दन।
भूयः लनत भूदे वो निभिष्ठ वस्तुचातलम्। ॥ १० ॥

स्वाद् हे राम! कुपित हो, उनसे चाले-जाओ और पुनः प्रथितजी खोदे। ॥ १० ॥

अश्वहतारसाचार वुधार्थ निर्वत्तैं।
पितवचनमावर्षाय सगरस्य महतमः। ॥ ११ ॥
चत्वारिष्टः सर्गः ॥ २७॥

प्रौर देवाञ्चुराने वाले को पकड़ प्रौर सफल है कर ही लैटेत। महाराज सगर की इस ब्राह्म के मञ्जुस्वर ॥ ११॥

पत्रीः पुत्रसहस्राणि रसातलभिद्रवः ।
खण्यमाणे तस्तस्मिन्द्रेण: पर्वतोपयम् ॥ १२॥

दिशागार्जुन विन्यासात्म धारणन्त मही़तउः ।
सप्तात्त्वनां दृश्यनां पृथिविः रघुनन्दन ॥ १२॥

वेसारा दुर्गाराज राजकुमार रसातल को धोर बुढ़े ओर खोदे वोदे उन्दोने उस परवतकोर विन्यास दिशागार्जुन को देखा, तो पृथिवी-मंडल की धारण किये हुए हैं। हे स्युनन्दन ! पर्वत सहित उस दिशा की समस्त पृथिवी की ॥ १३॥ १३॥

शिरसा भारयामास विन्यासो महागाजः।
यद्य पर्वानि काकुस्थेः निधानार्यं महागाजः। ॥ १४॥

महागाज विन्यासाल प्रवने सिर पर धारण किये रहता है। जब कभी वह महागाज भ्रक जाने पर दृष्टि लेने के लिये ॥ १४॥

खेलाच्चालयते निर्प भूमिकाम्पस्तदा भवेदः।
तं ते पदशिरण क्लत्वा दिशापालं महागाजः। ॥ १५॥

घणाने सिर हिलाता है तथी पृथिवी डेलवती धीर भूंडोल होता है। राजकुमार दिशापाल गजेन्द्र की रक्षका करनं ॥ १५॥

मानयन्तो हि ते राम जमुर्मत्वा रसातलमुः।
ततः पूर्वीः दिशंभित्वा दशिणां विभिन्नः सुनः। ॥ १६॥
तथा पुजन कर के हे राम | वे रसातल खोदते हुए श्रागे वदे श्रोत मूर्ति-दिशा को खोद कर, वे दक्षिण दिशा को पुन: खोदने लगे || १५ ||

dक्षिणस्यापि दिशिः दृढ़पूर्वतेः महावज्ञः || १६ ||

महापार्व महात्मानं सुभद्रेपवतौपसः || १७ ||

दक्षिण दिशा मे भी उन्होंने वदे विशाल परवतौपम डोल-डॅल के दिग्गज महापार्व की देखा || १७ ||

शिरसा धारणतैं ते विसयं जगमुख्तकसः || १८ ||

तत: प्रदक्षिणं क्रत्वा सगरस्य महात्मयः || १८ ||

उसे प्रवते सिद्ध पर उस दिशा की पृथिवी रखे हुए देखा वे लोग प्रवधन विस्मित हुए। महाराज सगर के पुत्रों ने उसकी भी परिक्रमा की || १८ ||

पश्चिम पुत्रसहस्राणि परिष्ठयाणां चिन्मिद्रतिदर्शम् || १९ ||

पश्चिमायामपि दिशिः महान्तमचलोपसः || १९ ||

और साठों द्वारा ( इस दिशा की ढाई ) पश्चिम दिशा की भूमि खोदने लगे । पश्चिम दिशा मे भी एक वदे पहाड़ के समान || १६ ||

दिशागंजं संपन्नसं दृढ़पुर्वते महावज्ञः ।
तं ते प्रदक्षिणं कट्वा पृथ्वी चापि निरामयः || २० ||

संपन्नसं नामक दिग्गज के उन महावज्ञोऽधर्मकर्मारों ने देखा । उन लोगों ने उसकी भी प्रदक्षिणा की और उससे भी कुशल प्रश्न पूछा । २० ||
चत्वारिश: सर्गः  

खन्नतः समस्पष्टोत्सव द्रम्म हृदयमवत्ती ततः ।
उत्तरस्यं रघुश्रेष्ठ दश्युहिंशपाण्डुरस्य ॥ २१ ॥

हे रघुवर! तदनन्तर उन लोगों ने उत्तर दिशा की भूमि 
खोदने पर वर्ष के समान सफेद रंग का ॥ २१ ॥

भद्रं भद्रन वपुपा धारयन्तं मधीमिवामु ।
समालभ्य ततः सगं कत्सा चैनं प्रदक्षिणमु ॥ २२ ॥

भद्र नामक वहीं ढीलडाल का दिगम देखा, तो उस 
विश्वास की भूमि धारण किये हुए था । उसकी भी प्रदक्षिणा 
कर ॥ २२ ॥

पष्टिः पुत्रसहस्राणि विभिन्नमुस्वातलमु ।
ततः भागुराण गता सागराः प्रथितां दिशाः ॥ २३ ॥

माठो हजार राजकुमार पृथिवी खोदते हुए अगे वहीं घोर 
'प्रसिद्द दिशा हृदय में जा' ॥ २३ ॥

रूपादम्यखनन्तरं पृथिवी समरालमा: ।
ते तु सगं महात्मानं भीमेवेगा महावल्ला: ॥ २४ ॥

वहे कोष के पृथिवी खोदने लगे। उन सब भीमेवेग वाले 
महामार घोर महावली सगर पुर्खों ने ॥ २४ ॥

दश्यं कपिलं तकन वायुदेवं सनातनमु ।
हृम्य च तस्य देवस्य चरतमविद्यूतः ॥ २५ ॥

सनातन वायुदेव कपिलेश्वर की देखा घोर उनके समीर ही 
चरते प्रस्थ अपने विश्वाय प्राप्त को भी देखा ॥ २५ ॥
पहिंचतुर्ग माता: सब्जे ते रघुनन्दन।
ते तं हयहर्ष नाता गोथपर्वतकृत्तेक्षण। ॥ २६ ॥
हे राम। वे सब खेड़े को देख अत्यन्त प्रभुदत हुए और
कपिल देव के उस खेड़े का चुराने वाला सभी और अत्यन्त
कुछ है। ॥ २६ ॥

सनिश्चितकुल्लारा नानात्मकशिवारा। ॥
अन्यरामवान संकुचड़ालिंग तिपति चालुमन् ॥ २७ ॥
उन्हें मारते के लिये हल, कुदाल, बुज और पत्थर लेकर उनकी
वृद्धि और कुछ है। कहते लगे, तहर उहर ( यार्यादु, घोरो हम
लेकर गोड़ा खुराने का फल चखाते हैं) ॥ २७ ॥

अस्मांक स्वं हि तुर्गं स्वायं हृतवानसि।
दुर्मृतस्य हि संभासार्वनिविव्यि नः सगरतम्यानू। ॥ २८ ॥
तुने ही हमारे यह का बोड़ा खुराया है। तू बड़ा दुर्वृद्ध है। वे
सब महाराज सगर के पुत्र था पहुँचे ॥ २८ ॥

शुल्का तु वचनं तेषा कपिलो रघुनन्दन।
रौष्णेन महताविश्लो हुकारमकरोच्चा। ॥ २९ ॥
हे रघुनन्दन। सगर के पुत्रों की थे बातें खुन, कपिल देव
अत्यन्त कुछ हुए और। "हुकार" शब्द किया ॥ २९ ॥

तस्तत्वनामितएयेन कपिलेन महात्मना।.
मस्सराशीकृतं सबैं काकुलस्य सगरतम्या। ॥ २० ॥

इति चतवारिशः सर्म॥
एकचत्वारिश: सर्गः

पुत्रांशिरिगताञ्जाला सर्गरे रघुनन्दन ।
नस्तारमद्रवीद्राजा दृष्ट्यमानं स्तवेनसा ॥ १ ॥

हे रामचन्द्र! जव महाराज सर्गरे देखा कि, उन राजकुमारों
को भये बहुत दिन हो खुदे (गौर वे न लैटे) तब अपने तेजस्वी
रीतमान प्रेत श्रुण्यमान से कहा ॥ १ ॥

श्रुतः कृतिविचार पूर्वन्तुप्रेरितसि तेजसा ।
पितर्णां गतिमनिच्छ येन चाश्वोपहारितः ॥ २ ॥

हे वत्! तुम शुरवीर हो, विद्वान् हो गौर अपने पूर्वजों के
समान तेजस्वी भी हो। जाकर अपने पितृवियों (चाचाश्यों) का
गौर बैड़ा जुराने चाले का पता लगायो ॥ २ ॥

अन्तर्मृतानि सत्त्वानि वैर्यविनि महानति च।
तेपां तं प्रतिज्ञातार्थ सासि गृहीणः कामरुकमु ॥ २ ॥

इस पुष्पिको के भीतर बिलों में बड़े बड़े पराकांक्षी जीवधारी हैं।
परं: उनकी इरादे के लिये गँगा व ब्रह्मपुर वाण लिये रहे ॥ ३ ॥
अभिवादनाभिवादांस्तं हत्वा विन्धकराणि।
सिद्धार्थः सत्तिवर्तस्तं मम यज्ञस्य पार्सः॥ ४ ॥

व्यवहरा यथा पुष्प सिले, उनका प्रयास करना श्रीर जो विचकार कर हैं उनका चब करना। (इस प्रकार कार्यविधि कर लौटता, जिससे (ध्रुवा) यह पूरा हो।॥ ५ ॥

एवमुक्तोहारसम्यकसामने महात्मना।
धनुरादाय स्वार्त जगाम वस्तुविक्रियः॥ ६ ॥

अपने वाक्य के इस प्रकार समकाले पर श्रीर धनुष वाय वर्त तत्वार ले, एन्दुस्मन तुर्न चल द्रियः॥ ६ ॥

स राति पितुभिमार्गशत्तांसे महात्मम्।
परापठत नरश्रेष्ठस्ते राज्यभिमूलः॥ ७ ॥

महाराज की यात्रा के अनुसार वह उस मार्ग पर जा पहुँचा जिसे उसके पितुभोजन ने खोद कर बनाया था श्रीर उस मार्ग से पातल में पहुँच गया॥ ८ ॥

दैत्यब्राह्मणराजेकों पित्ताचपतंगारः।
पूज्याय भाग्येजया दिशागंगमवशम॥ ८ ॥

देव, दृष्टि, यज, राज, पित्ताच श्रीर नाग—मार्ग में जो जो मिलता वही इसका ग्राह्य स्थापन करता। जाति जाति महात्माख्ये एन्दुस्मन ने एक दिनमय का देखा॥ ८ ॥

स तं मद्धिक्षणं कुत्रा हद्धा चैव निरामयम्।
पितान्स विभिन्नम्च वाजिहत्तारमेव च॥ १० ॥
उस दिनमाज के परिक्रमा कर तथा उससे शिष्यावर दो वातें कर, ज्यादातर कुशल प्रसाददी कर, भ्रमणानन्द ने उस दिनमाज से अपने छात्रों का प्रमाण देखते हुए उसके पुत्र नामो का पता पूर्वकः।

दिनामजस्तु तत्त्वा त्वह भ्रमणानन्देऽनो वचः।
आसमान्य एतातर्थस्तम् सहासववः शीघ्रमेष्यसि।

दिनमाज ने उतरे में कहा कि, है प्रसाददी के पुत्र भ्रमणानन्द लुम अपना दर्शन लेकर घोड़ा ले कर शीघ्र जाते गये।

तस्य तद्दचनं श्रुत्वा सर्वनेन्द्र दिनामजान्तः।
यथाक्रमं यथान्यायं प्रश्नं समुपचन्द्ये।

उस दिनमाज के यह वचन सुन, भ्रमणानन्द भागे बढ़ा और यथाक्रमे शेष दिनमाजों से भी बड़ी पूर्वकः।

तेषां सर्वेष्कृतिद्वारे उच्छोषिताक्षराचे योगरूपैरिविद्।
पूर्णितः सहयोगवै गन्तासीतायभिषेदितः।

उन सब दिनमाजों ने वात करने में चुड़ा भ्रमणानन्द द्वारा पूर्णित होकर, बड़ी वात कहीं ज्यादा भागे वहे चले जाते।

तेषां तद्दचनं श्रुत्वा जगाम लघुविक्रमः।
भ्रमणानन्देः यत्व पितास्तम्य सागरः।

उनके इस प्रकार के वचन सुन, भ्रमणानन्द शीघ्र त्रस्त गया, जहाँ स्तर के पुत्रों और उसके चात्रों के मस्त चित्रे हुए शरीर की राख का देख पड़ा था।

स हृदात्कथामापनस्त्वसम्मसुसवास्तदा।
चुक्रोश परमार्थस्तु वय्याचेतां सत्ततितः।
वालकार्त्ते

दश्यमन उसे देख बहुत दुःखी हुथा और उनके मृत्यु पर 
शोकावित ही देखने लगा ॥ १२ ॥

यज्ञीय न हयं तत्र चरन्तपविदूरतः ।
ददर्श पुरुप्याग्रो दुःखश्रोकसमन्वितः ॥ १४ ॥

dुःख शोकातुर दश्यमन ने समीक्ष ही यज्ञीय अर्थ की भी 
चारते हुए देखा ॥ १४ ॥

स तेषां राजपुत्राणां करुकामो जलक्रियाम् ।
सरिलार्थी महातेजा न चापण्यजनःश्रायम् ॥ १५ ॥

दश्यमन ने मरे हुए राजकुमारों का तर्पण करना चाहा,
किन्तु तलाश करने पर भी उसे वहाँ कोई जलग्रह न मिला ॥ १५ ॥

विसार्य निपुनां दृष्टि ततोपद्यतंतवानाधिपम् ।
पितराणा मातुरव राम सुपूर्णमनिलोपमस्म् ॥ १६ ॥

दृष्टि औजारक देखने पर उसे अपने चाचाभाओं के मामा वायु 
के सामने वेग चले गये जी देख पड़े ॥ १६ ॥

स चैनमव्रीवार्य वेनतेयो महावचः ।
भा शुचः पुरुप्याग्र वयोश्व लेरकेसमतः ॥ १७ ॥

गये जी ने दश्यमन से कहा, हे पुरुप्षिः! तुम दुःखी मत 
हो। क्योंकि इन सब का वध लोकोमत ही हुआ है ॥ १७ ॥

कपिलेनाम् मेवने द्रुथा हीमे महावचः ।
सरिला नार्सी मात्र दातुमेवं हि लोककस्म् ॥ १८ ॥
पक्ष्यार्थः गर्गः

ये सब प्राचिन्य प्रभाव दालो महाभाषा कविता द्वारा मस्त किये गये हैं। हे प्राण! इनकी लौकिक ( साधारण ) जलदान मत करो।

ज्ञात कृप तढ़ाग के साधारण जल से इनका तर्पण मत करो। । । । । ।

गजा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषपर्वभ।

तस्यां कृष महावाहो नित्यान्त तु जलक्रियाय। । । । ।

हे पुरुषपर्व। हिमालय की ज्येष्ठा पुत्री गजा नदी के जल से तुम अपने पिताओं का तर्पण करो। । । ।

भस्मराशीकङ्क्तानेतान्याचेच्येलेक्षणी।

तया हिमालयं भस्म गज्या ठोककालया। । । ।

नव लेक्षणी गज्या जो के जल से इनकी भस्म तत्र होणे वर्तंते वेवल तर्पण से ही काम न चलेगा। । ।

पर्यं तुरस्तहयाणी घर्णार्केन विषयुति।

गच्छ चार्यं महाभाग संग्रह पुरुषपर्व। । ।

तव साठ हजार राजकुमार स्वर्गचाली होंगे। हे महाभाग।

हे पुरुषोत्तम। तुम धोढ़ा ले कर जीत जाओ। ।

यह पैतामहं बीर संवर्त्यपितुपहस्त।

सुपर्यवचर्चन श्रुत्त्वा सोभुमानित्वियवान्। ।

श्रीर अपने दान का यह पूरा करें। । प्रति पराक्रमी

गधे यशवन्ती श्रुत्यं संश्लिष्टकुन्म गन्धे जी की ये वातें खुन। ।

त्वरितः ह्यमादानं पुनरायत्वस्याय।

ततो राजाबाबाय दीप्ति हस्यन्दन। ।
तुरन्त घोड़ा ले कर लौट आया। यहाँ दोज्जो से दूर गए महाराज सगर के पास जा कर || २४ ||

न्यवेदन्यथायथात्तुं सुपर्णवचनं तथा।
तच्छु त्वा भोरसंकाशं चाक्षर्मण्युपो ट्रपः || २५ ||

उनको गज्जर जी को कहीं सब वातें लुतायो। श्रीयुमान की उन दृष्टि वातों की छुनि, महाराज सगर बहुत दुखी हुए || २५ ||

यहं निर्विन्नयामस्य यथाकर्त्यं यथाविचि।
स्पुर्वं चागमच्छ्रीमानिन्यायको महीपति:।
ग्राह्यायाश्रामे राजा निश्चयं नाघ्यगच्छतू || २५ ||

तदनन्दत्त उन्होंने यथाविचि यह पूरा किया श्रीयु तथा प्रपनी राजमानी के लौट गये श्रीयु तथा बहुत सोचने पर भी महाराज सगर के गज्जर जी के लाने का कोई उपाय न दृष्टि पड़े || २५ ||

अगत्यं निश्चयं राजा कालेन महतां महान्।
त्तिर्दल्पसहस्राणि राज्यं कुल्वा दिचं गतः। || २६ ||

इति पञ्चदन्तारिणः सर्गं:।

बहुत काल तक सोचने पर भी उस समय में महाराज सगर कूलभी निश्चय न कर सके, अंत में तेतो छज्जार वर्ष स्वतं कर अस्वर्गबाक्स हुए || २६ ||

वालकाश्व का इक्ततालोसवा सर्ग समाप्त हुआ।

—***—
दिच्चत्वारिंशः सर्गः

कालथर्मः गते राम सगरे मक्तीजनाः।
राजानं रोचयामायाम्यन्त्रं युधामर्क्किमः॥ १॥
महाराज सगर के स्वर्गवासी होने पर, मन्त्रियों ने बड़े ध्यान में महाराज अंशुमान की राजसिंहासन पर शैलाध्य किया॥ १॥
स राजा सूच्चानासीदंश्यमानं रघुनन्दनं।
तस्य पुत्रो महानासीदिलीप इति विश्रुतः॥ २॥
हेमणुन्दनं। महाराज अंशुमान बड़े प्रतापी राजा हुए।
वनके पुज़ जगतप्रसिद्ध महाराज दिलीप हुए॥ २॥
तस्मिन्त्राष्ट्यं समावेष्य दिलीपे रघुनन्दन।
हिमवंचिष्करे पुष्ये तपस्ते सुदार्शनम्॥ ३॥
महाराज अंशुमान ने ध्याने पुत्र दिलीप के राजसिंहासन पर विटा कर, स्वयं हिमालय के शिखर पर जा कोटार तप किया॥ ३॥
द्वारिश्रच सहस्राणि वर्षाणि सूच्छायादः।
तपेऊवनं गते राम स्वर्गं लेने महायादः॥ ४॥
ध्रुवमें वसीस हजार वर्षं तप करते के बाद वे महायाटी महाराज अंशुमान भी स्वर्गवासी हुए (किन्तु गठन नहीं कार्य की)॥ ४॥
दिलीपस्तु महातेजः श्रुत्वा पैतामहं ववसम।
दुःखेपहलया बुद्ध्या निध्यं नाधिगच्छति॥ ५॥

वास ५०—१६
महाराज दिलीप धनराज पितामहों के वर्ध का वृद्धि नाम कर मरम्मत हुए, किन्तु (श्रीगुजा जी के लाने का) कोई उपर। वे भी निष्ठुर न कर सके।

कथा गुजारातरण कथा तेज़ा जड़किया।
तारवेण कथा चैनालिति चिन्तापरोपाभवुच।

वे नित्य ही सोचा करते कि, श्रीगुजा जी किस प्रकार प्राप्त, पितामहों को (उनके जल से) जलाकिया कैसे की जाय और हम उनके किस प्रकार तारे।

तत्स्य चिन्तायिते नित्यं घर्षणं चिदित्तात्मण।
पुत्रो भगीरथे नाम जज्ञे परमधामिकसं।

धर्मस्य बुधपरिलखत महाराज दिलीप नित्यं ऐसा सोचा करते कि, इससे उनके परमधामिक भगीरथ नाम का पुनः उद्वर्त हुआ।

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञवल्क्यपरिश्रुतोऽवान।
जीवद्वभुजेनापि राजा राज्यमकर्षयतु।

महाराज दिलीप ने बहुत यह किये श्रीर तीस हज़ार वर्ष राज्य भी किया।

अगत्या निश्चयं राजा तेपायुद्धरणं प्रति।
व्याधिना नरशार्दुः कारथर्ममुपेर्यवान।

महाराज (भी) पिताओं के उद्दर के लिये विचित्रत थे कि, इसमें नरशादुर्व दिलीप बीमार हुए और स्वतः की प्राप्त हुए।
इन्द्रेऽकं गतो राजा स्वार्जितेनेव कर्मणा।

राज्येऽङ्गरथ पुज्जमभिपिच्च्य नर्षभम:। १०।।

प्रपने पुज्जकमोऽऽे फळे से दिलीप स्वर्ग गये धौर प्रपने
सामने ही नर्षबेज महाराज प्रपने पुज्ज अलेकरथ को राजसिंहस्य
पर बिडा गये। १०।।

अलेकरथस्तृ राजर्षिन्धर्मकैर रघुनन्दन।

अनपल्यो महातेजः: मनाकामः स चामः। ११।।

हे रघुनन्दन। महाराज अलेकरथ परमधामिक राजर्षिये: धौर
निस्सन्तान हिने: से वे सन्तान हि:ने को इच्छा करते थे। ११।।

पत्रिपवाधय तद्राज्यं गजळवतः रतः।

स तपो दीर्घमातित्तृस्तोऽकरः रघुनन्दन। १२।।

हे रघुनन्दन! जव उनके पुज्ज न हुष्टा, तव राजसमार प्रपने
भीतियो की सोऽ, वे स्वर्ग गोकरः नामक तीर्थ पर जा, गजळवतः
के लिये यहुः दिनो तक तपया करते रहें। १२।।

जर्ष्वाहुः पश्चतपा मासाहारो जितेन्द्वः।

तस्य वर्षसहस्साणि घोरे तपसि तिष्ठत:। १३।।

वे उपर के हाथ उठाये रखते, पश्चत्ता तापते, महीनो वाद
किसी एक दिन भाजन करते धौर इन्द्रियों को जल मे: रखते। इस
प्रकार एक दस्तार वर्ष तक वे कठोर तप करते रहें। १३।।

अतनानि महावाहो तस्य राज्रो महालमः।

सुमीतो भगवान्धर्म्मा मनान्त पत्तिरीश्वः। १४।।
है महावाही। एक हज़ार वर्ष शीतलजिया ते लौकों के स्वामी धौर प्रथु ब्रह्मा जी संगीर्थ पर युक्तस्थ हुए। ॥ १४ ॥

ततोऽयुग्यः सार्थमुपागम्य पितामहः।
ज्ञानीर्य महात्माशां तपमानमेवावतीवीनु। ॥ १५ ॥

धौर देवताओं ते साथ ले तपस्वा में लगे हुए, महात्मा संगीर्थ के पास जा कर थाले। ॥ १५ ॥

भगीरथ महाभाग श्रीतस्ते भजनेवरः
तपसा च सुन्त्रेन वरं वर्यू सुन्त्र इति। ॥ १६ ॥

है महाराज संगीर्थ! तुमने बड़ी कठीन तपस्वा की, प्रति हम तुम पर प्रसन्न हैं, है सुन्त्रत! वर मनोवा। ॥ १६ ॥

तस्मावच महातेजाः सर्वकषोपपितामहः
भगीरथो महाभागः कुताह्यतिपस्यवतः। ॥ १७ ॥

यद्गुन मे भगवन्मीतो यथस्ति तपसः फलमुः
सोभास्यात्त्राः सवं मर्त्रः सबिळमप्यवः। ॥ १८ ॥

है महावरह! यदि धारप सुम में प्रसन्न हैं धौर मेरे तप का फल देना चाहते हैं, तो यह वर वृजिये कि सतार के पुत्रों के मेरे मार्ग पालक प्रात हो। ॥ १८ ॥

गह्वाया: सबिळकिन्ने भवमन्येष्व महात्मनामाः
स्वर्गः गच्छेदुर्लभं सर्वे में प्रस्तिलमहः। ॥ १९ ॥
क्योंकि हमारे महाला परदाये वसी स्वर्गवाली होगे, जब उनकी राख गजा नल से संगीती धर्यात उनकी राख गजा जो में
भैया। || १६ ||
देवा च सन्ततिदेव नावसितेकुलं च नः ॥
इष्वाकुण्डं कुरं देव एष मेज्जु वरं परं। || २० ||
हेदेव। ठड़का चर में यह मांगता हैं कि, मेघा इष्वाकुलवंश नभ
हो। इसलिये सुभे सन्तान सो दीजिये। यह में ठड़का चर चाहता
है। || २० ||
उष्मावक्यं तु राजानं सर्वोक्तिविभामः।
पत्युवच शुभं वाणिः मधुरं मधुरकरायम्। || २१ ||
महाराज भगीरथ के ते वाक्य चुन, सर्वोक्तिविभाम् ब्रह्मा
यह मधुर एवं शुभ वाणिः बोले। || २१ ||
मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ।
एवं भवतु भद्रं ते इष्माकुलवर्धन। || २२ ||
हेमहारथो महागीथ। तेरा मनोरथ है तसा बंद्र्, किंतु चह पुरोष
हीना धर्मां धर्मात तुष्के पुत्र की प्राति होगी। हेम इष्माकुलवर्धन। तुम्हारा
महंत है। || २२ ||
एवं हेमरति गजाज ज्येष्ठ हिमनं: सुता।
गजाया: पतनम राजनाथिवी न सहिष्यति।
तां वे धारित्वं वीर नान्यं पश्यामि शृङ्खल। || २३ ||
हिमालय की ज्येष्ठ पुरोष यह गजाजी जव (बड़े बेग से)
पृथिवी पर गिरेंगे, तब इसका बेग पृथिवी न भूलायें लिखी।
बलकार्दे

उनके वेग के सस्ताल चलने की सामर्थ्य शिव जी की हंगाम श्रीर किसी में नहीं है ॥ २३ ॥

तमेवसुन्त्वा राजान गंगा चायाभ्य थैंक्रितु ।
जगाम श्रिदिव देवः सह देविसुभुन्गः ॥ २४ ॥

इति द्विभार्तिरः सर्गः ॥

tस प्रकार यहा जी महाराज भगीरथ श्रीर गंगा जी से कह कर, देवताओं सहित श्वर्गलोक की गये ॥ २५ ॥

बलकार् दे का व्यालीसवां सर्ग समाप्त हुया ।

—*-—

देवदेवे गते तस्मिन्स्तोउद्गुप्तचार्यपिपितामुः ।
हृत्वा चतुर्दश। राम संवत्सरमुपासत ॥ १ ॥

उहा जी के चले जाने के बाद महाराज भगीरथ ने ब्रह्म के
श्रोधुद के सहारे खड़े हो कर एक वर्ष तक शिव जी की उपासना
की ॥ १ ॥

अध्वरहुरिन्दरक्षे वायुमक्षो निराधयः ।
अचलः स्थायुवतिस्तवा राजित्वारिन्द्रमुः ॥ २ ॥

हे भारित्वम् । भगीरथ जी ऊपर के बाहु किये निराधस्व, वायु
पी कर विना व्याख्या, खूंसे की तरह अचल हो, रात दिन खड़े
हे ॥ २ ॥
अथ संतत्सरे पूर्णे सर्वलोकनमस्तुता।
उपापतिः पुष्पपति राजानिमिदमवीद।। ३ ॥
जत एक वर्ष पृष्ठ हुशा तव सर्व-लोक-नमस्तुत उपापति
महादेव जी ने भजनमं भे यह कहा।। ३ ॥

प्रीतस्वेधः नर्श्रेष्ठ करिप्याभि तव मियम।
शिरसा धारापिप्याभि श्रीनराजस्तुतामहस्तम।। ४ ॥

हि नर्वेष्टि हस तेरे ऊत्र प्रमाण देने धैर्य ले औ चाहेगा तो हस
तेरे निये करेगे। हस धांगारा जी के अपने सिर पर धारण
करेगे।। ४ ॥

tato हेमवती ज्वेर्षा सर्वलोकनमस्तुताः।
tatra सरिन्ध्रुप्रात्र कुत्वा यंग च हुससहम।। ५ ॥
	तव संप तेजः के नमस्तवर करने यथाय गढ़ा जी, महदूप धारण
कर और दुसह वंग के साथ।। ५ ॥

आकाशादृश्यपत्र बिनेन शिवशिरस्सुत।
अचिन्तया सा देवी गद्धां परमपुर्णा।। ६ ॥

ध्यानाशी श्री जी के मस्तक पर मिरी। (धैर्य गिरते
समय ) परम दुर्धर गद्धा देवी ने साचा कि,।। ६ ॥

विशालयाह हि पातालं सोरसा गुह्र श्वेतम।
तस्याच्येपनं झाल्ना कुदस्तु भगवानार।। ७ ॥

म् प्रयती धार्य के साथ महादेव जी की यह कह पाताल ले
जाओगी। गद्धा देवी के इस धर्ममान सर विचार को जान कर,
भगवान् श्रीमहादेव जी ध्यानम कुद् हुए।। ७ ॥
तिरोभावयति दुर्दिन चरणे त्रिभुजनस्तदा।
सा तस्मिन्नतिता पुष्या पुष्ये खुद्रस्य सूर्यनित।

हिमवत्यतिभुर राम जटामण्डलगद्दरे॥
सा कथचिन्महि गन्तु नाशकोचचत्वमास्तिता॥

ध्वर उनका ध्रुवने जटाजुट ही में बिपा रखना चाहा।
हिमाचल के समान ध्वर जटामण्डल खोपी धुता चाले शिव जो
के पवित्र मस्तक पर श्रीगृहाः जो गिरते ध्वर ध्रुवेक उपाय करने
भी जटाजुट से निकल पूर्विको पर न जा सकर॥ ८॥

नैव निर्ज्ञयन हरे जटामण्डलमेहिता।
त्रैवार्तख्रयदेवी संबंधसरगान्न्वहृन्॥ ९॥

बे शिव जी के जटाजुटों में कितने ही वर्षों तक ध्रुमा कर्का
ध्वर बाहर न निकल सकर॥ १०॥

तामपश्यन्युयनस्तत्र तपः परमास्तितः।
अनेन तोपितांत्सूदलस्य रघुनन्दन॥ ११॥

हे रघुनन्द! गद्दा जो कै न देख सहार न भगीरथ ने फिर कठोर
तप किया ध्वर तप द्वारा सहवानु शिव की प्रस्तुत किया॥ १२॥

विसर्ज स्वस्त गद्दा हरो विन्दुसरः भ्रती।
तस्यां विष्णुत्यमानाय वस स्रोतसिः जडिते॥ १२॥

ध्वर श्रीगृहाः जी के हिमालय पर्वत पर स्थित विन्दुसर में
विपड़ते ही गद्दा जी को सात धारायें हो गया॥ १२॥
हादिनी पावनी चेव नहिं च तथापि
तिसः पावनी दिशां जग्गूर्गंधा: शिवजला: शुभा: ॥ १२ ॥
हादिनी-पावनी अंग्रेज स्वती गद्य जो की ये तीन कलाबीकारिकी धाराएँ उस तर से पूर्व की प्रीय दिल रहीं ॥ १३ ॥
चुङ्खुश्रेष्ठ सीता च सिंघुश्रेष्ठ महानदी ॥
तिरस्त्वेता दिशां जग्ग: पतींची तु शुभेष्टका: ॥ १४ ॥
ध्रोग्न्द्रा जो के शुभ जल की चुङ्खु, सीता और विनेता नाम की तीन धाराएँ पखिम दी प्रीय दिल रहीं ॥ १५ ॥
तस्मी चाण्गतासां भगीरथमथो ध्रुपम् ॥
भगीरथोपि राजपरिश्रितवर्य स्वन्दरमासिद्धान्त: ॥ १६ ॥
सातवी धार महाराज भगीरथ च कर्तव्यो च चलो।
नाजिच्य भगीरथ एक तुष्णे रथ में बैठे हुए ॥ १७ ॥
भागाद्ग्रे महातेजा गद्य तं चाण्ग्युवनवद् ॥
गन्नाद्वृक्षार्जितस्तो धरणिमागता ॥ १८ ॥
प्रहो प्रती चले जाते थे और उनके पोड़ी पीड़ ध्रोग्न्द्रा जो चली जाती थीं। प्राकाश से ध्रोमहाद्वीर जो के मस्तक पर और उनके मस्तक से ध्रोग्न्द्रा जो धरणोतल पर धराईं ॥ १९ ॥
ध्यापतेल तदह तद वीणाद्रुपंकुशस्वसनुम् ॥
पत्यक्क्षुरसप्पथ शिशुमारगणेणस्था ॥ २० ॥
पत्रद्र: पतितेशान्याये पैशाचित वचयन्तरा ॥
तदह देवत्तिगन्थर्या यथा: सिद्धगणस्था ॥ २१ ॥
उनके पूर्वी से पर गिरते ही बड़ा शब्द हुआ और मझूलियाँ, कहुए, छँूँस प्रादि जलजन्तुओं के सूंदे के सूंदे गड़ा जो की धूँ के साथ गिरते पड़ते बने जाते थे। जिन्द्र श्रीगंगा जो जाती थी। उद्धर की भूमि सुशोभित हो जाती थी। देव, अनुपि, गन्धर्व, खल्च और सिद्धगण || १७ || १८ ||

व्याक्यतं ते तन्त गगनाद्रगं गता तदा।
विमानितरावकाराध्यर्गजवैस्तदा || १९ ||

आकाश से पूर्वी से पर आई हुई श्रीगंगा जी का देखने के लिये उच्चम नगराकार विमानों, हाथियों और बोटों पर सवार होकर कर प्राये हुए थे || २० ||

पारिश्रवकत्तेश्चापि देवतास्त्र विधिता:।
तद्धुतत्तम श्रेष्ठ गजापतनमुचयम् || २१ ||

श्रीगंगा जी के पूर्वीतव तः पर अत्यन्त प्रभुक्त व्यवस्था की देखने के लिये देवता लोग परिष्कृत नामक विमानों पर चढ़े हुए थे || २१ ||

दिंक्ष्चवो देवणा: समीयुरसिमिताजास:।
संपत्तिः सुरगणेष्ठसां चाभरणोऽजसा || २२ ||

देखने के लिये भागे हुए भ्रातान देवता जिस समय आकाश से उतरते थे, उस समय उनके आभूषणों को प्रभा से || २२ ||

श्वादिल्यविभावाति गगन गततोयः।
शिंशुमारोगणणमैनेम पिच चबवः || २२ ||
निर्मल बेघ्राजुंप्रा कारण ऐसा खुशीमित्र ज्ञान पड़ता था मानों धारण में लेकरीं सुरंग निकल रहे हैं। बीच बीच में कुशी और चम्पक मदुदिनाओं के सुंड जो। २२।

निकुण्डतिरिव विशिष्टान्नायामयभवावन।

पाण्डुर्ज: सजिलेत्वलीड़: कौर्यामाणे: सहसत्वा। २३।

(जो जल के चेंग ले ऊपर की) दुनाले नाते थे, वे ऐसे ज्ञान पड़ते थे, मानों धारण में विज्ञानी चमकनी है। ध्वार जल में उठे बुध सफेद सफेद फेंक जो इधर उधर जगह जगह फिरता गये थे। २३।

शारदान्नरिवाकीर्ण गगनं हंससांवं।

कवित्रद्वन्दवर्त्य याति तुर्लिं कविद्रायतयम्। २४।

ऐसी जोभा दे रहे थे मानों खंडों के खुंडों से युक ध्वार इधर उधर विरवे तुर्लिं गर्तकालीन में घास धारण को खुशीमित कर रहे हीं। २४।

तिन्तं कविद्वान्तु कविचाति शने: शने।

सजिलेन्नक सजिलं कविद्वाह्वं पुनं। २५।

मुद्रक्षुर्मपर्यं गत्ता पपात वसुभान्तस्म।

व्यरंचत तदा तदाय निर्मायं गतकल्यपस्म। २६।

धारंगजा जी की धार का जल कहीं ऊँचा, कहीं ठेढ़ा, कहीं पूँजा हुआ ध्वार कहीं ठेढ़क खाकर उद्धल्य हुआ धीरे धीरे बहता था ध्वार कहीं कहीं तो जल, जल ही से डकरा कर धार धार ऊपर की उद्धल्य ध्वार फिर जमीन पर फिर पड़ता था। इस प्रकार वह निर्मल ध्वार पापहरी जल खुशीमित ही रहा था। २५। २६।
तन्न देवर्षिगन्धवर्ग चसुधातलवासिनः।
भवाज्ञपतितं तोथं पवित्रमिति पस्फोः॥ २७॥

वहाँ पर देव ऋषि, गन्धवर्ग श्रीर चसुधातलवासी लोकों ने उसके
शिव जी की जटा से गिरे हुए पवित्र जल की कहारा ॥ २७॥

शापापतिता ये च गगनातसुग्रातस्मृत।
कुटा तत्रामिच्छे ते वस्मृतवर्गतक्षम्पः॥ २८॥

ज्ञा लोग शापवश ऊपर के लोकों से भूलोक में भागे हुए थे, वे इस जल में स्नान कर पापों से कूट गये ॥ २८॥

धूमपापः पुनस्तन्ते तोथनाथ सुभास्खता।
पुनरकात्रामाविहिंदि साँहोकाकामत्तिषेदि॥ २९॥

और पापों से कूट और तेज युक्त हो आकाशमार्ग से पुनः
अपने अपने लोकों को चले गये ॥ २६॥

मुहूर्ते युद्धतो ठोकस्तन तोथन माखता।
कुटामिश्चकी गाजायम वस्मृत विगतक्षमः॥ ३०॥

जहाँ गाजा जी जाता वहाँ वहाँ के मनुष्य श्रीगाजा जी में स्नान
कर के निष्पाप हो जाते थे ॥ ३०॥

भगीरथणुपि राजार्कितव्यं स्थान्तनमास्थितः।
पायाद्रिः महातेजास्तं गाजा पूष्टोजन्यवान्।॥ ३१॥

राजार्कि भगीरथ भी एक दिन रथ में बैठे हुए आने धाने
चले जाते थे और श्रीगाजा जी इनके पीछे पीछे बढ़ी चली जाती
थीं॥ ३१॥
देवाः सर्पिगणाः सर्वेन देवनाराजाः।
गन्धर्ववस्मिना सक्तिनरमहोरगाः॥ २२॥

सर्वशापसर्पेः गण भगीरथवशानुगामः।
गङ्गामन्त्रगामन्योता सर्वं जलचराणे ये॥ २३॥

हि शाम। सत देवना, सर्पिगणा, देव्या, द्राव्या, रावसा, गन्धर्व, यज्ञ, विक्षय, यथे यथा सर्वं तथा प्रश्नारूपः महाराज भगीरथं के
पीठं पीठं जा रही भी श्रीराम समस्त जलचर जीव प्रसव हो श्रीगृहा
जी के पीठं चले जाते ये॥ २२॥ २३॥

यतो भगीरथे राजा ततो गङ्गा यशस्विनी।
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी॥ २४॥

जिघर महाराज भगीरथ माते ये, उधर ही यशस्विनी, सब
पाप नाश करने चलो तथा नदियों ने श्रेष्ठ श्रीगृहा जी भी जा
रही थी॥ २४॥

ततो हि यज्ञान्यस्य जहोरस्तुत्तर्कर्णः।
गङ्गा संयायायमास यज्ञवार्त महात्मनः॥ २५॥

चलते चलते श्रीगृहा जी वहाँ पृथुमा, जहाँ प्रदृशुत करने
चलने जन्मुख नामक महापति यह कर रहं ये। वहाँ श्रीगृहा जी ने सब
स्मारास सजित उनकी यशाशाला वहाँ ही॥ २५॥

नस्याल्पवर्णं जात्वा कुद्रो जन्मुहस्य रायति।
अपिवृष्ट नरमं सर्वं गङ्गाया। परमार्हुतसु॥ २६॥
वालकायके

हे राम! तब तो श्रीगढ़ा जो का पेसा गर्व देख, जन्हुजृति
कुपित हुए श्रीर पेसा चमककार दिखाया कि, वे गढ़ा के सम्राट
जल के पी गये।।३६।।

ततो देवा: सुगन्ध्वरचु ऋयगङ्धः खुविसिमता।।
पूजयन्ति महात्मानं जन्हुं पुरुस्तत्रयम।।३७।।

महात्मा जन्हुं का यह प्रभाव देख देवता, गन्धर्व, ऋषि राजा
आदि वड़े विशिष्ट हुए श्रीर पुरुषों में श्रीघ्र महात्मा जन्हुं को स्तुति
करते लगे।।३७।।

गढ़ा चापि नयन्ति सम् दुहित्तुले महात्मन:।।
तत्सस्तुः महातेजः: श्रीधाम्यसम्जयतुः।।३८।।

श्रीर बाले, राजा से श्रीगढ़ा श्रीपक्षी वेदीं कहलायेंगी।
( राजा उसे छा दीजिये ) इस पर प्रसन्न हो महातेजःकी जन्हुं ने
देनों कानों की राह से जल की निकाल दिया।।३५।।

तत्समवज्जुः सुताः गढ़ा प्रोच्यते जाह्वीति च।।
जगाहाः पुरुषङ्ग्ज्जा मधीरथरथानुगा।।३९।।

तब से ही जन्हुज्जुः श्रीगढ़ा जाह्वी कहलाती हैं। उसी प्रकार
श्रीघ्रा फिर मधीरथ के रथ के पीछे होलीं।।३६।।

सागरं चापि संभासा सा सरित्वचरा तदा।।
रसातलसुपाङ्गच्छतिस्माचर्थरस्य कर्मण:।।४०।।

श्रीर चतुर्दवते चतुर्दवते नादियों में श्रीघ्र श्रीगढ़ा समुद्र में जा पहुँचिए।
श्रीर फिर वे मधीरथ की कार्यसिद्धि के लिये रसातल गयें।।४०।।
भगिरथयोजपि राजसिंघज्ञासदाय यवः।
पितायहन्तभस्मक्तानपरस्यरहिन्तेतन॥ ४१॥

राजसिंघ भगिरथ बहु वन के साथ श्रीगंगा जी के साथ ले गये
चौर दुःखी मन से प्रयाणे पुराणों के भस्म हुए शरीर की राख का
हूँ दिखा॥ ४१॥

अथ तद्रस्मानं राज्ञि गजासलिहिद्युक्तमृ॥
प्राच्यत्तपापणां सम्म प्रासा रूप्तम॥ ४२॥

इति चतुर्थवारिः सम्य॥

हे रघुनन्दन ! श्रीगंगा जी का पवित्र जल ज्वोही भगिरथ के
पुरूषों की भस्म के हूँ पर पड़ा, ज्वोही वे सब निपाह हो स्वर्ग में
पहुँच गये॥ ४२॥

बालकाय महा तेतालिसरवं सम्म पूरा हुष्टा।

---⊗---

चतुर्थवारिः सम्यः

[ नैत्र—तेतालिसरवं सम्म में सगर के पुरूषों को भस्म, परिचार श्वस्त्रण का व्यतान
संस्कर में कहा था, इस मग्नित में तत्त्वक विस्तार परमेश्वर निखण किया गया है।]

स गत्वा राजार राजा गज्ञाणाहनुगतस्तद्।
प्रविष्ट्वेष तत्त सुमेराय ते भस्मात्स्वताः॥ १॥

महाराज श्रीगंगा जी के साथ समुद्रतट पर पहुँचे श्रीर वहंराज
से वे पातल में वहं गये, जहाँ पर ( महाराज सगर के पुर्ण ) भस्म
किये गये थे॥ १॥
भृगुन्यवाचस्य सत्य गद्यायं सत्यितेन वे।
सर्वसेवकसुकुमारं राजनमिदं धर्मविद् || ॥ ॥
हे राम! रजस्मि धर्मं तत्र गद्यवेचल के पढ़ने से सव लोकोऽ
क्षमी ब्रह्मा जी ने भगवथ जने यह कहा || ॥ ॥

tारिता नरशार्दूल दिवं याताध देवचतू।
पशिं पुजनसहस्राणि सगरस्य महात्मनः || ॥ ॥
हे नरशार्दूल! महात्म सगर के साठ हजार पुज्यों को भावने
तार दिया। वे देवचतु स्वर्ग के गये || ॥ ॥

सागरस्य जंत्रं लोके यावत्स्थायतिः पारित्वच।
सागरस्यात्मजात्स्तवत्वं स्थाययति देवचतु। || ॥ ॥
हे राज म! तब तक सागर में एक बूढ़ भी जल रहेगा, तब तक
महाराज सगर के पुत्र देवताओं की तरह स्वर्ग में वास करेगे। || ॥ ॥

इति हि दुहिता ज्ञेश्वरः तत्र गद्य अविष्कारः || ॥ ॥

tवातुते च नाम माने लोक यावतस्थायतिः विश्रुता || ॥ ॥

यह श्रीगद्य तुम्हारी ज्ञेश्वर कंठा होगी धीर सुनहरे ही नाम से
सम्बंध ही कर भूलेत्ता में रहेगी || ॥ ॥


gद्य निरष्ट्वात् नाम विच्याभिगौर्यति च।
पिताम्हानां सर्वं त्यमेव मद्याधिप || ॥ ॥
क्रुद्ध सलिलर राजन्यविद्यामपवर्जय।
पुर्वदेव हि ते राजस्तेनात्मितश्रस्ता तद्या || ॥ ॥
धर्मिनां प्रवर्तनापि नैस्प्रासो मनोरथः
तर्थवांश्रयमता तात लोकेभ्यंतिपतेभजसा \ 8 \nगह्नां मार्थयता नैंत्या प्रतिज्ञा नापरिमितिता
राजपिन्या गुणवत्ता महर्षिसमतेभजसा \ 9 \n
इसके तीन नाम हैं, श्रीगङ्गा, बनिपथ और भानोरधो। तीन पथ पर चलने वाली द्वितीय के कारण यह द्विपथगा कहलाती है। हे राजन्! यदि तुम अपने सब पिताओं का तर्पण करो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। प्रत्यक्त यज्ञशील महाराज चांग ने यह मनोरथ पूर्ण न दर पाया और स्वामित्व लेने लगे श्रीगङ्गा ने भी श्रीगङ्गा के लाने की प्रार्थना की, पर उनकी प्रतिज्ञा भी पूरी नहीं हो रही। राजपिनयों में गुणवान् और महर्षियों के लक्षण \(ि \) \(7\) \(=\) \(6\)।

मतुल्यतपसा चैंग धर्मसर्वमेव स्थितेन च।
दिलीपन महाभाग तव पिन्नातितेजसा \(10\)।

tवस्था में दमारे तुल्य प्रार धर्मसर्वमेव प्रतिपालक प्रार्थीलोक प्रार्थी तेजस्वी
नुस्तारे पितामहाभाग दिलीप ने \(10\)।

पुनर्म श्रद्धिता नेतुं गह्नां मार्थयतासनम।
सा त्यात्स समतिरक्तान्ता प्रतिज्ञा पुस्तपर्यं \(11\)।
श्रीगङ्गा की प्रार्थना की, पर वे भी जा न चले; किन्तु हे पुर्वी-
लम! तुम्हारे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की \(11\)।
प्रासोक्षिण प्रसं लेके यज्ञः प्रसंसमयम्।
यत्च गह्नावतरण्त त्यथा कृतममिन्म \(12\)।

वारो रा०—२०
हे श्रीगड़ा! तुम्हें बड़ा यश मिला, क्योंकि तुम श्रीगड़ा लाये। । १२ ।

अनेन च भवान्मात्र सम्यायतनं महत्।

प्रायस्व लक्षास्त्र नरोत्तम सोनाचिते। । १३ ।

इस कार्यं से भ्रापद धर्मं के परमस्थानं में पार्थवः। हे नरोत्तम! प्राप तुम भी सदा स्नान करने वाले इन श्रीगड़ा जी में स्नान करो। । १४ ।

सलिचे पुरुष्यायाम शुचि: पुण्यफलो भव।

पितामहानं सर्वेनं कुल्वष सलिचक्रियामसु। । १४ ।

हें हे पुरुषसिद्ध! पतिव्रत हे कर पुण्यफल भ्राप करो। तथा प्रापने समस्त पुरैकों का श्रध्दं करो। । १५ ।

स्वस्ति तेषस्तु गमिष्यामि स्वं लोकं गम्यताम् उप।

इत्येकमुक्त्वा देवेश्च सर्वेनाकपितामहं। । १५ ।

चयावाचनं तथागच्छदेवेनेवलोकं महायानं।

भगीरथयोपि राजपि: कम्ववा सलिचस्मुतमसु। । १६ ।

हे राजन! तुम्हारा कल्याण हे। प्राप हंस प्रापने लोक की जाती है, तुम भी प्राप राजधानी की जाती। यह कह कर देें अक्षय क्षणगुली ब्रह्माण्डे प्रापने लोक की चले गये। राजपि भगीरथ
नें भी श्रीगड़ा जल से । । १६ ।

यथाक्रमं यथान्यायं सागराणं महायानं।

कृतोद्धमं श्रृचि राजा क्षपुरं महितेश्च ह। । १७ ।
चतुथार्थवारिष्ट: सर्गः

यथावतिगत महायशत्रो सन्तपंचो का तर्पण कर श्रीर पवित्र है, अपनी राजधानी में प्रवेश किया ॥ १७ ॥

समुद्रायों नरशेषु स्वराज्य प्रशाशस ह ।
श्रीमोहद च ले०कस्तं नृपमासाधि राजव ॥ १८ ॥

श्रीर सब प्रकार के चुकों का उपयोग करते हुए राजा मंगीर्घ राज्य करने लगे। है राजाव। मंगीर्घ के पुन: राज्यशासन की बागहोर अपने हाथ में लेने से प्रजा प्रत्यन्त प्रसन्न हुई। ॥ १५ ॥

नष्ट्रोकः समुद्रायों वभृद्व विगतज्वरः।
एव ते राम गझाया विस्तरोपिनिहिते मया ॥ १९ ॥

सब लोगों का हुँक दुर हो गया, सब की चिन्ता मिट गयी श्रीर सब धन धान्य से भरे पूछे हो गये। है राम ! यह मैंने तुम्हारे श्रीगज्वातरण को क्रया विस्तार पूर्वक कही। ॥ १६ ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रे ते सन्न्याकालोष्टितवर्ते।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुल्लर स्वर्गपतिवच ॥ २० ॥

तुषाया मङ्गल है । प्रव सन्न्योपासन का समय हो जुका है, सन्न्योपासन कीजिये। धन, धान्य, यश, धार्य, पुत्र श्रीर स्वर्ग का देने वाला यह चरित्र। ॥ २० ॥

य न्यायति वि०मु श्र्या०येनी०नितो च।
श्रीयते पितास्तस्य श्रीयते दैवतानि च ॥ २१ ॥

जो कोई भाषण त्रालिय ध्राफ़ि की सुनता, है उस पर पितर श्रीर देन्ता प्रसन्न होतेहैं ॥ २१ ॥
वालकावते

इद्मार्यानमन्वयश्रो गज्ञावतरणं श्रुभम् ।
यः श्रुतार्थात् काकुस्त्य सर्वन्त्रामानवामुग्रात् ।
संवेद पापं मणज्वयिति आयुः कीर्तिः वर्धते ॥ २२ ॥

इति चतुर्वत्वारिघः सर्गः ॥

हे रामचन्द्र! इस श्रीगृहस्तावतरण को श्रुभ कया की जै कीई
विकार चिन्त हो जुनता है, उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होती हैं,
उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं श्रीर उसकी आयु श्रीर कीर्ति की
वृद्धि होती है ॥ २२ ॥

वालकावत का चौवालोलवचां सर्गम समाप्त हुया ।

—ःः—

पञ्चचत्वारिः सर्गः:

—१०—

विश्वामित्रिचवः श्रुत्वा राघवः सहवृक्षः ।
विष्णुः परं गतन्त्र विश्वामित्राद्वितीयः ॥ १ ॥

विश्वामित्र जी की वार्तां कहन, श्रीरामचन्द्र श्रीर लब्धशा जी
के बड़ा प्राध्याय हुआ श्रीर वें विश्वामित्र जी से कहने लगे ॥ १ ॥

अत्यदुतमिदं ब्रह्मनकथितं परं लया ।
गज्ञावतरण पुर्णं सागरस्यपि पूर्णम् ॥ २ ॥

हे ब्रह्मचारी! आपने श्रीगृहा जी का प्रवतरण श्रीर श्रीगृहज्ञाल
से समुद्र के पूर्ण होने का ग्रहण तो बड़ा अद्भुत हुया ॥ २ ॥
तस्य सा शरीरी सर्वा सह सौपित्रिगा तदा।

जगाम चिन्तयान्य विश्वास्मिनिरुक्तान्य श्रुतासु॥ ३ ॥

इस कथा की खुनते खुनते वह रात्रि वात को वात में बीते।
प्रथम मात्र ही न पड़ी कि, कब बोली, श्रीरामचन्द्र ने लघुमया
सहित वह सारी रात्रि उक्त उपाख्यान के चिन्तमन करने ही में
व्यतीत को॥ ३ ॥

ततः प्रभावे विमले विश्वास्मिनि महामुनिनिसू॥

उवाच रायवेन वचन्य कृतांहिककरिन्दमः॥ ४ ॥

जय विमल भाषाकाल ही गया, तव श्रीरामचन्द्र जो व्याख्या
कर कर चुकने पर, विश्वास्मि जो से बोले॥ ५ ॥

gata bhagvatī rātrī: śrotayā parśaṃ śrūtasya
śrṇaḥkṛteva nā rātrī: sāntoya mahaṭpasya॥ ५ ॥

हे महर्षि। रात्रि तो श्रुभ कथा के खुनते में व्यतीत हुई। हम
उन्होंने श्रीरामचन्द्र तथा के समान जान पड़ी॥ ५ ॥

इमा चिन्तयतः सर्वा निलिचेत कथा तव।

taram saritāṃ bhrīṃ pūrṇāṃ trīpatam nandīsū॥ ६ ॥

प्रभु प्रायः ध्यान को कथित समस्त कथा का चिन्तमन करते
हुए नदियों में भी उज धीर रुपसे वाले जिए कथा श्रीगां जी को
वार करे॥ ६ ॥

नारेया हि खुक्षास्तोर्जनं ऋषीणं पुष्पकर्मणासू॥

भगवनतमाध प्रार्थ ज्ञात्र तवरितमानता॥ ७ ॥
वालकायदे

ध्रुपको ग्राम्य हुआ। जान हुआ से पार करने वाली अभिवियों की यह सजी सलाज (घरांतु जिसमें अख्ता विद्वाना आदि विख्यात हुआ था) नाव से बहुत जल्द घर गयी है। ॥ ७ ॥

तस्य तद्रचन्ने भुला रायस्य महात्मनः।
सन्तारूऽ कारयामास सर्पिस्त्मः सराधवः। ॥ ८ ॥

महात्मा श्रीराम के ये चचण छुन, विभावित्र जी ने मल्लाहों को भुलाया और अभिवियों पत्र राजकुमारों के साथ वे सव श्रीगंगा के पार हुए। ॥ ५ ॥

उत्तरे तीरसास्त्र संपूर्वत्तित्व तदा।
गड़मुखे निविद्यास्ते विशालां दद्धुः पुरीमुः। ॥ ९ ॥

श्रीगंगा जी के दूसरे तट पर पहुँच कर, अभिवियों का सजार कर वे सव श्रीगंगा के तट पर बैठ कर सुस्ताने लगे और उन लोगों ने वहाँ से विशाला नासी एक नगरी की देखा। ॥ ६ ॥

ततो सन्तारस्तूर्यं जगाम सहरावः।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां खण्डोपपया तदा। ॥ १० ॥

तदन्त्तर विभावित्र जी वहाँ से तुरंत दोनों राजकुमारों सहित, हंदुपुरी के समान त्रिकुटि चुन्दर विशाला नगरी में गये। ॥ १० ॥

अथ रामो महामार्गी विभावित्रं महायुनिमृः।
पद्माः प्राणिलिन्नया विशालाक्षुत्तमाः पुरीमृः। ॥ ११ ॥

तव उस समय महामार्गी श्रीरामचन्द्र जी ने हाथ जोड़ कर विभावित्र जी से विशाला पुरी का इतिहास पूँजी ॥ ११ ॥
कतरे राजवंशीय विशालयां महामुने।
ऑतुमिन्नथ्य भद्र स ते परं कैलासल हि मे।॥ १२॥
हि मन्वे। व्रामका मद्यहि। चयन विलायये कि इस पुरी में
किस वेण्ट का जाता राज्य करता है । यह जानने के लिये मुझे वही
उम्मीद हो रही है।॥ १२॥

tस्य तद्धचचनं शुत्वा रामस्य ननिपुजनः।
आव्याितः तत्तस्मारे मिशालस्य पुरातनः।॥ १३॥
मुनियों में ग्रंथि विभाषिण जो, ध्रोरामवन्द्र जी का यह वचन
चून, विजाला पुरे का पुरातन इतिहास कहने लगे।॥ १३॥

c्रूपां राम शक्तिस्य कथम् कथयत: शुभाम्।
असीन्द्रनो हूँ यद्यवचं तदपि शुभ राज्य।॥ १४॥

tे राम। इन देव के समक्ष में इन्द्र से मने है ऋषान्त चुनना
है उसे में कहता हैं, तुम चुनो।॥ १४॥
पूर्व कुलधरे राम दितिः पुत्रा महाचलवः।
वृद्धितेऽवध महाभाग कीर्तिनः सुवार्षिकः।॥ १५॥
पहले सत्यम में द्रिति के महाबली पुत्र ( दैव्य ) श्रो आदिति
के भान्यवान्त व्या फः व्यवन धर्मम् पुत्र ( देवता ) हुए।॥ १५॥

tतस्तस्यां नरियाहुः गुढ़िसायसेनमहातमनामः।
अमरा अजरासेच्छ कथं स्याम निरामयः।॥ १६॥
उन महामा गुढ़िमानों की यह इच्छा हुई कि, कोई ऐसा उपाय
हो, जिससे हम लोग अजर, अमर और निरामय हो जावें, ब्रह्मांतः,
रोग, त्रिवन्द्र किरणामयीरे कब तेनसे हम साध पके लिये कठिन पा
जावे। ॥ १६॥

तेषां चिन्तनयतां राम नुम्बरसीन्यहालमनास्।
श्रीराधमधवनं कुलवर्ता रसेना भास्ययामः तत्र वें ॥ १७॥
सेच तैसां चेतये दण्डोऽन्मान्यवायां ( हङ्करने ) निकाला
कि, हम लोग जीवसमुद्र की मये जिसके हमारे प्रस्तुत सिद्धे लगे ॥ १७॥
ततो निषिद्ध पथता नेत्रेक्रं कुलवर्ता च वासुकिक्षम।
मन्यानं मन्दरं कुलवर्ता ममन्धुरमितारजस्। ॥ १८॥
पेशान निषिद्ध करि वासुकिः नाफ़ को मन्यान को डेरी और
मन्दराचल को मन्यनद्वय ( दूर ) वना, वे महापाकामी देवता
समुद्र को मये लगे ॥ १५॥

अथ वर्ष सहस्रेण योक्त्रसप्तिरांसि च।
वमन्यति विषं दशा मन्दरास्पदनाः: शिखः। ॥ १९॥
हजार वर्ष तक मये पर वासुकि विष विद्याज्य लगे और
( मन्दराचल को ) शिखाराः को दूरों से काटने लगे ॥ १६॥
उत्पाताखिंसंकासं हलाहलमहाविखम।
तेन द्रग्ध्न जगत्तसर्व सदेवाः सर्वपालस्यम। ॥ २०॥

उसके यत्र के समान हलाहल नामा का महाबिष उत्तम हुवा
और वेव भक्तु तथा मुत्वों सहित पारे संसार के जलने
लगा। ॥ २०॥

अथ देवा महादेवं शक्तरं शरणार्धिनः।
जम्मुः प्रशुपति ख्यां त्र्याहित्राहीति तुष्टदुः। ॥ २१॥
तव सच देवता महादेव अर्थात् श्रीशकुर जी के शरण में नये बोधि, "शाहि शाहि" (अर्थात् बचाओ बचाओ) कह कर उनकी सुधी करने लगे। २१।।
एव सुकस्ततो देवनेत्रनेष्वरः पशुः।
मादुरासीतोज्जौ गंगचक्रयरु हरिः। २२।।
देवताश्रों के यह प्रार्थना की जन्य देवनेत्र महादेव जी तथा
श्रीमहादेव धृष्टीरि वहां श्रद्धा हुए। २२।।
ड्याचैं स्मितं कुत्ता खुं श्रुतमूर्तं हरिः।
ड्यातर्यं यमामां तु यत्यूं समुपस्तिश्चतमू। २३।।
विमूल्य पार्वण किये हुए श्रीमहादेव जी से मंगवान् विश्वृ के
इस कर कहा कि, देवताश्रों के (सबुद्र) मध्ये पर जी बस्तु सर्व
प्रथम निकली है। २३।।
तत्त्वार्थस्य सुरश्रेष्ठ सुराणामग्राहासि यदूः।
अग्रपूजामियां मल्ला गुहापेदं विषं प्रभेः। २४।।
उसे है सुरश्रेष्ठ! अप्राप्त गहण कोटिये; क्योंकि अप्राप्त देवताश्रों
के अर्थात् हैं, प्रत्येक इसे अपनी अर्थमूला जान कर, इस विषय
को ग्रहण कोटिये। २४।।
इत्युक्तः च सुरश्रेष्ठत्रत्रवान्तर्घीर्यत।
देवतानां सयं हद्या भूल्या चारयं तु शान्तिः। २५।।
यह कह कर सुरश्रेष्ठ संगमान विभुष्य वहाँ प्रत्यावृत हैं गये। तथा
देवताश्रों का रूप देख और संगमान विभुष के वचन जनता। २५।।
हालातेविषय घोर स जगाहायुतोपयम।
देवानिलाप्ते देवेऽणा जगाय भगवान्हर॥ २६ ॥

भगवान शीत उस महाविषय क क्षण की तरह पी०।
तदविन्द्र देवताश्रे के क्रोध महादेव जो कैरावर की लैट
गये॥ २७॥

ततो देवा सुराः सम्प समन्यू रघुनन्दन।
प्रजवेश्दाय पाताले मन्थानः पर्वतोत्तर॥ २७॥

हे रघुनन्दन! देवता ग्रीर ग्रीर पुषः समुद्र मध्ये लगे।
किंतु मन्थनाद्वा मन्थनचाल घोरी घोरी पाताल की ग्रीर ग्रीर०
( नीने की घोर जाने (खसकने) लगा॥ २७॥

ततो देवाः स्मार्यम्बास्वद्युप्वः स्मार्यम्बुद्धनम्।
लघात्व: स्मारयम्बाम् विग्रणेश दिवेशकसाम्॥ २८॥

तव देवता ग्रीर ग्रीर मिल कर भगवान विपुषा की स्तुति
कर कहने लगे, वे वेले—हे भगवान! आप सब प्राचीन के स्वामी
हें ग्रीर विशेष कर देवताश्रे के तसे आप सवर्षव ही है॥ २५॥

पाठयास्मान महावाहो गिरिषितुमर्हसि।
इति शुल्का हृपीरीकान् कांड्ट रूपमास्तिक।॥ २९॥

ध्वत् हे महावाहो! आप हम सत की रचा कीजिये भोर नीचे
जाते हुए मन्दराश्रे का उठाओ। यह सुन कर भगवान् विपुषा ने
क्रोध का उप धार्य किया॥ २६॥

पर्वतां पुष्पं क्लावा शिरये तथोद्धरो हरि:।
पर्वतार्तु चोकात्मा इस्लेनाक्षम रोगव।॥ ३०॥
भगवान् ने जल में जा मन्द्राचल का घर्ण्यो पीठ पर धारण लेकि चार उसके भागे के सिरो को घर्णे हाथ से ठाम, ॥ ३० ॥

दृष्टानं मधुगुर्द: स्थिता ममन्थ पुर्णोस्मि।
अयो य्यीहस्तेने आयुन्देवनामः पुन ॥ ३१ ॥

दृष्टानं को के विष खड़े हो पर मन्द्राचल पुर्णोस्मि समुद्र स्वर्ग के लोगे । एक हज़ार वर्ष इस प्रकार समुद्र का मंथन करने के बाद योगुर्देव के राज्य ॥ ३२ ॥

उद्देश्यं यमदेव सदृशं स्वर्गमद्भुतः।
पूर्व घनन्दिरिणाम अपसरा सुम्बरिच्छा ॥ ३२ ॥

घर्ण्यो मधुकर जी हाथों में द्राक्ष कमङ्गदल लिये हुए निकले । हे राम । तंतते सुन्दर अपसरा निकली ॥ ३२ ॥

अनु निर्मलनादेव रसस्थासादग्निः।
उत्तेजितुमुखश्रोति तस्मादपरसाधु ॥ ३२ ॥

हे नर्मदेश । चाका नाम अपसरा इस पादः पदा कि, अप अर्थात जल और सर वर्त्तंतु निकली । अर्थात भी जल से निकले हो । हे राम । जल से निकलने के कारण वे सुन्दर खियां अपसरा फड़लार्य ॥ ३३ ॥

पश्चः: क्राव्योऽवस्थासामस्तराणां सुन्दरसासू।
असेठ्येवास्तु काशुक्स्थ यास्तासां परिचारिका: ॥ ३४ ॥

हे राम । वे सुन्दरी अपसराओं की संख्या सात हज़ार थी और उनकी दर्शियों की संख्या ते हज़ार की वास्तविक थी कि, उनकी गाथा नहीं हो सकती अर्थात वे प्रसंख्य थीं ॥ ३४ ॥
न ता। सम भूतिश्रृंखलित सर्वं ते देवदानवः।
अभित्रिघणाताश्रम सर्वं साधारणाः स्मृताः।।३५॥

उनकें, न ते देवदानवां न भौर न दैत्यां न ही लोना पयंकर्किया। इतवः जब उनहें किसी ने लोना स्वीकार न किया तव वे साधारण खियाँ (प्रधानतः सर्वसाधारण को सम्पति (Public-women) कहलायी॥ ३५॥

वश्यस्य तस्मान कन्या वार्षिक रघुनन्दन।
उत्पातं महाभागः मार्गाभागः परिश्रमः॥ ३६॥

हे रघुनन्दन! तद्वनन्तर वधा देव की कन्या वार्षिकी उपस्थ हुई और अपने ग्रहण करने वाले प्रयोग त्राहक की खोजने लगी॥ ३६॥

दिते: पुत्रा न कर्तन राम जयरघुनर्गात्रयाम।
अदितेस्तु सुता वीर जयरघुस्तामनिन्दिताम।॥ ३७॥

हे राम। दिति के पुत्रों ने तो वधा की वेती का ग्रहण न किया, किंतु अदिति के पुत्रों ने उस 'अनिन्दित' वार्षिक यानी खुरा की ग्रहण किया॥ ३७॥

अतुस्तेन दैतेया: सुरस्तेनादिते: सुताः।
हृदा: प्रज्ञदिताश्रासन्नवर्णीग्रहणतुस्तु॥ ३८॥

* रामभिस्रमी देवकार ने “अनिन्दिताम्” के उपर यह त्रिपणि चढ़ा है:—“अदितियुपजीवकर्षिताभिनिमती, नियमविवेचनाभमार्गाधिकारी, श्राविक, देवतानाममाधिकारात्”॥
पश्चात्वारिनः सर्गः ।

शुरा प्रच्छिद् मदिरा की न प्रदग्न करते वाले प्रखुर धीर ग्रहण ।
करते चाले शुरा कहा लाये। शुरा प्रच्छिद् देवता, शुरा की प्रदग्न कर
अनान्तित हुय ॥ ३५ ॥

वचनः अवा हयश्रेणि मणिरवं च कौस्तुभम्।
उद्विज्ञमार्ग्यं तथवासुमात्स्यम् ॥ ३६ ॥

हे राम! फिर उदाहरणा ( लघू कानों वाला प्रथमा ऊँचा
हुने वाला या बहारा ) नाम का बोधा, फिर कौस्तुभसाई शीर तदन्तर उत्तम प्रमृत निकला ॥ ३६ ॥

अर्थमान् कुरे राम महानागीसकुलक्ष्यः।
अदितेस्तु ततः पुत्रा दिते: पुत्रानमृत्ययन् ॥ ४० ॥

हे राम! जिनके ( प्रमृत के ) कारण दौनों कुल वालों की
(शुर प्रखुरों की ) वडी वरवादी हुई। प्रज्ञो अदिति के पुत्र,
निम्नि के पुत्रों के साथ ( प्रमृत के लिये ) लड़ पड़े नहीं ॥ ४० ॥

एकनोभगमनस्वे यसुरा राक्षसं सह ।
युध्मासीनमहासर्वं चर्चा ब्रजेक्यमोहनम् ॥ ४१ ॥

सब शुरु राक्षसों से मिल गये। हे राम! तीनों लोगों को,
माहने वाला शुरुं प्रखुरों का धोर युद्ध हुया ॥ ४१ ॥

यद्रा शरीर गतः सर्वं तद्रा विपःस्यमहावशः।
अदितं सत्तहर्चूल्ल मायामास्त्राय महिनिम् ॥ ४२ ॥

जब दौनों पत्र के बहुत से योग्य मारे गये, तब भगवानु विपुल,
ने महिनी माया की फैला कर उनसे प्रमृत झीन लिया ॥ ४२ ॥
वे गताभिंशुरवं विष्णुमशयं पुर्णोत्तमस्म।
संप्रिष्टस्ते तदा युध्यं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ४३॥

अद्वितेरात्मणा चीरा दिते पुर्णशिवश्री।
तत्त्रमयं युध्यं महाधोरे दैत्यादिल्योपर्वश्री॥ ४४॥

इस देवता तैर दैयों के घोर संग्राम में प्रादृत के पुनः ने
प्रायवृत् देवताओं ने दिति के पुनः को प्रायवृत् श्रावरों को विजय
कर दिया। प्रायवृत् इस युद्ध में दैय्य बहुत से मारे गये॥ ४४॥

निहत्य दितिपुर्णांश राज्य प्राप्य पुर्णन्दः॥
श्रास्त्र सुधितो श्रगान्सर्पिसंहास्तचारणान्॥ ४५॥

इति पञ्चत्वारिणः सर्गः॥

दिति के पुनः प्रायवृत् श्रावरों को मार कर इद्य ने राज्य पावरा
तैर वे अर्धवियों तैर चार्यों सहित प्रस्तुत हो शासन करते
लगे॥ ४५॥

वालकाय्ये का पैतालीश्वरा सर्ग समाप्त हुआ।

---

षट्चात्वारिणः सर्गः

--- ० ---

हतेदु तेथु पुरुषु दिति: परमस्वलिता।
मारीचं कर्य्यं राम भर्तरिमिद्मचवीत॥ १॥
हे राम! द्वितीय ध्रुपद के मारे जाने पर अश्वत्थ दुःखी हो। मरीच के पुत्र ध्रुपद पति कश्यप से बाली।

हत्युज्जास्मि भगवन् सवर्गमहावर्गः।
शक्तिन्तारस्मिन्चामि पुरुषं दीर्घतपेश्विं समु।

हे भगवन्! तुम्हारे वल्लभ रूप के मेरे रूप की मार डाला है। अर्थः मैं हिन्दू का मारने वाला पुत्र चाहती हूँ, मले ही वह वड़ी तपस्या फर्ने पर ही प्रयोग मे प्राप्त है।

सात्त्यं तपश्रिप्यामि गमें द्रातुपदि।
वल्लभां महेश्वायं स्वयं समस्तिं समवर्गं नीं।

मैं तपस्या कहूँगी भ्राप हुई पैसा गर्वी अन्जी जिसमें वल्लभ, महाविजयी, हुड़ दुःखित वाला, समर्पणं।

ईश्वरं शक्तिन्तारं त्वमुज्जातुमहं।
तपश्वास्त्वद्वन्द्वं शुल्तन मारीचं कार्यपस्वदा।

तीनो लोगों का स्वामी ध्रुपद हिन्दू का मारने वाला पुत्र जाने।
तव द्वितीय के यह वचन झुना, मरीचहुँ श्रीमतप जी,।

परमुक्त प्रहोतं द्वितिः परमदुहिन्विताः।
पूर्वं भवतु स्वरं ते श्रीमिर्भं तपश्चन्।

ले वहे तेजश्री थे, अश्वत्थ दुःखी द्वितीय से बाले। तेरा
कल्याण हो ध्रुपद लेखा तु चाहता हूँ, वैसा ही है। हे तपाहने। तु
पदित हो।।
जनयिग्यसि पुत्रं लं श्रकहन्तारसाध्येऽः।
पूर्णं वर्षसहस्ते तु शुचिपरिदेवतिमृत्यूतिः॥ ६॥
तू पृथक्ष किं भोजनी तो युद्ध में इन्द्र का मारने वाला होगा।
किंतु यह तभी होगा जब तू पुरुष एक हजार वर्ष पवित्रता से
स्थिर होगा॥ ६॥

पुत्रं त्रैलोक्यभवारं मध्यस्नं जनयिग्यसि।
एवमुक्त्व भस्माते: पाणिना स ममायोऽताम्॥ ७॥

मेरे प्रसन्नह से तीनों लोकों का स्वामी पुत्र तेरे उत्तर होगा।
इस प्रकार कह घोर दिति की प्राप्तवासन है॥ ७॥

समाचरभ्य ततं स्तस्तित्वक्त्वा स तपसे यथा।
गते तत्त्वमार्भेऽप्रभुदिति: परमह्यथिता॥ ८॥

घोर उसका पेट हाथ से सुहार कर तथा उसे ग्राहीवास्कौऽके
कष्टप जी तपस्या करने चले गये। हे पुरुषोत्तम! उनके जाने के
बाद 'दिति वहुत प्रसन्न हुई॥ ८॥

कुशालवनमासाय तपस्तपे सुदार्शनम्।
तपस्तस्या हि कुर्वङ्ग्यां परिचयां चक्षार ह॥ ९॥

सहस्राशो नरश्रेष्ठ परया गुणसम्पदा।
अश्वे कुशालकःसयं फलं सूर्यं तथैव न। ॥ १०॥

न्यानेतसहरसाश्व चान्ये दिवसी य काहिन्तं।
गात्रवसहनेत्रस्व भ्रमापनवनस्थता॥ ११॥

१ मन: मद्यप्रहादिविकर्षः (गो०) २ ममाज्यामध्यस्नमहाभारतः (गो०)
स्रोत सुशास्त्र नामक बन में जा घेर तप करने लगी। हे राम! उसको तप करते देख, हठ वही मति के माथ उसकी सेवा करने जाने। प्रतिव, प्रकाश, नवरत्र, फल, मूल प्रादि जिन जिन वस्तुओं को द्रिति के प्राप्तकरक पहुँचती है, हठ उन्हें वही विनय के साथ जा देते हैं। हे राम! अर्थ तप करने के कारण द्रिति का शरीर धातु है जाता, तब उसका शरीर भी द्राय फरते। ६ ॥ १० ॥ ११ ॥

श्रीक: सर्वेणु कालेशु द्रिति परिचार ह।
अथ वर्षसदसे तु दृश्याने रघुनन्दन ॥ १२ ॥

हठ मशा ही द्रिति की परिचय में जो रहते हैं। हे राम! इस प्रकार करते करते तब एक हजार वर्ष पूरे दिनों में केवल द्रिति वर्ष बाकी रह गये। १२ ॥

द्रिति: प्रयसश्रीता सहस्रासमथात्वनीत।
याचितेन सुरत्वेष्ट तत्र पिन्हा महात्मना ॥ १३ ॥

वर्ष वर्षसद्यानाते पम द्रत: सुरत प्रति।
तपारत्न्या वर्षाणि द्राह वस्थतावं वर ॥ १४ ॥

अवशिष्टति भर्ति में भ्रातं द्रयथेष्वे तत:।
तयस्त तलश्चते पुर्णा समाभास्ये संयोक्तकृत। १५ ॥

tवऽ द्रिति ने हठ से परम प्रवर्तित हो फर कहा—हे हठ! दुःखारे पिता ने मुझे मांगने पर दर्श हजार वर्ष बीतने पर पुछ मैंने का कर दिया है। सो तप करते करते एक केवल द्रीय वर्ष श्रीप रह गये हैं। सो इसके बाद तुम (ध्यने) मेरे के देखलो। यद्यपि में उसे तुम्हें जीतने के लिये उत्सर्ज करना चाहती हूँ। १३ ॥

t१४ ॥ १५ ॥

वारा रा ॥—२१
शैलोक्यविजयं पुज्य सद्ध भौत्यसि चिन्तनः।
एवमुक्त्वा दितिः शरणऽसास मध्यं दिव्याकरे॥१६॥

तथापि उसके साथ तुम तीनोऽलकोऽकों को विजय कर रखो खुश मेंगोगे। तुम किसी वात की चिन्ता मत करो। दिति ने इस प्रकार इन्द्र से कहा और इतने में दो पहर हो गया॥१६॥

निन्द्रायण्हत्ता देवी पादोऽकुलवायं शीर्षष्टः।
द्यृश्व तामसिचं श्रीः पादंतः कुतमूंवर्जामु॥१७॥

श्रीमोक्षने कृतः पादः जहास च सुमोदः च।
तत्स्या: शरीरविवरं विवेशं च पुरुन्द्रः॥१८॥

दिति के नींद था गया श्रीर वह पैताने की श्रीर चिर कर बल्टी के गये। उसके सिराहने की श्रीर पैर श्रीर पैताने की श्रीर चिर किये सेतू सुई भ्रमरित दुःख में देख्ये इन्द्र भहुत प्रसिद्ध हुए श्रीर हुवे। फिर वे उसके शरीर में भुज गये॥१७॥१५॥

गर्भं च सच्चिधा: राम तिमेद्य परमात्मानः।
भिध्मानस्तो गर्भं क्षेत्रण शतप्रेक्षणः॥१९॥

हे राम! पैर्वाने इन्द्र ने अपने जयवक्त्व धारियों वाले वर्जे गर्भस्य वालक के शरीर के सात दुःखदे कर डाले॥१६॥

वेदे दुःखरं राम ततो दितिरुख्यत।
मां खेदा मा खेद्येति गर्भं श्राकोस्म्यभावत॥२०॥

इस पर गर्भस्य वालक जव शाने लगा तव दिति की नींद उचकी। इन्द्र ने गर्भस्य वालक से कहा, मत रे, मत रे॥२०॥
सतचतवारिश: सर्गः ३२१

विभेदः च महातेजः द्रस्तमपि वासवः।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इत्येवं दितिरब्रह्मवीतः ॥ २१ ॥

िृद्धं शति छुप वालकं की सी पुनः काढ़ने लगे। तत्र दिति इन्द्र
से कहने लगी—अम्रे मत मारे। मत मारे ॥ ॥ २१ ॥

िन्ध्नपात ततः शक्रो मातुरबंचनगौरवात्।
प्राद्विकिर्मणुसहितो दिति शक्रोध्यभाषतः ॥ २२ ॥

इन्द्र मारा का कहना मान उदर के बाहिर निकल याये और
चन्द्र सहित हाथ बेलध कर, वे दिति से कहने लगे ॥ २२ ॥

अन्नुचिदेवं छुससि पादयं कुतसूर्यं।
तदन्तरस्य लन्ध्वा शक्रहन्तारसाह्ये।
अभिवं समम्भा देवी तन्मे तत्व खन्तुसर्वसिः ॥ २२ ॥

इति षड्चतवारिशः सर्गः ॥

हे देवी। तू पौरों को धोरित सिर कर लेई हुई थी। इससे तू
प्रभुचिह्न हो गयी। इस प्रवर्तक का पा मैंने प्रयोग सारने वाले के
चार तुड़े कर बाले। इसके लिये तू खुफ़ि सुझा कर दे। ॥ २३ ॥

वालकायवः का कियालीसवां सर्ग पूरा हुया।

—**—

सतचतवारिशः सर्गः

—**—

समस्वा हु खुते गर्यें दिति: परमदुविधिता।
सहस्रास्त्रं दुरापर्यं वाक्यं सातुनयोऽवबित्वम् ॥ १ ॥
वालकायारे

जव गर्भ के सात टुकड़े हो गये तब द्विती बड़ी विकल हुईं
और दुरार्थर्य हृद्‌ से बड़ी विनय के साथ फोली ॥ १ ॥

ममापरावाद्यार्थीयं सस्था विफलीकुटः

नापरायोपसित देवेश तवाल बलसुद्धन ॥ २ ॥

हे हठ्य ! हे बलसुद्धन ! मेरे भूल से मेरे गर्भ के सात टुकड़े
हुए ! इसमें तुम्हारा हृद्‌ भी धारा नहीं है ॥ २ ॥

मियं हु सत्तुमिथिखामि भम गर्भविपयये

महत् सस्थानां स्थानात्म् महतत्रिेम ॥ ३ ॥

यह गर्भ ता दुःखड़ ही खुका, किन्तु इस पर भी मैं तुम्हारे
गृहा हित चाहती हूँ । यह, ये सात—उन्नचास पवनों के
स्थानपाल हों ॥ ३ ॥

वालस्कन्धस्म सस्थ चरन्तु दिविपुत्रक

मात्रा इति विक्ष्यता दिवियुपा ममात्मयाः ॥ ४ ॥

दिविय रूप वाले मेरे ये सतारे पुत्र वालस्कन्ध मात्र के नाम के
विक्ष्यत हो कर, शाकस्म में विचरण करें ॥ ४ ॥

ब्रह्मालोकं चर्तवेक इन्द्रलोकं तथापरः

दिविबायुरिति स्वातस्ततौभौ प्राप्याः ॥ ५ ॥

इनमें से एक ब्रह्मालोक में, दूसरा इन्द्रलोक में श्रौर महायानस्वी
तीसरा वायु के नाम से श्राकाश में विचरे ॥ ५ ॥

चत्वरस्तु सुरश्रेष्ठ दिसो वै तव शासनात

संचरित्य्यत भ्यं ते देवभूता ममात्मयाः ॥ ६ ॥
देह हर्ष। श्रेष्ठ मेरे नाम वरुण तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार देवता 
जने कर दिशाओं में घृमा करें।। हे।।
लक्ष्मणाने संभाग नाम वरुण इति विश्वुता:।
तत्स्यास्तद्रढ़ श्रुतवास सहस्रासः पुरानः।। ७।।
और ये सब के सब तुम्हारे रखे हुए मात्र नाम से प्रसिद्द हों।
दिति के ये वचन सुन सहस्रास हर्ष।। ७।।
उवच। श्रामलिवर्ष दिति वलनिधूतनः।
सर्वेऽत्थोऽत्थाते ते मभिध्यति न संशयः।। ८।।
दिति से हाथ जोड़ कर बोले, तुमने जैसा कहा मैं वस्त्र 
ही होगा—इत्यां कुङ भी सम्भेद नहीं।। ८।।
विचारिण्य भद्वे ते देवसूतस्तवत्तम्यात्म्यात्मा:।
एवं यती निष्ठ्रं कृत्वा मातापुत्रां तपेनेन।। ९।।
तुम्हारे पुत्र देव रूप हो कर विचरने वस तपेनेन में इस 
प्रकार सम्भोता कर माता। और पुत्र—देवोऽनः।। ६।।
जगन्नाथदिवं राम कृतार्थ्यधिति नः श्रुतम्।
पुत्र देवः स काल्पत्र महेन्द्रास्वयम्यितः पुरा।। १०।।
दिति यश तपस्तिक्षे परिचार च।
इत्याकोस्तु नर्म्याय पुत्रः परमार्तारिकः।। ११।।
हे राम। कृतार्थ्य हो स्वर्ग गये। मैंने यहीं खुना है। हे राम-
चन्द्र। यह नहीं देखा है, नहीं हर्ष ने तपस्विन्द्रा माता दिति को
सेवा की थी। हेमचन्द्र ने श्रीमान सहदेव के परम धार्मिक पुत्र हुए। १० । ११ ॥

अलस्मुसरायामुत्पत्ति विशाल इति विश्रुतः।
तेन चासीदिर्ध स्थाने विशालेति पुरी कृता ॥ १२ ॥

विशाल ने, लोक आलस्मुसरा ने गर्भ में उत्पन्न हुआ था, यहीं
पर यह विशालाय नवारी वस्ताई ॥ १२ ॥

विशालस्य कुटो राम हेमचन्द्रो महावलः।
सुचन्द्र इति विश्वासो हेमचन्द्राद्वन्ततः ॥ १३ ॥

हेमचन्द्र का महाश्ववान इति स्थान हुया।
फिर हेमचन्द्र के सुचन्द्र नामक पुत्र हुया ॥ १३ ॥

सुचन्द्रतन्ययो राम भूमास्वय इति विश्रुतः।
भूमास्वतन्यन्यथापि सृजयः समपवत ॥ १४ ॥

हेमचन्द्र के भूमा तथा गौरे भूमा के सृजय
नाम का पुत्र हुया ॥ १४ ॥

सृजयस्य शुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवानः।
कुशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥ १५ ॥

फिर सृजय के बड़ा प्रतापी श्रीमान सहदेव नाम का पुत्र
हुया। सहदेव का पुत्र कुशाश्व हुया जो बड़ा धर्मविलय था ॥ १५ ॥

कुशाश्वस्य महातेजः सेवद्रः प्रतापवानः।
सेवद्रस्य पुत्रस्तु कावलस्य इति विश्रुतः ॥ १६ ॥
कृत्यार्थ के महातिलज्जी और प्रतापी सामग्रिक हुआ। फिर उन्होंने के काफिल्ल्यां नाम का पुजा हुया॥ १५॥
तत्पुरुषो महातेजां संपत्त्येष पूरीमिपामु॥
आपस्तवस्यमायुः सुमतिनाम हुर्या॥ १६॥
उसोके महातिलज्जी, परम प्रसिद्ध घ्रार हुजें युन राजा सुमति व्याजकल दस विशाला पुरी में राज्य करते हैं॥ १७॥
इत्याकर्षतु मसदेन सवें विश्वालिका नूतिाः।
द्रीर्घायुपो महात्मानो वैर्यवन्त: सुभाषिका:॥ १८॥
महाराज इत्याकाः दुः को डुः से विशाला पुरी के समस्त राजा द्रीर्घायु, महात्मा, पराकामी तथा क्षेत्र निपटे होते रहे हैं॥ १९॥
हहाय रजनीं राम नुन चत्त्यामे वव्यमु।
शत: प्रभाते नतरङ्ग जनक द्र्युष्मिद्धिः॥ २०॥
दे राम! आज की सात हम यहाँ पर कुछ पूर्वक शहरे।
कल प्रातःकाल पुरायो में श्रेष्ठ महाराज जनक जी से मंड कररे॥ २१॥
सुभाषितमु महानेजा विश्वामित्रयुपापातमु।
शुल्ता नरत्रशेषः पत्युमावहनसहयश्च॥ २२॥
इस वीच में राजायो में श्रेष्ठ महातिलज्जी और महायश्च्छी राजा सुमति ने विश्वामित्र जी के आने का समाचार सुना और वे उनको प्रभेदके की गये॥ २३॥
पूजां च परम्य क्रिया सेवाध्यायः सत्वान्वयः।
प्राज्ञलि: कुशलं पुज्या विश्वामित्रमद्यात्रूवीत॥ २४॥
वल्काश्चि

उपाध्याय तथा कथु वाल्मिकों के साथ उनका मली माति पूजन
कर तथा हाथ लीड़ कर कुशलदि पूंजी। तदन्तर.वे विश्वासित
जो से बाले। २१।

पन्योक्षुस्प्यतुग्रहीतोजस्य यस्य मे विषयं मुनिः।
संभाषी दर्शनं शैव नास्ति पन्यतरो मया। २२।

इति सत्चत्वारिष्टः सर्गः॥

हे मुनि! व्रज मे धन्य हूँ जो चापने सम्राज्ञे राज्य मे पद्धार कर
मुझे दर्शन दिये। मुझे वह कर धन्य व्रज घाँट बोलै नहीं है। २२।
वल्काशि का सैन्तालीसवां सर्ग पूरा हुआ।

—१५—

शत्चत्वारिष्टः सर्गः॥

—०—

पृथ्वी तु कुललं तन्त परस्परसमागमे।
कायान्ते सुभविवृक्षं न्याजहार महासुनिम्। १।

मेंट के व्रासर पर परस्पर कुशलप्रथा के यण्तर राजा
सुमति ने महर्षि विश्वामित्र जी से वहा। १।

इसी कुमारी भव्वे ते देवतुल्यपराक्रमो।
गजसिंहगती चीरो शार्दूलस्त्रकोपमी। २।

पञ्चप्रत्येकाधिमात्रां खज्जुणीधुनरसिः।
असिनाविभ द्वेप्य समुपस्थितयोऽवनां। २।

१ यद्यपि यमासुराधिकारः। महंतदिति (यो।)
व्यक्तचिर्जीवि सर्गः ।

यद्यक्षे गां प्रासिं देवलोकादिवामराँ ।

कर्थे पद्यः पारितः प्रासिं किमर्थः कस्य वा सुने ॥ ४ ॥

हि सुने । ( महाकाव्यं फरेः ) इति नजर न लगे, यह तो वत-नाथः ति, ये द्वृतः हुमाराः, ता द्वृतावस्थाः के समान पराक्षः वाले हैं, जो गलसिंह श्रायुर श्रीर जुष्म के समान चाल चलने वाले हैं, जो कमल जैसे नेत्र वाले हैं, जो खुद्द तरकस श्रीर घनुस धारण लिये हुप हैं, जो प्रभुतिङ्ग हुमाराः जैसे मुस्वरुप हैं, जो जवानी की सीमा पर पहुँचे हुप हैं, जो द्वृतावस्थाः की तरह निज इच्छातुसार पुष्टविवलित पर आये हुप हैं, पांव यादे प्रायत्तिक पैठूँ कैसे श्रीर फिस लिये यहाँ प्राये हैं श्रीर फिस के पुल हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

[ नौद—जय राजा सुमति ने राजकुमाराँ के गन, सिंग, शादूर्वः तथा वृषभ जैसी चाल चलने या यथा बलादाय है अथवा राजकुमाराँ की चाल की वक चार प्रजित प्राकृति जीवन के अभास है। इसका भविष्यतं यहाँ उन्हों आदरक जान पड़ता है। दोगीक्षुद्राल मध तिर्थ है (१) "भागवदयामने गाजुल्लि"—भागवदयामने में गन के समान गति वह। (२) प्रभावनात्तानामनेलिङ्गुल्लि"—दूसरे का प्रारंभ करने के जाते समय सिंह के समान गमन करने वाले (३) "भागवदाने शादूर्वः तुल्यि" भागवदाने चाल चलने में शादूर्वः के लक्षण। (४) "संग्रामयामने वृषभ सद्यसागिर्यि" गर्व सहित चलने में लाल्कः के समान। ]

भूपन्ताविचर्म देशां चन्द्रसुर्याचिविवाम्बरस।

परस्परस्य सर्वश्च ममाणेज्ञिततेषिदेषि ॥ ५ ॥

इन द्वृतः ने इस द्वृतः को वैसे ही लोकप्रिय किया है जैसे ज्वर श्रीर चन्द्राम धारकों को लोकप्रिय किये है। भीन्दौल, वात-चीर श्रीर चेष्टा से ने द्वृतः समान प्रयात्ति साई जान पहुँचे हैं ॥ ५ ॥
किमथ्य च नरश्रेण्यां संमासां दुर्गमे पथि ।
बरायुगःबरीः श्रृविम्निन्याषि तत्वतः || 6 ||

षे द्वीनां नरश्रेण्य बोरः श्रृद्ध आयुगः केव स्वारणि किये हुपः इस दुर्गम मार्गे में किस लिये ग्राह्ये हैं? में इनका पुरा पुरा हाल खुलना चाहता हैं || 6 ||

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथात्त्र न्यतैदयत् ।
सिद्धार्थमपिवासं च राज्यसानां नर्थ तथा || 7 ||

सुमति के प्रस्तु को लूब, विद्वामनिर ने उनके (राजकुमारों के)
सिद्धार्थम में रहने श्रीर राजासों के मारते का क्षेत्र वस्तान्त था सेवा
कदा हैं || 7 ||

विद्वामनिराचः श्रुत्वा राजा परस्महर्षितः ।
अतिथि परमेश मासोऽ दुन्द्रात्मकम् ताथ || 8 ||

राजा सुमति विद्वामनिराचः के वचन हृद अत्यन्त हर्षित हुए श्रीर उन
द्वीने दुश्यान्तनां के परमे प्रतिव्रत अतिथि मान || = ||

पूज्यामास विनिवसस्तकाराहैं महावलां ।
ततः परस्मकारं सुमते: प्राप्य राजावान् || 9 ||

उनका विद्वातु पुजन किया श्रीर लक्ष करते यामे द्वीने
महावलानां का प्रस्तुति तथा लक्ष करिया || श्रीरामचन्द्र श्रीर
लक्षमण, राजा सुमते से लक्ष कर प्राप्त कर || 6 ||

उष्ण तत्र नितिमापकां जग्मेतभियालं ततः ।
तान्द्रवा श्रुत्वः सवं जनकस्य पुरी गुणाम् || 10 ||
एक रात वहाँ ठहरे। दूसरे दिन मिथिलापुरी के प्रथमवतित
उधार और महाराज जनक को कुटुंबपुरी के देख सव
है। रात स झांकन शंसन्तो मिथिलां समपूजन।
मिथिलिपने त्वर आधम द्वय रायण। ११
पुराण निर्जन रसन पमफु शुनिवनिहसु।
श्रीमद्भागवतपर्सास विनिर्जितमू। १२
“बाद-बाहे” कह उदासी प्रकाश करने जोग। जीरामचन्द्र जी
ने मिथिलापुरी के प्रथम उपवन में एक पुराण, निर्वाचन कित्तु रमणीक
आधम द्वृत्त कर बिब्वामित्र जी से। पूछा निय, हों पुराण। यह आधम
ता परम श्रीमान्यन है, परन्तु इसमें शहेड़ भापी रहना हुआ नहीं
देख पड़ता, मे यह बात क्या है? १२ १२

gautamchandra bhagavatsayam puruva ataram।
tocha, lka, rajasveon jaya vikhyavisharad। १३ १३
हे भगवन! में मुनन चाहता है कि, पहले यह किसका आधम
या? जीरामचन्द्र जी का कथन सुन, जीवपर्वतम ( बातचीत
karn) करने में परम निपुण। १३

प्रत्युत्तर महातेजा विभवामित्रो महातुलनी।
हृत ते कविप्रभार्य मृणु तत्वन रायण। १४
• महातेजत्रो महाय विभवामित्र जी ने कहा—हे रायण। मैं
नुमसे स्थायर दृष्टिक लक्ष्मा उसे तुम खुले कि, १४
यस्यैदाश्रितपदं शस्त्र कोपान्यात्मना ।
गौतमस्य यशोऽष्ट्र पूर्वमासीन्यात्मनं: ॥ १५ ॥

जिसका यह आश्रम है और जैसे एक महात्मा ने जोध से इसे श्राप दिया था। ये राम! पूर्वकाल में यह आश्रम गौतम का था ॥ १५ ॥

आश्रमो दिश्यसंकाशं सुरैरपि सुपूर्जितं।
स चेह तप आतिष्ठदह्यासहितं पुरा ॥ १६ ॥

वर्षपूर्णानेनकाशं राजपुत्र महायशः।
कदाचिचिह्वरे राम ततो दूरं गते सुनो ॥ १७ ॥

यह देवताओं जैसा आश्रम था और देवता इसकी कवना कहते थे। इस आश्रम में ग्रहल्या के साथ उन मुनि ने बहुत वर्षों तक तप किया। ये महायशस्वी श्रीराम! किसी दिन गौतमश्रुतिभी कहीं दूर जाते गये ॥ १६ ॥ १७ ॥

तस्यान्तरं विदितवा तु सहस्राशं शाचीपति:।
मुनिवेशपराह्यायमितं वचनमाविद् ॥ १८ ॥

आश्रम में मुनि के प्रनुस्लियत देख कर सहस्राशं शाचीपति हन्द्र ने गौतम का रूप घासन कर प्रहल्या से कहा ॥ १८ ॥

ऋतुकालं प्रतीश्चन्ते नारिन्यं: सुसमाहिते।
संगमं तहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ १९ ॥

कि कामी पुरुष ऋतुकाल को प्रतीश्चन्ता नहीं करते। हे छुन्द्री! ग्यत: ग्राज हम तेरे साथ मैथुन करना चाहते हैं। ॥ २० ॥
मुनिवें विनेय रघुनन्दन ।
मृति चक्रार दुर्मृथा देवरायकु तूहलात ॥ २० ॥
हे रघुनन्द ! मुनिवें वारंश किये हुए इन्द्र की पहिचान कर
भी दुष्टा प्रहल्या ने प्रखशता पूर्वक इन्द्र के साथ भेज किया ॥ २० ॥
अध्याध्यात्मित्वमृत्युस्मृत्युः कृतार्थनान्तरात्मना ।
कृतार्थस्मृत्युः सुरस्मृत्युः गच्छ श्रोत्रापितः प्रभो ॥ २१ ॥
तद्निर्मात्र वह ( प्रहल्या ) इन्द्र से बाली, हे इन्द्र ! मेरा मनोरथ
पुरा हो गया, प्रत: हे देवताश्रों में श्रेष्ठ इन्द्र ! यहाँ से अधि
त शोभा चले जायो ॥ २१ ॥
आत्मानेन यानं च देवेश सर्वदा रक्षा मानद ।
इन्द्रस्तु प्रहल्याविक्यमहल्यापिदमवीतुः ॥ २२ ॥
\[\text{हे मानद! ( अध्यात्मित्व इतिज़्ञत ब्रह्मवत्ते) अपनी श्रृंगार मेरी}
\[\text{सदा रक्षा ( गौतम से ) करते रहिये। इसके उत्तर में इन्द्र ने भी}
\[\text{हांस कर यह कहा ॥ २२ ॥}
\[\text{सुखोगणि परिशुचिर्सिप समिस्मृत्युः यथागतम् ।}
\[\text{पुर्ण संगमः तु तय निष्क्राणोणशत: ॥ २३ ॥}
\[\text{हे सुखोगणि ( सन्दर्क कहते वाले) मैं तेरे साथ भेज करने से}
\[\text{तेरे कारण वहुत प्रश्न हूँ। मैं प्रबुद्ध आनन्द्र पूर्वक स्वपन की}
\[\text{जाउँगा। यह कह इन्द्र प्रहल्या की कुटी के बाहर निकले ॥ २३ ॥}
\[\text{स संप्राप्ति तवराम शहिन्दो गौतमः प्रति ।}
\[\text{गौतमः स दद्वराशि प्रविशात् महायुनिमुः ॥ २४ ॥}
हे राम! गौतम के भय से इन्द्र उस समय विकल और
शाक्तित्व ये कि, उन्होंने कुटी में गौतम की प्रवेश नहीं करते देखा।

देवदानवदुर्धर्वः तपोवलसमनवितः
तीर्थेदुक्परिहितः दीप्यमानमिवानलः

वे ग्रुप, देवो और दानवों से न जीत जाने से बाले, तपोवल से युक्त, तीर्थ के जल से मांगे हुए, प्राणि के तुल्य प्रकाशमानः।

गृहितसमिद्धि तत्र सकुचि मुनिविज्ञानः।

द्वारा सुपरतिनवस्तो सिद्धवदनासब्धवतः

तथा हथिन के लिये लकड़ी और कुः तामों में लिये हुए
थे। उनके देखते ही इन्द्र बहुत डरे और उनका चेहरा फीका पड़
गया।

अथ द्वारा सहसरासं मुनिवेशपरः मुनिः।

dvrt tva tvatsaptav o rosha chana munihi

गौतम जी ने, इन्द्र की अपना खप ठाया किये हुए हेल और
(उनके चेहरे से) यह जान कर कि, वे असल कर के जा रहे
है, कोई में भर यह शाप पिया।

भग खप समाप्नय जतानांसि दुर्पतिे।

अकर्तव्यमिदं तस्मादिविज्ञतां स्विप्यासि।

ब्रह्म हुए! ध्यान बना कर दूरे इस अनन्त के यथ्य क्रम
क्रो किया है। अतः तु अग्रकौश रहित अर्थाये नष्टक है।

* विफल-विगलवृषिणः (गुरु) अकर्तव्याय रहितः।
गृहयोगिन्यश्च सरोपिण सदात्मन ।
पतन्तुर्द्धपि भूमिः सहस्रास्त्र तल्लस्वादत् ॥ २९ ॥
भ्रामणा गौतम के उपरि हों फर यह शाप देते ही उसी चक्षु
इतके इनार दुर्योध ( वयुद्धकोश ) ज्ञानत्र पर गिर पड़े ॥ २६ ॥
तथा शप्तव ते नै शक्ममहल्यामापि शास्त्रान्।
इद्वर्षसदस्यापि यहूनि तथा निवर्त्यस्य ॥ २० ॥
इस प्रकार इन्द्र को शाप ने, मेरिम जी ने व्रहल्या को भी
शाप दिया कि, तु इसी भवान पर हजारों वर्ष तक बाधा
करेगी ॥ २० ॥
वायुभस्वनि निराधारा तपस्तु भस्मशापायिनी।
अद्वया सर्वभूतानामाथेस्मिनिविश्वस्य ॥ ३१ ॥
'श्रीर तेरा भोजन केवल पत्न होगा श्रीर खुशः भी न वा
वचक्षु, ( मेरे शाप से ) अपनी कस्ती का पता खोगती हुई भस्म
में लोटा करेगी। तु इसी भवान पर चदन्त देहा कर रहेगी यथार्थः
तुम्हें कोई भी भागी नहीं देख सकेगा ॥ ३१ ॥'

यह श्रीर चैत्यवन धनराघर रामो दशरथात्मन:।
आगमिष्यति दुर्भर्पस्तत्ता शुभा भविष्यसि ॥ ३२ ॥
जय इस धीर धनराघर में महाराज दशरथ के पुत्र अनेक धीराराम-
चन्द्र मथारेन्वे तब तु पवित्र होगी यथार्थ श्रीर हस शाप ने मुक्त

* अभ्योगता तत्त्वत: वह स्यान सुमन्त मुनिआश्रम था, भीतर तव से वह भुवि
के शाप से निपन्न वन ही गया।
बालकायड़े

होगी लघु जो तुम्हें यह गरित काम किया है, उसके गाय ने छूटेगी। ३२

तस्याति द्वेषन दूर्ष्टं न ले मोहितविविषिना।

मत्सकावे मुदा युक्ता स्वं वचिरार्दिप्यितं। ३३

हे दुष्टे! लोभ और मेघ से रहित उनका साकार भयोत् आतिथ्य करने पर, तु अपने पहले शरीर को ध्वस्त कर भूति प्रसन हो मेरे समीप आवेंगी। ३३।

परमुक्तेषा महातेजाऽ गोतमो दुष्टार्दिनीयः।

इमाथमुस्तस्य सिद्धचारणसितस्विन्।

हिष्यविचित्रवें रम्ये तपस्तेषे महात्माः। ३४

इति प्राणयार्दिणः सर्गः।

इस प्रकार महातेजजी गोतमचर्ययु लघुचर्यादि बहुत्या के शाप दे और इस प्रारम्भ के यथा कर शिविर तथा चारणों के स्वेच्छित हिमालय के शिखर पर जा तथा करने लोगं। ३४।

बालकायड़ा का अड़कतालोकव्रो सर्ग समाप्त हुया।

[ नोट— महर्षि शालिनीक जै के इस वर्ग दे पाठकों के लिए मानते हैं कि, आदिकार्य के अनुसार गोतम के शाप से अहल्या का निलं आया होता और हस्त के शरीर में सहजमाय होता; अत: कि, लेक अनुसार यह है, समाधित नहीं होता। अहल्या के निलं जबकि कथा प्रमुणां में आयी है। वहं इस घटना के सम्बन्ध में यह एक छूट अवरोध प्राप्त हुआ जाता है।]

शापदशापुराञ्जनस्य राम श्राकाराधनः।

अहल्याक्ष्याचिताजी शतलिङ्गः कुस्तस्त्वरात्।

लिङ्गादेहं भक्तादार्थं चिन्हं। स्वराशिनः।]

—४४—
एकोंप्रज्ञा: सर्गः

अफलस्तु तत: श्रोते देवानिपुरेऽपसः।
अन्तवीज्ञसवदः सर्पिसहान्ताचारणान्॥ १॥

गौतमकृपि के श्राप से नरुंकि कन्या को प्रात हुए एवं उदास मन
इन्द्र, प्रसीद्धि धारी देवताओं, सिद्धों, गन्धवर्मौं ध्यान चारणों से
वच्छल॥ १॥

कृत्वा तपसेऽविध्यं गौतमस्य महावतः।
कोषमुत्त्वात् हि मया तुर्कार्यपिदं कृतम्॥ २॥

महावतिकृतम की तपस्या में विंड्र दालने के लिये मेंने उसे
उत्तरान कर, देवताओं का यह काम बनाया॥ २॥

[ लेखाक के इस फ़्रान्त के एवं शिव्या न समाहन चाहिये। क्योंकि
सतंत्र वात यही थी। गौतम ने सबंद्धताओं का स्थान लेने के लिये तप
किया था। कोषाध्याय दुष्प्रतियों के प्राहु भाव होने से तपस्या की वार्ता नष्ट देना
जाती है। अतः इन्द्र ने महावति की तपस्या की नष्ट करने के लिये
ही उनने उत्तरां के अभिवादन से बहुत से साथ मोह किया था। नांहें
ते स्वर्ग में बहुत से दो स्वर्गीय श्रुत्रीयों का भ्रमण नहीं था।
श्रीमुनिहाम्मिथियों के सर्गदानों में देवता अपने स्वार्थ के लिये सदा से
विवाद करते चले आये हैं।]

अफलास्तम् कृतस्तेन कोट्याल्सा च निराकुता।
शापमेधेऽण महत्तम तपस्यापूर्वम् मया॥ ३॥

वार ३०—२२
अभिषिक्त ने कुठ हो पुनः तो नरुरक्क कर दिया श्रद्धा और माहल्या का
शाप हो कर त्यग दिया। इस प्रकार उनमे शाप दिला कर
उनकी बड़ी तपस्या का पल हर लिया॥ ३ ॥
तस्मात्सुरस्ररा सर्वं सर्पसङ्गः सचारणाः ।
सुरसाहकरं सर्वं सुफलं करुपमहेऽः ॥ ४ ॥
प्रतेक्ष है देवतागयों देवायों चाले। हम सब मेरे प्राचे होने में
(पंचति प्राप्ति के लिये) सहायता दें॥ ५ ॥
शतक्रोणेषचं शुद्धा देनाम साधिपुरावगमाः ।
पितुदेवानुपेलाहु सर्वं सह मेघांगणः ॥ ६ ॥
इन्द्र के इन वाक्यों को सुन प्राप्ति को धारणे कर पंचतिका
देवतागया, जन्मवाचनादि पितरों के पास जा कर बैले॥ ७ ॥
अयं मेषं सत्तरणं शक्रो हस्त्रणं कृतं ।
मेषस्य हस्त्रणो गुह्य शक्रायायु प्रयच्छत ॥ ८ ॥
इन्द्र हस्त्रण रहित हो गये हैं और निरुध्र इस मेषे के प्रायुज्यों हैं,
अतएव इसके प्रायुज्यो उड़ाऊ कर इन्द्र के तुल्य है दोजिये॥ ॥
अफलस्तु चतुष्मो मेषं परं तुष्टिः परास्यति ।
भवता हृष्णायें च पुं च दासयन्ति मानवः ॥ ७ ॥
मेषे के प्रायुज्यो रहित होने से तुम्हें सन्तुष्ट करने में कुठ
वटा न रक्षा नायाम। हमारे से जा मनुष्य, हस्त्रण रहित मेषे का यह
में वालिदान कर, प्रायुज्यो प्रस्तुत करें, उनके ॥ ७ ॥
अथर्थं हि सर्वं तेषां गृहं दास्यं पुक्कः ।
अग्नेत्तु वचनं शुद्धा पितुदेवा समागमाः ॥ ८ ॥
तुम लोग प्रताप एवं अनमोल फल देना। आदिदेव के यह
विद्युर्सु, पितार्यू ने ॥ १॥
उत्तर्यु भेड़प्रणाली सहस्राशी न्येश्वरन् ॥
नत्तामसुति कायुक्त्य पितृदेवा समागताः ॥ ७ ॥
मेंद्र के तुप्ता निकाल कर हन्न के लगा दिये। तत्र से हे राम-
चन्द्र! विजयण ॥ ६ ॥
अपलामुख्ये भेड़पतेतेवायामेवायायण ॥
इन्द्रस्तु भेड़प्रणास्त्वामसुति रायव ॥ १० ॥
यदि में प्रार्डकश रहित मेंद्र से लोग। स्वीकार, हे रायव! मेंद्र
के प्रार्डकश निकाल कर हन्न के लगा दिये गये हैं ॥ १० ॥
[ लोट—एक के तारी के अन्य पनाल कर देखके के तारी के लगा
क्षेत्री ऐ मनुक्य (Surgery) का विधान, इस आल्यान से थिर देता है
कि, आयोजन है। आवकड़ के लेगान का नया अविरुप नहीं है। ]
गात्रपाय प्रभावन तपस्व प्रहतामः ॥
तदागत्व महातेज आघाम पण्यकर्मण: ॥ ११ ॥
यह महात्मा गात्र के तप का अस्त्राप या फल है। इसलिये हे
महातेजस्वी! प्रव तुम पुष्पागा गात्र के आघाम पर चलो ॥ ११ ॥
तारगेदानं महाभागामहल्यां देवेनिणीमुः ॥
विश्वामित्वत्र: शुल्ता रायवं सहस्त्रकर्मण: ॥ १२ ॥
श्रीर महाभागा आघात की तारी के जिसके वह देवेनिणी
हो जाय। श्रीप्रामद्रश्न श्रीर तल्लमा ने, विश्वामित्र जी के वे चचन
सुन ॥ १२ ॥
विश्वासिन्य पुरस्कृत्य तमाशामयाविशिष्टः।
दृश्य च महाभागां तपसा ध्यातितमभाम् ॥ १२ ॥

धृश्य उनकी धारण कर, गौतममन्त्री के अध्याय में प्रवेश किया
वहाँ जाकर देखा कि प्रहलया तपसे तेज से प्रकाशित हो गयी
थी ॥ १२ ॥

लें कैरण समागम्य दुर्जीरिक्ष्या सुरासुरे।
प्रयाप्तारिमिता धात्रा दिन्या मायामयीविव ॥ १४ ॥

उसे छुर, धर्मर धृश्य मकुण्ड कोई भी नहीं देख सकते थे।
मानो भावा जो ने प्रति यत से स्वयं धर्मने हाथों से उस दिन्या
श्री की मायाविनी की तरह वसाया है ॥ १४ ॥

स तुषारावहिण्या साग्रां पूर्णचन्द्रभामाविव।
मध्येम्यभसा दुराधर्षण दोससं सुर्यभामाविव ॥ १५ ॥

कोही (कहास) से दिखी हुई पुरा मासों के चन्द्राम की स्तंभ
चादनी की तरह, प्रथमा नल में पड़े हुए सुर्य के प्रतिविम्ब के प्रकाश
की तरह हिप्षिमान वह, देख पड़ती थी ॥ १५ ॥

ध्रुमेनापि परतारण्या देशामयिशिखिलाविव।
सांहि गौतमाक्येन दुर्जीरिक्ष्या वशूहः ॥ १६ ॥

प्रथमा धुरझ जलती हुई ग्राम की लपट की तरह वह प्रहलया
गौतममन्त्री के शाप से किंतू को नहीं दिखाई पड़ती थी ॥ १६ ॥

ऋषयाणापि लेखाकान्यां यान्त्रामस्य दर्शनम्।
वापसवानंतिपाणम्य तेषां दर्शनमागता ॥ १७ ॥
एकानपञ्चाशः सर्गः

हाल्या को लोग इसलिये नहीं देख सकते थे कि, गोतम गुनि ने शाप देते समय यह कह दिया था कि, जब तक श्रीरामचन्द्र जी ने न्यूनता तुम्हें न होगे, तब तक तेरे समाप्त अकार भी झिलोको का कोई भी जीव तुम्हें नहीं देख सकेगा। १७।

रायबीं तु तत्स्तस्या पादों जमीहुल्लण्डा।

संरत्ती गौतमवचः प्रतिज्ञाः साँ च तैः। १८।

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण ने प्राल्या के पीर हुए। प्राल्या ने मी गोतममुख्षि की कही वात को वाद कर, उन्होंने के चरण पढ़े प्रथात्व उनके पीरों पर लिये। १५।

पावपीवर्य तथाकालसत्वयं चाकार लुसमाहिता।

प्रतिज्ञाः काकुत्थो विभिन्नेनुम् कर्मणा। १९।

प्राल्या ने प्रथम पावपीवर्य देख के मली माति उनका भविष्य किया। दोनों देवताओं ने मी शाख्लां में भविष्य विविध विविधान साथ किये गये उसके भविष्य को भविष्य किया। १६।

पुष्पहेम्मह्यसादिवेघुदंदुभिरिष्नाचः।

गन्धवर्षसस्य चापि महानाीतसहायाः। २०।

उस समय प्राकाश से फूलों की वर्षा हुई, देवताओं ने लगाये बजाये। गन्धवर्षी और प्रस्थाप्त गाने और नाचने लगी। २०।

सादु साध्विति देवस्तामहल्यां सम्पूजयन।

तपोवलिनीशुद्धाँ गौतमस्य व्याख्यामाम्। २१।

१. विभिन्नेनुम्—शाख्लाए। २. कर्मणा—प्रकारण ( ती०० )। ३. गोतम-स्यवादांवामामत्वनेन गौतमलद्व रामायणान विविधां समायत इल्लववण्यते।

( ती०० )
वालकायाद

देखतागम भ्राह्मण की प्रशंसा करने लगे। गौराम्य जी (प्रपने
तप:प्रसाव से) धौरामचन्द जी का ध्यान जान प्रपने प्रार्थना में
पहुंचा और वहाँ पूर्व के समान शरीर धार्मिक किये हुए भ्राह्मण
पा कर प्रसन्न हुए। 

गौराम्यापि महातेजा भ्राह्मणासहितं सुखी।
रामं संपूर्ण विपिवक्तपत्ते' महात्मा। ॥ २२ ॥

भ्राह्मण सहित महातेजस्वी गौराम्य भ्राह्मण की प्रसन्न हो धौराम
का भली भावना किया और फिर वे उसी प्रार्थना में तप करने
लगे। ॥ २२ ॥

रामोपिष्पि परमां पूजां गौराम्यस्य महात्मये।
सकाशादिप्रत्यार्पण जगाम भिषिलम् ततः। ॥ २३ ॥

दत्ति परकान्तान्यकास्य: वर्गः।
तदन्त्वतर धौरामचन्द्र जी भी महार्थि गौराम्य से विधिवत पूजा।
प्रशंसा कर, सिंहिला पुरी में गये। ॥ २३ ॥

वालकायाद का उच्चारण वर्ग समाप्त हुआ।

---

पद्भाषा: वर्गः

---

ततः मायुचरां गते रामं सैमिरिण भार।
विरसामिर्ग सुरस्कुल्य यज्ञवाप्नापमत् ॥ १ ॥

¹ तेव्र क्रामवाप्नां इतिभूष धर् (मै०)
प्राणाम! सर्वः

तत्त्व किमानित जाते कर स्रोतामचन्द्र जी लक्षण सहिष्ठ ईशानकेदार की धारा ले जल कर, महाराज की यहाँ ली बी ॥ १ ॥

रामस्व दुनियादूर्विद्युति साहित्यांमः ॥ २ ॥

साधो वल्लसमुद्रिनां जनकस्य महात्मनः ॥ २ ॥

दूसरीं राजसुभागों ने चुर ठौर यहाँ ली की सजावट देख पर विश्वासित गान से कहा—महाराज अनुक्रिय के यहाँ का तैयारी नहीं है जैसे प्रजाति ॥ २ ॥

चहूँदिगं सहस्याणि नानादेवविनवासिनामः ॥

त्रांश्चाणां महाराज चेत्रधुर्ययज्ञशालिनामः ॥ ३ ॥

द्ये महामाह! दृश्येत्, चेत्रधुर्ययज्ञशाली नानादेवों के चर्च में ऊपर पूजा करण यत्र देव चालित में ॥ ३ ॥

कपिलदास्त दृश्यन्ते श्रावनेश्वरस्वरूपः ॥

देवो विद्यामण्डल व्रजन्यः वत्स्यामहे यथमः ॥ ४ ॥

प्रवेशों के प्राचार्यों में सैंकड़ा (उनका समान देने चाहे) दृश्येत् देवता प्रत्येक करते हैं। दे वात्थन! केवल स्थान ठीक करिये, जहाँ तू हर स्त्रोत्तर ( प्रामाण्य के साथ ) रहें ॥ ४ ॥

रामस्य वचनः श्रुता विद्वामिद्रो महायुतिः ॥

विद्वासकेस्वरोद्धते विद्विषं सहिष्ठायते ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुन महाराज विश्वासित जो एक निराले स्त्रान में, जहाँ जल का भी दुकास था, जा उत्तरे ॥ ५ ॥
विष्णुमित्रमणुपार्श्व महत्वा स दृष्टिपतितवत्रा ।
शतानन्दः पुरस्कृतस्तु पुरोहितमिनिन्दितस्य ॥ ६ ॥
पत्तुमन्न्यायः सहसर विनयेन समग्रितः ।
जूलिनोपः महात्मास्तवकिर्तिमादिय सत्त्वरसः ॥ ७ ॥

विष्णुमित्र जी के पास का संवाद पा कर अपने प्रसन्न पुरोहित
शतानन्द की आगे कर महाराज जनक अपने संबंधियों सहित,
विष्णुमित्र जी के लिए अण्डी का सामान साथ लिये हुए, चूड़ी
वस्त्र के साथ दुर्गवत बढ़ी पड़े ॥ ८ ॥

विष्णुमित्राय धर्मेण दुहर्वन्त पुरस्कृतस्तु ।
पत्तलकु:ः तां पूजा जनकस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
महाराज जनक ने धर्मशास्त्रातृतोर मधुप्रक श्राद्धि विष्णुमित्र
जी के प्राप्ते राखा । महाराज जनक की पूजा अवश्यक भार
विष्णुमित्र जी ने। ॥ १० ॥

प्रत्येक कुलां राणो यज्ञव च निरार्यसः ।
स तांत्रिको मुनिन्युपश्च सौम्यायं पुराविणसः ॥ ११ ॥
महाराज जनक से उनके श्राव्य का कुशल तथा यह की निर्विशेष
पुष्पे ही । फिर शतानन्दः श्राद्धि: तो अनूप महाराज जनक के साथ
प्राप्त थे, उनसे भी कुशलमय किया ॥ १२ ॥

याहन्त्यान्यः कृतः स्वामक्रमस्य महान्त्यायः ।
अया राजा मुनिशेष्ट कुदात्स्वर्णात्मकाशस्त ॥ १३ ॥
इजर प्रसन्न हो सव से मिले मंदे । तव राजा जनक हार्द्ध
ब्रज कर विष्णुमित्र जी से बांटे ॥ १४ ॥

१ मन्त्रपुरस्कृतमित्येवेयनक्रमंकरणपूर्वकः ( मै० १)
असने भगवानस्त्र शैवभियुनिपुष्कके।
जनकसः यत्र श्रुतिनिपास महाशुनि॥ ११॥
महादातः प्राप्य च मधुन्य ज्ञानिमाण्य धार्मिकोऽपि निवर्तेऽपि। यह नु विद्यति गृहिणी यहिं तद्विनान् यहाँ निवास पावेः॥ १२॥
पुराणाः जनकन्याः राजा च यह मन्त्रिभिः।
असनेषु चर्यायुपविद्यानबन्धुः॥ १२॥

नदनलं ब्रह्माण्यम जनक च भी भाग्य गुप्ता, मृत्युज्ञाति यहिं जनक, मंत्रिभिः क अव दाते प्रयत्न यहाँ निवास पावेः। राजा जनक शंकरे यह यह तुम्हें नारी यहिं बैठे दुःख ये॥ १२॥

dhru सं न्यातिस्त्र विद्यामित्रममात्रावशीत।

अय यज्ञमुद्रिनं सफल देवते कुता॥ १३॥

सत्य कांस्य स्रोत यात्स्यात वाहा देव, महाराज जनक, विकारामित्र जो से ये यह प्रभु—यह निज तारामाण्य क यज्ञ यहे से मेरौ यहां में आ सकते यह पहुँचे हुए॥ १३॥

अय यज्ञसः मात्रः भगवद्वारानान्यर्।

उन्नुपस्त्यविद्यालोकसिष्य मे मुनिपुष्कके॥ १४॥

उन्नुपस्तृवत्र वायुपाराधारखिस मुनिभि सह।

हाथिगाँडः तु त्यस्या शर्मातुपमानुर्मितिः॥ १५॥

हे भगवान! प्रास्च्य तुमके दर्शन भाग्यस्य यहां का फल मिले नया। यह निज यहिं यहिं निवास पहुँचा में पवयते से में यह यज्ञ धीर धीर यज्ञस्य युक्तते हुआ। हे महाराज! मृत्युज्ञ लोके कहते हैं कि, यह तद्भवति धीर दिब धीर यह पूर्ण होने की रह गये हैं॥ १४॥ १५॥
ततो भागाधिना देवान्द्रकुष्णर्हि स कैशिक ।
इत्युक्त्वा गुरुशार्दूलं महागृहदन्तदा ॥ १६ ॥
तदन्तर यह भाग लेने के लिये देवता धारणें । हे कौशिकेषु ।
प्राय उनके देखें । विश्वासित जी से यह कह कर राजा जनक
प्रख्यात हुए ॥ १ ॥

पुनस्तं परिपुष्ट्र्च्छ प्राक्ति: प्रयत्ते दृष्टः ।
इति कुमारों भर्ते ते देवत्युपपराक्रमः ॥ १७ ॥

श्रीर हाथ जोड़ कर वे फिर केले धारके प्रायोगिक वांट से
इति कुमारों का कवयास्त हो । ( आर्यावूट योध इत्यह न लगे ) । यह
तेहि वतन्ति क्यों कि, वे द्रवीयों कुमार जै देवताओं के समान पराक्रमी
हैं ॥ १७ ॥

गजसिंहगती बीरी शार्दूलवधपराक्रमः ।
पदप्रत्विन्द्रावसी सदृशतृणीपराक्रमः ॥ १८ ॥

गज, सिंह, शार्दूल तथा दूरभ के समान चाल चलने वाले, वीरे,
कमल जैसे नेत्र वाले, कुंजु तरक कृपाक युद्धवाही ॥ १५ ॥

अद्वितनविवरं रूपेन समुपस्थितियावः ।
यहच्छयै सा धारी देवलेशास्तदिवारारः ॥ १९ ॥

सौन्दर्य में प्रभुत्वकुमारों जैसे, युद्धरस्ता का धार, प्रारंभिता
जबन, स्वेच्छा पूर्वक देवताओं को तरह स्वरूप से प्रत्यक्षी पर हत्रे
हुए ॥ १६ ॥

कथ पद्मामिह धारी मिर्यं काश्य वा मुने ।
पुण्डरीकविशालासी कपरार्याचराविभसः ॥ २० ॥
पद्माण: याग:  

वेदना मात्र लिये पैदल यहाँ प्राये हैं यो दिक्सके पुष्प हैं। इनकी विशाल पवन कर्म का उदारता हैं, श्रेष्ठ श्रीगुप्त धार्या की हुए हैं। ॥ २० ॥

चढ़नानाथापुरपिलिताणा खड़कन्ता महायुती।
फाकप्पलरा भींरो क्षमाराजिव पालकी ॥ २१ ॥

मेघ दे दुन्नाने लाखों में पहने हुए हैं, तनवार ही लिये हुए हैं,
चढ़े पुरै चले हैं, फाकप्पल रहे हुए हैं, फातिकेय के समान बीर हैं। ॥ २१ ॥

रघुदार्यमुणि: चुंसां दुःखितकावारिणी।
प्रकाशय गुलमसमारं भागुद्वृत्तिहागता ॥ २२ ॥

रघु यो आदरता भास्वर गुणों से मनुष्य के मन की दर्शने
बाले हैं। इसमें शुन ची बजागर कर के हमारा उद्धार करने यहाँ
प्राये हैं। ॥ २२ ॥

भूपन्नारितिरं देशं चन्द्रमुर्याविवाम्भरु।
परस्परस्त्र सहस्रो प्रमाणविकितेचितः ॥ २३ ॥

इस देश का पैशा भूमिन कर सदी हैं जैसा चन्द्र व धूरं धाराश
का भूमितं करते हैं। धूरंहील चालावता यहूं चेष्ठा से क्षणों
भागो जान पड़ते हैं। ॥ २३ ॥

करस्य पुत्रो मुनिनेष्ठा श्रोतुप्रिच्छायमि तत्स्वतः।
तत्स्य तद्यत्र शृत्ता जनकस्य महात्मनः ॥ २४ ॥

करपुरी के उपर यहे यहे बालों के फाकप्पल कहते हैं।
हे सुनिवर! वतलाई ये देवों किसके पुत्र हैं। मैं इनका यथार्थ वृत्तांत खुदना चाहता हूँ। राजा जनक के ये वचन चुन
॥ २४॥

न्यवेद्यमहात्मानं पुत्रं दयरथस्य ततः
सिद्धाभ्रमनिवार्ष च राक्षसानां वर्ध तथा ॥ २५ ॥

विश्वामित्र जी कहने लगे कि वे देवों महाराज दुःश्रय के राजकुमार हैं। फिर विश्वामित्र जी ने देवों राजकुमारों का सिद्धा-श्रम में रहने, वहाँ राक्षसों का वध करने ॥ २५ ॥

तब्धागमनमन्ययं विशालायास्य दर्शनन्नुः
अहळ्यादश्वरं चैव गौतमेन समागमस्य
महाधनुषिण जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥ २६॥

चतुर्तेन में विशाला नगरी की देखने, गौत्म के उदार घोषणं। गौतम से मंडळ होने का सारा वृत्तांत कहा श्रीर यह भी कहा कि, यहाँ वे आपके बड़े घनष्ट के देखने के लिये भागे हैं ॥ २६॥

एतस्मां महातेजा जनकाय महातपे
निवेद्य विरामार्थं विश्वामित्रो महाधनुषिण! ॥ २७ ॥

इति प्रकाशं सर्वं ॥

उन सब घटनाओं का वृत्तांत महात्मा राजा जनक की हुना कर, महातेजस्वरी महाधनुष मिश्वामित्र जी चुप हो गये ॥ २७॥

वालकाण्ड का पचासवां सर्वं समास हुया।

—*-
एकपञ्चाशः सर्गः

—: ० :)—

तत्र नाध्यन्त श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमानः।
हुप्ररोणाय महातेजः! शतानन्दो महातपः।। १।।
भुविमान विक्रमेश्वर लोके जन खुश कर महातेजस्वी परं
महातपस्वी शतानन्द जी के घेरे खड़े हो गये। १।।
गैतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तस्य चोतितिभः।
रायसंदोहस्तनादेव परं विस्मीयागाहः।। २।।
शतानन्द जी महार्य नातिम के जोखुम घे आरं कपड़क से
प्रकाशस्य हो रहे थे। वे श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन कर बढ़े
विचित्रत हुए। २।।

स तः निपणः समेद्य खुशासीनो तपात्मानो।
शतानन्दो शुनिष्ठेष्य विश्वामित्रम्यायाव्याविद्।। ३।।
द्रव्याः राजकुमारीं के सुकृत पुरुषक बैठे द्वारे रूप कर, शतानन्द
जी शुनिष्ठेष्य किवामित्र जी से चर्चा। ३।।
अपि ते शुनिष्ठार्दूः यम माता यशस्विनी।
दर्शिता राजपुत्राय तपेदीर्घास्यागताः।। ४।।

de मुनिशार्दूलम् हमारी यशस्विनी माता बहुत दिनों से तपस्या
करती थी, क्या धारणे उसे श्रीरामचन्द्र जी की दिखाया था? ४।।
अपि रामेह महातेजः-मय माता यशस्विनी।
बन्येश्वरस्तूः पूजाहै सच्चेद्विनामु।। ५।।
क्या मेरी माता ने सब प्राचीनों के पुत्र श्रीरामचंद्र जी का फलसूक्ष्मादि कथा पद्धतों से सकार किया था ? ॥ ॥

अधि रामाय कथित यथास्वरुप पुरातनम् ॥ ६ ॥

इत्यदि ने मेरी माता के प्रति आ दुराचार किया था, यह प्राचीन दुस्तान्त कथा थाई श्रीरामचंद्र जी से कहा ? ॥ ॥ ॥

अधि कैशिक यदि ते गुरुनाः मम सज्जना ।
माता मम शुंनिष्ठेऽरामसंदर्शनादितः ॥ ७ ॥

हे कैशिक ! यह तो कथित न हो, श्रीरामचंद्र जी के दर्शन के प्रभाव से क्या मेरी माता मेरे पिता के मिल गये ता नहीं ? ॥ ॥

अधि मे गुरुनाः रामः पूजितः कृशिकात्मजः ।
इहागते महातेजः पूजां मात्रौ महात्मनः ॥ ८ ॥

हे विश्वामित्र जी ! क्या मेरे पिता ने श्रीरामचंद्र जी का सकार किया ? क्या श्रीरामचंद्र जी उनके ( मेरे पिता के ) द्वारा सकारित हो कर यहां आये हैं ? ॥ ॥ ॥

अधि शान्तेन पनसा गुरुमेव कृशिकात्मजः ।
इहागतेन रामेन प्रयत्नानिवचारितः ॥ ९ ॥

हे विश्वामित्र जी ! ( यह भी कत्लाये कि ) प्राध्यम में अब मेरे शान्तविचा पिता आये, तब श्रीरामचंद्र जी ने उनके प्रश्न किया था ता नहीं ? ( प्रध्वन मेरी माता के तीनों पर ख्यान दे उन्होंने उनका तिरस्कार तो नहीं किया ? ) ॥ ॥

गुरुना—पित्रा । ( गा० )
तच्छु त्वा वचनं तस्य विश्वामित्रस्य महाशुनिः।
मृत्युवाच शतानन्दे वास्यद्वो वास्यकोविद्वम्। ॥ १० ॥
शतानन्दे के इस प्रश्न के छुन, महर्षि विश्वामित्र जी, उसे 
वाचाचे त करने के दृष्टि से वाचाचे करने में बड़े निरुपण 
शतानन्दे जी से वाले। ॥ १० ॥

नातिस्मरणं गुनिश्रेष्ठं यत्कर्त्तं कृतं मया।
सज्जना गुनिना पत्री भागवेच्छेन् रेणुका। ॥ ११ ॥

हे सुमित्रवर! जो हृदृष्टि मेरे कहते हुए छुनने करने बहते का था 
तो मैंने कहा छुना और किया घर। मैंने अपना कोई फर्तव 
वाकी नहीं रखा। ऐसे जम्मुद्रो ने रेणुका के इश्वर दिया और 
पिटे अनुमति कर उसे अद्वाकार किया। वैसे ही आपके पिता ने 
अपनी माता के ऊपर छुए को बोर उसे दहश कर लिया। ॥ ११ ॥

तच्छु त्वा वचनं तस्य विश्वामित्रस्य धीयत:।
शतानन्दे महातेजा रामे वचनमववीतः। ॥ १२ ॥

बुद्धिमत्व विश्वामित्र जी के इस उच्च के छुन, महातेजस्वी 
शतानन्दे जी श्रीमण्चुद्र जी से वाले। ॥ १२ ॥

स्थागतं ते नरस्तेन दिव्या प्रासोसिः राघव।
विश्वामित्रमु परस्कुल्य महर्षिमप्राजितम्। ॥ १३ ॥

हे पुरुषोचम! आपका आना श्रमद्व नहै। यहे बाह्य की 
लिखा है, जो आप विश्वामित्र जी के साथ मेरे पिता के आश्रम में 
पढ़ाया और मेरी माता का उद्दार किया। इन महर्षि विश्वामित्र जी

भागवेन—जम्मुद्रिण। (नै.)
बालकायुधे

की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। इनका सैकड़ों चूति सम्पान करते हैं।

अचिन्त्यकर्मों तपस्त्र ब्रह्मापिरतुत्तमसः।
विश्वामिनो महातेजा चेतस्वेन परमा गतिम्।

इनके सब कर्म प्रचित्य हैं (प्रायः तत्मन योर बुद्धि के प्रगत्तर हैं, साधारण मनुष्य के समान में नहीं। या तरसे।) देखिये, ध्यान तपेन्द्र से जिसका से प्राहार्य हो गये। फिर ब्रह्मायों में भी साधारण ब्रह्मार्य नहीं। प्रभुता धार्मिक प्रभावशाली हैं। इन महाभारती विश्वामित्र जी को में धर्मर्यः। तरह जानता हूं। यह धार्मिक परम हितेयशी हैं (धर्मवा जगदुः के परम हितेयशी हैं।)

नासिं धन्व्यरो राम त्वक्षोत्स्यो शुचि क्रलन।
गोपा कुशिकुपुरस्वते चेन तत्स महत्तपः।

हे राम! धार्मिक वह कर प्रगति इस भूतल पर धार्मिक कोई नहीं है, जिनकी सेवा महात्मप्रस्वी विश्वामित्र जी हैं।

श्रयत्वं चारिघास्वामि कैशिकरस्य महात्मानः।
यथा वर्ष्य यथा वर्ष्य तद्वनि निगदतः मृगु।

हे राम! धार्मिक, में महात्मा विश्वामित्र जी के बल का धार्मिक कुशालता कहता हूँ।

राजश्वदेव्यं धर्मात्मां दीर्घकालपरितदः।
थरमः कुश्तविक्रम पमानां च हिते रतः।

1 परमागार्थम्—तवपरमहित्रादः। (गो।)
हे प्रिन्सबुम! पहले यह दिनों तक यह एक बड़े धमाके, शक्तिशाली, नार विधार्य बड़े दुर्ग और प्रजापालन में तत्वर राजा पर धर्मपर है। १५॥

भजापति सुत्तुस्त्रासीति नाम पद्यपितः।
कुशनरुप वरदानकुशनाय: सुधार्कामः १६॥
भजापति के पुत्र कुश नाम फऱ एक राजा है। वहाँ हैं। उनके पुत्र कुशनाम बड़े कल्याण और धमाका राजा हुए। १५॥

कुशनामकुशनासीत्त्रासदगिरितीये विश्रुतः।
गाधे: पुत्रो महातेजा विश्वामित्रो महासुनिः। १९॥
कुशनाम के प्रविद्ध गाधे नामक पुत्र हुए। उन्हों ने राजा गाधे के बड़े महातेजस्वी महासु विश्वामित्र जी पुत्र हैं। २०॥

विश्वामित्रो महातेजा: पालयामस मेंदिनीमृ।
भूतवर्षसंहस्त्यं राजा, राज्यप्रज्ञा यतु। २०॥

महातेजस्वी विश्वामित्र जी ने राजा हो। कर हज़ारों वर्षों के प्राकान्त का पालन और राज्य किया। २०॥

श्वानाचिन्तू महातेजा याजयत्वा शुल्कर्नीसृ।
अशोह्विनिपरिश्च: परित्रचक्र समेतनीसृ। २१॥

एक वार राजा विश्वामित्र सेना एकदम उठा। और एक अत्यधिक सेना साथ ले प्रथमे के लिये निकले। २१॥

नगरांगिच राज्यांगिनि तत्त्विन तथा गिरिब्र।
आभ्रामन्त्राम्बो राम विचराप्रत्यायागम है। २२॥

वाण यां—२३
हे राम। ब्रजेक नगरों, राज्यों, नदियों, पर्वतों और अन्य आधारों को मस्ताते हुए।

बसमस्थायित्वादेन नानास्थललाकारः
नानास्मात्तिरापीतिकों सिद्धार्थसैनिकतमः।

वर्षिक जी के आधार में गये। वर्षिक जी का आधार तरह तरह के पत्थरों और लताओं से भरा पूरा और भौतिक भौतिक के
जीव से श्रीमान्मानु ही रहा था। उसमें सिद्धांत रहते थे।

देवदानवगत्वर्गेंः किंचरैषपशोभितम्
मशान्तहर्रिमार्गनर्म हिंसाननपेतित्रितमः।

देव, दानव, गन्धर्व, किश्चार भी उल्लक्षी शैक्षा बढ़ाते थे। वह
शान्तसमावे हिंसाते से भरा पूरा था और आध्यात्मिक भी वहाँ
वास करते थे।

प्रहरसिंगसहिंगों देवसिंगसैंचितम्
तपस्विनासंस्वास्तुरस्वियक्षिलमैहात्म्भिः।

उसमें प्रहरि और देवास भी बास करते थे। तपस्वियों से वे
प्राण के समान देवदययानु। थे।

सतवत दुःखालं श्रीपद्रसस्तुपै। महात्म्भिः।
अचर्चसन्तायुः सैथिष्ठा श्रीरंगोणोन्नैस्तथा।

वह आधार सदैव व्रहा के समान वेदों के शाखाओं के विभाग
करने वाले महामानों से सदा भरा रहता था। इसमें कोई?

( ) तात्त्वकः वेदशाखा विभागाकारिन इति ( गो० )।
कोई तो केवल जल पो कर, कोई कोई केवल वायु मचव कर कोई कोई खूबी पतिया खा कर, || २५ ||

फल्मूलाशनेदंत्रितेरंजितेः अपियन्ति चित्रयं जप्यामपरायणे। || २७ ||

धीरे कोई कोई वात मूल ग्रा कर रहते थे। यद्य प्रपने मन ग्नाम इत्यादियों का प्रपने चर इत्यादियों का प्रपने चर तथा वालजिल (प्रहङ्ग-चारिक) सदियों थे। यद्य प्रपने मन ग्नाम ऐसा न था तो नियत लम्य पर सम्प्रयोगसन, नप, तर्पण, दारमन न करता हुआ || २७ ||

अन्यं नसिं साधनां समन्तानुपासितम्।
वसिष्ठप्रावश्चर्यं ब्रह्मचारिकिवारस्मृ।
द्रद्धि जयतं! श्रेष्ठो विनिवासित्रो महावरः। || २८ ||

इति एकपद्याः सर्गः।

इत्यक्षो द्रातिक कः प्रायः ग्राम के चारों ग्नाम अनेक वास्तव स्थि
रहते थे। (कहा तक वाचन करे) वशिष्ठ महाराज का प्रायः
क्या था—पांड्य दूषण ग्राम बने हो था। वशिष्ठ महावरी राजा
विजयमिश्र ने ऐसे वशिष्ठ जा के प्रायः को देखा || २५ ||

वजलकादां का इकावनाथो सर्गो समास हुमा।

—२५—

१ जयतं—प्रृवाणम् (२४०)।
दिपश्रृंखः: सर्गः ।

स दृष्टा परमपीता विश्वामित्रो महावलः ।
प्रणयं विधिना वीरे वसिष्ठं जपतावरम् ॥ १ ॥

ऐसे आधम को देख, महावल्लान, राजा विश्वामित्र बहुत प्रख्यत हुए श्रीर जप करने वालों में श्रेष्ठ वाशिष्ठ जी की विनय सहित प्रशांत किया ॥ १ ॥

स्थागतं तव चेत्युतो वसिष्ठेन महात्मना ।
आसनं चास्य भगवानवसिष्ठो व्याधिदेश ॥ २ ॥

वाशिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी का स्वागत कर भाषा यह कह कर “श्राप बहुत प्रख्यिे आए,” शैलने के लिये आसन दिया ॥ २ ॥

उपविश्याय च तदा विश्वामित्राय थिमते ।
यथान्यायं मुनिवरं: फलमूलानवपाहरत ॥ २ ॥

जव वृद्धिमान विश्वामित्र जी आसन पर बैठ गये, तव वाशिष्ठ जी ने फल मूल जो वहाँ उस समय मौजूद थे, विश्वामित्र के स्वामी के लिये दिये ॥ २ ॥

प्रतियोगः च तां पूर्णं वशिष्ठाद्राजस्ततमः ।
तपेश्वरेऽहाँशिरस्येहुः कुशलं पर्य्पृच्छत ॥ ४ ॥

इस प्रकार वाशिष्ठ जी का स्वागत प्रस्ताव कर, तुष्टिप्रदेष विश्वामि-प्रमित जी ने वाशिष्ठ जी के तप, वाशिष्ठ जी श्रीर विश्व समस्यावी कुशाल प्रश्न किया ॥ ४ ॥
विश्वासिनो महतेजन वनस्पतिगणे तथा।
सर्वत्र कुशलं चाहु वसिष्ठो राजसचतमम् ॥ ५ ॥

वनिष्ठ जो ने इति उत्तरे मर्वत्र वीर व सब का—यहाँ तक कि, पेड़ों तक का कुशल नृपशेषः किवामित्र जी से कहा ॥ ५ ॥

सुभेपथिष्ठे राजनां विश्वासिन्न सहायता।
फल्च जप्तङ्गे श्रेष्ठो वसिष्ठो भ्रामगः खुंटः ॥ ६ ॥

सुवे वेंटे दुरुप राजा किवामित्र जी से महायुति, तपस्वियों में श्रेष्ठ वीर भ्राता तो के पुत्र वनिष्ठ जी ने पूः खा ॥ ६ ॥

कचिचे कुशिा राजनक्षिक्रियेण रजग्नन।
मना। पालये गीर राजत्रचेन वार्तिक ॥ ७ ॥

हे राजन! प्राप्तके यहाँ तो कुशल है? प्राप्त भर्म पूर्वक प्रजा का प्रकट रखते हैं? वीर राजचृति से प्रजा का पालन लो करते हैं? ॥ ७ ॥

[नोट—राजयाकारों ने राजन्वति चार पकार की कही है। यथा—

स्वच्छन्दप्रतिपत्तिया राजत्रुते चंकुतिक।

अर्था (१) न्यायपूर्वक धन का उपार्जित करना (२) न्याय—
पूर्वक उसके यदना (३) न्यायपूर्वक उसकी रक्षा करना और (४) वाम,
व्यभिचार या अन्य योग ही उनकी दुहान देना।]

१ वनस्पति तथेत्र भृक्षमार्क, नहु विनापूर्ण फलवत्त्वतुव (रा०)
२ जप्तङ्गे—तपस्वियों (रा०)।
कबिचे संभूता भूत्ता: कबिचित्रणति शासने।
कबिचे विजितः सर्वे रिपेयो रिपुप्रड़न। ॥ ८ ॥

राज्य के कर्मचारी का वेतन की नियत समय पर दे दिया करते हैं। आपकी प्रजा आपके कहने में चलती है? ही राजना! आपने आपने सव श्रद्धाएँ को जीत तो लिया है? ॥ ॥

कबिचारकस्य कौशिकमित्रेशु च प्रमादः।
कुशलं ते नरयाणाः पुजमात्मे तपानांग। ॥ ९ ॥

हे नरयाणा! हे अनन्त! आपकी सेना, बलागार, मित्र, पुज, पौरुषोद्वार च सव कुशल पूर्वक तो हैं। ॥ ॥

सर्वं कुशलं राजा वसिष्ठ प्रत्युदाहरते।
विष्णुविनादरो महाकेशा वसिष्ठं विनयान्तितः। ॥ १० ॥

राजा विष्णुविना जी इन प्रश्नों के उत्तर में वशिष्ठ जो सव विनय पूर्वक बोले कि, सव कुशलपूर्वक हैं। ॥ १० ॥

कुश्तोधे पुञ्चिरं कांचं धर्मिष्टाः ताः कथा: शुभाः।
सुदा परम्या सुकौ गोवितां तै परस्युभू। ॥ ११ ॥

तद्वेवत्वं वें देहं बहुत देर तक प्रेमपूर्वक तरह तरह की वातें धीर वार्ताएँ कह सुन कर, एक दूसरे की प्रसन्न करते रहे। ॥ ११ ॥

ततो चसिद्धो भगवान्त धारा रघुनन्दन।
विष्णुविनादरसि वाक्यमुखः महान्वित। ॥ १२ ॥
हे रघुनन्दन! जब विश्वामित्र जी वानशीत कर चुके, तब वशिष्ठ जी ने मुखस्या कर विश्वामित्र जी से कहा॥ १२॥

आतिथ्यं कर्तुसिन्धुग्मि वृद्धयास्य महावल॥

तव वैष्णवेयस्य यथाह समस्ति च मे॥ १३॥

हे राजन! यथावि आपके साथ बहुत कड़ी भीड़ है, तथापि मेरो इच्छा है कि, यदि आप स्वीकार करें तो सेना सहित आप सच की में नमान्त्री (आतिथ्य) कहें॥ १३॥

सत्क्रिया तु भवानेतां प्रतीच्छुत मयोद्धास्य॥

राजा लिपतिःश्रेोऽऽ्य पूजनीयः प्रवक्तः॥ १४॥

प्रमाणो य हे राजन! आप राजा होने के कारण आतिथ्यश्रेष्ठ हैं।

आपका आतिथ्य प्रवक्तपूवर्फ करना ही उचित है। अतः मुझसे जो कुछ आतिथ्य चन पड़े उसे आप प्रस्तावपूवर्फ भविष्यका करें॥ १४॥

प्रेम्मुको वसिष्ठेन विश्वामित्रो महामति॥

कृतमित्रवदनीः पूजावाक्येन मे तवा॥ १५॥

वशिष्ठ जी के इस प्रकार कहने पर राजा विश्वामित्र कहने

लगे—हे भगवन्! आपके इस आदपूवर्फ कहे हुए वचनों ही से

मेरा तो आतिथ्य हा चुका॥ १५॥

फलमुखनेन भगवनिधाते प्रवक्ताथ्मे॥

पाचेनाचमणीयेन भगवद्रश्नेन च॥ १६॥

इसके आतिथ्य, फलमुख, विभिन्न जल जो आपके आदरम में उपस्थित थे, उनसे तथा विशिष्ट कर आपके दर्शन से मेरा

आतिथ्य हा चुका॥ १६॥
बालकायदे

सर्वथा च महाप्राण पूजार्हेण सुप्रौजितः ।
गमिष्यापि नपस्तेन्द्र मैत्रेणेशुक्ल चुपुष्या ॥ १७ ॥

हे महाप्राण ! उद्धिन ना यह था कि, मैं आपको पूजा करता हूँ,
प्रलय आपने सेरा सेतकार किया । मैं अब आपने मणाम करता हूँ
और आपने देरे का जाता हूँ । जेरे उपर सदा उपाधिग्र हनाये
वर्षियाम ॥ १७ ॥

एवं ब्रजन्तर राजार्थ वसिष्ठं पुनरेव हि ।
नियन्त्रयत्र धर्मरत्ना पुनः पुनर्दार्पणी : ॥ १८ ॥

राजा विश्वामित्र के इस प्रकार ( नियेम पूर्वक ) कहने पर मो
उदारगमन वशिष्ठ जी ने व्योता व्यक्त करने के लिये राजा से
वार वार प्राप्त किया ॥ १८ ॥

ब्रह्मचर्येव गाध्येऽव सिद्धं पत्युवाच हि ।
यथा पिर्य भगवतस्तथास्तु मुनिसत्तम ॥ १९ ॥

tव विश्वामित्र ने कहा—"वहु धर्म अर्जः " धाम जिससे प्रसन
रहें वही ठोक है । अथवा प्राप मुण्ड पर प्रसन को रहै, नुसे वही
करना चाहिये ॥ १५ ॥

प्रसुको महातेजा वसिष्ठो जयतानांरः ।
आशुदाय तत् पीतं कल्पाणि धृतकल्पः ॥ २० ॥

जव विश्वामित्र ने ऐसा कहा धाम ध्यातु वशिष्ठ जी का व्योता
मान लिया । जव मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने अपनी ध्यान धितक्षब्दी
कामथेनु के बुलाया ॥ २० ॥

एवेहि रवि रवि दिक्षिं ब्रह्म चापि चचो मम ।
स्वलस्त्याय राजस्वः कुर्वः व्यवसितोसम्यहस्तु ॥ २१ ॥
गार उससे कहा—हे गवले! यही था याँग गार आ में कहता हूँ उसे सुनो। मैं सेना सहित राजा के विशेष शिक्षामित्र को पढ़नाई करता हूँ। ॥ २२ ॥

भौजनेन महारेण सत्कार संविचलन स मे।
यस्य यस्य यथाकाम पड़ोस्यखः प्रौढ़्यांतिमू।
तत्तत्र ता क्रमशुक्लमिहिष्य कुछे मम ॥ २२ ॥

प्रत्य: ते रे ब्रह्मो भास्ये सदा सत्कार कर। पद्मनाथौं के पद्मायों में से, जो लिंग रस का पद्मार्घ चाहे, उने वही प्रस्नना चाहिए। क्योंकि तुम कामेश्वर उद्योगो तुम क्रम नहीं दे सकती। ॥ २२ ॥

गर्वनार्जन पानेष्वर धार्चार्यकेण संप्रादिर्मू।
अन्नान् निर्यात सर्व शृङ्खल शलेश लर ॥ २२ ॥

हेम क्षेत्रमः समं ॥
हे मारे। तू भ्रम के खाद्य पद्मायों के जैसे मध्य, मेल्या, लेख, चैत, पेय, गार खाद्य व्याख्या के दृष्टि तुष्ट लगा है। ॥ २३ ॥

वालकारण का धरणवाय सर्व पूप हुआ।

—२२—

ग्रिपञ्जास: ग्रं: ॥

—२३—

एवहुःक वसिष्ट्ये श्रवला श्रुतसुदन।
विद्याय क्रमविवाहवत्स्य यस्य पथे, प्राप्तितमू। ॥ १ ॥
वाशिष्ट जी के इस प्रकार कहने पर, शादला ने जिसकी जो वस्तु
बाधित थी, उसे वही वही पहुँचा दी ॥ १ ॥

इक्षुन्मधूनस्तथा जानाञ्चायांथ वरासवान्।
पानानि च महाहार्षिणि भश्यांशेषवत्तावचार्यांस्तथा ॥ २ ॥

खाने के लिये ऊख के रस थानी शकर की वनी अनेक प्रकार
की मिठाइयाँ, शहद, धान के लावा; पीने के लिये मदिरा, तथा
tररह तरह के व्यत्तम आश्रय, प्रस्तुत किये ॥ २ ॥

उष्णाल्भ्योद्वृप्यां राज्यः पवित्रोपमः।
मुष्टिनानि च सुपाध दङ्ख्यःस्त्यावैं च ॥ २ ॥

नानाखादुरसानां च पहुँचानां तथैव च।
भोजनानि सुपूर्णानि गैडानानि च सहस्वः। ॥ ५ ॥

गर्गमयो भात के पवित्राकार देह लगा दिये। खीर, कढ़ो, सूक्ष्मी,
बरा, घास कर तरह तरह के स्वादिष्ट पद्मसात्त्रक हजारो पदार्थ और
गुड़ की मिठाइयाँ प्रस्तुत कर दीं। ॥ २ ॥ ॥

सर्वमात्रसीतससन्तुप्प हृदेतपर्जनानायुद्धः।
विश्वायित्रवरं राम वसिष्ठेनान्तिर्चितस। ॥ ५ ॥

इन खंड पदार्थों की खा पीकर श्रीर वाशिष्ट सरकार से
विश्वामित्र के साथ के सव लोग अच्छी तरह तुत हुए, श्रीर आर्या-
निवित हुए। इस राम । वाशिष्ट जी से विश्वामित्र जी के साथी
खण्डियों की महती भूमि उत्तर कर दिया ॥ ५ ॥

１ ख्वाभचार—नाजारकारानु (गो०)। २ हृद: आदरण (गो०)
３ प्रह: भोजवादन्ता (गो०)।
विश्वामित्रोपि राजरिहिष्य: पुत्रस्तदाभि ।
सान्तःकर्तवेऽराजा सत्राजङ्गप्राप्तोहितः ॥ ६ ॥

राजपक्ष विश्वामित्र जी भी अपने पुत्रोहित, संती, दीवान शत्र के साथ अपवृत्त पदार्थों भाजन कर तथा महार्षि के खाद्र सक्कार से बहुत प्रचंड हुए ॥ ७ ॥

सामालो मन्त्रिसहितः समृत्यः पूजितस्वदा ।
सुकः परमहेंद्र वसिष्युगिमत्रवीरः ॥ ७ ॥

जन नौकार चाफकर संती, दीवान, जना ग्राम्य के साथ विश्वा-
मित्र जी भलीभावि सकारि है। तुफ़े, तव परम प्रसबत्ता के साथ विजित जी से वाले ॥ ७ ॥

पूजिताणां तथा अवसन्नपूजार्हें तुसत्वः ।
श्रुतामिविनायायामि वाक्यं वाक्यविश्वारद ॥ ८ ॥

हे भगवन्! आपने पृथ्वी होकर भी मेरा प्रचंडा सकार किया।
हे वाक्यविश्वारद्! अब में कठूँ कहता हूँ उसे आप कुँ में ॥ ८ ॥

गच्छा नतसहःने दीयतां श्रवला सम ।
रचन हि भगवन्नेत्रद्रवहः च पारितः ॥ ९ ॥

हे भगवन्! आप अपनी श्रवला गी के बदले मुक्तिसे एक लाख
बीं, लो धीर इसे हमें हैं। कारण यह है कि, श्रवला एक
झुल है धीर रात रखने का राजा ही प्रधिकारी है ॥ ६ ॥

तस्माने श्रवलां दैवि मम्मया धर्मतो डिन ।
एवंभुक्तस्तु भगवान्विनंगियो सुनिसत्वमः ॥ १० ॥
विश्वामित्रेन धर्मोत्स्वम पत्रिवाच मद्धीपतिम्।

नाहि शतसहस्रण नापि कौटिगिर्तगङ्गाम्। ॥ ११॥

हें हिंज! प्रतः इन गैं का आप मुखः देन। धर्म की दृष्टि से यह मेरी हो है। जब विविधेश मन्वानि विनिग मं जी से विश्वामित्र जी ने इस प्रकार कहा, तव धर्मांमा विनिग जी राजा से बाले। हें राजन! एक लाख नौकरों को तो वात हो क्षुमा, एक कराध मौर्यें भी यदि आप शाबला के बदले हें। ॥ १०॥ ॥

राजन्धास्यामि शाबला राशिंगी रजतस्य वा।

न परिवायमहेंं मत्सकाशान्तिरिद्वम्। ॥ १२॥

अथवा इसके बदले आप चाँदी का तेर देना चाहें, तो मे में शाबला आपके नहीं हैं सकता। हें राजन! यह मेरे यहां से जाने शेषाय नहीं हैं हें। ॥ १२॥

शानती शाबला महां कीर्तिरात्मनतो मथा।

अस्यां हुन्यं च रुन्यं च धान्यात्रा तथं च। ॥ १३॥

क्योंकि जिस प्रकार मन्वलो पुरुष का अपनी कीर्ति से सम्बन्ध होता है उसी प्रकार शाबला का सुनसे सम्बन्ध है। इसीके द्वारा मेरे देव और पितु सम्बन्धी कार्यों का तथा मेरा निर्धार इत्या है। ॥ १३॥

आयतंभिहेऽवं च वर्णंसौभाजयं च।

स्वाहाकारवफ्पकारौ विचारस्य विविशास्त्य। ॥ १४॥

मेरे श्रापिताय वाल्मिकिन्ययं, स्वाह, स्वधा, नपद्धतार और विविध प्रकार को विद्यां इसीकी सहायता हैं। ॥ १४॥
विश्वास: सर्गः १५३

आयतमत्र राजयें सर्वपेत्वम संभवः ॥
सर्वसंतत्तनयेन मम हृष्टिकरी सदा ॥ १५ ॥

हे राजयें! कहैं तक कहैं प्राप्त निधर्य जानिये मेरा तै सब
फाय यही चलती है। यह मेरे लिये सर्वज्ञ है। इसीतः में
सदा सत्तुचिच्छित रहना हूँ। ( प्रायश्चित तु भुक्ते किसी से कुछ
मांगने को प्रावश्यकता नहीं पड़ती। ॥ १४ ॥

कारणं हुःभी राजयं दास्ये शब्दं तव ॥
वसिष्ये नित्यस्तु विश्वामित्रोऽवविचतः ॥ १६ ॥

सर्वप्रभावतः वाक्यं वाक्यविश्वारः ॥
हृदयं गुणावेशयानुवाचरणं श्रूपितामुः ॥ १७ ॥

इनके प्रतिक थेर भी यथेक कारणा इसे न देने के हैं ।
पुत्रः हे राजन! शब्दा की ती में भावको न हुँगा। वशिष्ट जी
का यह उद्द जुन विश्वामित्र जो प्रत्यक्ष वाचेश में मर आफ्रह
पुरवक कहने लगे । हे मुनिवर! सोने के घंटों, सोने के भासुपको
थेर सोने के ज्ञानों से श्रूपित ॥ १५ ॥ १७ ॥

द्वारमि कुञ्जराणां ते सहभ्रणिः चतुरदशः ॥
हृदयानां स्थानां ते भवेताव्यानां चतुर्युज्यामसु ॥ १८ ॥

द्वारमि ते श्वातन्त्र्यं स्त्रीलिङ्गिकविश्वारः ॥
हृदयानां देशावातानां कुलजानां महाजसामसु ॥ १९ ॥

चौथं हजार द्वारां में देता हूँ ( इतना ही नहीं ) चार चार
सफे द घाड़ों माले बड़े चुदर देने के एक सो प्रात रथ देता हूँ।
वालकार्णि

उस साथ ही अघुक्षे नस्ते के दिसावरी श्रोर छववर्चे के आभूषणों ते छुस्तते ॥ १५ ॥ १६ ॥

सहस्रलेख्यां द्रा त दुर्दासित तव सुग्रवत 
नानावर्गिकविभक्तानं वयिस्थानं तथेव च ॥ २० ॥

भृगुह ज्ञाने वेदां तुमचा दृष्टा हूँ। इनके धातरिक तरह तरह के रहूँ वाली, जवान ॥ २० ॥

दहांस्येकां गावं कौटिष शववर्चा दीयतां सम ॥

याविद्यानिसि रश्यं वा हिरण्यं वा द्विङ्कतम ॥ २१ ॥

क्षेत्राः पाँच देवता हूँ। भ्राप कुमरे शवला दे देव ॥ हे हिलेचम ॥

ब्राह्मण जितने रश्य श्रीर जितना सोना चाहें ॥ २१ ॥

तावदास्यामि तत्सर्व शवला दीयतां सम ॥

एवमुक्तस्त्र सुभवकान्तश्वापेत्रेद धीमता ॥ २२ ॥

मैं सब देरे को सैयार हूँ। भ्राप कुमरे शवला दे ही देव। इत्य ब्रह्मण विहारी जो कहने पर भी बुद्रिध्वाल ॥ २२ ॥

न दास्यामीति शवला माह रजनकथाम ।

एतदेव हि मे जनमेतदेव हि मे घनसु ॥ २३ ॥

वशिष्ठ जी मे कहा कि, हे रजनौ। शवला को तो मे किसी तरह भी नहीं मे सकुता। वक्ष्यो कि वेरे जिये तो शवला मेरा रश श्रीर शवला ही मेरा घन है ॥ २३ ॥

एतदेव हि सर्वश्वेतदेव हि जीवितसु ।

दशै, पूर्णमास्त्र यज्ञाशैवासदीशिनाः ।

एतदेव हि मे राजनिविधाय रायस्तथा ॥ २४ ॥
बालकायांडे

हे राम। जब राजा विश्वामित्र गौं के जुवरट्टी ले जाने लगे, तब हुँकार हो वह धोने लगी श्रीर मारे शिक के विकल हो धारणे मन में सेवने लगी। ॥ २ ॥

परित्यक्ता वसिस्त्रेन किमहं सुमहातमनाः।

यावहं राजशंदेहिना हियेऽ भूश्रुद्धेन्द्रिताः। ॥ ३ ॥

महात्मा रजस्विन जी ने मुखे कथों त्यागा? मैंने ते उनका केवल गर्दन भी नहीं किया। फर्र क्यों राजा के मन (नौकर) मुख धुधलिनी के जुवरट्टी पकड़ कर लिये जाते हैं। ॥ ३ ॥

किं महायकृतं तस्य महेष्वरायिवितात्मनः।

यन्मामवागां सक्रामिषां तयजति धार्मिकः। ॥ ४ ॥

महासिद्ध महात्मा महेश्वर वाजित्र का मैंने केवल गर्दन किया जो मुख निदोषितीनी, अनुरागिनी और प्यारी की धार्मिक दुनिया लागे हैं। ॥ ४ ॥

इति सा चिन्तयित्वा तु विनिश्चितस्य पुनः पुनः।
निर्भूया तांस्तदा भृत्याज्ज्यात�: श्रुद्धुदु:। ॥ ५ ॥

शबला गौं पेशा सेवा श्रीर वारंवार ऊँचो संगे लेता वह उन झाँकी और राजकमेह्नारियों के हाथ से धारणे की कुद्रा। ॥ ५ ॥

जगामा निलवेने पादपूर्ण महासनः।

शबला सा खदंती च क्रोशाती चेदमनवीत। ॥ ६ ॥

कर वायुवेंग से भागी श्रीर वाजित्र जी के चरणों में जा गिरी। शबला घड़े जीर से चिंतामुक्ती श्रीर लेती हुई कहने लगी। ॥ ७ ॥
वसिष्ठस्याग्रतं: सिथात्स खदन्ती मेघनिःखनाः।
भगवणिः परित्यक्ता त्वपावहि प्राहाणः सुतं॥ ७ ॥
वशिष्ठ जी के सामने खड़ी हुई, रोनी हुई, मेघ के समान उधर
स्वर से देखती—हे भगवान! हे ब्रह्मा के पुत्र। क्या आपने मुझे
ल्याग दिया? ॥ ७ ॥

dस्माद्राजभट्टा गाँ हि नयन्ते लतसकाशतः।
पुषुक्तस्तु वहारिरं वचनमविवीर॥ ८ ॥
अं आपके यहाँ से मुझे राजा के सिपाही लिये जा रहे हैं?
यह छुन कर प्रश्नाय वशिष्ठ जी ने कहा ॥ ८ ॥

dशोकसन्तासहदयां स्मारिमेव दुःखिताम्।
न त्यां त्यजामि शबले नापि मेघप्रसन्त त्याया ॥ ९ ॥

dे परम दुःखित हो शबला से वसी प्रकार बोले जैसे कोई
प्रपनी वहन को हुई देव उससे कहता है। हे शबले! न तो
दूसरे कोई मेरा अपकार किया धीर न मे प्रपनी इच्छा से तेरा
पतित्याग हो कर रहा हूँ ॥ ६ ॥

dपर त्यां नयन्ते राजा व्रजान्याचो महावरः।
न हि तुल्यं वरं महं राजा लच विशेषतः ॥ १० ॥

cछी राजा क्षरियम्य पूरा: पतिरेव ॥
dश्रवन श्रद्धाराधिकारी पूर्णां साधनीयतसंकुलः ॥ ११ ॥

dतिथिधचर्जसपाकारा तेनासौ बलवचरः।
पुषुक्ता वसिष्ठेन पतियुवाच विनीतवर्तः ॥ १२ ॥

dवात रात्री — २४
वचनं वचनं ज्ञानं सा वाक्षपिर्ममितमश्चनं।
न वलं ज्ञात्रियस्याहुत्राहारं वचवतं।। १३ ॥

यह राजा वल से मच हो करतेरी गुमलसे जीन कर तुम्हें दिये जाता है। मेरे पास राजा के वरावर सैन्यवल नहीं है। फिर एक तो यह राजा, दूसरे ज्ञात्रियं, तीसरे पृथिवी का मालिक है। नौबाजे रथों- और हाथियों से परिपूर्ण इसके साथ एक वड़ी महती बेना है। प्रति: यह मुफ्तसे वल में अधिक है। वङ्गित्व जो के यह कहने पर, वार्तालाप में चतुर, उच्च में, वह शब्दाना अभिमत प्रमाण वाले वाङ्गित्व वङ्गित्व जो से वाली कि, हे ब्रह्मचारी! ब्राह्मणों के वल के खामने ज्ञात्रियों का वल तुफान है॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥

ब्रह्मान्धवं सत्रं दिन्यं क्षणातु वचवतं।
अष्टेवर्तवभु न तस्या वचवतं।॥ १४॥

हे ब्रह्मचारी, व्याक्तिके ब्राह्मणों का वल दिन्यं (प्रधानदृष्टि तपस्या का वल) होता है। प्रति: धार्मिक धार्मिक बल से (ज्ञात्रिया बल से) वह बहुत अधिक है। धार्मिक अतुलित वल है। वह प्रधानदृष्टि ज्ञात्रिय राजा वल में धार्मिक समान नहीं कर सकता।॥ १४॥

विश्वासित्रो महाधीर्येत्जत्तव दुरासदाम।
नित्यदृष्टव मां महाभाग तदन्नौनचवरसंज्ञ्यताम॥ १५॥

विश्वासित्र धवन्धा हो वहा बलवत्ता है, किन्तु धार्मिक (तपस्या धारणे) तेज उसके किंवती दुरसह है। हे महाभाग! भाप्य भाप्य धार्मिक दीनियों तो में धार्मिक प्रधानदृष्टि के प्रति: ले॥ १५॥

तस्य दर्पनं धर्मत्रायस्माति दुरास्मनः।
इत्युक्तस्ते तथा राम वसिष्ठस्तु महायज्ञः॥ १६॥
इत दुष्क के वल का गर्व मत कर दूँ । हे राम । शवला के यह वचन लुन महायशौ बलिष्ट जी ॥ रै।

सज्जतिती तदेवाच वलं परवलाभस्मु ।
तस्य तद्वचनं शुन्ता सुरमिभ: साख्यजचा। ॥ १७ ॥

उससे बोले, धन्य, तुम धन्यने वल से पैसी सेना द्व्यन करो लेता हृदय के (धीमीक्ष) वल के भीज डालो। यह लुन दामला ने वैसे ही सेना द्व्यन कर दी ॥ १७ ॥

तस्या हुम्भारेनास्त्रं पधत्राः शतेऽत्रूप ।
नागयन्ति चलं सर्वं विश्वामित्रस्य पश्यत: ॥ १८ ॥

शवला के “हुम्भा” शब्द करते से, सैकड़ों (एक प्रकार के) धन्यन्दा उत्पन्न हो गये धार एवं मित्र; को वापस लेने उनकी प्रशंसा सेना का नारायण करने लगे ॥ १८ ॥

चलये भूमि ततो द्वैर रथेनारकय्म कैलिकः ।
स राजा परमकुट्ठो रोपविस्मारितेत्त्व: ॥ १९ ॥

तब धन्यने सेना को नए हुम्भा देख, राजा मित्र; परम कुट्ठ द्वार लाल लाल नेत्र रथ में बैठ प्रकाश मिला, ॥ १६ ॥

प्रवासामायामास पशून्यचवचैरपि ।
विश्वामित्राद्विन्तौप्ता प्रवासामायासुपस्तदा। ॥ २० ॥

चार नाना प्रकार के छोटे कई धारियों से पश्यनों (द्वारका विशेष) की मार दाला । तब सैकड़ों पश्यनों का विश्वामित्र के

हाथ से मारा जाना देख ॥ २० ॥
भूय एवास्तत्कोपाच्छ्यान्यनिष्ठितान।
तैरासीतांश्चुमिः शर्कैर्यनिष्ठितां॥ २१॥

शब्दला ने वोइ में भर यज्ञों सहित शकों (म्लेच्छों की प्रक्रिया के प्रकार के सेवकों) की उत्पत्ति की। इन यज्ञों में जीव शकों से प्रथिवि पूर्ण हो गया॥ २१॥

प्रभावद्विघारीयेंहेंमकक्षसाचिरेः।
दीर्घसिपधिरेःरेमवर्णामवराहतेः।
निद्राभं तदवल सर्व पदिशैरिन पवाकेः॥ २२॥

ये सब शक यज्ञनारद बड़े तैलस्वर महापराक्रमी थे। सब के शरीर का रंग खूबां था। सब के रंग के पीलो पोशक थे। बड़ी बड़ी तलवारें, बड़ी धुंध थे। इन सब ने प्राणी को प्रदर्शित की तरह विश्वामित्र के लैहेंकों की दृष्टि (प्रत्यक्ष देखा) कर डाला॥ २२॥

ततोस्त्राणी महातेजजा विश्वामित्रो सुमैष ह।
तैस्त्रैविष्यवकामेजाः पञ्चातामकुलान्॥ २३॥

श्रीत चतुर्वश्चधाः सर्व:॥

tव महातेजजी विश्वामित्र ती ने श्रव्या बोला, जिनसे उस सब यज्ञ, काम्बोज और पशुवं विकल्प हो। गये॥ २३॥

वालकार्तेद का चौंकनावं सर्वं पुरा हुआ।
पञ्चपञ्चाष्टी: सर्गः
—: ० :—
तत्त्वानाकुलाण्डप्रा विश्वामित्रान्तमोहितान्।
वसिष्ठोद्यामास काम्युक्तजन येगत:॥ १ ॥
तव विश्वामित्र के भ्रम शक्रों से उन यवनों के चरित्र जो ने चिकन देखा, तब उन्होंने शवला से कहा कि, ध्वस्त की तेरे कहने से यथा की महिमा से और मोहक उच्च कर ॥ १ ॥
तस्या हुम्बारायणाताः काम्योजा रविशिष्ठाः।
उवसोऽन्तः सज्जाताः पञ्चवाः श्रवणायः॥ २ ॥
तव शवला के ज्वाला से हुर्व के समान तेजस्वी कांभोज
अक्ष मोहक और स्तनों से हाथों में शक्र लिये पदव उत्पन्न
हुए ॥ २ ॥
योहानिदेशाच्च यत्रा: श्रवेच्छार्चकास्तथा।
रूमस्पेशु च मोहक्षा दरीता: समिरात्तकः॥ ३ ॥
थांब से यथा, युद्ध से एक और रौशंसे स्मोक्ष, हारीत और
किरात उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥
तैस्नेतिनिष्ठिति सर्व विश्वामित्रः तत्त्वणात्।
सप्तदिग्मर्षा साधवस्य सरथं रघुनन्दन ॥ ४ ॥
हे रघु! इन लोगों ने विश्वामित्र की हाथी धारे स्तयों और
पैदल सैनिकों सहित खारी वेना तपस्त नहर कर रहे ॥ ४ ॥

१ कवचः—स्त्रतावली (गो०)।
हद्धा निषुद्धितं सैन्यं वसिष्ठेन महात्मना।
विश्वामित्रसुतानां तु शतं नानाविपायुधम्॥ ५॥

इस प्रकार अपनी सेना का वाणिज्य जी द्वारा नाश देख, विश्वामित्र जी के साथ पुल घनेक प्रकार के अक्ष शक्ति दे॥ ५॥

अभ्यावासतसंस्तुकुं वसिष्ठ जपानवर्म।
हुद्रारेषवेत तान्स्वायान्ददाह भगवान्तुपिः॥ ६॥

श्रौर भवु स्त्रिया तथा धरणगां सभी वाणिज्य जी के ऊपर दोंड़े |
किन्तु भगवान् वाणिज्य जी ने "हद्धा" कर उन सब को मक्ख कर |
डाला॥ ६॥

tे साधवराधातान वसिष्ठेन महात्मना।
भसपीकुलाः गुर्जरेन्विश्वामित्रसुतास्तदा॥ ७॥

राजकुमारों के साथ जो धोड़े, भय और वैदल सिखाह ये |
उनकी भी राजकुमारों के साथ ही महात्मा वाणिज्य जी ने तथा भय में |
भस्तक कर डाला॥ ७॥

dः द्धा विनाशितान्प्रजानन्तरं च सुप्रभायन।
सत्वदेवशिष्ठितयाविग्रो विश्वामित्रोभवततदा॥ ८॥

बड़े यशस्वी राजा विश्वामित्र अपने साथ पुलों के सैन्य वहित |
नष्ठ हुआ देख, भ्रष्टतं लज्जित हो चित्ताम्ब्र तो गये॥ ८॥

समुद्र शिव निवेश भद्रदृश्तृ हवेहट।
उपरक इत्यादिभ: सधो निषुद्धितं मत्॥ ९॥
पञ्चपञ्चाशः सर्गः ३७२

धे वेगार्दत समुद्र, विप्रत्त शहित सर्प, भौर राहु प्रसिद्ध प्रज्वल की तरंग निग्रास (तेजाज्ञान) हो गये॥ ५॥

cतपुरवलें द्रोणा जूनपस इव दिनः।

cतद् पैरं तत्तत्साहि निर्मितं समप्रृत॥ १०॥

dेघ यपने पुरो भौर सेना के मारे जाने से पत्तरहित रथी की तरंग द्रोण हो गये। वे दर्पहत और हलोलाह हे, प्रवल्यन दुप्रक्षित हुय॥ १०॥

स पुत्रमेंक राज्यपाय पाल्यन्ति निवुद्ध च।

पृथिवीं क्षत्रार्केन वनमेवान्त्रप्रमुख॥ ११॥

c चचे हुय ) पक्ष पुरुष को राज्य संग और चालचर्म से राज्य लाने का उल्लेख है, वे स्वयं रथ में चल दिये॥ ११॥

स गत्रा हिमवत्पार्थिकिरोरस्तेवमिविम।

भवद्वस्मयार्कारे तपस्तेपे महात्पा॥ १२॥

dे हिमालय पर उस जगह गये जहां कितना उग्र बहते वे और भगवान, जिन का प्रसिद्ध करने के लिये तपस्या करते लगे॥ १२॥

केशनित्थिथ कालेन देवते उपमद्वज।

दर्श्यामास वर्त्रो विद्वानपितं महावलम॥ १३॥

हुक्क का बाद बढ़ानी भगवान, उपमद्वज महादेव जी महावली विश्वामित्र जी के आगे प्रकट हुय॥ १३॥

किमयं तपसे राजनवृहि यहे विशंकितम्।

चर्दीम्बित्वम् वरे यस्ते कार्हि: सोज्जितियात्॥ १४॥
बेलका यहू। तुम किसने लिये तप कर रहे हो? बतलायो तुम क्या चाहते हो? जो तुम मानो वही हर देने को में प्रस्तुत हैं। १४।

एकुणास्तु देवेन विश्वामित्रो महातपाः।
प्रविज्ञपत्य महादेवमिदं वचनमिर्गः। १५।
महादेव जो के ये वचन छुन महातपस्वो विश्वामित्र उनको प्रशाम कर दिये हैं। १५।

यदि तुम्हो महादेव धनुर्वेदो ममाच।
साज्जपाज्ञपनिषदः सरस्य सब्दीयनाम्। १६।
हे महादेव! हे अनंत! यदि राक्षस मुष्क ं प्रस्तुत है तो मुखः, उपमुखः, उपानिषदः तथा सरस्य साहित्य पुराण्यं छुने वत्ताय द्रीजिये। १६।

यानि देवेशु चात्माणि द्रानवेशु महार्पित्य।
गन्धर्यायसरसः प्रतिबान्तु ममाच। १७।
जिन प्रकट प्रकार्यो का प्रचार द्रानवोः, महार्वि योः, गन्धव्योः, यद्योः और राज्योः में हैं, वे सब । १७।

तव प्रसादद्वाकुतः देवेशु मोहपितस्तथ।
एवमस्तिधुति देवेश्च वाक्यमुक्तवा गतस्तदा। १८।
हे देवों के देव! आपके प्रतिमुद्ध से मुखे प्रात्स हों। यह तर मांगे पर महादेव जी "एकुणास्तु" अवर्तमा पेशा ही हो, कह कर चले गये। १८।

प्राप्त चात्माणि देवेनादिविश्वामित्रो महावरः।
दर्पण महता युक्तो दर्पण्योदभवन्त्य। १९।
महाराज जी से प्राणों के पांक जरूर महावली विश्वासित महान कर्म 
से युक्त हो। ध्यासागर में बदे। १५।

विवर्यमानो वीर्यम समुद्र इत पर्वणि।

हत्येत्र तदा में वसिष्ठसुपितस्वमय। २०।

दे बल में चक्षु-चक्षु जैसे पर्वकाल में ( प्रभात पूर्विक मे देख। )
चन्द्रमा को देख समुद्र बहता है। उन्होंने अपने मन में निज्ञित कर 
लिया कि, वशिष्ठ प्रभ भरे दो धरे हैं। २०।

ततो गतात्मानमपर शुभोच्चाह्वाणि पार्थिव।

प्रस्तुत प्रेमवन सर्व निर्देशं चामुन्तेस्वर। २१।

तदन्तर राजा विभासित, वशिष्ठ जी के श्रीदेव पर पहुंचे 
और छायों की बर्मा करने लगे। उन छायों को ध्यान से बह तपेश्वन 
जल उदग। २१।

उद्दीयमाणपद्ल तद्विभवत्तिकस्य श्रीमतं।

द्वारा तिमदुता भीता मनयम शतशा दिशं। २१।

विभासित जी के प्राणों का प्रयोग देख दोनों मुनि भयभीत 
हो चारों ध्यान भगवान गये। २२।

वसिष्ठस्य च ये धिन्यास्तेष्व शुभपर्सिंह।

विद्वृत्ति भयावदीता नानादिग्नयं सहस्रं। २३।

वशिष्ठ जी के जो श्रीपाण ये तथा जो हज़ारों प्रमुख पक्षी वहा 
स्वते ये, वे भी सव मध्योत हो चारों ध्यान भगवान गये। २३।

वसिष्ठस्यात्मपर श्रुणथास्वीनिधात्मन।

शुहुतमित्र निनाषदमासिदिरिणसचिंभसु। २४।
वल्कापदे

महात्मा वशिष्ठ जी के प्रारंभ में एक भी जीवधारी न रहा। वहीं भी में ही वहाँ सजाता झा गया ब्रह्मवा वह प्रारंभ करते भूमि को तरस उजाड़ है गया।

चद्दोः वे बसियहृष्टा मा भैरिति मुहुर्तः।

नामराम्यथ गाथेयं नीलरामिव भास्करः॥ २५॥

वशिष्ठ जी उन सब से बार वार बिखा चिखा कर यह कहते जाते थे कि, वहे सतो। हरे सतो। में विन्यामित का धार्मी इसी प्रकार नाश किये दालता हूँ। जैसे खर बोहर का नाश करते हैं।

पञ्चमुक्तः महातेजः बसिष्ठो जपतांवः।

विन्यामितः तदा वाक्यं सरामभिन्दमवीतः॥ २६॥

उन सब से यह कह कर तपकिरित वशिष्ठ जी ने राप में भर विन्यामित जी से यह कहा॥ २७॥

आध्यं चिरसंदृष्टं यदिनाशितवानसि।

दुराचरेशसि यन्मूह तस्मात्त्व न भविष्यसि॥ २७॥

तूले मेरे बहुत पुराने श्रीर भरे पूरे इस प्रारंभ की नज़र कर दिया हैं। अतएव हैं दुराचारी श्रीर सुहँ। अब तू न बचने पाएगा॥ ३७॥

इत्युक्तवा परमकुछः दण्डमुहभ्रम्य सत्वः।

विन्युमितः आश्रादिः यन्मूहस्मिवार्षम्॥ २८॥

इति पञ्चपादा: शर्गः॥
एवमुख्तः वर्षिण्येन विश्वामित्रोऽपि महावरः।
आन्तमेयसंग्रहितयां निष्ठा तत्सेवति चालवतीद्॥ १॥
वर्षिण्यं जी के पेस सरोभ वचन सुन फर, महावरी विश्वामित्र
ने वातेराज्य उत्तरा भीर फर कहा गढ़ा रह। खड़ा रह।॥ २॥
ब्रह्मदेवं संग्रहितं कालदर्णियापरमस्।
वर्षिण्यं भगवान्कोभादिरि्तं वचनमवाद्वी।॥ २॥
वर्षिण्यं जी ने भी दूरसे कालदेव के समान व्रह्मदेव को उठा
कर कोषपूर्वक विश्वामित्र से यह कहा॥ २॥
भ्रमन्यः स्थिलास्वयंटे पहलं तद्विदार्थय।
नागरायणः ते दर्पण पुत्रस्य नव गाधिज।॥ २॥
चारे दलित्वां में नीच। ले में खड़ा हूं। दूने महादेव से ले यहाँ
त्यस्मात किये हैं, उन सम ने मेरे ऊपर चला। चारे गाधिके
वांकड़े। तुम्हें ते इन दलित को श्रद्धा है, उसे मे भी मैं ग्रामी दूर किये
बेटा हूं।॥ ३॥

१ न्यायभव्य—कृष्णदासम् (गो)।
क च के क्षत्रियवर्त्त क च ब्रह्मवर्त्त महत्।

पश्य ब्रह्मवर्त् दिव्यं भव क्षत्रियपांसन || ४ ||

श्रेे कह्र तिथियों का पशुवल् ! श्रीर कह्र ब्राह्मणों का वहा तप- 
बल ! श्री ज्योतिर्ययम् ! मेरा दिव्य प्रवचन देख || ४ ||

तस्यालं गाणित्युस्थस्य घोरमाणेयुरुध्वतम्।

ब्रह्मद्रष्ट्येन तत्क्षणंतमानेवेंग इवाम्भसा || ५ ||

विषिष्ट जो जे ने प्रथम्धें प्रमाणणदे से मिश्रमित्र ने चतुर्याया हुक्का 
वह मयूर द्राग्योष्ण उसो प्रकार प्राङ्त्त कर दिया, जैसे जल 
अग्र के प्राङ्त्त कर देता है ! || ५ ||

वारुणं चैव रैद्धं च ऐंत्रं पाश्रुपंतं तथा।

ऐंसीकं चापि चिन्हे कुपितो गाणित्युस्थम् || ६ ||

तद्नादरं मिश्रमित्र ने कुछ हीं वस्तु, सौंद्र्य, प्रेम, पाश्रुपंतं, 
तथा ऐंसीक प्रलं चलाये || ६ ||

मानवं येहं चैव गाणित्युर्व स्वापनं तथा।

जृष्णर्यं माद्रं चैव सन्तापनवियालये || ७ ||

फिर मानव, सेहं, गाणित्य, स्वापन, जृष्णर्यं, माद्रं, सन्तापन; 
विलापन, || ७ ||

श्रेष्ठं दारणं चैव वज्रमल्लं शुद्धर्यं।

ग्रहपाशं कालपाशं चारुणं पापोमेंवं च || ८ ||

श्रेष्ठं, दारणं, शुद्धर्यं वज्रमल्लं, ग्रहपाशं, कालपाशं, वस्त्र- 
Pपाशं, || ८ ||
पैनाकाल्य च दृष्टिं सुप्रकाश्च अशनी यमे।
दण्डालयमय प्रसारं क्रौँतमसां तथीं च || ९ ||

धर्मचर्चः कालचर्चः विषयचर्चः तथैव च।
वाियव्र यथा स्रावं अस्तं ह्यशिरस्तथा || १० ||

dharma kaal charcha vishay charcha, vayavcha, madanach, 
dhanyapya bh chalaye || 10 ||

गुफ्तियं च चिन्तेप कालालं मुसलं तथा।
वैवचारं महारं च कालालयमथ दारणसु॥ ११ ||

taya dayshikar bh chalaye | tadnatar kalaal, musal, 
 prag naamak mahakaal, kathar kalaak || 11 ||

त्रिश्रुतमुखं थेरं च कापालयमधकहुः।
पुतान्यन्यानि चिन्तेप सर्वाणि रघुनान्दन || १२ ||

थेर विशुलं, कापाल थेरं फह्युः! हे राम! थे सव थाब 
विभामित्र जी ने वशह जी के सरप्राचाये ॥ १२ ||

वरसते जयतांशेषेण तद्वति निर्मिताथावत्।
तानि सर्वाणि दृष्टेऽपि प्रस्तेत ब्रह्मण: सुल:। १३ ||

कितू यह केद्रे प्रचमे की वात हुई कि, श्राहा जी के पुत्र थेर 
तपस्वियों में श्रेष्ठ विश्वास जी ने इस सव ही सम्बो थारों को थे प्राप्ते श्राहा-
दुरद्द से द्रत्तिया. (प्रशांत पकड़े लिया) || १३ ||
तेषु शान्तेषु प्रहास्त्र सिद्धान्तामतिन्दनः।
तदञ्चस्मृतं द्द्या देवा सातिपुरोगमा॥ १४॥

इन सर ग्रन्थों के विफल होने पर विश्वामित्र ने प्रहास्त्र
चलाने के लिये उठाया, यद देख प्रहास्त्र देव॥ १४॥

देवपर्ययः संहान्त्व गन्धवर्णः समहेशरः।
श्रैणक्यमात्स्ततं नाहास्त्रे समुद्दीरिते॥ १५॥

देवर्षि, गन्धवर और महोरा चढ़ा गये। प्रहास्त्र
के उठाते ही
तीनों लोक कहते हुए भयंकर महान हुए॥ १५॥

तदप्रत्येक महाशेर राष्ट्र भावः तेजसा।
वसीत्रस्व ग्रासे सर्व प्रहास्त्रेन रावण॥ १६॥

किंतू, यह साम। उस प्रहास्त्र का सब प्रयोग
विविध क्षेत्र से प्रयोग, प्रहास्त्र में फक्कर कर, वशीष्ट ने शान्त कर
दिया॥ १६॥

प्रहास्त्रं ग्रासमानस्त्र वसीत्रस्व महात्मनः।
श्रैणक्यमोहिनः श्रींतुरुपवासीत्सुदारणः॥ १७॥

प्रहास्त्र का आश्रास करते समय वशीष्ट जी का तीनों लोकों के
विधि करने वाला और प्रत्यय हरावना रूप हो गया॥ १७॥

रोमक्रप्तरं सर्वेद्व वसीत्रस्व महात्मनः।
परीच्छ इति निषेध्यने कृपाकलारिचि॥ १८॥

उन महान्या दशिष्ट जी के प्रतिवेदः रोमक्रप्त
के धूमपान भक्षि
चाला को तर्क चिनगारियाँ निकालने जगा॥ १८॥
राज्वलदत्तसद्वर्ग वसिष्ठस्य करोजधातः।

विषूम इम कालानिर्ययमद्ग्र इवापरः।२९॥

विनय जी के द्वार की ब्रह्मदृष्ट जै। ध्वस्तित कालानि के
तुलयो ध्वच्छव इद्दरे यमदृष्ट के समान था —जल भक्ता।३६॥

tतस्मातन्न्यनिगणा वसिष्ठं जपतांवरसः।

अमरे ते वर्ण प्रहारंस्ते भार्य तेजसः।३०॥

यद् देख तपस्वियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जी की प्राण्य निगणा
स्थिरि करने लगे धीरे बोले —हे प्रहार। प्रपाक कि तल प्रभृति है।
प्राप्य प्रहारः के इस तेज की प्रधाने तप की महिमा से शान्ति
फूलिये।३०॥

निवृत्तस्तव्या वर्णानिवानमिनो महात्मा।

मसीद्र जपतांश्रेष्ठ लोका: सन्तु गतन्यथा।३१॥

हे प्रहार। प्रधाने इस महात्मा विन्यार्थ का गर्व खर्च कर
दिया। हे तपस्विमवर। ध्वच्छव प्रसन्न हो, जिसके सब लोगों के
शान्ति प्राप्त हो। ि३१॥

एजस्वको महातेजः शम चक्क महात्मा।

विन्यार्थमिको निकुतो विनिःस्वयमभगवद्।३२॥

सुनिवयों के पेशा कहने पर महात्मा वशिष्ठ जी शान्त हो गये।

निरस्कृत विन्यार्थ मह ठंडे सांस ले फर यह बोले।३२॥

धिमधार्म श्विर्यवर्गं फ्रहारेज्यावर्गं वल्लु।

एकेन ज्ञानदपदेन सर्वशानाणि हतानिन मे।३३॥
वालकाशदे

त्राज्य के बल के विकार है। त्राहमेज ही का बल यथार्थ रहत है। देखो कि, प्रथले व्यक्तद ने मेरे सव यथा निकलके कर झाले।

तदेवतसमवेश्याणि प्रसन्नविभासानि।
तपो महत्तस्मास्याय स्वद व्रहल्वकारणम्।

हृति पर्यथ्यायाः सर्गः।

प्रतां मे प्रथ त्राज्य-स्वभाव-सुलभ रोष के परियाग कर, ब्राह्मण होने के लिये तप कहलाया, तथा ब्राह्मण प्रास होने का कारण ध्यातिद्वार स्वाध्याय है।

वालकाशद का द्रपनवां सर्ग समाप्त हुआ।

ॐ

सतन्यायार्या। सर्गः।

तत: सन्तसहुद्रयं स्पर्शिश्रह्मालम्य।
विनिष्क्षेप विनिष्क्षेप कुलवैरो महात्मनः।

प्रथले तिरस्कार के वारंचार समर्थ कर विश्वामित्र का हदय सन्तस हुया बौर विषाल जो के साथ वैर करते का जोवा प्रास हुया उसके लिये वे ऊँची स्वास्ते बाँच लोते हुए प्रासंगः कोष के दृष्टि होते हुय।

॥ १ ॥

प्रस्तोतिध्रुवामानश्-चरितक कृतदेव (स. २०)।
परिलक्षितज्ञ ध्वमान (२१०)।
स दक्षिणां दिशा गत्वा महिष्या सह राजयः ।
ततैप परम धर्मविश्वामित्रो महारथ: ॥ २ ॥
हे रामचन्द्र! विश्वामित्र प्रपनी रानी सहित दक्षिण दिशा में
चले गये और वहाँ उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की ॥ २ ॥
अथास्य जश्ने पुत्रः सत्यरथ्मपरायणः ।
हविष्णुन्द्रा मधुर्यन्द्रा ददनेत्री महारथः ॥ ३ ॥
विश्वामित्र जी के कुछ दिनों बाद सत्यरथ्म, महारथी और
धर्मविश्वामित्र हविष्णुन्द्र, मधुर्यन्द्र, ददनेत्री नाम के पुज़ हुए ॥ ३ ॥
पूर्णं त्यागसंस्कृते तु महासा दक्षिणातमः ।
अग्रवीन्द्रनुर ग्राम्य विश्वामित्रं तपोदशम्सु ॥ ४ ॥
जय तप करते करते एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तब दक्षिणातमः
अध्या जी प्रकट हुए और तपस्वी विश्वामित्र जी से बोले ॥ ४ ॥
जिता राजर्प्पलेकास्ते तपसा कुशिकापत्मनः
अनंत तपसा त्यां तु राजापरिति विश्रवः ॥ ५ ॥
हे कुशिका के पुत्र! हे राजयेः! तुमने तप के बल से राजर्प्पलों
के लोक जीत लिये। प्रत: तुम ( प्रपनी इस तपस्या के प्रभाव से )
राजर्प्प हुए ॥ ५ ॥
एवः सुक्तवत्ता महतेत्जा जगाम सह देवताः ।
त्रिविश्वां व्रजलेखान्त्वो लोकानां परमेश्वरः ॥ ६ ॥
यह कह कर दक्षिणातमः देवा जी देवताओं सहित अपने व्रजतः
के श्रीर देवगण स्वर्ग की चले गये ॥ ६ ॥
बार ५०—२५
विश्वामिरोपि तत्कृत्ता हिया निबिधःत्राहः 
दुःख्ये महतास्विवः समन्येरिदमत्रिवीत् || ७ ||

अर्था जी के द्वार तवों को सुन विश्वामिरि जी ने मारे के धर्म के सुख नौचा कर लिया और परम दुःखित हा, द्रीनता पूर्वक बेले || ७ ||

तपश्र सुमहत्तसं राजपिरिति मा विदुः।
देवा: सर्विगणमा सर्वनासि मन्ये तपःफलमु || ८ ||

हा! इतना ओर तप करने पर भी समस्त दुःखा और अग्रि
झन्ने राजपिरि ही चलने हैं, ( अग्रि नहीं ) अतः इसको तप का
फल ही नहीं मानता || ८ ||

इति नितिष्ठ सनसा भूय एव महातपाः।

तपश्चार काकुल्स्थ परमं परमात्मवान् || ९ ||

हे राजवः अपने मन में यह निधय कर, परम चलवान महा-
तपशी विश्वामिरि फिर कठोरं तप करने को मे || ९ ||

एतस्मनोऽवाच काले हु सत्यवादी जितेन्द्रियः।

जिवाङ्कुरिति विश्वाय इत्स्वाङ्कुरितवर्धनः || १० ||

इसी बीच में सत्यवादी ओर जितेन्द्रि इत्स्वाङ्कुरित जिताङ्कु
नामक, राजा के || १० ||

तस्य उद्दिश्च समुपन्ना यज्ञयमिति राजवृ
गच्छे यस्वारसेय देवाना परमां गतिमु || ११ ||

१ समन्यः—सत्रैष्ट्यः ( २०० )
ससपद्धाराः सर्गः

मन में, हे सच्च! यह वात उठी कि; हम पेसा कैसे यह करें,
जिसके हम अपने इस (पार्थिव) शरीर से स्वर्ग जायं।। ११।।

स वसिष्ठ्य समाहय कथयामास चिनितः
अयास्यमति चाप्युको वसिष्ठेन महात्मना।। १२।।

पूर्व अपने मन के इस विचार के, वशिष्ठ जी का हुआ कर
उनके सावने प्रभोक थियाँ। महात्मा वशिष्ठ जी ने विद्वानु का
विचार सुन कर कहा कि, पेसा हेतु अवबल्म है। १२।।

पराप्यायःते वसिष्ठेन स पर्याँ दृषिभिः दिष्मू
तत्तत्त्वमेवसिष्ठेन पुत्रेनस्तस्व गता नूपः।। १३।।

जय वशिष्ठ जी ने विद्वानु के यह शुक्ल स्वाभ के दिया, तब
वह दृष्टिभिः दिष्मू में अपने मनेत्फांग के सिद्ध के लिये वशिष्ठ जी
ने पुत्रों के पास गया।। १३।।

वासिष्ठा दीर्घज्ञस्तस्ते यत्र हि तेपिरे।
विद्वानुः सुमहातेजः वत्तै प्रसुभास्वरूः।। १५।।

वसिष्ठपुत्रस्त्रस्त्रो तथ्यमानान्यास्विनः।
साहिष्णवः महात्माः सर्वनेव गुरोः।। १५।।

जाते जाते यहा विद्वानु चहाँ पुत्रुषः जहाँ वशिष्ठ जी के पुत्र
चहाँ तप कर रहे थे। यहाँ हा महात्मा जी विद्वानु ने वशिष्ठ जी
के पुत्रों यहाँ पुत्रों की प्रेम कि, वे सब के सब तपस्या में जोन
ह। उन सब महात्मा गुरुसंकुल के पास जा।। १४।। १५।।

॥ शतांवसिष्ठात्मि—वहयेरूकसमत्रिनिवातात्मालामानाधिकार्यः ॥ (धौः)
भालकारदे

अभिवाचात्युपूर्वें हिया किन्तुद्वार्धस्मुर: || १६ ||
अनभवीतसुमहाभागान्वन्वित क्रताञ्चलि: ॥ १६ ॥

विश्रदू हे यथाक्रम सव को प्रशांम किया, किन्तु वे जरूर के वारे शुद्ध नीचे ही किये रहे श्राव हृथ कर वन सव महामा गुरुपुत्रों से बाले ॥ १७ ॥

शरण वः प्रकोझ्यं सर्पण्याद्वशर्पणागतः ॥

प्रत्याल्प्यालोगसिम भई वो वसिप्पेण महात्मनः ॥ १७॥

प्रश्न शरणागत को रत्स करने बाले हैं। प्रश्न: में प्रश्नकी शरण में प्रश्न हूँ। मेरे प्रश्नके पिता जी से यह कराने की कहा था किन्तु उन्होंने मुझे जवाव दे दिया (प्राध्यात्म यह कराने से इंकार कर दिया) ॥ १७॥

यष्टकामो महायात्त तद्वुज्जातुमहर्थः

गुरुङ्ग्रानं सर्वश्चस्मुक्त प्रसादे ॥ १८ ॥

प्रश्न प्रश्न लेगों से पार्थिष्ठ है कि, उस महायात्त कराने की प्राशा है। मे प्रश्नके सव गुरुङ्ग्रानों के प्रसाद कराने के लिये उनकी नमस्कार करता हूँ। ॥ १८॥

शिरसा प्रणातो याचे व्राह्यांस्तपसि स्थितानां ॥

ते मा, भवनं: सिद्धचर्थ्या वाजयन्तु समाहिता: ॥ १९ ॥

मे बाराह्न ii प्रशा यह तपस्वी व्राह्याण्यों से, यह मांगले, हैं कि, प्रश्न लेगु मुरे वाराह्नान्ता पूर्वं यह करावें, जिससे मेरा प्रेमरथ सिद्ध हो। ॥ १९ ॥
सर्वार्थसर्वशक्ति यथा भवेत् सर्वार्थशक्ति यथा भवेत्
व्यापारितो विद्वानन्तरं तपस्विन्यं तपस्विन्यां तपोधनां॥ २०॥

एक जिनमें इसी शरीर से स्वर्ग जाता है तयोधनां।
गुह वणिर जो ना मुक्ति जनावं देतिया, प्राणं में गुद्धुओं को।
श्रेष्ठ तस्माद काम के लिये अन्य किसी के वैषय नहीं समिक्षा॥ २०॥

गुरुपुत्रानुत्रे सर्वार्थाः पद्माय तांत्या कांचन।
इत्यावृत्ताः हि वनां गुरोः परस्यां गतिः॥ २१॥

यदि प्राप्त सच लोगों ने मे छुट्टा ही तरकाया तो मुक्ति श्रोर
कौई नहीं देव पढ़ता। इत्यावृत्ताः सच राजाओं के ती काम उनके
पुरातित हारा ही होते रहे हैं प्रथम राजा इत्यावृत्ता के भाष को यह,
रूप है कि, तदा पुरातित से प्रोति करे भाषा भरें उसके शरण
में भावना कौई प्रत्यी को बात नहीं है॥ २१॥

पुरातितस्तु विद्वानसत्यत्तार्यन्ति सद्र दुपानाः।
तस्मादन्तरं सर्वं भवन्तो दैवत्म मम॥ २२॥

हृति समपन्नः सर्गं॥

श्रेष्ठ विद्वान वणिर जो ही इत्यावृत्ताः सद्र शरणों के सच्र से
रदत कर रहे हैं। उनके प्रथम तर प्राप्त सच लोग ही मेरे रचन है॥ २२॥

वालकाव्य का सत्तायणन्त्र सर्ग समाप्त हुआ॥

…

१ वश्यार्थ हथे महत्त्व नव रूप रूपान्तरित मात्रः॥ (२००)
चापपञ्जाः रम्भः

ततस्विहारङ्ग्रवेचयं भूत्वा क्रोधसमन्तितमस्।
क्रिपृश्चां राम राजामिदमयावित्॥ १॥
हे राम। राजा विभक्त का वचन खुन चांढ़ट जो के सो पुष्प क्रोध कर उससे यह देखा॥ २॥

प्रत्याख्यातो हि दुर्बूँधे गुरुणा सत्यावदिना।
ते कर्म समतिर्कस्य शास्तान्तरसुपेदिवान॥ २॥

हे दुर्बूँधे। तेरे सत्यवादी गुरु ने तुम्हें जिस बात के लिये निषेध कर दिया, उनकी उस शास्त्र को अवहेला कर, दूसरों के पास पक्ष यथा था है॥ २॥

इत्याकर्षणं हि सर्वेः पुरोभः परमेः पुरुं।
न चाति कमिदुः जन्म वचनं सत्यावदिन॥ २॥

( तेरे ही कथानुसार। ) इत्याकर्षणेषु राजानां के लिये पुरो-हित वशिष्ठ जी ही परमगत हैं। उन सत्यवादी को बात को ठालना हमारे लिये अवश्यक है॥ २॥

अवज्जान्यिति चेवाच वसिष्ठो भगवादपि।
तं वव्य वै समाहतं कर्तु शक्ताः कथं तव॥ ४॥

स्वस्ता जिस यह के विषय में भगवान् रावणि वशिष्ठ की कहने
इक देखा है कि, यह नहीं है। सबका, ( क्षुरा क्षेषो तो ) उस तेरे यह को
हम कैसे करा सकते हैं॥ ४॥
हे राजा! एम जान गये तुम्हारी प्राण यही हो। तुम यह यह यह प्राणी राजधानी की लौट जायें। हे राजा! भगवान गणी जी ते तीनों लोगों को भी खरा करा सकते हैं, फिर तुम तो उनके शिष्य हो हो। (यदि) उन्होंने तुम्हें किसी कारण विशेष वह यह कराना नहीं चाही तो इसका यह वर्ण मत समझे कि, वे वैसा यह करा नहीं सकते; किन्तु तुमका वैसा न कराना तुम्हारे ही हित के लिए है।) || ५ ||

अयुप्यां च तत्कालेण तत्स्ततः कायमवहे कथम्।

तेपां तद्वचनं श्रुत्वा कोयोचर्यान्त्वकाशसरम्। || ६ ||

एम उनका प्रयोग ठेसः कर सकते हैं। उनके ऐसे कोयोचर्य

चचन्त घुन, || ६ ||

स राजा पुनरेवतानिद्रा वचनमथवीत्।

पत्याक्षयातोप्रसिंहु गुरुणा गुर्गुण्ड्रेत्वैव च। || ७ ||

राजा ने उनसे फिर यह कहा—वचन्य महाराज! गुरु जी ने

जिस प्रकार लज्जा देख प्रिय, उसी प्रकार प्राप लोगों ने भी मुरे

, शुक्ला श्रवण करते हैं। || ७ ||

अन्यां गति गमिष्यामि स्वतिः बैस्तु तपोधनः।

कपिवर्गास्तु तन्न्तुः त्वा वाक्यं दौरापिसंहितस्त। || ८ ||
तपस्वियो! श्राप लोग आध्यात्मिक कीजिये में भय जाता हैं। श्रॉर धन्य किसी के शरण में जाओंगा। त्युर्थि पुरुषों ने जव राजा के मुख से निकले हुए ऐसे श्रृंगार प्रयणकार करके वचन गुणे।

श्रेष्ठ: परमसंकुलद्रणात्मक गामियप्यसि।
एक्सुक्ला महात्माना विविखस्ते स्वाध्यामः।। ९ ॥

तव वे परम कुदा हुए श्रीर राजा के श्राप दिया कि, "दूर चंपालाल हो नायका।" यह श्राप ढे वे सव ऊठ कर धन्यपनी धन्यवनी तड़कियों के सीतार चले गये।। ६ ॥

अथ राज्यां च्यतीतायां राजा चंपालालात्म गतं।
नीलसंघरोऽनीलः पश्चोऽवस्थमूर्धजः।। १० ॥

रात कीते वर राजा चंपालालका को प्रास हो गया। (पोतास्वर की जगह) उस्ने नीले रेखा का तहमत पहला, उसका शरीर भी काजा पड़ गया। शरीर कर रखाई गया। सर के बाल ढे न हो गये।। १० ॥

चित्तमाल्याणुलेपं आयसांभरणोपभवत्।
तं हट्टा मन्त्रिणः सवेच तेज्ज्व चंपालालसुपिणम्।। ११ ॥

श्राद्वनसहिता राम पौरा येष्वयतनुगामिन।
एको हि राजा काकुत्स्य जगाम परमात्मवान्।। १२ ॥

विता की सस्तर शरीर में पुत गई। श्रॉर उसके जितने (तेज्ज्व के) गहने वे सव लोहे के है। गये है। यह राम! इस प्रकार राजा का चंपालालक का प्रास हुआ देख, सव पुरवासी, ते उसके प्रत्यगामी वे,
नगर से भाग गये। हे राम! तब राजा मो वर्षों से प्रक्षेप चल दिया॥ ११॥ १२॥

द्रुगमाना दिवाराथि विश्वामित्र तपोचनम्।
विश्वामित्रस्वु तं द्रुगा राजानं विफलोकृतम्॥ १३॥

धैर रात दिन चिन्ताकुल यह राजा तपस्वी विश्वामित्र
जो के पास गया। विश्वामित्र जो की, उस राजा के राज्य
घट॥ १३॥

चण्डालविशिष्टं राम मुनिः कारणमागतः।
कारणातस्मि महातेजा वाक्यं परमवाचिकं॥ १४॥

धैर चण्डालवत के प्राम हुआ देख, उस पर दया
प्रायी। ईरावत, महातेजस्वी धैर परम धार्मिक विश्वामित्र
जी ने॥ १४॥

इं जगादभड़ ते राजान्त प्रेरकमित्व।
किमागमनकारं ते राजपुत्र महावत॥ १५॥

उस धैर सप्ताहो राजा से यह कहा—हे महावति राजपुत्।
तुल्य राजा मनो रहे। मेरे पास तुम किस काम के लिये आये
हो॥ १५॥

अयोध्याधिपते धैर शापाचण्डाललतं गतः।
अथ तद्धाक्याकर्ण्य राजा चण्डाललतं गतः॥ १६॥

में यह जानता हूँ कि, तुम प्रयोग्या के राजा हो धैर इस समय
तुम चण्डालज के रूप में हो। चण्डालज को प्राम राजा दिशकः इन
वाक्यों की चुन॥ १५॥
अतः तद्यत्थदियत्वादृढ़स्म हर्षायो नात्यात्मकानिद्यमू।
प्रत्यायातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुरुस्तर्थेऽव। ॥ १७ ॥
अनवाप्येऽव तः कष्ट मयं मथा मासौ विश्रयेः।
सशारीरिर दिवं यायामिति मेवास्मि दृश्यन्यं। ॥ १८ ॥

बचन वदाने में चतुर राजा हाथ भोग कर, पर्रम चतुर
वधवामित्र से वदान। महाराज! मेरे गुड और उनके पुत्रों ने मुम्मे
हवाश किया है। माँ चाहता था कि, मैं सशारीर स्वर्ग जाय तो
उन्होंने न किया, उलटा मुम्मे बघाल बनाकर इस लोक में मी चुंब
दिखाने थेनय नहीं रहा। ॥ १७ ॥ १८ ॥

मया चेय्यं क्रतुश्रति तस्मानानाप्येतही फलम्।
अनृत् नेत्तरप्रृवि में न च वर्ष्ये कष्टाचन। ॥ १९ ॥
महाराज मैंने लेकर यह किये उत्तका फल भी मुम्मे ही मिला।
मैं न ती कभी सूढ वदाना न कभी वेलूँगा। ॥ १६ ॥

कुछे न्याबपित गतं सम्य श्रवार्थं ते शुपे।
यहैवहैविशेषिष्ठ प्रजा भोम्यं पालिता। ॥ २० ॥

भोले हो मुम्म पर बोध उठ ही करे। यहों न पड़े। मैं तात्त्वार्थम् की
श्रवाय खा कर कहता हूँ मैंने अनेक यह किये, धर्मपूर्वक ज़जा का
पालन किया। ॥ २० ॥

गृहवत्म महात्मानः शिष्टाण्वेन तेषपिता।
धर्मं प्रयत्नानन्तस्य यं च चार्हतुमिच्छत। ॥ २१ ॥

* यह वाय राजा तिराभु ने इसलिए कही है कि, उठ ही वदाने से यथार्थ
नस हो जाता है।
चपने गीत घौर ग्रामस्था ने पूज्य जनों घौर महामायाओं को सन्नुभूत किया। प्रायः मौं मौं धर्म ही के लिये एक घौर घौर करता था था || २१ ||

परित्याग न गन्धनि गुरुनि गुरुप्रजय ||
द्विवेदिर परं पने पारं तु निरधक्षः || २२ ||

हि गुरुप्रजय। परर्जु गुरु लोकम ज्ञानी न हुप। के है चुने। मैं तो माया हों। ते प्रकल्प मानता हैं। पुरुपार्थ कुट्र मो नहीं हैं || २२ ||

द्विवेदिक्षणं सन्तं द्विवं हि परमा गतिः।
नमं पं परमात्मा गुसाद्याभिमाकृतः।
ूर्तुपर्क्रिष्टि मद्यं द्विवेदिकृष्टकर्मः। || २३ ||

ज्ञा कुट्र होता है वह माया ही से होता है, भाग्य ही सव खुद है। ता मुझ परमंग्री हतभाग्य पर धार्मिक कीलिये, धार्मिक मजल ऐ || २३ ||

नान्यां गति गणिर्याध्यायि नान्यं शरणमति मे।
द्विवं पुरुपार्थं निरवर्तितमहि || २४ ||

इति धार्मिकार्यः सर्गः।

मैं न तो किसी हृदये के पाम जाओँ। घौर न गुरु कोई दूसरा
इसके योग्य देह ही फड़ता है। प्रायः धार्मिक अपने पुरुपार्थ से मेरे
पुरुर्गीय को दूर कीजिये || २४ ||

वालनागुर दा प्रश्न्वन्नां सर्ग समाप्त हुया || ———
एकोनपापितम् सर्गः

उक्तवाक्यं तु राजानं कुप्या कुशिकात्मजः ।
अन्नवीनमधुरं वाक्यं साक्षाचाप्पं लघुपिणम् ॥ १ ॥
साक्षाद् च चालादा को प्रासि राजा ने जव पेस्ता कहा तब
उस पर कुप्यार किरिवासिन्त्र जी ने उससे भुज बागो से कहा ॥ २ ॥
ऐक्षाक खगांतं वस्त्र जानामि ल्यां सुधामिक्रः ।
शरणं ते मन्व्यामी त्या भैरव्यपुष्कवः ॥ १ ॥
हे राजद्। मैं तेसा समाप्त करता हूँ । मैं जानता हूँ कि, तू
भर्म्यामा है । मैं तुम्हें पापने शरणा में बुंधा ; अपना में
तैरी रग्ना
कश्तः । तू मन्त्र दर ॥ २ ॥
अहमामान्ये सर्वान्महर्प्प्ण्यकर्मणंः
यज्ञासाह्नकरान्नाजंस्तलो यथ्यसि निर्णयं ॥ ३ ॥
हे राजद्। मैं सब पुष्यमात्रतम महृदिकों के पास न्योता भेजता
हूँ । वे सब भाग के में सहायता करने धीर तू सान्नद्य यह
करेखा ॥ ३ ॥
गुर्जापकृतं रूपं सदित्यं त्यक्ति चतुरे ।
अनेर सह खोला शिरोरो गमिश्चरि ॥ ४ ॥
शुद्ध शाप से तेरा यह जो रूप किया गया है सो तू इत्यादि
रूप से प्रारं इसी शारीर से स्वर्ग की जागरण ॥ ५ ॥
हस्तमात्ममहि मन्ये खर्चं तव नराधिपतिः
यस्व्यं कैश्वानमात्मनयं शरणं शरणागतः ॥ ५ ॥
इ राजन्! तद्वृ शरयायागतवसल विधामित्र के शरण में भ्रा
चुका तथ स्वर्ग की ते में तेरे हाथ में प्रया हुआ ही सम-
तः है॥ ॥

एवमुक्ता महातेनाः पुत्रान्यरभार्मिकान्।
न्यानिदेशः महामाजाळाः भारायाभार्मार्काः॥ ६॥

राजा से यदि तत्कर विधामित्र जी ने परम धामिक प्रपने
पुज्यों की यत की श्यारी करने की भ्राता ब्री॥ ॥

सन्निहितायान्त्महाय नाममेलदुःसित ४॥
सर्वानुभुः। गणानत्स आनयवच ममाश्वय ॥ ३॥

फिर प्रपने सब शिष्यों की शुल्क कर उनसे कहा कि, हे बलो!
तुम लोग नाकर मेरी आज्ञा से सब अभिषिकों को भोर वशिष्ट की
पुज्यों की लिखा लाभो॥ ॥

सतिप्यसुद्धर्षवं सर्विनविन्तः सुवहसुतान।
यद्वन्यो वचनं बृयामादाक्यचल्नविदित: ६॥

वे सब प्रपने प्रपने शिष्यों सह, छूटों, हृतिरों और विधानों
सहित दार्जिये। भोर जो दोहे मेरी आज्ञा के विवेद कुठ कहें॥ ॥

तत्समविविठे नवेतः ममाल्येयमनादवम्।
तस्य तड़चनं भुल्सा दिश्वान जग्मुस्तड़जव्यो॥ ॥

उसकी वह पृष्टी ( मेरे भ्रमण की ) वात आकार भुगते
कहो। विधामित्र जी के वचन लुत भोर उनकी आज्ञा से वे सब
नारों भोर चल दिये॥ ॥

पाठाथरे—सर्वनूपीत सवालिहावनायवर्षमुमालय। ॥
आजस्मृय देशोऽभ्य सर्वभेष्या व्रतमानादिनः ।
ते च शिष्यः समागमस्य मुनि ज्वलिततेजसम् ॥ १० ॥

विश्वामित्र जो का न्योतादेखर अनेक देशोऽधिकृपि धाराचले लगे। शिष्यं भी ( जो धारां देखे तथा ते ) परसं तेजस्वी
विश्वामित्र हि के पास लौट कर ज्ञा गये ॥ ६० ॥

रुचुच्च वचनं सर्वं सर्वेऽपा व्रतमानादिनाम् ।
श्रुता ते वचनं सर्वं समायानिति दिनातयः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण वेदसं न्योता पर कर सव व्रतवानिति अक्षप्ति ब्राह्मण धाराम् घरे हैं ॥ ११ ॥

सर्वदेशेऽरुचु चागच्छन्नवर्जायित्वा महोदयम् ।
बासिष्ठं तत्थत्त्वं सर्वं कोक्षपयाकुलाशरम् ॥ १२ ॥

सव देश के अक्षप्ति तो धाराम् सर्की चुक्रे हैं, पर महोदय नामक क्षुद्रविं
नहाँ धाराद्। इनके अध्यात्मिक विकिरण जी के सत्र पुराणोऽने महाकुमार होता कुवाच्य ॥ १२ ॥

यदाह वचनं सर्वं भूषण लं शुद्धिनिलश्च ।
क्षत्रियोऽवाके सस्त्र चण्डालस्य विशेषतः ॥ १२ ॥

कथे, वे सब, हे शुद्धिनिलश्च! शुभिः। वे बोले कि, विशेष कर चण्डाल के यह में, जातीय तो जानक—यह करने
वाला है ॥ १२ ॥

कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुर्पर्यं ।
व्रतमानो वा महात्मानो श्रुत्त्वा चण्डालमेधाजनम् ॥ १४॥
कथं स्वर्गं गमिष्णति विश्वामिश्रेण पाणिता: ॥
एतद्वचने पैशुः संरक्षोचाना: ॥ १५ ॥

वसं यह में देवर्षि किष्म प्रकारं हविग्रहणं करे त्यौ नाशं
वा महात्मा लोगं ते। विश्वामिनं के शर में हो चयुहालं का दाय
देहं करे ते स्वर्गं जायंगे? ते कठों वचनं, कोधं में
भर ॥ १४ ॥ १५ ॥

बासिष्का सुरुमार्दुं सर्वं ते समंहोद्या: ॥
तेपं तद्वचनं श्रुत्वा सर्वं गुरुवः सुरुमुल्ल: ॥ १६ ॥

हे सुरुमुल्ल! वशिष्ठं के उन सव पुजों ने तथा महोदयं ज्ञापि ने
कहैंहों। उन सिंहों के गुरु से ते सव वचनं ज्ञान कर विश्वामित
जी ॥ १६ ॥

क्रोधसंरक्षणन: सरेवमिदमधवीत् ।
ये दूपितयुक्तं मां तप उन्न समास्थितम् ॥ १७ ॥

मारे कोध के लाल नेत्र कर, श्राप सहित यह निशाने। देखो
से महा उधं तपस्या कर रहा हूँ सव प्रकारं के दीपसंहित हैं। विश
पर यो ते वशिष्ठ के दस्तुः पुजे दृष्टा करते हैं। ते सव के
सः ॥ १७ ॥

भस्मीभूतं दुरातमानो भविष्णितं न संशयं ।
अब ते कालपशेरो नीता वैस्वस्वक्ष्यम् ॥ १८ ॥

दुरातम, विश्वं हो भस्म हो जायंगे श्राप कालपशे भरं बंधे
हुः श्राप हो वमपुरीं में पहुँचा दिये जायंगे। ॥ १८ ॥

सम जातितशजात्येव गृहस: संन्तु सर्वं: ।
स्वस्मान्यनिहितारा शुक्लिका नाम निर्ध्यां: ॥ १९ ॥
वालकार्यः

श्रीर सात सौ जग्म तक "मृत्यु" (श्लोक मद्वी) मुद्यं घाते धंगे। उन्हें नियमित लप से कुर्ति का मादा घाना पड़ेगा। श्रीर "मुक्तिक" उनका नाम होगा। ॥ १६ ॥

विष्कताधि विश्वास्त्र हृषिकानुरुचरन्त्रिमान।
पड़े द्रम्य दुर्युंक्तिमार्द्य क्षुद्रपयत् ॥ २० ॥

निर्देशी, पुष्पित, श्रीर तरुण है कर द्वार चढ़र चुम्में।
महाद्वीर नामक दुर्युंक्ति ने मुख निर्देश देते जा द्रम्य लगाय
है ॥ २० ॥

दूषितः सर्वेऽकंकुषु निपादत्रं गमिभ्यति।
प्राणात्प्रातिनिरोधो निरुक्कोशतां गत।
दीर्घकालं मम कोथादूर्गतिं वर्त्तिप्यति॥ २१ ॥

से वह सव लोगों से दूषित है निपाद श्लोक पावेगा श्रीर
गिर्नक तथा निर्देशी है कर दूर्खकाल तक मेरे कोथ से बड़े
दुर्गति में लेगेगा ॥ २१ ॥

अत्याचारुक्क्ता चरनं नियमाभिन्नो महातपः।
विराम महातेजा त्रिपियवे महासुनि: ॥ २२ ॥

इति एकोनप्रितम् सर्गः ॥
महातपस्वी नियमाभिन्नो त्रिपियों के वीच बैठे हुए इस
प्रकार उनकी शान्ति देने, चुप हो गये। ॥ २२ ॥

वालकार्य का उत्तरथा सर्ग समाप्त हुआ।

—इंद्रीय—
षष्ठितमः सर्गः

--- ० ---

तपावछल्लकथानुक्तिः वसित्रान्समहेद्राध्यायः।
ऋषिमध्ये महातेजा विष्णुस्मर्थ्यभापत। ॥ १ ॥

महोदयः सहित विशिष्ट जी के पुत्रों की ध्यानी तपस्या के बल
से मया भुजा जान, महातेजस्वी विष्णुमित्र ज्यूरियो के बीच में
बैठे हुए बैठे। ॥ २ ॥

अयमिष्ठाक्रुदादार्थिकारिति विशुद्धः।
धर्मः यदान्यथं मां चैव श्रवणं गतं। ॥ २ ॥

इस्तातुक्वंशी यह प्रसिद्ध राजा गृहपूर्व, तो धर्मं धौर उद्वार
है, ऐसे शरीर में प्राया है। ॥ २ ॥

तेनानेन शरीरेण देवलोकानिगीष्यता।
प्रथमं स्वारूपेण स्वर्गलोकं गमिष्यति। ॥ २ ॥

ध्याने इसी शरीर से देवलोक (स्वर्ग) की जाना चाहिए है।
इसलिये जिस प्रकार यह ध्याने इसी शरीर से स्वर्गलोक में
जाय। ॥ २ ॥

तथा प्रवर्तन्तत्त्वो यद्यो भवनिश्च मया सह।
विष्णुमित्रवचः श्रुतवा सर्वं एव महर्ष्यं। ॥ ४ ॥

इसी प्रकार ध्यान लेगे मेरे साथ मिल कर, इसे यह करवाए।
विष्णुमित्र जी के ये वचन ज्ञात सह महर्षि लेगे! ॥ ४ ॥

सार ३८—३९
बालकाण्ड

ऊँ: समेत्य रहिता धर्मः धर्मसंहितसः।
अयं कुशिकदायाते युनि: परम्कापसः।।५।।

ततः धर्मः का मर्या ज्ञाने वाले थे, आपस में कहने लगे-यद कुशिकबंधीय विश्वामित्र जी वड़े राज्यों है।।५।।

यदाहः वचनं सम्यग्तत्वायं न संवर्यः।
अर्थकल्पे। हि भगवानशायं दास्यति रापितः।।६।।

तत: यह कह रहे हैं, यदि उसके श्रुतार्था हम लोगों ने कार्य न किया, तो यह सहायता प्राप्त के तुल्य विश्वामित्र कुट्ट ही हमें शाह दे दिये गे।।६।।

तस्मात्वर्त्यथां यज्ञः सहरीरो यथा दिवम्।
गच्छिदिक्षुदायाते विश्वापित्वस्य तेजसः।।७।।

छलं पेशा यह कहा जिसके यह विश्युध का विश्वामित्र के तपः
प्रभाव से सहरीर स्वर्य का चला जाय।।७।।

तथा पवत्यथां यज्ञः तवं समाधितिष्ठत।
पुरुषत्वा महर्ष्यकसास्तः। क्रियास्तदा।।८।।

सा ध्रुव सर की मिल कर यहार मना करा चाहिए। यह कह, वे
सर ध्रुवि बाल वेदेविधान से यहां कहैं त रोशने लगे।।८

याजकः महातेजा विश्वामित्रोभवत्करानि।
ऋतिजात्यपूर्वयेण मन्त्रवनमन्त्रकोविदाः।।९।।

उस यज्ञ में याजक विश्वामित्र जी हुए और ध्रुवि वड़े के विधानी लोग तातो सांति वेद के संजों के जाने वाले थे,
यथाकाल अत्विद्या आदि हुए।।९।।
प्रश्नितमं सर्गः

चक्रुः सर्वार्थेन कर्मणि यथाकल्पं यथाविधिः

तत्तः कारणं महत्त विश्वामित्रो महातपः || १० ||

उन सत्य ने यह के समस्त कर्म विधिपुरुष यथाकाम किये।
इस रीति से अब दिनों तक यह किया हैतो रही। तदनन्तर
महातपस्त्री विश्वामित्र जो ने || १० ||

चकाराग्रहणं तत्र भागारं सर्वेद्वाराः

नाम्यागमस्तदाहूता भागारं सर्वेद्वाराः || ११ ||

यह भाग ग्रहण करने के लिये सब देवताओं के दुःखाया। किन्तु
उजने पर मी काई भो देवता यह भाग लेने का न व्याख्या || ११ ||

तत्तः कोषसमाक्षिणो विश्वामित्रो महायुनिः

सुसुत्सुत्सम्भवं सक्रोहस्तिसृश्नुं चक्कुनितीवन || १२ ||

तत्त तीर्थ महार्थित्वा विश्वामित्र जो कुपित हुए ग्लोर धुधा उठा,
कुड़कुड़ से यह देखा || १२ ||

पद्य मे तपसा तीर्थ स्वार्जितस्य नरेशवर।

एष तत्र स्वरूपेऽन नयायं स्वर्गेऽमासा || १३ ||

हे राजद! भीतरी तपस्या का प्रभाव देखिये, में हमये इसी
गरीर से अपने तपोवन द्वारा स्वर्ग पहुँचाता है || १३ ||

दुष्पाप्त्व स्वरूपेऽन दिवं गच्छ नराधिप।

स्वार्जितं किष्किद्धप्पस्तं प्रया हि तपसं फलस्य || १४ ||

हे राजद! यद्वष्टि इति (पार्थिव) शापोर से स्वर्ग में जाना
प्रसंगच है, तथापि मे अते कुछ थैंवा बहुत तपस्या का फल
है, || १४ ||
राजन्स्तेजसा तस्य सशरीरे दिवं व्रज।
उक्तवाक्ये गुणान् तस्मिन्सशरीरे नरेशवरः।। १५।।
हे राजन! उसके द्वारा तु सशरीर स्वर्ग की जा। जब चिरक्षणम्
मिश्र ने यह कहा तव जिष्ठुक सशरीर।। १५।।

दिवं जगाम काष्ठस्थ गुणीनां पद्यतं तदा।
देवलेकर्त्ता दुष्टा जिष्ठुकु पाक्षासनः।। १६।।
भुविभि के ग्रामके सामने स्वर्ग की गये और वहाँ पर्यंत
गये। हे राम। सशरीर राजा जिष्ठुकु के स्वर्ग में फाया छुट्टा देखे,
अससे इत्यद्यद्य ने।। १६।।

सह सर्वः सुरगणैरिदं वचनमवरीत।
जिष्ठुको गत्य सूयस्तं नाति स्वर्गकूटालयः।। १७।।
वन्य सय देवताओं सहित कहा, हे जिष्ठुकु! तु पृथिवी पर ही
जा कर रहा, तु स्वर्ग में रहने शय्या नहीं है।। १७।।

गुर्भापह्ते सूह पत सूमिष्याविष्वरो।
एवेतुको महेश्वरै सिसिदकुरुपत्युनः।। १८।।
क्योंकि तु गुरु के शाप से शारिरिक है, अतः हे मर्यादाः तु नीचे
के सिर कर हमीन पर गिर। इत्यः द्वारा यह कहने ही जिष्ठुकु नीचे
की धीर गिरने लगा।। १८।।

विक्रोशमानस्वाहीति त्रिश्वामित्रं तपायतनम्।
तच्छू त्वा वचनं तस्य क्रोशामस्य कैशिकः।। १९।।
धीर विश्वामित्र जी की पुकार कर कहने लगा। सुभके वचने के
वचाह्ये।। इस प्रकार चिक्षिज्जे हुए राजा के ऐसे वचन सुन
विश्वामित्र जी।। १६।।
रोपपादारयांचे तिथि तिथे चाँगवीतः
नुपिन्ये स तेन्स्वि मनापतिरिवापरः ॥ २० ॥
महाकुपित हे वेले — 'तिथि तिथि' (वहीं) ठहर। (वहीं)
ठहर। उस समय सूर्यों के बीच, विश्वामित्र ने दूसरे प्रजापति
जैसे मालुम पड़ा लेगा ॥ २० ॥

सुजन्द्रक्षिणमार्गस्यान्तसृष्टिनिरपराणपुनः ॥
नक्षत्रमाला परामसुनजत्रक्षीतिः ॥ २१ ॥

विश्वामित्र जी ने कुपित हो दृश्य दिशा में पहले तो नवीन
सत्‌सिर्यों को रचना की, तदनन्तर प्रभिन्न आदि सत्‌साधन
नये नत्म बना दाले ॥ २१ ॥

dृष्टिविद्यामार्गस्य युनिमध्ये महातपः ॥

अन्यमिन्तै करिष्याय लोके वा स्पादात्नित्रकः ॥
दृश्यात्मकाय स करोधात्सप्तु समुपचकमेः ॥ २२ ॥

(में ते यह नये स्वर्ग को कहना को है, उसके लिए)
एक नया इन्द्र भी वनाऋ अप्रवा (इस नये स्वर्ग की) विना इन्द्र
व्यक्ति का रहने हूँ। (श्रीर इस नयन स्वर्ग का सालिक विश्वामित्र ही
है।) फिर वे क्रोध में मर नयन दृश्यात्मकायों को भी रचना करने
लगे ॥ २३ ॥
ततः प्ररम्भधान्तः सर्पिन्धाः गुरासुराः ॥
सकन्तरमहायज्ञः सहसिद्धः सचारणः ॥ २४ ॥
तव तैः कृत्वा, देवता, श्रुतुः, किंतुः, यज्ञ, सिद्ध निषदः चारणः
भवन्त बवळाः ॥ २४ ॥

विष्णुमिर्तः महात्मानमुच्चः साँचनय वचः ॥
अर्थ राजा महाभाग गुरुषापपरिष्करः ॥ २५ ॥

वैद्वत्तीय विष्णु जी के पास जा कर विनय पूर्वक कहने लगे,
हे महाभाग ! यह राजा गुरुनाथ से श्रापित हैने के कारण ॥ २५ ॥

सचरीरेण दिवः पातुः नाहिण्येव तपोदन ॥
तेषा तद्वर्धन श्रुत्वा देवानं सुनिश्चितः ॥ २६ ॥
हे तपोदन ! सचरीर स्वर्ग में जाने के दौरे नहीं है। उद्योगः
देवताओ का यह बचन सुन महार्य ॥ २६ ॥

अन्यवीलतुषंध्वास्य कृतिकः सवेद्युः ॥
सचरीरस्य भवेन विष्णुवत्वस्य सूपते ॥ २७ ॥

विष्णुमिर्तः उन सब देवताओ से बताते कि, हे महात्माः !
श्रापित कत्याः है, इस राजा विष्णु ने वे जानिये स्वर्ग में ॥ २७ ॥

आरोहणं प्रतिकाय नास्त्रतं नरत्सुमुस्तहे ॥
स्वर्गस्तु सचरीरस्य विष्णुवत्वाष्ट्र शास्त्राः ॥ २८ ॥

पहुँचाने की मानि,जा प्रतिका को है, उसे में अन्यथा नहीं कर
सकता। इस राजा विष्णु ने निरस्तर स्वर्ग में रखने के लिये ॥ २८ ॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि मामकानि धुमाण्यथ ।
यायलठोका परिप्यति तिष्ण्वेतानि सर्वंशः ||२९||

िेरा वनाये भ्रु वसहित वे स्वव नल्ल, तव तक वने रहें, जव
tक प्राप्य सव लोक वने रहें। प्राध्यति जव तक प्राप्य रंगिणिदि
लोक रहें, तव तक नेरा बनाया हुज्रा नथा सर्वंश भी रहें, || २६ ||

पत्रूतानि नुराः सर्वः सदुज्जातासुहर्षः ।
एवमुक्ताः मुराः सर्वः पत्रूत्युष्णिनिन्ज्वच्छ ॥ २० ॥

भौर मेरे वनाये सत्र देवना भी रहें। हे देवनाथे। तुम सब
पेसी प्रादुर्गति कर। यह खुन उन सब देवताओं ने विशाधामित्र जी
से कहा, || २० ||

पुर्ण भवतु भद्रे ते तिष्ण्वेतानि सर्वशः ।
गगने तान्यनेिकाे बैश्वानरप्रठाद्वस्दं ॥ ३१ ॥

प्राच्यो वात है, आपका महर्ष दिस। आपके वनाये ये (नत्र, प्राप्य,
तथा देवना द) सदैव वने रहेंगे; किन्तु प्राचरी बैश्वानरांग
के बाहर रहेंगे || ३१ ||

नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ तेषु ज्योतिष्ठु जाजवलन ।
अवाचिरिरस्विगङ्कुञ्ज तिष्ण्वमरसंधि ॥ ३२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दुह चमकते हुए नेकनों में चाचोमुख राजा विश्रुकं
भो प्रमर के पत्रा (देवताओं की तरह) बना रहेगा || ३२ ||

अनुयासरति चैतानि ज्योतिषि नुष्टसचमपम्
कुताथ् कीर्तिंमन्व न स्वर्गोलाकारं यथा || ३२ ||
श्रीर जिस प्रकार कौशिकानु एवं विद्वमोनेश जीव के पीछे नवन चलते हैं, उसी प्रकार श्रीश्रुति के पीछे पीछे श्रावकें वनायें हुए सब नलन भी चला करते हैं। ॥ ३३ ॥

विश्वामित्रस्तु धर्मादिन्या सर्वदेवेनस्रिपृत्तः।
अण्विभिन्द महात्मजा वाघित्वाय देवता: ॥ ३४ ॥

देवताभ्यान ने धर्मादिन्या विश्वामित्र जी से इस प्रकार कहा प्रीति उनकी स्तुति की। विश्वामित्र जी ने उनकी उनकी (देवताभ्या) की वात मान ली। ॥ ३५ ॥

ततो देवा महात्माने समयथ तपोवनः।
जगुपर्याकर्त्स स्ववे यज्ञपाले नराच्छम। ॥ ३५ ॥

इति पद्धमः वर्गः।

हे श्रम! उस यह में जो देवता नीर तपस्वी अय्य प्राये वे यह की समाति ही जुड़ने पर अपने अपने स्थानों के बैठे। गये ॥ ३५ ॥

वाजकायद का साधन वर्ग समाप्त हुआ।

---

एकपदित्तमः वर्गः।

विश्वापित्रो महात्माय प्रसिद्धतान्तेश्व तान्त्रिको।
अवश्चीर्वशास्त्रादृशः सर्वस्वात्त्वनविशिष्ठः। ॥ १ ॥

हे श्रम! नरशास्त्रादृश महात्मा विश्वामित्र जी ने उन अनुग्रहों को जाते हुए देख कर, उन संत तपोवन के रहने वाळों से यह कहा ॥ १॥
एकपरित्वम्  सर्गः  

महानिव्रृत्तः स्वतान्त्रेयं दक्षिणामास्थितो दिशामु ।

दिशामन्यं प्रवत्स्यापस्त्र तपस्यामेहे तपः । ॥ २ ॥

इस दक्षिणा दिशा में रहते से मेरे तपस्या में यह एक बड़ा विक्रम पड़ा । भ्रतः अन्य किसी दिशा में जा कर में भ्रत तप करेंगा । ॥ २ ॥

पंचमायां विशालायां पुष्करेशु महास्मनः ।

सुखं तपश्चरणयामो वरं तद्भिर तपोवनस्तु ॥ ३ ॥

विशाल पंचम दिशा में, जहाँ पुष्कर तीर्थ है उन्होंने जिसके समीप बहुत प्रचंदा तपोवन है, में जा कर छुप से तप करेंगा ॥ ३ ॥

एतस्युक्तस्वा पदातेजः पुष्करेशु महायुनिः ।

तप उग्रं दुरार्थं तेपे सूरसततानः ॥ ४ ॥

यह कह विना जो पुष्कर को चले गये उन्होंने बड़ा पर्याप्त कर बैठकर फल ज्ञाता कर वे उम्र तप करते जाते ॥ ४ ॥

पुत्रसिद्धिवेष काले तु अयोध्याधिपतिनिः ।

अम्बरीय इति स्वयंतो यद्यं सम्पर्चक्रमः ॥ ५ ॥

इसी रीति में भ्रातृव्या के अम्बरीय नामक राजा ने तपमेध यह फर्मा यारम्भ किया ॥ ५ ॥

तस्य वं यज्ञपानस्य पशुप्रमन्ड्रो जहार ह ।

प्रण्ये तु पशु विशो राजानिदमन्त्रविवेद ॥ ६ ॥

उस राजा के यज्ञपद्ध के इस सुन चुरा कर ले गये । पशु के इस 

पहुंचार नदेहीने पर पुरोहित ने राजा से कहा ॥ ६ ॥

पशुरघ्वं ह्वते राजन्यण्यास्तव दुन्यायता ।

अर्कितारं राजानं ग्नितं दौपा नरेशवर ॥ ७ ॥
वालकार्तेदे

हे राजन्! अराज वहपशु नैरी गया है से तुझ्दारी अन-बधानता हो से गया है। यह अभ्यास नहीं हुआ। फर्यांकि प्रतिष्ठित पशु के हरे जाले का देवार रज्जक ही के माये रहता है। ॥ ७ ॥

प्रायविन्ध्य महद्वेवतर वा पुरुष्पर्वम।
आन्यस्य पशुं शीर्ष यावकर्म प्रवर्तते ॥ ८ ॥

हे राजन्! अतः यहांकर्म समाप्त होते होते या ता कोई दूसरा पशु लाइये अध्यात्म गोर्जन दे कर कोई नर हो शीर्ष लाइये, जिससे, इस विधि का प्रायविन्ध्य है। ॥ ८ ॥

उपाध्यायकरं श्रुत्या स राजा पुरुषपर्वम।
अन्यश्चे भवायुधित्व पशुः गोर्जित सहस्रः। ॥ ९ ॥

पुराणिक के वचन सुन वह नरातम यव्क गुरुमित्राय राजा सहस्रो नौप दे कर यह पशु के हृदयने लगे। ॥ ६ ॥

देशशाक्तनन्दनस्तान्स्तान्स्मारणिक वनानि च।
आश्रमाणिनि च पुण्यानि गार्गमणो महोपिति। ॥ १० ॥

उन्हीं यहपशु की तलाश में अनेक देश, नगर, जनपद, वन,
आश्रम और तीर्थ मध्या हाले। ॥ १० ॥

स पुण्यसहित तात स्मार्या रघुनन्दन।
भृगुत्तज शासीस्मृतीकं सङ्गद्रव्य ह। ॥ ११ ॥

पशु की तलाश करते करते अग्रवीप ने भृगुत्तज नामक किंतुक
पर्चे के स्थान पर भार्या और पुत्रों सहिन वैद्य हुए अश्चिम को
देखा। ॥ ११ ॥
यक्ष्यक्तिगमाः सर्गः ४०६

तमुनाच महातिना: प्रणयाभिषेकसाथः।

परम परस्ता दीप्त राजपरिवर्तमयः। १२॥

महाप्रतापि राजा ने मुनि की प्रकाश कर उन्हें ध्यान ध्यान से प्रसन्न किया और तपस्या में निरत वहाँपरि से। १२॥

पुष्प सर्वत्र कुशलगम्यकं तमिल्ल वचः।

कर्ण शत्रुहस्तेन विक्रीणोऽसे शुल्क यद्रिः॥ १३॥

पशोरथ यद्राभाग कुशलम्योपिः भार्गवः।

सर्व परिस्त्व देशा यात्रीयं न लुमेय पशुः॥ १४॥

पुष्पमये युर्द्रा। तत्सन्तार प्रमवरे रूप ने कृतां कि, यदि भाप एक लाख गांड़े ले कर धन्य धन्य ऋषिका वनगाने के लिये, इमारे ध्यान वेच डालते तो में धामका धाड़ा धनु- 

शहीत होता। सारे के सारे धेश मका डाले, नंते मेरा ( पहला ) यशस्वी ही का पला चला धीरे न ( धाम देने पर ही ) कोई वस्त्रस् मिला॥ १३॥ १४॥

दातुमद्रिसि युर्द्रेन गतम्यकमितो मम।

प्रहुतको महातेना नाच्यकोत्सववीच्छः। १५॥

प्रत: प्राप भूत्व ले कर भुवस्य प्रपन्ना एक पुत्र हे होवेये।

यह भुन महातेरस्वी कृतां बीते॥ १५॥

नान्ते धेये नरश्रेष्ठ विक्रीणीयां कृष्णवः।

कृतांकस्य वचः शुल्का तेपसा माता महातमनासु॥ १६॥
हे राजन्। में अपने वेद पुत्र को तै कनी न वेदूर्भुग। वृत्तिक को यह वात खन, उनके महामाय पुत्रों की माता \( 17 \)।

उवाच नरशाहूप्रस्तवरीपिंदै वचः।
अविक्रेष्य खुठ ज्येष्ठ भगवानान हार्ग्यः \( 17 \)।

राजा भ्रमव्रीग से यह बोली। इम मति महामाय भार्गवन ने कहा है कि, वेदपुत्र तो बेचा जा नहीं सकता ( क्योंकि वह देव पितु कर्म करने का साध्याकार है ) \( 17 \)।

पपाणि दृष्ट विद्व्यः कनिष्ठ खुनकं नृप।
तस्मात्कानकायं पुत्र न दास्ये तव पार्थिव। \( 18 \)।

हे राजन्। सब से खोटे पुत्र खुनक पर अराप मेरी भो बड़ी प्रीति जाने, प्रति: उसे मैं अरापका न दूँगी \( 18 \)।

प्रायेण हि नरशेष्ठ ज्येष्ठाः पितुरु वर्तव्याः।
वारिन्याः च कनीयांसरस्त्रमार्ड्यों कनीयसाम। \( 19 \)।

हे नरशेष्ठ। बड़ा पुत्र पिता के शोर सब से खोटा माता के प्रायः बहुत प्यारा होता है \( 18 \)। प्रति: मैं खोटे की न दूँगी \( 19 \)।

उक्तवाक्ये खुनी तस्मिन्युपिनपद्यं तथैव च।
खुनशेषः स्वर्य राम मध्ययो वाक्यमववित। \( 20 \)।

हे राम। हुनि श्रीर युंनिपलिम को इस बतचोत की खुन,
उनका महत्ता पुत्र खुनशेष स्वर्य राजा से बोला \( 20 \)।

पिता ज्येष्ठपरिवर्य माता चाह कनीयसम।
विक्रीतं मध्यम पन्ये राजन्युत्र नयन्त्र प्रम। \( 21 \)।
पिता जो यहि का वेचा नहीं चाहते और माता कोई का देना नहीं चाहती। इससे ममता का वेचा हुआ। समस्त प्राण हुएँ ले। अन्त्यः॥ २१॥
गया शतसदस्येण शुनःशेषं नहिंसरः॥
शुद्धिता द्वारमाणी जगाम रघुनन्दन॥ २२॥
इं राम। यद शुन, राजा ने क्रृष्ण को एक लाख गौरीं दो
और शुनःशेष के ले कर वहाँ से चला॥ २२॥
अम्बरीपस्य राजपी रघुमारेय सत्वरः॥
शुनःशेषं महातेजा जगामायु महायशः॥ २३॥
हरि एकष्टितः सर्गः॥
महातेजस्वी और महायागस्वी राजपी अम्बरीप शुनःशेष के
उपर चढ़ा, वहाँ से श्रीग सरवान हो गया॥ २३॥
वानकाय्य का एकसदस्य उन्हों समाह दुःखः।

—*—

हिपष्टितः सर्गः

—०—

शुनःशेषं नरशेषं शुद्धिता तु महायशः॥
व्यक्तस्यतुपकरे राजा महायाहे रघुनन्दन॥ १॥
इं राम। महायाहा राजा अम्बरीप शुनःशेष के लिये हुए
पुकार पहुँचे घोर दो पहर भर वहाँ विद्राम किया॥ १॥
तस्य विश्रामपालस्य श्रुत:शेषपा महायशः।
पुज्यरः श्रेष्ठमारामय विश्रामित्रं देहस्य ह। ॥ २ ॥
जव राजा विश्राम कर यही थे, तव भ्रातास्तर पा श्रुत:शेषपा ने
श्रेष्ठ पुज्यर जी में जा विश्रामित्र जी के परमाणु किये ॥ २ ॥
तप्यन्त्यमृत्युभिः सार्य मातृतः परमातुरः।
विपणवदनो दीनस्पर्श्या च श्रमेण च। ॥ ३ ॥
अपूर्वयों के समूह में वैढ कर तप करते हुए अपने मामा (विश्रामित्र)
की हेश, उदयस, प्यासा, यजन हुआ धीर और परमातुर ॥ ३ ॥
पपाताके मुनी राम वाक्यं चेद:मुक्तच ह।
न पेतति माता न पिता जात्ये वान्यवां कुञ्जः। ॥ ४ ॥
श्रुत:शेषप उनकी मोद के में गिर पड़ा धीर और घाता—जब मेरे
माता धीर और पिता ही नहीं हैं, तव जाति विराजी धीर और माई
कुष्ठस्त्र ही कहां सकते हैं ॥ ४ ॥
श्रावुप्रेमसि पां सैमप्य धर्मेण मुनिषेषुवः।
हारा तवं हि मुनिषेषु सर्वपाणं तवं हि भावनः। ॥ ५ ॥
है तप्यः है मुनिराजः में शरणागत धर्मं की दुहाई देता हैं,
मुनीव वचाहे। मेरी ही निमु ही शरण धाराने पर ध्राप समस्त संसार
की रचना कर सकते हैं ॥ ५ ॥
राजा च क्रंतकायेः स्यासां दीर्घायुरूप्यः।
खर्गोःकुमाराणीयेः तपस्तप्तवा ब्रह्मचर्यः। ॥ ६ ॥

॥ पाठान्तर: पुज्यर ज्वेष्य (राथ० पुज्यक्रेश्न) (गोऱ०)
हिमप्रितमं सर्गं

प्रतं ऐसा कोजिते-जितसे राजा का तो यह निर्विन्न पूरा है। जाय घौर में बहुत दिनों तक जीवित रह और उत्तम तपस्या से योग्यता में ध्यान जारू।

तवं में नाथ्याय गराभस्य भव भव्येन वेतसा।
पिनेभु पुत्रं धर्मं ग्राह्यं त्रात्मायुद्धिस्तिं किलियवतु। ७।।

धारायु पुत्र ध्रुवा एवं भवान्यू कर निभा पंचूंगे पुत्र की स्मृति करता है।, उसी प्रकार आप मेरी भी हस सहूल से रत्न की जिन्हे॥ ७।।

तस्य नवं पुत्रं सुवर्त्ता विश्वमित्रो यहाँवा।
सांततिकिता चचितिः पुत्रानविन्दुवतनाच ह। ८।।

श्रुमः अपूर्व किने दीन चन्दनम् चुनन्ते विश्वमित्र जो नेलगे भवुत बुद्ध नान्याना द्री गुरू घर अपने पुत्रों ने गाले॥ ८॥

यत्कथूः पिताः पुत्राः अनमयमि सुभारिनः।
परमाजितारी तस्य कालोऽयमागतः। ९।।

हे पुत्रो! जिस परम्परा के प्रथम के लिये पिता सदा पुत्रों के उपासन करते हैं, उसका समय या पछुंचा है॥ ६॥

अर्थ सुनिश्चिते वालो मच्छः श्रवणमिच्छति।
अस्त्य जीवितपात्रेण सयं कुशत पुत्राः। १०।।

हे पुत्रो! यह ज्ञातीक मुनि का पुत्र है। भ्रमो वचा है और हमारे शरण में भाग्य है। इसके प्राणों को रचता कर हमारे प्रमाणे

फळे॥ १०॥

सर्वं शुचकतकर्मं सर्वं धर्मेरायण:।
पशुभूता नरेन्द्रस्य तुस्मिनेन: प्रचर्च्छत॥ ११॥
तुम सब पुलक्यामा श्रीर प्रभामा हो। ब्रजः तुम लोग घर्षण राजा के यहाँ पुरा कर ब्रजजीत के द्वार करो। || ११ ||

नाथवांथ श्रुण्येश्वर प्रज्ञाविश्वरतो भजेत।
देवतास्तर्पितांथ स्युमम चापि छाँट वच। || १२ ||

पेशा करते से श्रुण्येश्वर के प्राण वच जाओगे, राजा का यह भी निविष्ठ पुरा हो जायगा, रैली सन्तुष्ट होने श्रीर मेरी वात भी रह जायगी। || १२ ||

मुनेस्तु वचन श्रुतवा महुष्यनादः छुटा।
साप्तिमां नरशेषु सातीलिमभिमुन। || १३ ||

विश्वामित्र जी के ये वचन छुटे, उनके महुष्यनादः पुन श्रमिमान बहित (प्राप्ये पिता का) उपहास करते हुए यह वचले। || १३ ||

कथमात्मायुतानित्वप्रत्ययेष्वपुत्र विभेद।
अकार्यभिन्न प्रययम् श्रमायं। भैजने। || १४ ||

हे महाराज! थाप अपने पुत्रों को झूँड़, प्राण के पुत्र को रखा क्यों करते हैं? यह तौ वैसा ही कर्म है, जैसा कि झुंड़ में व्याज़ पदार्थों का झूँड़ कुद्ध का मास खाना। थापवा थापका कार्य उसी प्रकार अभिचित है जिस प्रकार कुद्ध का मास खाना अभिचित है। || १५ ||

तेषां तद्र्चन श्रुतवा पुत्राणां सुनिवःहवः।
कृष्णसर्वकाननर्य न्याहतुमुपच्रमे। || १५ ||

प्रपापि पुत्रों की ये वातें छुट, श्रम से लाल लाल गृहों कर, विश्वामित्र जी उनसे कहने लगे। || १५ ||
निसाध्यसमिदः शोकं धमादृष्टि विगहितम् ।
अतिक्रमय तु मद्यक्यं दर्शनं रोपहर्षणम् ॥ १६ ॥
तुम्हारा यह कहना उदगँठत पूर्ण, घर्म को हुप्ति से मि स्रो, धीर विवृतिकरित होने के कारण दारुश ( कढ़ाड ), प्रत्याप रोमाल्कारी धीर मेरी प्रवचन करने वाला है ॥ १६ ॥

श्रवमांसभोजनः सर्वं नासिष्ठा इव जातिधु ।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु पौधिन्यामुनवस्थय ॥ १७ ॥
धनं तुम लोग से वासिष्ठ जो के पुत्रों की तरह बढ़ाजा है। फर धीर मुर्तियों का मास चार्ज हुए पूरे एक हज़ार वर्ष तक पृथिवी पर छूटी गै ॥ १७ ॥

क्रत्वा शास्त्रसम्बद्धतान्तनुतान्तिनिविरस्ततद ।
— शुनंशेषमुचाचारं क्रत्वा रक्षा निरापद्यास्य ॥ १८ ॥
इस प्रकार धनिकर धर्मने पुत्रों के शाप है, सब प्रकार से शुनाणीय को रचा कर, उमने बाले ॥ १८ ॥

पवित्रपाणेशरस्तो रत्नालयालस्यतेन ।
विपणवं गृहपालं तारिकमिस्तुदाहर ॥ १९ ॥
इत च गाथे हे दिनवे गायेश धुनिपुन ॥
अम्बरीपस्य चर्चितस्मतं सिद्धिवाप्यास्यसि ॥ २० ॥
हे धुनिपु । जब तुम धम्मवरीप के यह जम पवित्र फोकी से, वेषपवस्तमां में, लाल माला धीर लाल चन्दन से खड़ा कर बैठि, बा० २०—२७
जानो, तव तुम इन दो मंत्रों से स्नेति करना। इससे तुम्हारा काम दो जायवण आर्याद्वार तुम वच जायोगे॥ १६॥ २०॥

शुनःशेषा महिष्ठ्वा ते दे गाये सुसमाहितः।
त्वरया राजसिह्व तयारीपवचार ह॥ २१॥

शुनःशेष ने कड़ी सावदानी से उन दोनों मंत्रों की याद कर लिया तौर फिर तुरन्त प्रमाण परंपरा से जा कर कहा॥ २२॥

राजसिह महासत्त शीत्रं महाचार्यें सदृशः।
निर्विर्यस्व राजेन्द्र दीक्षा च समुपावित॥ २२॥

हे महावरान! राजसिह। चलिये अव शीत्र चलें तीर पहुँच कर आप यहदीर्या ते अपना यह पूरा कोजिये॥ २२॥

तद्वाक्यायुपस्वयं श्रुत्वा हर्पसमस्य्यकः।
जगाय तुषारः शीत्रं यहवाग्यतान्त्रितः॥ २३॥

शिपुज का वचन शुन राजा प्रमहिरित है तुरन्त अपने यहश्शाला को जये॥ २३॥

सद्यास्तुभि राजसा विविद्रवंधकोऽपितम्।
पुषुं रक्तानं बलवा यूहे तं समवत्युतः॥ २४॥

फिर यह करने वालों की समति से राजा ने उस शुनःशेष की पल्लव चना तीर लाल कपड़े पहला खमे में वाँच दिया॥ २४॥

स कड़े वान्धवर्यास्मिन्धवः वें न्युरी।
इन्द्रियवन्दुज्वं बैंच यथाव्युत्पन्तज्वकः॥ २५॥
क्रिपाणिद्वः सर्गः

तद् वदेः हुयः गुणःशीयः ने विवामित्र जो के कत्ताये हुयः मन्त्रोः
से दन्त्र धीमार उपेन्द्र की यथावतः स्नुति की॥ २५॥

ततः मीतः रहस्याक्षी रहस्यस्तुतितर्पितः
दीर्घमायस्वतः भाद्रावन्धुनःशश्याश् वासवः॥ २६॥

शुनःशीयः को पकान्त स्नुतिः चुन हद्रः उस पर प्रभुव हो गये
और हद्रः ने घरे दीर्घजीवों हीने का वर्त्तन दिया॥ २६॥

स च राजा नरशंशः यज्ञस्यांचमवासवानः
फलः बाहुगुणः राम शहस्वाश्रमहादर्जनः॥ २७॥

ऐ राम! नरशंशः राजा ने भी यह समास कर हद्रः की रूपः धे
अनेक प्रकार के वर्तन पाये॥ २७॥

विवामित्रोपि धर्मात्मा भूयस्तेषे महातपः
पुक्रेषु नरशंशः दश्यार्पितानि च॥ २८॥

इति क्रिपाणिद्वः सर्गः॥

ऐ राजसू! धर्मात्मा विवामित्र ने भी पुष्कर्स्वेत में इस
हजार वर्ष तक व्याको तरह तप किया॥ २८॥

वालकापति का वास्तवार्थ सर्गः समास हुया।

—५४—
द्विषिष्टितमः लगेः

पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्रत्स्नाते परसुरामः।
अभ्यागच्छनुरा: सर्वं तपः फलचिक्रीण्वः॥ १ ॥

विश्वामित्र जी के तप करते हुए जब पूरे एक हजार वर्ष हो गये, ज्यादा जव उनका पुराणरा पूरा हुआ, तव सब देवता उनके उनके तप का फल ख्वाप पर देने की इच्छा से भागे ॥ २ ॥

अत्रवीत्युधितेजः अवश्युर च वचः।
ऋषिस्वयमरि भद्रे ते स्वातिते। कर्मसिद्ध: ग्रहः॥ २ ॥

उनमें परस्तिप्रसारता ब्रह्मा जी परम संचिकर चतुर यह बाले कि,
है विश्वामित्र। इसी पर अपने उपजित श्रुम कर्मों
द्वारा अश्रु हुए। ( अन्याय अभी उनके क्रदार्थपूर्ण अन्यच्च व्रताच्छुत
प्राप्त नहीं हुया ) ॥ २ ॥

[नोट—जो कोई कर्म द्वारा वर्षण्यवस्था की व्यवस्था। मानेते और
अपने तक से उनके हुए में विश्वामित्र का उदाहरण देते हैं, वहं शिवत है कि,
वे इस बात पर भी ज़ुरा ध्यान दें कि, विश्वामित्र जी के अपने जग्जनत क्षणिनी
बर्तक को फुड़ा कर आश्रयवा प्राप्त करने में कितने दिनों नया और कैसा केदार
तप करना पड़ा था। ]

तेरेवसुक्त्रा देवेश्वच्छिन्दिवं पुनर्भवेत्।
विश्वामित्रो महातेजः धृष्टस्ते प्रक्षर्वः॥ २ ॥

१ अत्रस्तृतं—तत्रात्मात्स्तृतं समायदुःशारणमालितिवाच। (गो) २ तपः
फलचिक्रीपवः—तपः फलदातुमिश्वः। (गो)
यह फह द्वारा देवता अपने अपने लोकों का लौट गये और विश्वामित्र जी पुनः तप करने लगे || २ ||

तत् कालेन महता मेनका परमाप्सरा: ।
पुक्करेषु नरशेषु स्नातुं सध्यपचकमेऽ ॥ ४ ॥

जव तप करते करते उन्हें बहुत दिन ही गये, तब एक दिन मेनका नाम की एक घप्पुरा पुक्कर में स्नान करने की हज़ार से नहीं आये || ५ ॥

तां दद्यं महातेजा मेनकां कुशिकात्यजः।
रूपाणासमितिम् तत्र विचित्रं जलदेय यथा || ५ ॥

मेघ में नमकती छुई विजली की तरह मेनका के सौंदर्य की देख, महातपसी विश्वामित्र ॥ ५ ॥

कंद्वर्च्छुर्गसु शुनिन्तामिद्ध्वनिवीत।
अप्सरं स्मागतं तेजस्तु वस चेह मामाध्रे ॥ ६ ॥

सुनि कामासक हो, उससे यह वाले—हे अप्सर। में तेरा स्नायत करता हूँ । तू मेरे इस आध्रम में रह || ६ ॥

अनुग्रहीत्व भूरू ते मदनेन शुमगितिः।
इत्युक्ता सा वरारोहा तत्र वासवथाकरोदू || ७ ॥

tेरा मनुष्य ही, तू मेरे ऊपर अनुग्रह कर । क्योंकि में तुम्हें देख कामासक हो गया हूँ । यह छुन वह छुटरी मेनका अभ्यि जी के आध्रम में रहने लगी || ७ ॥

तपस्या हि महाविरो विश्वामित्रभ्रानगतः।
ह्यां वस्त्यां वर्ज्यां पश्च पश्च च राध्य || ८ ॥
वालकार्पेदे

मेनका के वहाँ ग्राममें रहने के कारण, विश्वामित्र जी को
tपस्या में बड़ा मारी विश्व पड़ा। हे रावण! मेनका धार्षरा इस तरह-
tकक्षे॥ ४ ॥

विश्वामित्रास्त्रमेव तस्यन्नुलैण व्यतिचक्रकमुः ।
अथ काले गते तस्यन्विनिर्वाचनान्त्रि महामुनि:॥ ९ ॥

विश्वामित्र के उस ग्राममें खुलपूर्वक रहनी। (प्रारंभ मुनिः-
मारे विश्वामित्र ने उसके साथ रैंग लिखा कर बात की बात में
इस वर्ष निकाल दिये।) तद्विन्त्यर इस वर्ष वीतने पर महापरे
विश्वामित्र जी॥ ६ ॥

सत्रीहि इव संहताधिनिवानोकपरायणः ।
बुद्धने: समुद्धवा साम्यां रघुनन्दन:॥ १० ॥

(प्राप्तमें इते भूल पर) लजित हुए और चिन्ता में पड़ कर
बहुत दुखी हुए। हे रघुनन्दन! जब विश्वामित्र जी ने इसके तथापि
कारण विचारा तब उनकी समाधि में कोपपूर्वक यह ग्राम्या
कि,॥ १० ॥

सर्वं दुःखानं कृमातिपपोपहर्यं महाद्।
अहोराग्रादेशने गताः संवत्सरा दश॥ ११ ॥

मेरी इस विकालालीन तप की हरणा करने के लिये यह सव
देवताओं की कास्तानी है। उद्देश्य यह विवेक है। जबती
इस वर्ष वीत हुए। किन्तु मुझे जान पड़ता है मानों भ्रमी केवल
एक रात्रि ही वीत है॥ १२ ॥

कामण्डवहिभिभुतस्य विश्वोऽय प्रत्युपस्थितः ।
चिन्ति: सन्न्यासिनिर: पथ्याचारिण: दुःखितः॥ १२ ॥
इन वाक्यों में दिखाया गया है कि भौतिक दशक में दोस्त का साथ बताया जा रहा है। वे साथ बनाए जा रहे हैं और उन्होंने दोस्त की भक्ति के लिए काम किया है। वे अस्पष्ट नहीं हैं।

उन्हें सही रूप से सीखने के लिए काम किया जाना चाहिए। उन्हें सही रूप से सीखने के लिए काम किया जाना चाहिए।

उन्हें सही रूप से सीखने के लिए काम किया जाना चाहिए।
महर्षिगण भवतां साध्यं कुशिकातनं।
देवतानां वचः शुर्वा सर्वेऽगोपितामह॥ १७॥
अब विष्वासिनः का “यहयति” का पदः प्राप्तान मीरिणे। के तार्किक का यह वचन सुन ग्रह्या जी॥ १७॥
अत्रवीन्धुरां वाक्यं विष्वासिन्यं तपीयनम्।
महर्षेन स्वागतं वत्स तपोऽग्रेण तपोऽपितति॥ १८॥
तपस्वी विश्वासिनः जी के पास जा उनके यह मौढ़े वचन बोले।
हे विश्वासिनः जी। तुम बहुत अच्छी। हे (सबे हे) तुम्हारे उपर
tपथ्या ते में बहुत प्रसन्न हुआ हैं॥ १८॥
महत्वमुखिमुख्यत्वं ददामि तव सुग्रवत॥
श्रद्धानं स वचः स्तुत्वा विश्वासिन्यः स्तोधनः॥ १९॥
षोर तुमकी अच्छी में सुख्य होते का यथार्थ देटा हैं। नृसीं
श्रद्धा जी के वर्गे वचन सुन तपीयन विश्वासिनः जी॥ १६॥
पार्श्वः प्रणोते शुर्वा प्रस्तुत्वाच पितामहम्।
श्रद्धिविश्वावदस्तुतुं स्वाजिते। कर्मविषमं शुमै॥ २०॥
पार्श्वाय तेजा षोर राष्ट्र कर श्रद्धा जी से बाले। मैने तो तपस्या
प्रत्युत्तर श्रद्धिपदम प्रस्त करने के लिये की थी॥ २०॥
यदि मे भगवानां ततो विनिस्त्रितत्र॥
तस्यथावाच को श्रद्धा न तावाचन जिनिस्त्रितत्र॥ २१॥
यदि थ्राप मुते महर्षि हो कहते हैं ते मैं समक्षता हूं किं ते में
जिनिस्त्रित नहीं हैं। (तमो ते) थ्राप येशा अभस्य श्रद्धिपद् प्रदान
नहीं करने पर महर्षि मुकेश कहते हैं) इस पर महा जी ने कहा—
है, अभी तक नम ( नवमुन्त ) जितेन्द्रिय नहीं है लेखे पाये ॥ २१ ॥

यनस्त मुनिशारूढ़ता इत्युक्तवा नितिन्द्रवः ॥
विस्मिलेणु देवेपु निर्मामित्रो महामुनि: ॥ २२ ॥

हेमुनिशारूढ़न! अभी चौर तप फरे। यह महा जी
स्थग्न हें निमो मने। सब वेधार्थों के यथाशयन चले जाने
पर महर्षि विनायक जी। ॥ २२ ॥

कर्मचार्यान्तरमयायी चायुभक्तस्तथः ॥
यथाय पात्रनाथ भूत्व चर्चामनाकारार्थः ॥ २३ ॥

विना मात्रार्ध हृदय न गह उठाये और केवल वायु रहे पेट
मर दर तप रहे लोग। गर्भ में रहे पाश्चात्य तपो, वर्णरूपमें
र्द्दर लगाये निकल पुनः मेड़न में वेदते ॥ २३ ॥

गिदिरे मलिनस्त्रायी राज्यहानि तपोधने।
पृथ्व भर्तरस्त्रय हि नपा चारसुवागमत ॥ २४ ॥

जानकी में हित गत न जग नेह मोहर बढ़े रहते थे। इस प्रकार
उन्होंने एक रज्जुर तप तफ उद्य नप रिया ॥ २४ ॥

नस्सिन्द्रनप्यायां तु विस्मामित्रेऽमहामुनी।
संसम्रः सुमहानासोत्पत्तां वायुप्रस्थ च ॥ २५ ॥

महर्षि विनायकित के इस प्रकार तप करते हैं इत्तर सहित
सम्पूर्ण वेधार्थों में श्रद्ध बलात्मक मची। वे लोग बहुत
श्रद्धाधार ॥ २५ ॥
रस्माम्प्सरसं श्रकः सह सर्वमेंद्रूगणेः।
उवाचालमहिनं वाक्यमहिनं कौशिकस्य च। २६।।
इति चित्व्यपः सर्गः।
तद्वृत्तं दैवताज्ञ इत्यस्य सन्त दैवतायोऽसहित रंभा थज्जरसा से
प्रयत्ने हित श्राक्र विश्वामित्र के अन्तहित की यह वात चोले॥ २५॥
वालकायड़े का विसवन्य सर्गं समास हुण्डा।
— —
चतुःषड्धितम: सर्गः।
— —
सुरकार्यिन्द्रि रम्भे कर्तव्यं सुप्रभतवया।
ध्यानं कौशिकस्ये रामोहेरसमन्वितम्॥ १॥
हे रम्भे! दैवतायोऽकथि यह बड़ा भारी क्रम है कि, विश्वामित्र
के कामाकर्त्ति कर्ता (जिससे वे तपस्या से विद्युत हो)॥ २॥
तथे तत्त्व रामसरसं राम सहस्रस्यण धीमता।
वीहिता पात्रधिबृंहता दशवाच दुर्गेशस्य॥ २॥
हे, राम! जब इत्या ने रस्मा से यह कहा, तब वह बहुत लज़ित
हुई श्राक्र हाय लोढ़ कर इत्या से चेली॥ २॥
अर्थ सुरपटे धोरो विश्वामित्रो महाज्ञुनी।
कोशिकस्यस्यते धोरे सत्य देव न संशयं॥ २॥
हे इत्या! यह विश्वामित्र बड़े क्रोधी हैं। जैसे ही में उनके पास
गयो कि, वे प्रत्यत्त कुद्द हो, विश्वाय ही सुनके शाप देंगे॥ २॥
तनो हि मे श्रवं इति प्रसादः करुमहृदिः।
एष्मुक्तस्या राम रम्यया भैतिया तया ॥ ४ ॥
इसी लिखे मे उनके समीप आती हुईं क्रुद्ध उत्सीि हैं। श्राप,
इस्ती मुनि वहां न भेजिये। हे राम! उल दरी हुई रम्या के यह
कहाने पर ॥ ५ ॥
तापुराण्य सहस्मादी वेदपांताः कुटानखळयो।
मा भैणि रम्ये भैने ने क्रुद्ध मयं शासनमपु। ॥ ६ ॥
हृदय ने (भय से) धर धर कापति हुईं श्राप हाहार आदिे खड़ी
हुई रम्या से कहा—टूंटे मतं; तेिा मात्रल हो, मेिी प्राशा मान ॥ ॥
कैफिलदों हुद्याग्राही पाथीने कवित्रदुः ॥
अद्ध कर्त्त्वेपनिःत: स्थायायी सत पार्वतिः ॥ ६ ॥
मेि जस्य वसन्तविश्वत मेि, मननार क्रुद्ध करने वाला कैफिल
pत्री बन कर, कांधव श्रॉहित किनी सुद्र बुध के ऊपर, तेिे
प्राश पाश ही गयंग ॥ ॥ ॥
त्रय हि रम्य बुद्धगुणं कुढ़ा परमभास्वरसु।
तस्माति कैशिकिं रम्ये के दयस्वरे तत्पर्थनमु। ॥ ७ ॥
हे रम्ये! तु अपना वहा सुद्र बौर चटकोला महकोला
भस्ततर कर, उन तपस्ती विश्वासिह भूिी का मन (तप से)
प्राप्तायमान करता ॥ ॥

1 प्रसाद—नियोगानिवृत्तिरुपम् (गोि) 2 मेदयत्र्य—चहवित्रां-
कार्य (गोि)
सा श्रुत्वा चर्चन तत्स्य कृत्यां रुपमतत्समाः।
खोभयापास ललिताः विश्वामित्रं गुणितस्यत॥ ८॥
इन्द्र के इस प्रकार समभाले पर यह लुन्द्री अपना आदर कर और मदन मदन गुसस्ताती हुई विश्वामित्र के मन की लहाने लगी॥ ९॥

कौष्ठिकस्य स श्रुताय वल्ये व्याहरत: स्वनमः।
संभुप्तेन यन्त्रा तत एनासुदेशसत॥ २॥

उस समय विश्वामित्र जी कौष्ठिक का मदुर दुहलना सुन और प्रसन्न हो, रस्मा की धार देखते लगे॥ ६॥

अथ तस्य च शन्देन गीत्यागतिपिनेन च।
दुर्श्चनेन च रम्भाया मुनिः सन्देहानागतं॥ १०॥

(पर्नवे) उस कौष्ठिक की कुहक तथा रस्मा का मनोहारी गाना सुन, और उसके तेल, विश्वामित्र जी के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया॥ १०॥

सहस्सक्ष्मस्य तत्कर्म विज्ञाय मुनिपुज्वः।
रस्माः क्रोधसमाविष्टं श्रापं कुशिकात्मजः॥ ११॥

प्रांत यह जान कर कि, यह सब नतखटी इन्द्र की है, विश्वामित्र जी कहते कुहक हुए और रस्मा की यह शाप दिया॥ ११॥

यन्त्रां लोभायते रस्मे क्रापक्रोषयथ्यपिणम्।
दश वर्षसहस्सनि श्रैली स्थायस्यस दुर्घटे॥ १२॥

१ ललिताः लुन्द्री । (गै।०) २ वल्य—मनोहर । (गै।०)
हे रमे। काम क्रोध की अपने वश में करने की इच्छा रखने वाले दुःखी जो तुम लुभाती है, से हे दुर्मैगे। (भ्रमागि) तू दस हजार वर्ष तक शिला हें कर रहेगे॥ १२ ॥

वाह्यः सुमहातेजास्तपोवलसमन्वितः।

उद्धरिण्यति रमे त्वं मतक्रोधकुपीकिताम्॥ १२ ॥

हे रमे। फिर कोई बड़ा तेजस्वी एवं तपस्वी जाहाण तुम्हारे पापं पापलग्नी की, मेरे क्रोध से प्रार्थात् श्राप से उवाचिता॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा विद्वामिन्तो महायुनिनः।

अर्ककुन्तनवान्धारियतु क्रोध सन्तापमागतः॥ १४ ॥

महर्षि विद्वामिन्त यह श्राप देने के अवसर, क्रोध को रोक कर सकने के लिये, बहुत पढ़ते। (इसलिए कि क्रोधातुर हो कर श्राप देने से उनका तपोवल, जो उन्होंने उध्र तथा कर सम्पादन किया था, नए हे गया। इद्न यही चाहिये भी थे।)॥ १४ ॥

तस्य श्रापेन महत रम्भा शैैः तदाभवतुः।

चच: शुष्याच च कन्दपर्य महर्षेः स च निर्गतः॥ १५ ॥

विद्वामिन्त जी के उस महाश्राप से रम्भा शिला हो गयी प्रोर महर्षि विद्वामिन्त को कोपयुक्त वचन छुन कामदेव और इद्न तर्क से रफूचकर हुए॥ १५ ॥

क्षेत्रेन सुमहातेजास्तपोपांहणे कृतः।

इद्निध्येति राम न एवं भान्तिमाल्यनः॥ १६ ॥

१ सच—इद्नरः। (चौ०) २ आल्मन—सचसः। (चौ०)
हे राम! कैप करने से महातनसानो विश्वामित्र का तप नष्ट हो गया। वे अपने इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके। इत्यादि बनके मन की शान्ति न मिली। ॥ १६ ॥

वस्मवास्य मनाधिनं तपोपहरणे कृते।
नैव कौर्यं गमिण्यामि न च वह्यामि कित्वा। ॥ १७॥

वलिक उन्होंने तप के नष्ट होने पर प्रतिष्ठा की कि, घाये में कमी न तो किसी पर कौर्य कहीं और न किसी से कुछ वात-चीत ही कहीं। ॥ १७॥

अथवा नैच्छिक्यसिन्यामि संवत्सरायतान्यपि।
अहं विशेषाचिन्यामि ब्राह्मणं चिन्दतिन्द्रयः। ॥ १८॥

इतना ही नहीं, वलिक में सैंकड़ों वर्षों तक साँस भी न लूंगा। इस प्रकार इन्द्रियों का जोड़ने के लिये में अपने शरीर का सुख डालूंगा और इन्द्रियों का अपने वश में कहाँगा। ॥ १५॥

तावथावाद्ये में शरों श्राहण्यं तपसार्जितम्।
अनुच्छवस्थर्भस्तिष्टं भावविषयं शास्त्रविषयं। समाः। ॥ १९॥

जब तू तपथवल से मुक्त ग्राह्यशल प्राप्त न होगा, तब तू कितना ही समय क्यों न लोगे, में न तो साँस हो लूंगा और न सेजन कहाँगा और सदा खड़ा हो रहता। ॥ १६॥

१ मनाधिन्ता—सहस्रां। (गो)
न हि मे तप्यमानस्य क्षयं यास्यनि शूर्तयः।
पवं वर्षसहस्सस्य दीशां त सुनिपुजवः।
२० वं चकारामक्तिमां लेके मतिज्ञा रघुनंदन॥

धति तन्त्रप्रदित्तम: सर्गं॥

चुमे इस वात का ती मय ही नहीं है कि, माजन न करने या सोंस न लेने यथवा सत्रेव खड़े रहने से मेरे शरीर के प्रवायव ध्वीण हो जाने। हि रघुनंदन। गहराप्रवर विभवामिज्ञ ने एक हल्दर वर्ष उका विचि से। ( सोंस न ले कर, माजन न कर के, मानी हो कर, खड़े रक कर ) तप करने का भयुल बहुविक्य किया॥ २०॥

वालनावज का चौसध्व गर्ग पुरा हुआ।

—:—

पञ्चप्रदित्तम: सर्गं

—:०:—

अथ हृंगटितं राम दिशं लक्ष्या महामुनि।
पूर्वं दिशमनुषाप्य तपस्तेपे सुदरास्म।१॥

तद्वन्तर महापरि विभवामिज्ञ उक्तार दिशा को त्यात्र कर यौर पूर्व दिशा में जा कर फिर उग्र तप करने लगे॥ १॥

— १ मूलः—मर्तीरवृणां। ( मो० ) २ दीशाः—अहवृच्छ्वासामाजनसः

सुचिवः। ( मो० ) ३ अथातिः—निलुक्तः। ( मो० ) ४ हृंगव्यों—

हःरामः। ( र० )
मैंने वर्षसहस्र स्तुति अतमंत्रस्वयं
चकरासतीम्य राम तपः परमेश्वरस्वयं

c2c
hे राम! उन्होंने, एक हज़ार वर्ष तक मैंने अति घातक
परम हुफ्फर श्रद्धालूति तप किया
c2c
पूर्णे वर्षसहस्त्रे तु काष्ठपूर्व महाधुनिनि
विशेषद्वृहिमिचारूंत कोथो नान्तरमहाविवेत
3c
यहाँ तक कि, जब एक हज़ार वर्ष पूरे हुए, तब विश्वामित्र जी
का शरीर काद की वर्ध हो गया। इस वीच में अनेक प्रकार के
विश्व उपविष्ट हुए; किस्तु मुनिराज के इलाजकरण में कोथ उत्पन
न हुआ
c3c
स कुला निष्क्रिय राम तप आतिभूतवर्णम
तस्य वर्षसहस्त्रस्त्र वर्ते पूर्णेमहावर्तम
c4c
हे राम! जब विश्वामित्र जी की निधार्ण हो गया कि, उन्होंने
कोथ के जीत लिया और उनका एक हज़ार वर्ष तप करने का
सकृतप पूरा हो गया
c4c
भोकुरान्यांवान मयंति कारते रघुचरम
इन्द्रो द्विजातिभूतमा तं सिद्धमभयाचत
5c
हे राजन! तव ग्राघ्व सेवन करने को वैद्य
उसी समय इन्द्र
ब्रह्मा का रूप चर कर आये और विश्वामित्र की थाली में परेसे
हुए मेलिय प्रह्योगों के लिये दबसे वाचना की
c5c
तस्मि दत्ता तदा सिद्धं सर्वे विमाय निश्चित:
निष्क्रिये तेष्टेष्वे भगवानविभूतोऽव महात्मामः
c6c
पञ्चपिताम: सर्गः ४२१

भैरव के लिये जो प्रश्न तैयार हुए थे वह सब का सब उठा कर, उन्होंने हटा की सचमुच भ्रातृभाषा जान दे दिया। स्वयं विना नज़रें रह गये।

न किशिवदन्वदियं मानवत्वस्मापितः
अथ वर्षसहस्रं वै नौच्चवस्मुनिपुंजः।॥ ७ ॥

किंतु भ्रातृभाषा से कुछ भी न कहा, प्रश्नकि, वै मैनवत धार्मिक किये हुए थे। तदन्तर फिर उन्होंने एक हज़ार वर्ष तक सांस रोक कर तप करना व्याप्त किया। ॥ ७ ॥

तस्यानुच्छेदपञ्चाचध्वनयं सूर्तिः धूमो चयाचयत।
त्र्योऽकारां येन सम्प्रान्तमदीपित्विवाहवद्।॥ ८ ॥

सांस रोक कर रखने से (अथ्यत्तुः कुम्भक करनें से) उनके सिर से घुसी निकलने लगा। इससे तीनों लोकवांत्री धवड़ा बढ़े और तीनों लोक तस हो। गये। ॥ ८ ॥

ततो देवता: सागन्धर्वः पञ्चगोरगराभसः।
‘मे हितात्तेजसा तस्य तपसा मन्दरस्मयः।॥ ९ ॥

तव तत तेजता, गन्धर्वसंघ, नाग श्रीराजस सब ही उनके तप स्फो श्रांति से मृद्धित हो गये। श्रीर उनके तेज मन्द पड़ गये। ॥ ६ ॥

क्रमलेपणः सर्वे पितामहयथार्थवर्।
वहुभिः कारणेदेव विश्वामित्वे महामुनिः।॥ १० ॥

चारो रात्रो—२५
वालकार्ये

उन सब ने दुःखी हो अहा जी से कहा—हे देव! हमारे महाप विश्वासियों को अनेक प्रकार से ॥ १० ॥

लेखितः कोषित्रांत तपसा चाहियाँर्यते ॥ ११ ॥

न ब्रज्य द्विजीं किष्मिके प्रवत्त्य स्थानमय्यथ ॥ ११ ॥

हुसाया धेरे कुड़ करना चाहा; किंतु वे प्रपने तप से न दिने, श्रद्धा इतता तप बढ़ा ही गया। प्रव इनमें राग द्वेष नाम मात्र का भी नहीं रह गया ॥ १२ ॥

न दीपते यदि तलस भनसा यददीन्ति ॥

विनायति त्रैलोक्यं तपसा सच्चारापसु ॥ १२ ॥

यदि प्रव भी उनके चनका प्रभौद्ध कर ( प्रायंद्र प्रभाषि की पर्वत) न दिया गया, तो वे प्रपने तप से सच्चाराप तीनों लोकों की नहीं कर डाले गे ॥ १२ ॥

व्याकुलात्थ दिशा सर्वा न च किष्मिकाशाते।

सागरं स्थुमिता सर्वं विशीर्यिने च पर्वाता ॥ १३ ॥

देखिये सब दिशाओं विकल हैं धेरे प्रकाशपित हैं। ( प्रायंद्र
इसकी तपस्या से सब का तेज लिप्त गया है) समुद्र ज्वला
हो गये हैं धेरे सब पर्वत फटे जाते हैं ॥ १३ ॥

भास्त्रों निष्प्रभूत भभवंस्तस्य तेजसा।

प्रक्षते च पृथिवी नायुवति भृषाकुलव ॥ १४ ॥

महापि की तपस्या के तेज से दुर्भ्र प्रभावहिन पड़ गया है, पृथिवी
काप रही है धेरे वायु की गति भी गड़बड़ गयी है ॥ १४ ॥

१ द्विजिः—पार्व, रागदेवादिक्षण ॥ (भो)
ब्रह्मचर्य: प्रतिज्ञानीमेव नास्तिकों जाय ते जनः।
संमृद्धमित्रं त्रेयोंक्यं समपुष्पितमायानसम्।।१५।।

इद्द ग्रहनः। इतना प्रतिकार हम लोगों की शक्ति नहीं, अर्थात् पढ़ता। इस इतिहास के कारण लोग नास्तिकों की तरह कर्माचार्यान शृणुष्ठ हुए जाते हैं। क्योंकि इस समय किसी का मन ठिकाने नहीं है और सव विकल हैं।।१५।।

बुद्धि न कुर्सि यामनजारे देव महाभुतिः।
तात्त्वज्ञानं भगवानविश्वेष: महाभुतिः।।१६।।

प्रत्: हें देव। विश्वामित्र जो के मन में इस जगत की नाश करने के लिए इत्यादि उत्पत्ति होने के पूर्व ही, श्रवण हें इसका स्तन्त्र कर दीजिये। क्योंकि इस समय चे वाद्य तर होने के कारण महाभुति-मान हो रहे हैं।।१६।।

कालशिना यथा पूर्वं त्रेयोंक्यं दृष्टे भृशस्।
देवराव्यं चिकिपेत दीयतात्स्य यंन्तमस्।।१७।।

जैसे प्रलय के समय कालशी तीनों लेकर की जला कर नए कर दालते हैं, वैसे ही वे भी जला कर भस्म कर डालतें। यद्व यह इंद्रसन्न चाहे तो वह सो इसका दे कर इनका अभिषेक पूर्ण कीजिये। प्रयत्ना यदि श्रवण इनका प्रद्धारविपद, तो इनका अभिषेक है, नहीं दुःखे। ती यह इंद्रपुरो के राज्य को इत्यादि करने लगाए।।१७।।

१ नास्तिकों:—प्रतिकारित्वमितिनिषेध: || (गो०) २ नास्तिकोंलायत्त
हृद्:—विकर्त्ताद्वितीयस्यवितकत्वमवेगान्योजायतं इत्यः || (गो०)
२ समवाधिशेषत्व:—व्याकुलिताचार्य: || (र०)
तत: सुराण: सर्वें पितामहपुरोगमाः ।
विवामित्रः महात्मानं वाक्यं मघुरमण्युवन् ॥ १८ ॥
( उन लोगों से इस प्रकार प्रनोदन किये जाने पर ) ग्रहा हि/खब देवताओं के साथ ले, महात्मा विवामित्र जी से जा कर, ये मघुर कवच वेले ॥ १८ ॥

जहाँपरं खागतं तेस्तुत तपसा समुतोषिता: ।
ग्राह्यं तपस्तस्त्रेण प्रास्वानन्ति कैशिक ॥ १९ ॥

हे जहाँपर! हम तुम्हारा स्वागतः करते हैं (अर्थात् तुम्हें वधाई देते हैं) हम तुम्हारी तपस्या से भली संति सन्तुष्ट हुए हैं। हे विवामित्र! तुमने यथाश्रये उम तप के प्रमाण से ग्राह्यात्मक प्रास्वानन्ति किया ॥ १६ ॥

दीर्घायुष्य ते ग्राह्यतदामि समहद्दृशुः ।
सख्तिः प्राप्तुहि भूरं ते गच्छ सौम्या यथासुसम् ॥ २० ॥

धर्म हम सब देवताओं सहित तुमकी प्राशीत्वादः देते हैं कि, तुम दौर्बिकी हो! तुम्हारा महद्दृष्ट हो। हे सौम्य! धर्म जहाँ तुम्हारी हक्की हो वहाँ जाओ! ॥ २० ॥

पितामहवचः श्रुत्वा सर्वेष्वा च दिवीतकासाम् ।
कुल्या मणिमं प्रदतो व्याजहार महासुनिः ॥ २१ ॥

* श्रीयुत वामन विवाम भापों ने स्वागत का अर्थ बताते हुए, इस शब्द के प्रयोग के विषय में लिखा है—“Used chiefly in greeting a person, who is put in the dative case.”
पञ्चप्रेमः सर्गः ।

मद्या जी मे इन चचनोऽनु नाम विवाहित्र जी ने सय देवताओऽ
की प्रशाम किया धौरे वे प्राण ही धैले॥ २१॥

व्रात्मण्य यदि मे मात्र दीर्घायुस्तवेत् च ।
वेद्वर्तको वैद्याच वर्यन्तु माम् ॥ २२॥

यदि प्राप्त लोकोऽनु मुखे धारणाय दिया है धौरे मुखे दीर्घायु
किया है, ता धौरकार, वपद्यार तथा धौरे भी मुखे धार्दकार
करेः॥ २२॥

[ नेट—भांतार क। यहाँ अर्थ है वहांअनायाण और वपद्यार से
भिमाप है पक्षाभास । भी मे भांतार है सावधान व्यदरिया से।
भांतार वर्य ( वर्यन्तु ) करार तैसे विनाशियां घाटियां के वेद्वर्तक रे
का तथा यस्ताने रे। भांतार कıcे—विनाशियां जी मद्या जी ले कहते हैं
कि, तैसे ही मुखोऽनु मे धार्दकार और यस्ताने का वाहिकार आप दे। ]

ध्रुवेद्विंद्रां श्रेष्ठो त्राध्रुवेद्विंद्रापिः

ग्रामपुष्करां विस्तिष्टः मामेत्व वद्रतु दृष्टतः॥ २३॥

धौरे धारियां की वेद्वर्तिया जानने चालोऽनु मे रेष्ठ तथा धारियां
की वेद्वर्तिया जानने मे श्रेष्ठ ( प्रारंभ चारौं चारौं धेमें के शाता )
धारिया जी के पुष्कर रेष्ठ हो मो मुखे “ धारिया ” कहिं॥ २३॥

यद्यर्ग परमः क्रांः कृतो यान्तु ययुर्प्यम् ।
ततः पसादितो दुःसादिष्टो जपतान्वरः॥ २४॥

( भाद्रम् —धारियांमानसातित्वं धारियांमोचनानायकार्गवेर्दः तद्द विद्वां
भेदः॥ ( मों ) )
बालकायाये

यदि मेरा यह बड़ा यथासंवत पूरा हो जाय तो भाषा लोग (यथासंवत सब देवताओं ) चले जा सकते हैं। यह खुन देवता लोगों ने यथासंवत वासिय्य जी के पास गये श्रीर मनो मना कर राम किया। ॥ २४ ॥

सर्वथा चकर यथासंवतयस्तिच्याति चातन्वीत ।

यथासंवत्यं न सन्देहं सर्वं समपत्योत तत॥ २५ ॥

वासिय्य जी भारे हैर विश्वामित्र जी से मेल कर लिया (यथासंवत वैर ह्रोड दिया) हैर कहा तुम यथासंवत हो गये। तुम्हारे यथासंवत होने में ग्नु कुठे भी सन्देह नहीं है। ग्नु तो सत्र ने तुम्हारा यथासंवत होना मान लिया। ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा देवताश्चारिणी सर्वं जगृत्यांगतम्।

विश्वामित्रिकोधिनं सर्वं जन्मश्रावणषुखमपम्। ॥ २६॥

यदि कह कर देवता भी यथासंवत हैर यथासंवत हमारे स्थानों का चले गये।

विश्वामित्र ने भी इसम यथासंवत प्राप्त कर के। ॥ २६ ॥

पूजयापास यथासंवत्यं वसिष्ट जनपत्यवर्मणु।

कृतकामो महीं सर्वं चकर तपस्य स्थितं। ॥ २७ ॥

विश्वामित्र जी ने महार्षिमंगव्र यथासंवत वासिय्य जी का पूजन

किया सी तथा यथासंवत कृतकामो हो श्रीर तप करते हुए वे ग्नु सारी पुष्पिका

पर एक एक लगे हैं। ॥ २७ ॥

एवं त्यान्त्र यथासंवत प्राप्त्य राम महात्मना।

एवं राम महंस्रिन्य एवं विप्रह्वान्त्यय:। ॥ २८ ॥
पञ्चपद्धितमः सर्गः

(शतानन्दः जी वैले) हे राम ! ऐस तरह इस महात्मा किंवदंपति
जो ने ब्रह्मयज्ञ पाया है ! हे राम ! यह मुनियों में श्रेष्ठ हैं और
वे ही तो साजिश सुनित ही हैं।॥ २५ ॥

एष परमपरे नित्यं वायुस्येष परायणम्।
एवमुक्त्वा महातेजा चिरराम हिजोत्चमः॥ २९ ॥

यह सदा धर्मकार्यों के करने में तत्पर रहते हैं, यह ध्वनि
तपेयर्वतिष्ठ परायणवः। यह कह कर ब्रह्मयज्ञश्रेष्ठ महातेजस्वी शतानन्दः
जो तुप हो गये।॥ २६ ॥

शतानन्दः वचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणस्तविषयः।
जनकः नाः सिविर्वक्ष्यस्वात्वाच कुशिकात्मज्ञमः॥ ३० ॥

शतानन्दः जो को वात पूरी होने पर, श्रीरामचर्य लक्ष्मण
के सामने, राजा जनक ने हाय औड़ कर कौशिक जी के
कहा,॥ ३० ॥

धन्योस्मयुघ्गतीतासमित्यथे मे मुनिपुजाव।
यहः काकवतसहितः मासवानसि कौशिकः॥ ३१ ॥

हे कौशिक ! में आपने का धन्य मानता हैं श्रवार आपका बड़ा
प्रतिश्कृत हैं। फिरका आप श्रीराम लक्ष्मण सहित से यह में
पढ़ाए हैं।॥ ३१ ॥

पारितोषः न्यायं ब्रह्मदर्शनेन महामुने ।
विश्वामित्र महाभाग ब्रह्मार्फ्याणं वरोतमः॥ ३२ ॥

हे ब्रह्माद्। आपने दर्शन दे कर आपने मुझे पवित्र किया है।
हे महामुनि, हे नानार्थियों में श्रेष्ठ विश्वामित्र जो ! ॥ ३२ ॥
शुद्ध यथा महातेजो रामेश च महातमन।
सदस्ये: पाप्य च सद: श्रुतास्ते वहवा गुणा। ॥३४॥
मैत्रे, श्रीरामचंद्र जी ने तथा मेरे भावास्त्रों ने भाष्यके ध्यानस्य गुण छुने ॥३४॥
अपमेयं तपस्तुभयनमैयं च ते वचसः।
अपमेयंपुण्याशैव विलयं ते कुशिकात्मक। ॥३५॥
हे कौशिक! भाषका तप और वल्ल अधिन्त्य है। भाषके गृह अधिक हैं। ॥३५॥

drisirastakhyasootana kathaanaa naasti me vibhena.
karmkalo kshuvinashht labhate ravisamahalma. ॥३६॥

dhe vibhena! bhavatii vismoyaanadini kathayon ka xunate xunate
mera ji nadhi mehara. ahav purvastastastatmaka dhanaa hata,
sanvopasaanadi karm karne ka samv samideh hata
(ahav: ahav mein vidha hota hota). ॥३६॥

evan mhatate mahatetab dushumahsis ma pun.

kshagant taptasrevegh samuddhutmahsis. ॥३७॥

1 गुणाः—कर्मश्रेष्ठ क्षत्रियश्रेष्ठ क्षणाः। (७०) २ अपमेयाः—
यथाचारविवेकमशया। (७०)
पश्चिमप्रतियमः सर्गः ॥ ४२६ ॥

हे तप करने वालों में श्रेष्ठ ! इस समय मले पथारे। कल प्रातःकाल फिर चुसे खापके दृश्य होनें। यह जाने की भाषा देखिये ॥ ३७ ॥

एवमुक्तको मुनिवरः प्रशस्य पुरुषपरमसू ।
विसार्जनः जनानं प्रीतं प्रीतमनस्तदा ॥ ३८ ॥

जब जनक जी ने ऐसा कहा, तब विश्वामित्र जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए, प्रमुख मन से वह श्रीरे के साथ उनकी तर्क विदा कर दिया ॥ ३९ ॥

एवमुक्तका मुनिश्रेष्ठं वैदेहा मिथिलाधिपिः ।
प्रदर्शिष्णं चक्राराय सापाध्यायः सवानवः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर राजा जनक ने अपने उपाध्याय श्रीर कुल वायुवानवों
गहित उठ कर विश्वामित्र जी की प्रदर्शिणा की प्रीति वें वहाँ से चल
प्रेद्ये ॥ ३६ ॥

विश्वामित्रोपि धर्मात्मा सरामः सहवक्षमः ।
स्ववात्यभिचक्राय पूज्यमानो महर्षिमि: ॥ ४० ॥.

हति पश्चिमप्रतियमः यानः ॥

धर्मात्मा विश्वामित्र भी श्रीर लक्ष्मण सहित मुनियों के
समानित हो, अपने निवासस्थल में ग्राहे ॥ ४० ॥

वालकाण्ड का पृष्ठभरा सर्ग समाप्त हुष्ट्रा ॥

---

१ स्ववात्य—स्वविवेशं। (गो)
षट्पश्चित्मः सर्गः

ततः प्रभाते विमले क्रतकर्मा नराधिपः ।
विश्वामित्रं महात्मानमाजुह्राव सरायवस्मः ॥ १ ॥

प्रायंक्राज होते हि राजा जनक ने ध्रुविक कर्मनुधार से
निश्चितः हे, दोनों राजकुमारों सहित विश्वामित्र जो की बुला
प्रेजा ॥ १ ॥

तमच्छित्वा धर्मांश्च शास्त्रप्रेयो शास्त्रहृषेन कर्मणा ।
राजवान्तः च महात्मानी तदा वाक्यमुक्तां व ॥ २ ॥

शास्त्रविचि के अनुसार ध्रुवपाण्डि से विश्वामित्र व राम
लज्जापटी की पूजा कर, धर्माल्यान राजा जनक बोले, ॥ २ ॥

भगवन्तः तेस्तु किं करोशि तवानघ ।
भवानाज्ञाप्यतु मामाज्ञाप्ये भवता ब्रह्मू ॥ २ ॥

हे महेन्द्र ! आपका में स्वागत करता हूँ, कुछ सेवा करने
के लिये आपका दीक्षिते । क्योंकि में आपकी, आपका का पान
है ॥ २ ॥

एषुक्तः स धर्माल्या जनकेन महात्मना ।
प्रत्येकाः शुनिविरूं वाक्यं वाक्यविश्वारदः ॥ ४ ॥

जव महात्मा जनक जी ने ऐसा कहा तब वातचित करने में
प्रत्येकाः शुनिविरूं विश्वामित्र जी राजा से बोले ॥ ४ ॥
पुत्रो द्राक्षरस्येम्म श्रत्रियव लोकविश्रुताः।
कुमारवामा धनुःश्रेष्ठ यदेतस्यचित्तिः॥ ५ ॥

धर्मो वै वै वै श्रमकाम धर्माय सुमारः धनुः च, चतुर्विंशत्या श्रमकाम धर्माय सुमारः धनुः च।

एवधार्श्च भद्र ते क्रत्वामिन्न नृपायोऽजा र।
दर्शनादस्य धनुपो नयेश्च परियास्यतः॥ ६ ॥

प्राप्तिः मदकृतहि; ज्ञातिः प्राप्त उसे इहे दिखलावा दोजिये।

एवेकुटस्तु जनकः महाराजाच महामुनिनिस्मूः।
शूचतामस्तु धनुपो यथार्थ्यमीह तिष्ठतिः॥ ७ ॥

यद्य धनु राजा नामक, अवश्यामित्र जी से बोले कि, जिस प्रयोजन के लिये यह धनुष यहाँ रखा है, उसे खुलिये॥ ७ ॥

द्वारात्त्व इति ख्यातो निमे: पछो महीतिः।
न्यायसाक्यां तस्य भगवनहस्ते दृष्टो महात्मनः॥ ८ ॥

हे भगवन्! राजा निमि को छठवीं पीढ़ी में द्वेषात्त्व नाम के
एक राजा ही गये हैं। उनके यह धनुष धरोहर के लिय मिला।

द्वेषात्त्वे पूवः धनुरायस्य बीर्यवानः।
स्मातुः तिद्वानोपाल्पालीजैश्मत्मक्रन्नित॥ ९ ॥
पूर्वकाल में जब महादेव जो ने दत्त प्रजापति का यह विवेचन कर डाला ( स्वीकार हमें महादेव जो का यह मार्ग नहीं मिला था ) तब लीलाकाम ले गिर जो ने कोट में भर यही धनुष देवताओं से कहा था।

यस्माद्रागार्थिने भागाचारकथ्यत मे सुर:।

वराज्ञानि महादेवी धनुष शालत्यामि। व न। १०।

हे देवो। यतः ( चूँकि ) तुम लोगों ने गुफ्त भागाथिरों का यह मार्ग नहीं दिया, यतः मे इस धनुष से तुम सब के सिरों की काटे बालता हूँ। १०।

ततों विमानसं सर्वे देवा। हे सुनिपुज्व:।

प्रसादवन्ति देवेश्व तेपां शीरोस्यवंध्रवः। ११।

हे सुनिपुज्व। शिव जो का यह वचन धनु देवता लोग बहुत विवाह है। गये श्रीर किसी न किसी तरह शिव जो का मनावतः प्रसन्न किया। ११।

शीतिलकः स सर्वेश्व ददाः तेपां महात्मनामः।

तदेवदेवेवस्य धनुर्बलं महात्मनः। १२।

न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्पर्श पूर्वक्षे विमोऽ।

अथ मे कुप्तः श्रीनीः लाज्जाविद्यता ततः। १२।

तव प्रसन्न हो कर महादेव जो ने यह धनुष देवताओं का हे दिया और देवताओं ने उस धनुषपर्व के प्रेमेश्वर की तरह देखा करे।

1 वराज्ञानि—विराज्ञानि। ( गो ० ) २ शालत्यामि—शिलामि। ( गो ० )
3 केश्वः—वाल्मीकी। ( गो ० )
देदिया। सेह यह वही धनुष है। एक समय यह करने के लिए, मैं हल से केवल देता रहा था। उस समय हमकी नोक से। १२ १३। नेत्र शोधयता चन्द्रा राजा सीतेति विश्वुः। भूतलादृशितिः सा तु ज्ञयर्धं ममात्मजाः। १४।।
एक कन्या भूमि से निकली बप्पे जन्मः के कारण सीता के नाम से प्रसिद्ध है अंग्रे मेरी लड़की कहलाती है। पुर्विवा से निकली हुई यह कन्या दिनों दिन मेरे यहाँ बढ़ी होने लगी। १५।। वीर्यशुक्लेति में कन्या स्थापितेययोनिना। भूतलादृशितिः त्या मर वर्धमानाः ममात्मजाः। १५।।
उस प्रयोगना कन्या के विवाह के लिए मैंने पराक्रम ही खुलक रखा है। पुर्विवा से निकली हुई मेरी यह कन्या जब घरी घरी बढ़ी होने लगी। १५।।
वर्यामायुरग्राम्य राजानामे सुनिमुक्ताः।
तेषा वर्यात्तु कन्या सर्वेषा पुर्विवीशिताः। १६।।
वीर्यशुक्लेति भगवन्त ददायमि छुतामहस्।
ततः स्वेद तृपतयः समेत्य सुनिमुक्ताः। १७।।
तब देदिया। मेरी उस कन्या के साथ अपना विवाह निकली। बप्पे देखने के लिए भाग दे यह के राजा ग्राये। सीता के साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाले उन्हें वे राजाओं से कहा गया कि, यह कन्या “वीर्यशुक्ला” है। अतः मैं वह के पराक्रम की परिच्छेदः।
हेतु नाक का नाम होता है, यह कन्या हुक देखने पर भूमि स्थान राजा घरी घरी बढ़ी होने। अतः इसका नाम सीता पड़ा।
किये विना घपनी कन्या किली के नहीं दूँगा। तब तो है मुनिग्रेष्ठ।
सब राजा लोग इकट्ठे हो। १६ || १७ ||

मितिलायस्युपागम्य वीर्यजिज्ञासवस्तदा || १८ ||

tेतां जिज्ञासानानो वीर्य धनुशपाहितम्।

घपने पराक्रम की परीक्षा देने के मितिलायुपागम्य वीर्य की जिज्ञासा में आये।
उनके वल की परीक्षा के लिये मैंने यह धनुष उनके सामने (शेष चढ़ने के लिये) रखा। १७ ||

न शेषकुश्रेण तस्य धनुषपालनेनः पिण्डिति।

तेतां वीर्यवतां वीर्यमयं नात्ता महानुन्नु। १९ ||

उनमें से कोई भी राजा उस धनुष के उठा कर उस पर शेष चढ़ने का सक्षम नहीं। तब उन राजाओं का अभ्यर्थियों समस्त १६ ||

प्रत्यावधाता तृप्ततयस्तत्तन्त्रोधैत्य तपोधन।

ततं परमेश्वरेण राजाना मुनिपुर्वः। २० ||

अरुणधर्मानि सवं वीर्यस्मिन्देहमागताः।

आत्मानंपवसूतः ते विज्ञाय तृप्तपुर्वः। २१ ||

मैंने उनमें से किसी के धनुष की कन्या नहीं दी। वे मुनिपुर्वः।

यह बात स्पष्ट भी जान लें। (जब मैंने धनुष की कन्या का विवाह देने के लिये किसी के साथ नहीं किया) तब उन लोगों ने कुछ दी मितिलायुपागम्य वीर्य ने। क्योंकि धनुष द्वारा वल की परीक्षा देने में उन्होंने धनुष का विशेष उपकार समस्त २० || २१ ||

(२०) २ आत्मानं—मात्रामां ||
(२१) २ अवपुर्वार्यं—धनुषकर्णे प्रसीतद्राक्षिताय ॥ (२०)
रोप्येण महतात्वात्तिर्मित्रा: पीड्यतनिमिषिन्तां पुरीसु।
तत: संतत्तरे पूर्ण कृष्ण यातानि सर्वशः॥ २२ ॥
सायनानि मुनिश्रेष्ठ ततोहं भूषदु:वितः।
ततो देवगणान्तवान्तपसाह्य प्रसादयसु॥ २३ ॥

वन लोगों ने प्रत्यक्त कुच दौ मिथिलावासियों की बड़े बड़े
फए दिये। एक वर्ष तक लड़ाई होने से मेरा धन भी बहुत नष्ट
हुआ। इसका मुखे बड़ा दुःख हुआ। तब मैंने तप द्वारा देव-
तापों का प्रसाद किया॥ २५ ॥ २६ ॥

d्रुतृक्ष परमावतात्वताः शुराः।
ततो भवः नृपतेऽहाभन्ययाना दिनेऽयुः॥ २४ ॥

देवताओं ने प्रत्यक्त प्रसाद ही कर मुनि चतुर्विंशिवो सेना दी।
तब, ये राजा पराजित हैं साथ गये॥ २४ ॥

अन्नाः वीर्यसनिंदिः सामायः। पापकारिंशः।
तत्रेतेननुविद्वाहु युतूः परमाभाङसु।
रामलक्षणयोगोधारि दृश्यिष्यायि दृश्यबाजैः॥ २५ ॥

भीम और वीरता की फूटी डूंगे मारने वाले वे राजा
प्रपने मिलियो सहित भाग गये। इस मुनिश्रेष्ठ। यह वही दित्य
घनुप है। इस स्तर में इसे श्रीरामचर्य लक्ष्मण के भी दिख-
लाइत।॥ २५ ॥

यजस्य घनुपो रामः कुर्षादोपर्यन्त सुने।
सुतायमोल्लियो सीता द्वारा दाशरथेहसु॥ २६ ॥

इति पद्मपरित्वमः सर्गः॥
वालकायवे

धौर तदि श्रीरामचंद्र तो ने धजुर पर राजा चढ़ा दिया, लोग ने प्रपनी प्रभाविता लोग उनके व्यह दूँगा। इसी के बालकायवे का जियासत्तावं सभा समागत हुआ।

—*—

लतिपितिमाः सर्गः

—१०—

जनकस्य वचः श्रुत्या विश्वामित्रो महामुनिः।

धुजुरदर्शी रामाय इति हेवाच पार्थिवस्। ॥ १ ॥

राजा जनक की वांते चुन महर्षि विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा—हे राजकु, वह धजुर श्रीरामचंद्र की दिखलाइये। ॥ १ ॥

ततः स राजा जनकः सतिवान्यादिदेश ह।

धजुरानीयतः दिव्यं गन्धमाळयविभूषितम् ॥ २ ॥

तव राजा जनक ने प्रपने मंथियों का धारा दी कि वह दिव्य धजुर चन्दन और पुष्पमलालों से भूषित है, उसे ले धारी। ॥ २ ॥

जनकेन समादिष्टः सतिवः पार्विशनपुरीम्।

तदवः पुरतः कुला निर्जस्तः पार्थिवायया। ॥ ३ ॥

राजा जनक की धारा पा कर मंथी लोग मिथिलापुरी में गये (यह शाला नगरी के बाहर बनी थी) और उस धजुर की धारा कर चले। ॥ ३ ॥

उन्न ज्ञाति पश्चािश्रायतानां महात्मनायु।

मन्नुपापप्रचक्षताः तां समूहेस्ते कथगन ॥ ४ ॥
सत्प्रियितमः सर्गः

पात्र द्वारा मनुष्यत मनुष्य, धनुष को श्राद्ध पद्धति की पेटी की, 
स्थितता से लावन धर देखेल कर वहाँ ला लो जाओ || ४ ||

'तुम्हारे तु मन्युपामानीयती यत्र तत्त्वन्तुः'।

'सुगरुपं तेज जनक्मूर्तिपतिमन्त्रिणः' || ५ ||

जिस पेटी में धनुष रखा था वह लेने की थी—उसे ला कर, 
मंत्रियों ने सुगरुप महाराज जनक की इस वात को सुनना दी || ५ ||

इद्र्य धनुषर्वः राजन्युनितं सर्वराजभिः।
मिष्ठिलाथिपः राजेन्द्र दर्शयेनं यद्रिच्छसि || ६ ||

मंत्री वेदान्तेः है राजन! यह वही धनुष है, जिसकी पूजा सब 
राजा कर जुके हैं। है मिष्टिला के प्रथीवर! है राजेन्द्र! अब चाप 
जिसकी चाहिये इसे दिखाइये हैं || ६ ||

तेपं नृपो वचं श्रुतम् क्रताज्ञहिरभाषत।
विश्वाभिपति महात्मानं तै चोयं महाभक्षणाः || ७ ||

मंत्रियों की वात छून, राजा ने श्राद्ध जोड़ कर, महात्मा विश्वाभि- 
पल्लवो राम लक्ष्मण के कहा || ७ ||

इद्र्य धनुषर्वः बहादुरकैरियुनिते भूतिः 
राजरितिन महात्मियंशत्ताः पूरितं पुरा || ८ ||

है स्मरान! यह श्रीरंधुष वही है, जिसका पूजन तब निश्चितवशीय 
शातिके करते चले आते हैं और यह वही धनुष है जिस पर बड़े बड़े 
पराक्रमी राजा लोग राष्ट्र नहीं चढ़ा दे रहे || ८ ||

वार १०—२६
नैतिकत्वरणा: सबै नाशुरा न च राक्षसां। \nगन्धर्वव्यश्रमवरा: सकिन्तरभोगरां। \nक गतिमान्वपाण्य च धनुपोस्तक प्रपूर्णे। \nआरोपणे समायोगे वेपने तोठनेप्रि वा। \n
समस्त वेचना, ब्युद्युर, राजस, गन्धर्व, यता, किन्त्र ब्रेहा नाम \nभो जब इस धनृप की रक्षा ही सुझा कर इस पर रोत्रा नंत्ते चढ़ा \nसके, तब बपुरे मघुष की से वात ही कर हे आ। इस धनृप पर \nरोत्रा चढ़ा सके। \n
तदेवतद्गुप्तां श्रेष्ठानीतं स्निकितय। \nद्वेरयुनमहामाय अनेऽथा राजस्त्रयेः। \nहे ज्ञानलोकेष्। वह श्रेष्ठ धनृप भा गया हे। \nहे महामाय! \nउसे \nइन राजस्त्रयों को तिक्षुपाया। \n
विशवाभिन्नशुभ धम्मत्वाः श्रुत्या जनकभापितमू। \nवत्स राम धनृप: पश्चय इति रायवमवीरित्। \n
धम्मत्वाः किवाभिषु के जे जब राजा जनक के वेचन हुने, \nतब उनहोंने श्रीरामचंद्र जी से कहा—हे वत्स! \nइस धनृप का \nदेख। \n
उपमेयचनानामेऽ यह तित्ष्ठति तदनुः। \nमधुरां तामपार्थय दध्वा धनुर्यातात्वे। \nमहार्षि के वेचन हुन, \nश्रीरामचंद्र जी वहां गये जहां धनृप \nया वैरवा उस पेटी के, जिसमें वह धनृप था, \nके ला कर, \nदेखा ब्रह्मचर वेले।
इदं धनुवर्तं बलान्तस्पुष्पामीह पाणिना।
यन्त्रांश्च मन्त्रव्याम्यष्टि तीताने पूर्णेपि वा। ॥ १४ ॥

हे प्रजास्त! प्रय इस धनुष क्षेत्र में हाथ लगाता हैं और इसे उठा कर इस पर रोटा चढ़ाने का प्रयत्न करता हैं। ॥ १५ ॥

चाहिमत्येव तं राजा मुनिनिः समभाषत।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनानुसरे। ॥ १५ ॥

राजा तज्जन और विख्यामित्र ने उनकी वात प्राश्नकार करते ग्रहे कहा “बहुत प्रक्ष्या”. मुनि के वचन सुन, श्रीरामचन्द्र जी
ने रिना प्रयास धनुष की बीच से पकड़ उसे उठा लिया। ॥ १५ ॥

पश्यतां तस्यहस्ताणां वहुना रघुनंदनः।
आरोपयत्स धर्माल्मा सत्तीलिभिव तद्युः। ॥ १६ ॥

प्रीति दर्जारो मनुष्यों के सामने धर्माल्मा श्रीरामचन्द्र जी ने बिना प्रयास उस पर रोटा चढ़ा दिया। ॥ १६ ॥

आरोपयित्रा धर्माल्मा पूर्यपास वीर्यवान।
तद्भवत्ता धनुर्मध्ये नरशेषो महायशा। ॥ १७ ॥

महायस्त्रो मुखोऽस्तरम पवं चलवानु श्रीराम ने रोटा चढ़ाने के चारों तरी की खोजा, तथा ही वह धनुष बीच से टूट गया।
प्रयोत्त उस धनुष के बीच टूटके ही गये। ॥ १७ ॥

तस्य शाब्दो महानासोतिनिर्वाहसमितिस्वस्मांः।
भूमिकम्पं नामान्यवर्तस्येव दीर्घः। ॥ १८ ॥
उसके दूसरे का शब्द वज्रपात के समान हुआ। बड़े झोर से भूमि हिल गयी और बड़े बड़े फाड़े पड़े गये। ॥ १८ ॥

निपेद नर: सर्वे तेन शवदेन मोहिता।
वर्जिता सुनिवरं राजांन तौ च रायवो। ॥ १९ ॥

चतुष्प के दूसरे के विकराल शव के होने पर, विज्ञानिमिव, राजा जनक और दोनों राजकुमारों की छाड़, सब लोग मुर्जित ही गिर पड़े। ॥ २० ॥

प्रत्याप्तस्वे जने तस्मिन्नरा विगतसाध्वसः।
बचाक प्राञ्जलिवधि वायुयो मुनिपुज्यम्। ॥ २१॥

सब लोगों की मुड़ी मुड़ी हुई वे सचेत हुए तथा राजा जनक के सब सन्तोष हूँ ही गये, तब राजा जनक हाथ नाड़, चतुर विज्ञानिमिव से कहने लगे। ॥ २१ ॥

भगवन्तप्रदीवीयो में रामेद दशरथात्मकः।
अत्यङ्गुतमचिन्तपूर्वर न तर्कितमिद्व मया। ॥ २२ ॥

हे भगवन्। महाराज दशरथ जो के पुत्र श्रीरामचन्द्र जो का यह प्रत्यक्त विद्वंद्वीयाद्वित्त्व प्राचीन प्रेम अतर्कित (जिसमें संवेदन करने की गुज्ज़क्षण न हो) पराक्रम में नी ठेला। ॥ २२ ॥

जनकानां कुले कौस्तिम्पाहारियति में सुता।
सीता भर्तरमासाच राम दशरथात्मकः। ॥ २२ ॥

1 विगतसाध्वस हल्लेन रामजामात्तानंतरपारत्म पञ्चुरावृपणमपि इति।
2 वेदविति पूर्वभातेः, वृश्चितिगम्यते। (गो)
मेरो वेठो सीता, महाराज द्वारका जी के पुत्र श्रीरामचन्द्र जी
की धनपदी पति बना कर मेरे चंचल की कौश्य केलायेगी। २२॥

भम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिकि।
सीता प्राणेन्हुन्ता देया रामायं ये मुट। २३॥

हे कौशिकि! मने सीता के विवाह के लिये "वीर्यशुल्क" की
जो प्रतिज्ञा ही तो नह भाषा पूरी है! गया। यह मे अपनी प्राप्तें
से मे वह कर प्यारी सीता श्रीराम के हृद्य। २३॥

भन्तोऊँनमुने प्रहार्यशीघ्रं गच्छन्तु प्रतिज्ञा।
यम कौशिकि भर्तु ते अयेयां लवितमा रथेः। २४॥

हे ग्रहानु! हे कौशिकि! यदर आपकी समस्त धरा ता
थर पर सबार हो श्रीघ्र धरुग्राहा के जान। २४॥

राजानं प्रभुत्रेत्वकैर्राणयं तु पुरं यम।
प्रद्रानं वीर्यशुलकयामा। कथयंतु च सर्वेऽ॥ २५॥

श्रीर महाराज द्वारका के नर्तमाप्पुर्वक यहां का सारा हाल
खुला कर, यहाँ लिखा लावै। २५॥

गुलिकृतिः च काकुलस्थो नौपनां रापाय वे।
प्रीयमाणं तु राजानमापनयं शुवीरागा। २६॥

श्रीर महाराज के, आपसे रतित, दोनों राजकुमारों का कुशल
समाचार भी मुनावें श्रीर इस प्रकार महाराज के प्रस्तुत कर, उन्हें
भार्त श्रीघ्र यहां वुला लावेः। २६॥

१ प्रकृति:—विनियानितैः। ( गौ )
वालकायहे

कैशिकश तथेत्याहूँ राजा चाकाहैष्म वत्तिक।
अयोध्या मेषयामास मयातित्वा कुत्तासनानाः।

इति सत्सपतितम: सर्गः इ

इस पर जव विश्वामित्र ने कह दिया कि, वहुत अच्छी वात
है, तव राजा ने मंत्रियों की समस्या कर श्रीर महाराज दृष्टांक के


बालकायहे का अर्थलाप सर्गः पूरा हुआ।

—**

श्रुपपतितम: सर्गः

—**

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते कान्तवाहनाः।

ग्रीराणसुपिता मार्गं त्रेयोध्यां प्राविशन्युरोमू।

राजा जनक को आहार पा वे दूत श्रीग्राममी रथों पर सवार

हो श्यर रास्ते में तीन राहि व्यतीत कर, अयोध्या में पहुँचे। उस

समय उनके रथ के बेड़े थक गये थे।

राजो भवनपासाध्य द्वारस्थानिधिमुवन।

श्रीग्रां निवेद्यार्तः राजो दूतानो जनकस्य च।

श्यर राजभवन की ब्योध्री पर जा कर द्वारपालों से यह बोले

कि, जा कर तुहार महाराज से निवेदन करो कि, हम राजा जनक के

दूत (भापके दृष्टन करना चाहते) है।

—**

1 कृत्तासनान—दृतक्ष्याणस्वेद्व पत्रिकानिलयं। (नेतृ-)

—**
इत्युक्ता द्वारापालस्ते रायवार्य न्यवेदयन्।
ते राजवचनादूता राजवेष्म प्रवेशिता: ॥ ३ ॥

हुम्बो के पेंसा कहने पर उन द्वारापालों ने जा कर महाराज
द्वाराय से नियंत्रण किया। तब महाराज द्वाराय की परवागी से
राजा जनक के दृढ़ राजस्वन के मीतर गये। ॥ ३ ॥

दद्धुर्देववस्त्रां वद्वने द्वाराय तुषप्तम्।
वद्धार्भिलिपति: सर्वं दूता विगतसाध्वसां: ॥ ४ ॥

राजानं गणता वायनमेनुवनन्धुराशसस्।
मैथिलो जनकेऽरा राजा सामीहोवपुरस्त्रकत्तम्। ॥ ५ ॥

कुशालं चाव्यं चैव सेपाध्यायपुरोहितम्।
मुहुर्दुर्मूख्यर्या स्नेहसंवुक्त्या गिरा। ॥ ६ ॥

जनकस्यां महाराजास्स्मिस्त्रे स्मुरिसरसम्।
पुष्या कुशालमध्यग्रं बैदेहा मिथिलाधिपिः। ॥ ७ ॥

चहरा जा कर उन लोगों ने द्वेषपम वद्वने महाराज द्वाराय के
द्वार किये छोर उनके सैनिक को देख निभर्य हो, तथा हाथ
कोड कर बड़ी नम्रता से यह मधुर चलन बाले। महाराज!
मिथिलापुरी के घाम, महायजशाली राजा जनक ने वारंबार मधुर
सैनक स्नेहसुक्ष्व वायो तथा शान्त मन से आपको, छोर आपके
पुरवासियों की कुशाल चैम, पूँछ है। ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥

1 विगतसाध्वसां:—द्वाराय सुषम्ये विद्यापमेनिष्मं। ( गोद )
कैशिकाज्ञुपतो वाचते भवन्त्यिद्मदववीदत
पूर्व मतिज्ञ दिनिता वीर्येशुलका मनातमला || ८ ||

श्रीर विश्वामित्र जो की भ्रुमाति के वाचको यह सत्तेसा स्वेदा है कि, श्रीमान् के तो यह मालुम ही है कि, नेरी पुश्कर वीर्येशुलका हैं || ९ ||

राजनाथ क्रतामण्य निर्वाणा विमुखीक्रमः
सर्वे मम दृष्टा राजनिविश्वामित्रपुरःसरेः || १० ||

उस्के लिये यह निक राजा लोग इतना लाह है, विमुख हुए || उस मेरी क्षेत्र का विश्वामित्र के साथ || ११ ||

षड्च्छायाः स्तगति रोनिनिता तव भुवकः ||
तच राजनिविश्वामित्रमध्ये शुभं महात्मनम || १२ ||

रामेण हि महाराज यहत्यां जनसंसदि
असे देया मया सीता-वीर्येशुलका महात्मनेः || १३ ||

सेरे सौमाय्य से प्रा कर श्रीमान् के कुँवर ने जोत लिया है ||
क्योंकि महात्मा श्रीरामचन्द्र जो ने एक बहुस समां के बीच, स्व दिव्य धनुष का बीच के बीच से तोड़ा है || अतः मैं भाग्ने वीर्येशुलका
सीता का विवाह श्रीराम जी के साथ करना चाहता हूँ || १४ ||

प्रतिज्ञा तत्तत्त्वावधाने विद्त्वातात्महेः
सोपाव्यायो महाराज पुरोहितपुरःसरः || १५ ||

1 षड्च्छाया—मद्याग्रेश्याः (गोरे)
जिसने में अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकूँ। ध्यान इत स्मरण के विनय में सुने था तुम। है महाराज। ध्यान उपास्याथे धौर देन्त्रितों के सहित। १२।

श्रीचन्द्रमागच्छ भूरे ते व्रजस्त्वति राज्या।

प्रीति च गम राजेन्द्र निर्गृहस्तिपितुमहिसि। १३।

गीत्र यहाँ पधार कर अपने राजस्वारों को तैलिये धौर हे राजेन्द्र। मेरी प्रीति की लिबाहिये। १३।

पुत्रवेदोस्योरेत् प्रीति त्रयं संस्कुरसं।

एवं विदेहारितपिरिगुरं वाक्यमन्वितू। १४।

विरश्चारिक्रमांत्रुत्तातुः शतानन्दस्ते स्थितं।

इत्युक्तवा विरतता दूता राजगैरवशक्तिताः। १५।

धौर यहाँ पधार कर दोनों राजस्वारों के विवाह की शोभा देव प्रति दृढिये। है महाराज। यह श्रम सात्वस, महाराज जनक ने, महर्षि विश्वासिं मध्य धौर धार्मिक सुपरोहित शतान्त्र जी की भावुकता से धार्मिक सेवा में निवेदन करने का कहाँ है। इतना कह धौर दुर्शारथ के रूप में ध्या द्रुत घुम हो गये। १४। १५।

दूर्शारय तु तच्छृत्वा राजा परपरिपति।

वसिष्ठ धार्मेव क वन्त्रिणोपन्यासं सोभावीत। १६।

उन दूरतों के सतों की सुन महाराज दुर्शारथ प्रत्यर्द्ध प्रकाश धौर विद्ध, धार्मेव तथा धौर राज्य मंत्रियों से कहने लगे। १६।
गुण: कृत्रिकपुस्त्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः।
क्षयेण सह भ्रात्रा विदेहे पुत्रस्यसि॥ १७॥
विभवामित्रे से राज्य, कौशल्या के भ्रान्ति के बढ़ाने चलते
श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण चढ़त, आज्ञाकर मिठिलापुरी में हैं॥ १७॥

dविवीर्येन्द्र काकुट्स्यो जनकेन महात्मनः।
संभद्रां सुतायायासु राजने कुर्मिन्धित।॥ १८॥

श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम राजा जनक भगवती माता देवी
दुल्लुं हैं धीर सब ये भ्रात्री पशुं का विवाह श्रीरामचन्द्र जी के
साथ करता बाहर है॥ १८॥

यदि वेस रोचते वृत्त जनकस्य महात्मनः।
पुरीः गच्छमहे श्रीघर शा महाकालस्य पर्यौङ्॥ १९॥

यदि इसे ध्राप लेग पसंद करें, तो हम लोगों का मिठिला।
पुरी के लिये शिंग्रा प्रस्थान करना चाहिये, जिसके वहां पड़े
ने चित्रम्ब न हो॥ १६॥

[नोट—इस श्लोक में “यदि वृत्त वेस रोचतै वृत्त” के देखने से यह
अभाव होता है कि, रामायणकाल में एकादिपल राज्याधिकार प्राप्ति
प्राप्त होने पर भी, तकाशीन राजा लेग अपने वरिष्ठ कार्यों में भी अपने
पार्वती लिये की सम्भावना विवृत बना देगा एक धर्म नहीं करते थे।]

मन्त्रणो! वाहिमत्याहुः सह सवेंमवहिमिः।
सुमीत्रायावद्राजा श्वो यागर्तित स मन्त्रणः॥ २०॥

महाराज का वचन लुप सब उपस्थित िक्षिप्तो धीर संत्रियों
ने कहा—“यह ता बहुत ही अच्छी वात है।” तव महाराज ने
एकोनसततितमः सर्गः

प्रसन्न हो कर मंत्रियों से कहा—“तो कल ही यहाँ से चल देना चाहिए”॥२०॥

मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रण रात्रि परमसत्कुरतः
ठुपु: प्रमुःतिता: सर्वे गुणः: सर्वे: समन्विता: ॥२१॥

इति प्रथमप्रितमः सर्गः ॥

राजा जनक के मंत्रियों की, के दूत बन कर प्रथोष्टा गये थे,
हड़ी प्रथम तरह वातिस्ततारी की गयी और उन लोगों ने बड़े
खुश हो रात्र व्यतीत की ॥ २१ ॥

वालकायद का घरस्तहर सर्ग समाप्त हुया ।

---

एकोनसततितमः सर्गः

—ऍ—

ततो राज्यन्ते व्यतीताया लोकाच्यायः सचान्थवः ॥

राजा दशरथो हृद्रु: सुप्रभूमिभिन्दसचिन्तवः ॥ १ ॥

रात बीतने पर महाराज दशरथ, उपाच्याय और क्षुद्र-वाण्यों
सबित, प्रसन्न हो अपने प्रमुख मंत्री सुप्रभू से यह बाले ॥ १ ॥

अद्य सर्वेन चन्द्राद्य सर्वमादाय पुक्कजमुः

प्रजन्तवशे सुविन्तिन नानारंभसमन्विता: ॥ २ ॥

प्राय सब से पहले हमारे सब लुस्जनची लोग बहुतसा घन और
तरह तरह के रूप प्राप्त साथ ले कर विभित प्रवन्ध के साथ अपने
बाले ॥ २ ॥
चतुर्दश धर्म सर्वं शीघ्रं निर्यातु तर्कसः।
मयाजातसमकालं च यान्युप्यनपत्तमध्॥ ३॥

वेरी समस्त चतुर्दशिणी येन शोभ ही तैयय की जाय। उनके साथ ही यथा श्रीर राजकां की तैयय की जाय। देखो मेरी याया में स्तन्त न पड़ने पावे॥ ३॥

वसिष्ठो वामदेवत जावालिहिर्य कारयप।
मार्कन्देयः सुदीर्घयुक्तिः कात्यायनस्तथा॥ ४॥

वशिष्ठ, वामदेव, जावालित, कर्त्तरो, हीरोषु मार्कन्देव, भी कात्यायन।॥ ४॥

एते द्विजो मयान्त्वे स्वन्द्रम योजयस्त से।
यथा कालात्यथेऽ न स्वात्रूदुता हि लपरयिनत मास।॥५॥

ये सब भ्राया द्रागे चल्ले। मेरा यथा भी तैयय कराप्रो, जिसके देर न देखने पावे। देखा, राजा जनक के दृत जलदी कर रहे हैं।॥ ५॥

वचनातु नरेन्द्रस्य सा सेना चतुर्दशिणी।
राजानुपीयितः सावः त्रजन्ति पुष्टोतानवानि॥ ६॥

जव महाराज दशरथ, उक्त अखेरो के साथ रवाना हुए, तब उनकी याया से चतुर्दशिणी सेना उनके पीछे पीछे चली॥ ६॥

गत्वा चतुर्दश मार्गं निदेहान्युपेश्वितां।
राजा तु जनकं श्रीमात्सुत्त फूलमकस्वयत।॥७॥

१ यान्युप्य—यानं शिश्वकालेष्विकारिति; युथं रथादि। ( सूत ्)
रास्ते में चार दिन बिता कर, महाराज दशरथ जनकपुर में जा पड़े। उधर इनका आगमन हुन राजा जनक ने इनके सकार के लिये सव सामान सजाये और थाये जा कर बड़ा आदर सकार किया। ॥ ७ ॥
ततो राजानपासाच विज्ञ दशरथ नृपम्।
जनकां चुम्मितो राजा हर्ष च परम यस्माः। ॥ ८ ॥
राजा जनक, छुद महाराज दशरथ जी से मिल कर परमानन्द हुए। ॥ ९ ॥

cvāch ch nṛshēṇha nṛshēṇha ṅuddāniṃtāḥ।
sāgant te mahāraja dīṣṭha maṇṇasī rājvaḥ। ॥ ९ ॥

श्रीर नरशेष जनक नरशेष दशरथ जी से प्रत्यंत हुए। वो—हे महाराज में आपका स्वागत करता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है, जो आप प्रवाह देते हैं। ॥ ६ ॥
पुनर्यात्मकाः स्वीति लक्ष्यते स्वीर्यानन्दिताय।

dīṣṭha maṇṇa maṇḍraṇa yuṣṭha bhagavatāpya।।१०।।

प्राप्ते द्वारा पराक्षमहाराजसाधकों की देश कर, आप परम प्रसन्न होंगें। यह मेरी वढ़ी ही सीमाभव्य की वात है, जो महात्मजी को सकार, जीवन भर के क्रिया। ॥ १० ॥

सह सर्वविन्द्रस्वरूपदीने वैरिव शतक्त्तु।।

dīṣṭha maṇṇa niṣñita vishva dīṣṭha maṇṇa maṇṇa kriyā।।२१।।

cव क्षुपिया के साथ, द्रव्याच्छादन सहित इन्द्र की तरह, यहाँ प्रवाह है। सीमाभव्य की वात है कि, कल्याण वक्ष्य समय के समस्त विवेक प्रव नहीं है गये, और मेरा यह प्रतिष्ठित कुल ही। ॥ २१ ॥
राजे: सह सच्चन्या दृष्टे श्रेष्ठमहात्मयम् ।
व्यः प्रभाते नरेन्द्र त्वं निर्वित्तितमहिः ॥ १२ ॥
यज्ञस्याने नरश्रेष्ठ विवाहग्रुपसम्पत्तम् ।
तस्य तद्वर्चनं श्रुतवा ऋषिमध्ये नराधिपः ॥ १३ ॥

वीरों में श्रेष्ठ धीर भ्राता महात्मा शुद्धशिष्योऽस्य साध सम्बन्ध होते
से प्रतिष्ठित हो गया । हे नरेन्द्र ! भ्राप कल प्रातःकाल यज्ञस्तनानन्
( अवस्था ) हो बुधने पर, ऋषियों की सम्बन्धी से विवाहचार
की रूप्ति कराते । इसी प्रकार राजा जनक के वचन सुन कर,
ऋषियों के बीच बैठे हुए महाराज दशरथ, ॥ १२ ॥ १३ ॥

बाक्यं बाक्यविद्वारं श्रेष्ठं प्रत्यवाच महीतपिताः ।
प्रतिग्रहो दातुवशः शुभमेतनम्या पुरा ॥ १४ ॥

लेठ वाले में चतुर थे, राजा जनक से वाले—हमने
तो यह पहले ही से सुनरखा है कि, दान, दान देने वाले के अनुभवः
है ॥ १४ ॥

यथा बच्छ्यसि धर्मज्ञ नत्करिष्यामहेव यथम ।
पर्विष्ठं च यज्ञस्यं च वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥

हे धर्मज्ञ ! प्रति प्राप्त जैसा कहेंगे, हम लोग वैसा ही करेंगे ।
सत्यवादी महाराज दशरथ के पेशे धर्मज्ञक धीर यश बढ़ाने वाले
वचन ॥ १५ ॥

श्रुत्वा विदेहाचित्वं परं विस्मयमागतः ।
तत्र सर्वे मुनिगणः पर्स्परसमागमे ॥ १६ ॥

छुट, राजा जनक की बड़ी विस्मय हुया । ( विस्मय होने की
बात यह थी कि, राजा जनक की प्रतिष्ठा के अनुसार सीता जो जव
प्रथमसततितमः सर्गः

ध्रीरामचन्द्र की न्यायानुसार ही ही चुक्नी, तव महाराज दृशयथ जी यह विनन्द्रवचन कि, “दान, दान देने वाले के आर्थी हैं” कथाकहते हैं। प्राथ्याय राजा जनक सीता का दान नहीं करते। साधूसी जी ते (‘ङ्गीर्ष्युक्ता’) तदनातर अंगियों ने भी आपात में मिल में कर। १५

हर्ष्यण महत्ता युक्तात्मा निशामसननुष्कमः।
राजा च राजस्वस्ती मुत्रां निशाम्य परिवर्तितः।
उवास परममीता जनकेनाभिपुजितः।। १७ ||

व्यायम परस्परता के साथ वहाँ रह कर राज वितायो। महाराज दृशयथ भी प्रियपर मुद्रां (ध्रीरामचन्द्र राज दृशयथ) की देख, प्राथ्याय प्रस्थल भी राज राजा जनक की न्यायसत्तायी से सहभागिताकर वहाँ वास किया। १७।

जनकेशिपि महातेजः क्रियां धर्मेन तत्तवविदः।
ध्रुबय च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिशुलावः ह।। १८ ||

इति प्रथमसततितमः सर्गः।

उदार राजा जनक ने भी यह अधार विवाह की करने योग्य दीर्घिता भूल कर के, विधाम किया। १५।

वाल्कागढ़ का उन्हेंसर्वसंग समात हुआ।

—१५—
सहतितस: सर्गः:

ततः प्रभुते जनकः कुतकर्मी महापरिशिष्टः।

उच्चाच वाक्यं वाक्यं शतानन्दः पुरोहितस्मृ॥ १ ॥

प्रातःकाल होते पर राजा जनक अनुश्रव्यों की सहायता से
यज्ञार्थि किया लमात कर, अपने पुरोहित शतानन्द जी से वेले ॥ २ ॥

आता मम महातेजा प्रवीणानंतिरार्थिः।
कुशलवन् इति ख्यातं पुरीवध्यवसनचुभास्य॥ २ ॥

देवो महाकेश्वरी, महाकविवाच धीर धैयत धर्मिष्टं कुशलवनु
नाम के मेरे छोटे माई साहित्य नाक दिनि पुरों में रहते हैं ॥ २ ॥

वायुपेश्वर्यं विविष्ठि नविनः।
संकाल्यां पुनःसंकालां विमानाविदु पुष्पकम् ॥ ३ ॥

संकाल्यां नाम पवित्र पुरों के वारों धीर उसकी रक्त के लिए
खाईं (परिपूः) है धीर तरह तरह के यंत्र (कल्रे) हैं। इसके नदी
पात ही बहते हैं धीर वह पुष्पक विमान के याकार की वनी हुई
है ॥ ३ ॥

तमाः द्रष्ट्रिमिच्छामि यन्नगोसारे से मे मतः।
प्रीति सङ्गमि महातेजा इमा संभाता मया सतः ॥ ४ ॥

मेरे यह में सामग्री ध्यानी मेज कर सहायता करने
वालो में अपने उस प्यारे माई को देखना चाहता हूँ। वह

¹ कुतकर्मी—समाहयविधिमिः। (गो) ² अवभूका—यंत्र अवभूकतः
³ चुकः। (रा) ⁴ यज्ञगोसा—प्राकाशयेष्ठया यज्ञसामग्री अपृण्यथितिभावः।
(गो)
भी इस विवादोत्सव में सम्मिलित हो हम लोगों के साथ श्रान-न्दित हों ॥ ४ ॥

एवं युक्ते तु वचने शतान्दस्य सत्त्वः।
आयताः केचिदन्या
जनकस्तान्समादिदिवात् ॥ ५ ॥

इस प्रकार राजा जनक शतान्द्र से कह ही रहे थे कि, इसी बीच में सामने कुछ सामर्थ्यवान् (वेस काम होया जाय, उसकी श्रवणे शुद्धिवाल से करने की सामर्थ्य रखने वाले) दृष्ट भा गये।
राजा जनक ने उनकी जाने की श्राहा दी ॥ ५ ॥

शासनातु नरेन्द्रस्य प्रयुः श्रीप्रवाजिभः।
समानेतु नरचायां विष्णुपिन्द्राज्या यथा ॥ ६ ॥

वे हूँ राजा जनक की श्राहा से श्रीग्रामी घोड़ों पर सवार कर कर, पेश किये रहे, तब इत्य श्राहा की पाठ हो कर, देवता लोग चामन ले कर श्राहा दे गये थे ॥ ६ ॥

सांकाश्यां ते समागता दद्युग कुश्वभजस्व।
न्यवेदयन्यायावत्रं जनकस्य च चिन्तितस्व ॥ ७ ॥

सांकाश्या पुरी में पहुँच कर वे राजा कुश्वभज से मिले घीर जनक महाराज ने वे सन्देसा भेजा था, वह व्यों का व्यों निवेदित किया ॥ ७ ॥

तद्दूर्दं नृपति स्त्रुता दूतश्रेष्टेवः।
आज्ञायायार्थ नरेन्द्रस्य आजगाय कुश्वभजः ॥ ८ ॥

१ अध्यायः—समायः । ( र० )
बि० र०—३०
बाजकायवें

उन महावली श्रेष्ठ दूतों के द्वारा राजा जनक का संदेश
झून, राजा जनक के आराधना सार राजा कुशधवज जनकपुरी में ध्या
गये "य "

स ददशे महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम्।
सेजभिवाच शतानन्दं राजान्त्व चतुर्थार्थाम्बकम्।।९।।

जनकपुरी में ध्या कर राजा कुशधवज, धर्मवत्सल एवं महात्मा
जनक जी से मिले और शतानन्द जी तथा अद्वैत धर्मिष्ट जनक जी
की प्रशंसा किया "६ "

राजाईं परम्दिव्यमासनं साध्यरीति।
उपविशाधु女神 तै तु भारतरावसितायिन।।१०।।

तदन्तर वे राजाओं के बैठने श्रेयस् श्रास्त्र पर बैठे। जब वे
अति तेजस्वी दूरी भैर भासन पर बैठ गये "१० "

पेष्यामासतुवीरीं मन्त्रश्रेष्ठं चुदापनम्।
गच्छ मन्त्रिपते श्रीगौतमकामित्यम्।।११।।

तब उन दूरी वोरों ने मंत्रिप्रवर चुदाम मानक क्रय अपने संतो के
(दशरथ महाराज) के पास मेजा और कहा कि, हे मंत्रिपते! तुम
शीघ्र श्रामित तेजस्वी महाराज दशरथ के पास जाओ।।११।।

आत्मजें सह दुर्घर्षसाधनस्त्व समन्त्रिणम्।
औपकायी स गत्ता तु रघुकां कुलवर्धनम्।।१२।।

१ औपकाय—दशरथविलासिनििवेशं (शो।)
सत्यात्मः सर्गः ॥ ४५ ॥

धनर उन दुर्गर्म महाराज के नया राजकुमारों धीर मंत्रियों के यथा हुला लागें। यदि खुन वह मंत्री वहाँ गया जहाँ महाराज दृश्य जो देखे तंत्राओं में ठहरे हुए थे ॥ १२ ॥

ददर्श शिरसा चैतनधिवृद्धेद्विगुलित ।
अथोध्यायिपते धीर वेदेह्रा मितिशारिप ॥ १३ ॥

धीर उनके सामने जा तथा प्रणाम कर बोला—हे धीर
प्रयोध्यानाय मितिशारिप विदेह ॥ १३ ॥

स त्यां तुपुं मन्तः सत्यायापुरौहितसमुः।
मन्दिरश्रेष्ठां शुल्का राजा सर्पिग्नासतदा ॥ १४ ॥

राजकुमारों, उपाध्याय धीर पुरोहित सहित आपके दर्शन
करना चाहते हैं। उस श्रेष्ठ मंत्री के यह वचन खुन, महाराज दृश्य,
ज्ञूतियों ॥ १४ ॥

सत्यायारपृणत्र जनको यत्र वर्तते ।
स राजा मन्त्रिसहित सेपाध्यायः स्वानाथवः ॥ १५ ॥

धीर वन्यु वान्यवाण सहित वहाँ गये, जहाँ राजा जनक ध्रुपने
पुरोहित, वान्यवाण धीर मंत्रियों सहित थे ॥ १५ ॥

नाक्यं भाष्यविद्वां श्रेष्ठो वेदेहृदयपृणत्रवीत।
गिरिदित्ते महाराजं इत्यश्वाकुकुलदैवतस्य ॥ १६ ॥

वेदनें में चतुर्महाराजं दृश्य, राजा जनक से बोले। है
जनक जी महाराज ! आप तो जानते हों तो, भगवान बशिष्ठ
जी इत्यश्वाकुल के देवता हैं ॥ १५ ॥
वक्ता सर्वेणु कुल्येपु वसिष्ठो भगवानापीः ।
विश्वामित्राश्युताः सह सर्वेनेहंरिपीः ॥ १७ ॥

और ऐसे सब कार्यो में सेरी श्रोर से वाले वाले भगवान
वाल्य नापि जी ही हैं । तथा विश्वामित्र जी को तथा अन्य
महर्षियों की सत्ताह से ॥ १७ ॥

एष वहुिति धर्मात्मा वसिष्ठ्स्ते यथाक्रमः ।
तूणि योद्धे दशरथे वसिष्ठो भगवानापीः ॥ १८ ॥

धर्मात्मा वाल्य जी ही हमारी नेत्राचली यथाक्रम श्रापेवो
घनवरे । यह कह जब महाराज दुसरथ जूप हुए, तब भगवान
वाल्य उपरिय ॥ १८ ॥

उबाच वायुं वायुं वेदेः सप्तरोहितमुः ।
अन्यन्नमेवो श्रावचा शायवतो नित्य अवश्यः ॥१९॥

जो बातचीत करने का दंग सहली भांति जानते थे, राजा जनक
तथा उनके पुरालित ( शतानां जी ) की समावधन कर कहने
लगे । हे राजा ! अवश्य ( प्रत्यक्षाधागोचरं वस्तु प्रभवं
कारं यथा सौभाग्य प्रभवं ) ब्रह्म से, व्रजा जी उपस हुए, जो सनातन,
निष्ठा और अवश्य हैं ॥ १६ ॥

[ नोट — हुस श्लोक में “शायवत” “निष्ठा” और “अवश्य” तीन विशेष-
णवनपा के लिये आये हैं, उनके अर्थ इस प्रकार हैं ; “शायवत” का अर्थ है बहु-
कार्य स्मायी ! “निष्ठा” का अर्थ है धिराढं काल तक नावा रहित और
“अवश्य” का अर्थ है प्रजाः रूप से प्रतिक्रिया में रहने वाले । ]

तस्मान्मारीचि संजयो मरीचिः कार्यायः सुतं ।
विश्वान्ताय्यापालने मूलवैवस्तवः स्थूलं ॥ २० ॥
सत्तितमः सर्गः ॥ ६७॥

चतुर्षे मरोचि, मरोचि से कर्यय, कर्यय से सूर्य, सूर्य से वैवस्तव मन्त्र हुय इलाह कारण यथा ॥ २०॥

मन्त्रः प्रजापति: पूर्वमिन्नप्रकृति मध्योः सूर्यः ॥ २१॥

तमिन्नप्यस्यायाम् राजान् विद्वेद पूर्वकमः ॥ २१॥

यद मन्त्र प्रथम प्रजापति: कहतः। मन्त्र से इट्ठाकु बन्ध जो व्रतार्था के प्रथम राजा ये ॥ २१॥

इट्ठाकु तथा एव: श्रीमानकुसिरित्वेव विश्वुः ॥

कुसिरित्वात्मनः श्रीमान्नकुसिरितव्यासः ॥ २२॥

इट्ठाकु के पुत्र कुति श्रृण्डात्र कुति के विकुतिः नामक गुढ़ उपचा इलाह कारण ॥ २२॥

विकुतिः हेतु महतेजा वाणः पुरुषः प्रतापवानः ॥

वाणस्य तु महतेजा अनन्येन महाराजः ॥ २२॥

विकुति के महतेजचुल्ली श्रृण्डात्र प्रतापो वाणः हुय ॥ बाणा के महा-प्रसीज्जवो श्रृण्डात्र महायस्त्री ध्रुवराज्य हुय ॥ २२॥

अनन्यवात्त्रधुतुः निश्चुदु कुल्ले: सूर्यः ॥

निश्चुदुको भवत्रधुतुः ध्रुवः पारस्य महायस्त्रा: ॥ २४॥

ध्रुवराज्य के पुष्ठ श्रृण्डा पुष्ठ के निश्चुदु हुय ॥ निश्चुदु के ध्रुवमार नामक महायस्त्री पुष्ठ हुय ॥ २४॥

ध्रुवमार सर्नमहातेजा युवनार्यो महावर्गः ॥

युवनार्यं सर्नस्य सन्नमान्यान्तिता पृथ्वीपतिः ॥ २५॥

ध्रुवमार के महावर्गी युवनार्य हुय । युवनार्य के पृथ्वीपति मान्याताः हुय ॥ २५॥
मान्यातृस्तु सुतः श्रीमन्तुससनन्तिरस्दपधतः
एसन्घेषवि पुष्ठृ दृश् भुवसनन्ति प्रसेनजितः ॥ २६ ॥
मान्याता के सुलिधि नामक पुत्र अवसर हुए। भुवसन्धि के
के पुत्र हुए, जिनके नाम ये भुवसन्धि और प्रसेनजितः ॥ २७ ॥
यशस्वी भुवसन्धेश्वरे भरते नाम नामतः ॥
भरतातु महातेजा असिते नाम जातवान् ॥ २७ ॥
यशस्वी भुवसन्धि के भरत और भरत के महातेजस्वी द्वितिः
हुए ॥ २७ ॥
यस्यैते पतिराजान जदपन्थन्त श्रवः ॥
हेयस्ताझ्लत्ववार्थ शूरार्थ शशिबन्धूः ॥ २८ ॥
प्रसिद्ध के हेतु, तालजम्भू और शशिबन्धू तीन पुत्र हुए। ये
तीनों चौर राजा हुए, किन्तु इन तीनों ने उपने पिता प्रसिद्ध के
साथ बैर बन्धा ॥ २८ ॥

tांस्तु स प्रतियुघन्ते युद्धे राज्याल्पवासितः ॥
हिमवत्सुपागम्य भायाभ्यां सदिशस्तदा ॥ २९ ॥
प्रेम और प्रसिद्ध के। लड़ाई में, हुए कर राज्य के मिकाल दिया।
तव राजा प्रसिद्ध यथावत् दो राजकीयों के साथ ले कर, हिमालय पर
चले गये ॥ २६ ॥

असितेन्द्रक्षयेऽराजा कालुपर्वेयपिन्यानुः
है चास्य मायें गंगिविय व्युक्तुरित श्रुतम् ॥ ३० ॥
प्रत्यक्षके राजा प्रसिद्ध वहाँ (हिमालय पर) जा कर मर गये।
उस समय उनकी देवी रानियों गर्भवती थीं ॥ ३० ॥
मसतित्रम् सर्गः  

एका गर्भविनाशश्च सपल्येऽसगरं दृश्योऽ
ततः ईश्वररं रम्यं चबुधामिरतो मुनिः ॥ ३१ ॥

एक ने चर्चनी सौतं का गर्म नष्ट करने के लिये उसके विष दे दिया। उस समय उस हिमालय पर्वत पर एक मुनि रहते थे; ॥ ३२ ॥

भार्गवश्च्यवना नाम हिमवन्तप्रपातिष्ठः ।
तत्र चैका महाभाषा भार्गवं देवचर्चसम् ॥ ३२ ॥

जे भूगृहं थे धारां उनका नाम चित्रण था। वे हिमालय पर्वत पर तप करते थे। राज्यत को रानियों में से एक, भूगृहं थे देव वर्च्छ, (द्रव्यतपों के समान तेज सम्प्रृत) चित्रण के पास गयी ॥ ३२ ॥

चन्द्रे पवप्रकाशी कालखं शुभमध्यमसूः
तमृष्टि सार्ध्युपागम्य कालिन्दी चास्यवद्यत ॥ ३३ ॥

उच्चम पुनः हंसने की ईच्छा से उस कमलनयनों ने मुखी की 
वन्दना की और वह अन्य सामने बैठ गयी। उस रानी का नाम 
कालिन्दी था ॥ ३३ ॥

स तामसत्ववद्विम् पुजेपृ पुजः पुजन्यनि ।
तव कुसी महाभाषे सुपुजः सुमहायशः ॥ ३४ ॥

महावर्येऽन्ति महात्मजा अचिरातंजनिर्मिति ।
गरेण सहितः स्त्रीमान्या गुणं कपलेक्षणो ॥ ३५ ॥

पुजः प्रासिकति ईच्छा रखने बाली उस रानी से चित्रण जी ने 
कहा कि, हे महाभाषे। तेरी कुसी में उच्चम, महायशस्त्री, महावली
वालकाये

श्रीर महातेजस्वी एक वालक है जो विप वा हित गोवर्द्धन होगा।
है क्षमताविश्रुति। तू कुरं भी उन्नता मत कर। ३४ ॥ ३५ ॥

च्यवनं तु नमस्करं राजपुत्री पतिव्रता।
पतिशोकातुरा तस्मातपुत्रा देवी व्यजायत। ३६ ॥

तदनन्तर पतिव्रता एवं पति के श्राप से भ्रातुर उस राजपुत्री
ने च्यवन के प्राण किया। (च्यवन जी के भ्रातीवत्त से) उसके
एक पुत्र उपजा हुया। ३७ ॥

सपन्या तु गरस्सैं दूरो गर्भजिवांस्य।
सह तेन गर्भावै जातं स सगरेरभवत। ३७ ॥

उसके सौत ने उसका गर्भ नष्ट करने की उसे जा विप
खिलाया था, उस विप के साथ लड़का उत्पात होने के कारण, उस
वालक का नाम सगर पड़ा। ३७ ॥

सगरस्यामस्यायु सप्तावात्याःधुमान।
दिलीपपूर्ववतं पुत्रो दिलीपस्य भगीरथं। ३८ ॥

सगर के अमरसुन्दर, अमरसमस्य के अंशमुनान, अंशमूलान के
दिलीप और दिलीप के सगरस्य हुए। ३८ ॥

भगीरथस्स्तक्षुक्तपेत्वबृक्कस्स्तक्षुक्तस्य रुप्तं सुभं।
रघुसूतु पुजा स्तृजस्वी महत्तं पुर्वादकं। ३९ ॥

सगीरथ के कक्षुल्य और कक्षुल्य के रघु हुए। रघु के तेजस्वी
पुत्र प्रवृद्ध हुया जो नरसूत मात्र अय्यंत राजि था। ३९ ॥

कल्पा पादे वारवर्तस्स्तृजस्वात्व शहुष्टः।
सुदर्शनः शहुष्टस्य अभिवर्णः सुदर्शनाय। ४० ॥
सत्तलिमं सर्गं ॥ ४७१ ॥

पीड़े यही कल्मापदु भी कहताया। कल्मापद के श्रृंग, श्रृंग के लुद्गुन, और लुद्गुन के घरिवर्द्ध हुए ॥ ४० ॥

वे श्रीग्रस्त्वदिक्षित्रम श्रीग्रस्त्व महं सुल: ॥

यरो: मशुद्रुकस्त्रासीद्वरीप: मशुद्रुक: ॥ ४१ ॥

प्रशिल्यं के जांग्व, श्रीग्र के महं, महं के मशुद्रुक और मशुद्रुक के प्रम्भ्रोप हुए ॥ ४१ ॥

अम्बरेयस्य पुष्पोभुमन्हुप: सत्यविद्रमः ॥

नहुपस्य वयातिनः नामागस्तु वयातिनः ॥ ४२ ॥

प्रम्भ्रोप के सत्यपराक्षकी महुप हुए। महुप के वयाति और वयाति के नामाग हुए ॥ ४२ ॥

नामागस्य चश्नाज्यो अजाजविकर्षविभवत: ॥

अस्माइरथवाजानां भाजरो रामकृष्मणां ॥ ४३ ॥

नामाग के पुष्प अज और अज के पुष्प महाराज दशारथ और दशारथ के पुष्प वे दोनो महाधीरो रामचरणद दलचन हैं ॥ ४३ ॥

आदिविविध्विद्वानां राजां परमवर्मिणाशु ॥

इष्टाकुकुलजानानां ब्रीराणां सत्यवादिनाशु ॥ ४४ ॥

प्रापि से ले कर इष्टाकुकुवं वाले राजाणां का विशुद्ध बंश, ले धार्मिक, और और सत्यवादी है भीते भाग के रूपमात्र हुनाया ॥ ४४ ॥

रामकृष्मणोयस्य तत्सुलते चवराय त्रथप ॥

सद्यश्रव्यां नरश्रेष्ठं सद्यो दातुपालिस्स ॥ ४५ ॥

इति सत्तलिम: सर्गं: ॥
वालकार्येः

महाराज दृश्यं श्रापकी कन्याओं क्या भागने पुरुषों के उपर भोजित हैं। यह सब प्रकार से श्राप है। भ्रमः श्राप भोजन भागने श्राप कन्याओं देवी दीर्घयुगे || ५४ ||

वालकार्येः का सूचरवा सर्ग समाप्त हुआ।

---

एकसततितमः सर्गः:

---:५:---

पुष्प बुद्धार्थ जनक पतिजील कुलाख्चितः ||
श्रोतुस्मृतिः भ्रम ते कुलं नः परिकीर्ति तं || १ ||

वशिष्ठ जी के यह कहने पर, राजा जनक ने वशिष्ठ जी के हाथ लेकर श्राप उससे वे कहने लगे—इन महर्षि! श्रापका महान है, भ्रम मेरे कुल को भी परम्परा छुनिये || १ ||

भ्रमने हि मनिश्रेष्ठ कुलं निर्विशेषतः ||
वक्तव्यं कुलजातेन निश्चित्राय महापुरे || २ ||

न्यायं कन्यादानं के समय कुलली कृपये भागने कुल को श्रापका यथायत चथवा समस्त परम्परा भ्रात्र वतलानी चाहिये। हे महर्षि! भ्रमः श्राप छुनिये || २ ||

राजायुक्ताकृतिः दोकृतुः विशुद्धः स्वेच्छ कर्मणा।
निमित्त परमस्वर्णाः सर्वसत्त्वतांतर: || ३ ||

भागने छुक्तों द्वारा नीतिओं लोकों में प्रसिद्ध धर्मात्म, सत्यवादी
और क्यों राजाधारों में श्रेष्ठ निमित्त नाम के एक राजा हुए || ३ ||
एक्समातितमः सर्गः 472

tasya pustro mādhūraṁ prayamā mādhūrapatraṁ: 1

prayāmaçēna ko raja janakādāryaṃvaram: 2 11

nimitte kā mādhūraṁ prayamā mādhūrapatraṁ 2 11 (etaṁ janakā ko
nam sat eva vanga keśa prabhu na janakāhetaṁ) ṛṣi prayamā ko
vedāyaḥ 3 2 11

vedāya stotraḥ prayamāma jātā te nandīvarṇan: 4

nandīvarṇaṃ prayamā apya stotrānaṁ nāmaṁ 5 11

vedāyaḥ prayamā praṇa nandīvarṇan 5 11 prayamā ko
vedāyaḥ praṇa 5 11

ṣukrōtārpaṇaḥ prayamāma devaraṇā mahaśvar: 6 11

devaraṇaṁ rajañyaṃ ṛṣṭhaṁ iti śruti: 6 11

ṣukrōtā prajānaḥ prayamāma devaraṇā 6 11 prayamā ko
devaraṇā ko
devaraṇā ko

bhūṃjastratvaḥ gṛoraśvān dadāyaḥ sañjñāna: 7 11

mahāsvaratvaḥ bhūcitariṇādhaśvaraḥ: sādānicchām: 7 11

bhūṃjastratvaḥ ko vā pārāśvā pratapi mahaśvār, mahaśvār ko
dhūtiki-
dhūtiki ko sādānicchām ko sādānicchām 7 11

ṣukrōtārpaṇaḥ prayamāma ṛṣṭhaḥṣuṣṭaḥ: sūkṣmaṁ: 8 11

ḥṣuṣṭaḥṣuṣṭaḥ rajañyaṛṣṭhaṁ iti viśrutā: 8 11

ṣuṣṭaḥṣuṣṭaḥ ko prayamāma ṛṣṭhaḥṣuṣṭaḥ prayamā ko
prayamā ko
हर्ष्वस्य मरः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतिनिधकः।
प्रतिनिधकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः॥ ६॥
हर्ष्वकै न मरः मरः कै प्रतिनिधक श्रीर प्रतिनिधक कै धर्मात्मा
राजा कीर्तिरथ्य हुए॥ ६॥
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीठ इति स्मृतः।
देवमीठस्य विरुध्येण विनुधास्य महीरः॥ १०॥
कीर्तिरथः कै देवमीठ, देवमीठ कै विरुध्य श्रीर विनुधः कै महीरः
हुए॥ १०॥
महीरः कुतो राजा कीर्तिरातो महावलः।
कीर्तिरातस्य राजपेंमहारोमा व्यजायत॥ ११॥
महीरः कै महावली कीर्तिरात हुए श्रीर कीर्तिरात कै राजाईः
महारोमा हुए॥ ११॥
महारोमाः स्वर्णमस्त स्वर्णरामा व्यजायत।
स्वर्णरामस्त स्वर्णराहलस्तरामा व्यजायत॥ १२॥
महारोमा कै धर्मात्मा स्वर्णरामा हुए श्रीर स्वर्णरामा कै राजाईः
हस्तरामा हुए॥ १२॥
तस्य पुत्रद्वयं जन्मे धर्मस्य महात्मनः।
व्येश्वरहयुनुयो भ्राता मम वीरः कुशचवः॥ १३॥
धर्माः हस्तरामा कै दौ पुत्र हुए। उन द्वार में बड़ा में हैं श्रीर
हस्तरा मेरा वीर छोटा माई कुशचवः है॥ १३॥
मां तु ज्ञेषष्ट पिता राज्ये सोभिमिश्य नरानियः।
कुशध्वजं समाध्यं भारं मथि वानं गतः॥ १४॥
एतस्माति पिता मुषं स्वेष्ट को राज्य सौंप तथा कुशध्वज क्षम,
मेरे पास रहि, वन की चले गये॥ १५॥
हऱ्यं पितारि स्त्रयति धरणेन धुरमात्महम्।
भ्रातं देवसहस्राशि स्नेहात्यकर्ष्य धुरमालमस्॥ १६॥

dवृह दिपां जी स्वर्गवासी हुए, तव में धर्मपूर्वक राज्य
करने लगा श्रीर देवता के समान धपने ढूंढ़े भाई के स्नेहपूर्वक,
पालने लगा॥ १६॥
कस्यचतुर्थ कालस्य सांकाश्यादगमत्पुरात्।
सुधनवा दीर्घचालनात् विशिष्टमवरोणकः॥ १७॥

dकुश काल वात्र सांकाश्य पुरी के चिन्ति राजा सुधनवा ने
प्रमिषिता के घर गरेः॥ १८॥
स च में प्रेयामास श्रीवं धनुरापुत्तमस्।
तीता जन्या च पशुपी भाई वे दीर्घतामिति॥ १७॥
उसने दुने पास यह सन्तोष भेजा कि, शिवधुरुष श्रीर
कमजनकी तीता मुम्हे वे दे॥ १८॥

tस्यायित्वादनात्तूल्लिहर्षे युध्मायोगनयः सह।
स हतोभिमुखः राजा सुधनवा तु यहा रहे॥ १८॥

d है धान है! उसकी इस वात की मैंने स्वीकार न किया; तव
मेरे साथ उसका घेर युद्ध हुया। मैंने इस युद्ध में सुधनवा की मार।
दाना॥ १८॥
निह्यं तं मुनिश्चेष्ट सुधन्त्रां नराधिपसु।
सांकाश्वे भार्तर वीरसम्यपिष्टं कुशाश्वासु। ॥ १५ ॥

हे मुनिश्चेष्ट! राजा सुधन्त्र का मार कर, मैं ते सांकाश्वे पुरी
के राजसिस्मार तर अपने वोर साह वुषाश्वास के बिषा
दिया ॥ १६ ॥

कृत्यायनेश मे भ्राता अहं व्येश्यो महावर्णे।
द्वाप्ति परम्यन्ते वधावे ते मृतिष्ठुक्वः ॥ २० ॥

हे महर्षि! यह मेरा झाटा मारे है और मैं इसका वोर माह हैं।
हे मुनिश्चेष्ट! मैं वह श्रीमति के साथ देवा वहुद्र धाखी का
देता हूँ। ॥ २० ॥

सीता रामाय भरर्द्रे स्तं उर्मितां रक्ष्मणाय च।
वीर्येश्वरां मम सुतां सीतां कुर्मतोपयामः। ॥ २१ ॥

उनमे सीता तो श्रीरामचन्द्र के लिये और उर्मिता लक्ष्मणजी के
लिये देता हूँ। वीर्येश्वरा सीता जा देवरक्षण के समान है। ॥ २१ ॥

द्वितीयामूर्तिं दे त्रिद्वाप्ति न समायः।
रामलक्ष्मणे राजनवीदार्यां कार्यम् ह ॥ २२ ॥

और दूसरी उर्मिता मैं यथाक्रम श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को
विवाचा मर कर देता हूँ। यह दुस्रा वाल मैं कुछ भी संध्य पहरीं
है। छठ नापे दोनों राजकुमारों से गैलिय करवाईये। ॥ २२ ॥

पितुव्यिये च भर्र्द्रे ते ततो वेदान्तिक कुरु।
मथा ब्रह्म महावर्णे तुवीये दिवसे विलो। ॥ २३ ॥
हे राजन् ! आपका महान है। तदनन्तर आप नादीयुक्त शाक्ति कर्य कर, विवाह सम्मथी विद्वति करवाइये। हे महाराज! आप मध्य शुद्ध है। श्राप के तीसरे दिन॥ २३॥
फल्युन्या सुचरे राजस्तिथिसनेवाहिनं कुरु।
रामकृष्णपण्यो राजन्त्रानं कार्य सुखोदयम्॥ २४॥
इति एकसत्तिमं: सर्गं॥
उत्तराखालुप्ति नत्र आप्या। उसी नत्र में हे महाराज!
विवाह होना चाहिये। धीरमचन्द्र और लक्ष्मण के उद्देश्य के लिये (नेच, तिल, भूमि व्रत जै संवेदन के ) द्राप कोजिये॥ २४॥
वालकांड का एकहजरां सर्ग समाप्त हुया।

—*—

एकसत्तिमं: सर्गं:

—: ०:—

tथुत्तत्तनवं चैदेहं विश्वामित्रो महायुनिः।
उवाच त्रयनं गोरं वसिष्ठसहिते नरपश।॥ १॥

जब जनक जो ने इस प्रकार कहा, तब वर्षिष्ठ जी के अभि-श्रायनासार महायुनिन् विश्वामित्र जी ने राजा जनक से कहा॥ १॥

'अचिन्त्यान्यःप्रेमेयानि कुलानि नरपशः॥
इस्वाहिनी विदेहानां नेपणं तुत्योऽसि कस्थन॥ २॥

1 अचिन्त्याल्याञ्चार् अभर्यायुनायी (गौर)
2 अचिन्त्याल्याञ्चार् अचर्यायुनायी (गौर)

महिमानि (गौर)
हे राजन! इत्यादि और विद्वेष—दोनों ही बंधों की बंध-
परमाणूं विस्तृत्तापणां हैं और इनकी महिमा असीम है। इनकी
बराबरी करने वाला दूसरा केवल कुल ही नहीं है। ii 2 ii

सद्यो धर्मसम्बन्धः सद्यो रूपसंपदा ।
राजलक्ष्मणे राजन्सीता चोरिश्याय सह। ii 2 ii

श्रीरामचन्द्र और सीता का तथा जद्यम्य एवं अर्मिला का
धर्म सम्बन्धः धर्मीतं वैवाहिक सम्बन्ध वरावर का है। कथिते
वर वधू दोनों ही कथा लघु और कथा सम्पत्ति—सव वाताओं में
समान हैं। ii 3 ii

वकारवर च नरशेषु श्रुतां वचनं सम।
श्रीता यवीयान्यथं एष राजा कुशाचनः। ii 4 ii

हे राजन! यह होने पर भी वसी इस पर कुश वकारवर हैं, उसे
छूनवे। श्रीते यह वशिष्ट और धर्मीत माई तो कुशाचन हैं। ii 4 ii

अस्य धर्मान्यो राजन्योपासामातः श्रुति।
सुतादवर्ष नरशेषु पत्नयर्थ वरायमहेः। ii 5 ii

इन धर्मान्यो की दो कल्याणी की, तो इस संसार में यावने
सौरव्य में सर्वशेष हैं, वह बनाने के लिये में मंगल हैं। ii 5 ii

भरतस्य कुपारस्य श्रद्धास्य च धीमतः।
वरेच भुते राजस्येऽर्थं महातनोः। ii 6 ii

धर्मान्यो हे राजन! एक कथा बुद्धिमानं राजकुमार भरत के
लिये और एक शुद्ध के लिये हम मांगते हैं। ii 6 ii
पुत्र दशरथस्येमेऽर्यावंवन्सालिनः।
लोकपालोपमा सर्वेऽदेवतूल्यपराक्रमः॥ ७ ॥
महाराज दशरथ के चारों राजकुमार लघुवान्, यौवनशाली,
लोकपालों के समान, प्रथम देवतूल्य पराक्रम है॥ ७ ॥

उभ्योपि राजेन्द्र सम्बन्धेऽद्वैवध्यतामः।
इत्याक्षे कूलमन्यः भवत् पुण्यकर्मः॥ ८ ॥

तसो हेऽराजेन्द्र! इन दोनों राजकुमारों का भी सम्बन्ध फोड़िये।
द्वाराकुल विदेश है और भाप भी पुष्पयात्रा है॥ ९ ॥

विश्वामित्रः बृहस्पति वसिष्य्य मते तदा।
जनकः प्राज्ञजीवायुक्तयुवाच मनिपुजनः॥ १ ॥

ि: विश्वामित्र जी के ये वचन चुन और वशिष्ट जी की सम्मति
जान प्रथम वशिष्ट जी के सम्बन्ध विश्वामित्र जी के वचन चुन,
महाराज जनक हाय जोड़ कर दोनों महर्षियों से बोले॥ ६ ॥

कुल धन्यमिद्वे येषाणं ना सुनिपुजनः।
सादोऽसुवस्मन्यः यदाधायेऽः स्वयम्॥ १ ॥

मेरा कुल घन्य है, जो भाप दोनों महर्षियों ने खण्ड इस कुल-
सम्बन्ध की समान बताया है॥ १ ॥

पर्व भवतु भद्रः वः कुशांवजसुते इमे।
पतन्यैः भजेतं सहिते सनुजन्यवरतावथाः॥ ११ ॥

१ भव्यर्थो-निदेशर्थमः। ( मो ० )

चार १२० — ३९
धाप ते धाडा दौँगे वही होगा। धापक मजल है, कुश्चन्त की कन्याओं का विवाह मरत और श्रुण्ड के साथ कर दिया जायगा। ॥ ११ ॥

एकाहा राजपुत्रिणां चतसृणां महामने।
पाणीन्त्रहन्तु चत्वारे राजपुत्रा महाबला: ॥ १२ ॥

हे मुनि! एक ही दिन महाराज दूरशय के चारों महाकली राजकुमार, इन चारों का पाणिन्त्र होकर। प्रथमत चारों का विवाह
एक ही दिन हो। ॥ १२॥

उत्तरे दिनसे वहमणकिलपुरीभ्यां मनोषणः।
वैवाहिक प्रवंशांति भगो यत्र प्रजापति: ॥ १३ ॥

हे ब्रह्माः। कल उत्तरकिलपुरी नज्ञ ि है। पवित्तियों का मत
है कि, इस नज्ञ में विवाह होना उचित है। क्योंकि इस नज्ञ करे
प्रजापति सा वेचता है। ॥ १३॥

एवमुक्त्वा वचः सौम्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
उभो मुनिवरै राजा जनको चाक्यमत्रयितुः ॥ १४ ॥

यदि कह राजा जनक खड़े हो गये और हाथ जाड़ कर दूनों
मुनिवरों से बोले। ॥ १४॥

परो धर्मः! कृतो मद्यं निष्पोषितम भवते; सदा।
हमान्याससमुख्यानि आसातां मुनिपुर्वः ॥ १५ ॥

धाप द्विपों के अनुसार हुए मुस्कां यह कन्यावाण हुए धर्म प्रात हुआ।
(प्रथमत कन्यामदन करने का उपदेश।) में सदा धाप द्विपों का

परोधमः—कन्यामदनस्यः। (मो.)
द्रास्त हैं। ध्यान दर्शों इन मुख्य आस्तों पर विचारणने (दो मुख्य ध्यान—राजा जनक का और महाराज रावण का)। १५।

यथा द्रश्यरथस्यं तथायाया पुरी मम।
पश्चले नापित सन्देहा यथाहृ तर्थमहिषय। १६।

प्रस्तुत में लेते जनकपुरी महाराज द्रश्य की है, वैसे ही प्रवर्त्तियापुरी मेरी है। इसमें कुछ भी समझ नहीं है। इतिहास ध्यान को उद्दित जाता पड़े। सो कीजिये। १६।

तथा नुकति बैठे जनके राखनदन।
राजा द्रश्यरथै द्वृ: पञ्चराच महीपतिम। १७।

जब जनक ने शे बचन महाराज द्रश्यरथ से कहे, तब उन्होंने प्रस्तुत ही कर, जनक से कहा, १७।

युवामसंग्रहयुगुन्वी भृतारी मितिलेष्वरो।
रूपये राजलक्ष्मी भवधारामिर्मिन्तिताः। १८।

हे मितिलेष्वर! ध्यान दर्शों भाषयों में श्रसंह गुण हैं।
ध्याने अखियों और राजाश्रों का यथार्थ सत्तृ रिखाये है। १८।

स्वत्सित भाष्यबृह्दं ते गभिण्यामि ख्यालायमि।
आदृमार्गिणि सर्वाणि विधवाप्रत्यात्तिचाचलीवीत्। १९।

फिर महाराज द्रश्यरथ ने कहा कि, मैं ध्यान के भाषाव्यां देवता हूं कि, ध्यान केवल ददाया है। भाषा में स्वयं पर जा कर विधिपुर्वक नीतित्रुत्व धार्मि सव आदुकर्म करता है। १६।

तमापूष्ठा नरपति राजा द्रश्यरथस्य।
मुनीन्द्रो: तै पुरस्कृय जागायस्य महायशाः। २०।
इस प्रकार राजा जनक से बिदा हा महाराज द्वारक देखो मुनियो को आगे कर, तुरन्त चल डूंगे। ॥ २० ॥

स गत्वा निष्ठयं राजा शादृं कुत्ता विधानतः।
प्रभाते काल्युत्त्वाय स्त्री गोदामुचमदु ॥ २१ ॥

प्रपने स्थान पर जा कर महाराज द्वारक ने विधि से शादृं किया और अगले दिन शत्रुकृत होते ही गोदामादि किये। ॥ २१ ॥

गवार्षर शतसहस्राणि ब्राह्मणेष्या नराधिपः।
एकौ ददृ राजा पुण्यामुहिष्य धर्मपार ॥ २२ ॥

महाराज द्वारक ने अपने राजदुमारों को महालकामना के लिए एक एक लाख गैय, एक एक ब्राह्मण की दर्दी। ॥ २२ ॥

सुवर्णशृङ्गं संपवानां सत्त्वा कांश्ये देखाना।
गवार्षर शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषपर्वम्। ॥ २३ ॥

उन मार्गों के सींग लेने के प्रव ले भो भो दुःख थो, उनके साथ उनके बच्चे थे। प्रत्येक मार्ग के साथ कृष्ण का द्रव खड़े का पान (हुवेछी) था। इस प्रकार की चार लाख मार्ग रोहण महाराज ने दर्दी। ॥ २३ ॥

विश्वासन्त्याव सुवर्ण द्रिबेज्यो रघुनन्दनः।
ददृ गोदामुसर्विष्य पुराणां पुरावासः। ॥ २४ ॥

पुरावास राजा ने पुत्रों के कल्याणों के लिये बहुत लगा वहन रोहण के उंदः य दे ब्राह्मणों को हिया। ॥ २४ ॥
स सुनैः कुतगोदानेत्तरस्तु न्यपतिस्तदा ।
लोकपालेरिखावाति द्वतः सैस्यः प्रजापतिः ॥ २५ ॥

इति दिवसततिमि वर्गः ॥
पुज्रो सहित गोदान कर महाराज दुर्शारथ ऐसे शमिष्टिः हुय
जैसे लोकपालो सहित श्रव्हा जी शमिष्टिः होते हैः ॥ २५ ॥
वालकाम्हाक का बहुतर्वा सर्गः पूरा हुःः ॥

—☆—

त्रिसततिमि: सर्गः:
—☆—

यस्मिस्थृतं दिवसे राजा चक्रे गोदानुत्तमम् ।
तस्मिस्तु दिवसे शुरो युधाजित्समपेत्यिनान् ॥ १ ॥

जिस दिन महाराज जनक ने उच्चम गोदान किये, उसी दिन
युधाजित्सम जी भी ( जनकपुर ) पहुँचे ॥ १ ॥

पुज्रः केकयराजस् साक्षादृश्यरतमातुलः ।
द्वन्द्व पुञ्जश्च कुशलं राजानिष्ठनिध्यश्चव्यथ ॥ २ ॥

केकय देश के राजा के पुत्र, भरत जी के सातासु मामा ने,
महाराज दशरथ जी से मिल कर, कुशलक्षेम पृःप्री और यह
मेंजे ॥ २ ॥

केकयाधिपति राजा स्नेहात्कुशलमभवतः ।
येष्ठाः कुशलकामोपरिष तेष्ठां संप्रत्यनाममयम् ॥ २ ॥
हे महाराज। केवल द्रैश्यविपति ने बड़ी प्रति के साथ ध्रुपना कुशल कहा हैं और कहा कि ध्रुप जिन लोगों की कुशल चाहते हैं वे सब प्रकार से कुशल हैं। ॥ २ ॥

स्वस्तीयं मम राजेन्द्रकामो महीपति।
तद्धित्यशुपयात्तोझयोध्यायं रघुनन्दन ॥ ४ ॥

हे राजेन्द्र। हमारे पिता की भस्म जो के देखने की इच्छा हैं। मैं हस्तोत्सवे प्रथम ध्रुपाया गया ॥ ५ ॥

श्रुता तवहम्योध्यायाः विवाहारं तवात्मजानं।
मिथिलाशुपयातत्सु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥

जब मैंने वहाँ दूरा कि, ध्रुप राजकुमारो का विवाह करने के लिये उनको ले कर मिथिलापुरी पढ़ाये हैं, तब मैं ॥ ६ ॥

तवरायशुपयातोजस्व द्रुष्ट्कामः स्वसुमुत्सु।
अय राजा दशरथः मियातिषिद्वपदिष्टितसु ॥ ७ ॥

दुस्त ध्रुपने भोज के देखने के लिये यहाँ छला ध्रुपा हैं।
महाराज दशरथ ने ध्रुपने नातेद्वार ( साजा ) की ध्रुपा हुया ॥ ८ ॥

ढुढ़य परमसत्कारः पूजनाहंपूजयतु।
ततस्तामुषितो रात्रि सह पुजैमहालमिभि। ॥ ७ ॥

देख। उस सत्कार करने याय नातेद्वार का ध्रुपी तरह सत्कार किया। और ध्रुपने राजकुमारो सहित रात्रि की ध्रुपपूर्वक निद्रित किया ॥ ७ ॥

१ खच्चीवं—महतं । ( २० )
भागते पुनर्व्यवाय क्रत्वा कर्मणि कर्मवित्व।
ऋषिरप्रस्तव पुरस्कृत्य यज्ञावस्थयाप्नागमत। ८॥
( प्रगले दिन ) प्रातःकाल होते हि महाराज दशरथ नित्यकरम कर, ऋषियाँ सहित यज्ञशाला में गये॥ ९॥
युक्ते महुर्ते बिजये सर्वभरणभूपि॥
भावर्मण सहिता रामः कृतकैलुककलच। १०॥
वसिष्ठं पुरतः कृत्वा महर्षनिरानापि।
वसिष्ठो भगवानेय वैदेहिमिदमनञ्जीत॥ ११॥

विजयाबृहत में वातिष्ठानि सत्सभ्रुषियो सहित खुदर झडों और श्राव्याप्तियों से सुमजित मादियों के साथ ब्राह्माचार्य जो को विवाह के महत्त्वाचार को रोका कर कर, वातिष्ठ जो रा जन जनमे नेले॥ ६॥ ३०॥

राजा दशरथो राजङ्कुलकौतकमझुलै॥
पुश्चर्नरवरश्रेष्ठ दातारमभिनानुत॥ ११॥
हे राजन्! महाराज दशरथ भए राजनामार्गेः (वातिष्ठ) वे महत्त्व कथा करवा चुके। हे नरवरश्रेष्ठ! भाव वे आपकी प्रतीति कर रहे हैं॥ १२॥

दातामप्रतिस्वाहात्म्यां सर्वोऽः मभवनि हि।
स्वरम्भृतिपदश्च कृत्वा वैवाहिक्युतमस॥ १२॥

१ स्वरम्भ—प्रतिस्वाहाः । ( गो० )
क्षोचक द्रान द्रान श्रीर द्रान लेने वाला, जब द्रानों तत्पर हाँ
तभी काम होता है। प्रत्य, नाप भी देवाहिक मकरम कर के
प्रपनी प्रतिष्ठा पूरी कीजिये || १२ ||

इत्युक्तं परमेदारों वसिष्ठेन महात्मना।
प्रत्युवाच महात्मजावाक्यं परमसभविता। || १.३ ||

जब महात्मा वशीष्ठ जी ने परमदाता राजा जनक से यह कहा
तब परम भरमता राजा जनक वाले || १३ ||

कं स्थितं प्रतिहारों में क्षयार्या संभावनित्येऽः
स्वरूपे का विचारोष्टित यथा राज्यमिदं तत् || १४ ||

महाराज द्वारक का क्या किसी मेरे दरवार ने राका है? (जो
यथशाला के बार पर वे खड़े हुए हैं) महाराज किसको परवानगी
की प्रतीक्षा कर रहे हैं? अपने घर के बन्दर धाने में भी क्या
कई सकार भोला ही है? यह भी तो उन्हीके घर (या राज्य)
है। चले क्यों नहीं आते। (मेरे धाने की प्रतीक्षा क्यों करते
हैं) || १४ ||

[ नोट—इससे भाव यह है कि, महाराज द्वारक के भिड़े कोई राक
दे कह नहीं वे आनन्द के पचारे। ]

क्षतकृतकसर्वस्वा वैदिमुल्यसुपागताः।
मम कन्या आनिषेषां दीपा वहीमवाचिष्य: || १५ ||

हमारी तो सब कन्याेँ मकलाचार किये हुए बेदीं के समय
वैदी है, वे सब प्रशिशिल्ला की तरह देहीनायम हैं || १५ ||

१ परमेदार—परमहाता। (२०)
विश्वासित: सर्गः

सज्जनान्हं तत्तत्तसाधुस्मि वेयामस्यां प्रतिष्ठितः।
अतिरेकं क्रियतां राजनिपंथर्मचलमुक्ते॥ १६॥

सिं प्रयर्थ यहाँ वेदी के गां वेदा हुशा ग्राप लोगों ही की बांट
जीएड़ रहा है। से प्रयर्थ विलम्ब किस बात का है? महाराज से कहने
कि, सत्य कर्यें प्रयर्थ श्रोत्र निविष्ट ही नाहे चाहिये॥ १७॥

तदाकर्षं जनकेनोत्तरे श्रुता दाशरथस्वतः॥
प्रवेशायमास सुतान्सवर्चुदिङ्गानयपि॥ १७॥

वशिष्ठ जो ध्वाना राजा जनक का यह संदेसा पा, महाराज
द्वारी ने राजकुमारों श्रीर श्रुतियों साहित विवाह मध्य में प्रवेश
करे॥ १७॥

ततो राजा विदेहान्म वसिष्मिदमवधुवीत्।
कारयस्त को सर्वांगिपिमः सह धार्मिके॥ १८॥

रामस्य हेकरामस्य क्रियां वैवाहिकि श्रेयः।
तत्रत्युक्तवत् तु जनकं वशिष्ठं भगवानुर्ध्वः॥ १९॥

तदेन्तर राजा जनक ने वशिष्ठ जो के कहा कि, हे जुम्पे !
प्राप्त अथ श्रुतियों साहित लोकामित्राम वीरामचन्द्र जी के विवाह
की विधि करवाहै यह लुन श्रीर जनक के से, "बहुत प्रज्ञा
कराते हैं" कह कर, भगवानु वशिष्ठ जी ने॥ १६॥

विश्वासित्रम पुरस्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम्।
प्रपाध्ये तु विभिन्नहेति कुलवा महात्मां॥ २०॥

† प्रपाध्ये—यज्ञावालामध्ये इतिकतक। असितवनारदेचार्यकिर्तिने
गुण हृदयः। ( सो० )
वििवामित्र और द्वारा शतान्त्र की यात्रा कर, विवाह मगन के बीच में अभियात्सन करते के लिये विधिवत वेदी बनाये। [[२०]]

अलंकार तां वेदी गन्धगुप्तेः समन्तः।

वर्णपालिकायः विन्दुप्रचुप्पायः साहूकरः। [[२१]]

फिर उस वेदी को चारी और गन्धगुप्तादि के सजाया और सज्जवे शलाकाओऽ, करता परं दूर्वाकरादि से निविष्ट किया। [[२१]]

अस्त्वराद्येः शरीरिः धूमपारः सर्वावः।

शहूपारः सुचे लघुपि गत्रभिंभिफूर्तिः। [[२२]]

दूर्वाकर, सर्वा, और धूप से भर कर बढ़ने से पात्र रखे।

सर कर पात्र भी स्थापित किये। धूमादि वा गर्भयात्रा भी शहूकर रखे। [[२२]]

काजज्योत गत्रशिवायरसैतरिप संस्कृते।

दः समः समातीय विधिवन्यन्त्यपूर्वकम्। [[२३]]

बहुत से पात्रोऽ मृण को खोलिः (लाला) और जल से खुलाकर वर्चस्यात्स मर्यादा कर रखिये और मंत्र पढ़ पढ़ कर विधिवस्यक वरावर वरावर के (आरत्य एक नाम के) कुश विधाये। [[२३]]

अधिमाधाय बेदां तु विधिमन्त्यपूर्वस्तम्।

हाङखादिः महाते वस्तिः भगवान्तिः। [[२४]]

तद्वनंतर विधिवस्य और मंत्र पढ़ कर, वेदी पर श्रद्धा स्थापन किया और महाते वस्तिः भगवान् वशिष्ठ कूपिः उस अभिन्न में आचूति बुझे लगे। [[२४]]

1 वर्णपालिकायः—शाहुरामित्तितितितितिशिरिरामनानाकप्यते। (गोे)
ततः सीताः समानीय सर्वभरणशृणिताः

समक्षयान्तः संस्थाप्य राजवामिषुके तदा || २५ ॥

फिर सीता जी को सत्र गहने पहना कर, वेण्डी के निकट श्रीरामचन्द्र जी के सामने वैठा या ॥ २५ ॥

अबवीजजनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।

इर्य सीता समय हुता सहभर्षृंचरी तव || २६ ॥

राजा जनक ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे राम! यह मेरी कन्या सीता, भ्राज से भापकी सहभर्षृंचरी हुई || २६ ॥

'प्रतीच्छ चैनां भुद्रूं ते पाणि प्रलोक्ष्य वाणिजा।

पतिविरता महाभागा स्वयंवराणुगता सदा || २७ ॥

इसे भाप लोगीने श्रीरामचन्द्र से इहका साथ पकड़े।

‘यह महाभागा पतिविरता सदा ह्याया की तरह भापकी प्राप्त मामली वनी रहती ते। तुम्हारा तोनों का मक्खल ही || २७ ॥

इत्युक्तवा भापिस्प्रैणा मन्नपूर्वां जल्ले तदा।

साधु साधितिति देवनासुपीरों बदत्ता तदा || २८ ॥

यह कह कर राजा जनक ने मंजों सहरा पतिविरत किया हुआ जल देनों पर जड़का। उस समय सम देवता श्रीरामचन्द्र भगवानस्वरूप “साधु साधु” कहने लगे || २८ ॥

देवदुन्दुधिनिध्योपः पुष्पवर्ते महानमृत।

पुष्प द्वारा तदा सीताः मन्त्रोदक्षुषस्तताम् || २९ ॥

१ प्रतीच्छ—प्रह्लादन (मे.४०)
देवताओं ने नगाड़े बजाये श्राव बड़ी भारी पुष्पों की वर्षा की। इस प्रकार सीता का श्रीरामचंद्र जी के साथ विवाह कर के। ॥ २५ ॥

अत्रवीजनको राजा हुएणाभिपरिशुचितः।
कृष्णागच्छ मंद्रे ते अर्धिलां च महात्मणाम्। ॥२६॥

प्रतीच्छ पाणि श्रुतीक्षण मा सूत्रकालस्य पर्यां।
तमेवसुविक्ता जनकों भरतं चारूभारत ॥२७॥

राजा जनक भवनं भरत है वाते, हे लक्ष्मण! तुम्हारा महत्त्व है। तुम भी श्रीराम चा कर मेरी पुष्पी अर्धिला की अवधारणा करे श्राव अपने हाथ से दस्तका हाथ पकड़ो। विजय मत करो।

फिर राजा जनक ने भरत से कहा। ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पाणि श्रुतीक्षण माणहव्यः पाणिना रघुनन्दन।
ब्रह्मचार्यार्थम्-अत्रवीजनकेश्वरः। ॥ ३२ ॥

हे भरत! तुम माणहवी का पाणि अवधारणा करो। तदन्तर राजा जनक ने श्रुतियहें से मी कहा। ॥ ३५ ॥

श्रुतकौतिया महावाहे पाणि श्रुतीक्षण पाणिन।
सब्ज भवनं सैम्यायत सब्ज शुचरित्रतः। ॥ ३५ ॥

हे श्रुतियाँ! तुम श्रुतकौति का हाथ अपने हाथ से पकड़ो।
तुम सत्र के खब जैसे सैम्य स्वभाव व शुचरित हो। ॥ ३६ ॥

पद्मीभिः सन्तु काक्षस्या मा सूत्रकालस्य पर्यं।
जनकस्य वचं श्रुत्वा पाणीन्द्रिणिभिरस्पृश्यत। ॥ ३८ ॥
वैसी ही तुस्हें तुम्हारी पतियाँ भी मिली हैं। इन्हें ध्यानिकार करें, जिससे काल न बीत जाय। अर्थात् विवाह की लघु न निकृंज जाय॥ ३४॥

[ नोट——इसके मिं भिषिक ने, इस प्रकार न्यक्क किया है।

"Now, Raghu’s sons, may all of you,
Be gentle to your wives and true;
Keep well the vows you make to-day,
Not let occasion slip away.”

अर्थात् है राजकुमार ! तुम सब अपनी इन पतियों के साथ सदा बच्चा और सत्य व्यवहार करना और आज तुम कोई जिस भिक्षा को करते हो, इसका भारत्म निरंवृत्त करना, भव विहित मत करें।]

चत्वारस्ते चतुर्गां बसिद्धस्य मते स्थिताः।
असि प्रदक्षिणम् कुल्ये वेदि राजानेव च॥ ३५॥

ऊपरिन्तेवं महात्मानं सभायारं रघुसत्तमाः।
यथैतन्ते तदद्चक्रवर्णां विधिपूर्वकम्॥ ३६॥

राजा जनक के इस प्रकार कहते पर चारों राजकुमारों ने चारों राजकुमारियों के द्वार पकड़े और विशिष्ट जो की प्राणा से पतियों कहिल, भाष्यीबद्वी, राजा जनक तथा ऊपरिन्ते को परिकार कर के विधिपूर्वक सव वैवाहि खर्म नियमे॥ ३५॥ ३६॥

काकुलस्थैर्य गृहीतेशु लघितेशु च पाणिषु।
पुष्पद्रिष्टिस्यादसिद्नतिरिश्चुमाखरा॥ ३७॥

इस प्रकार चारों ककुलस्थैर्य द्वारा उन राजकुमारियों के छत्ते हारों के पकड़े जाने पर, अर्थात् पाणिशहार हो। जुकने पर, भ्राकाश से विद्य पुष्पों की बड़ी भारी वर्षा हुई॥ ३७॥
वालकाण्डः

दिन्यदुन्धृतिनिवृत्त्वैंगीतवादित्वनिर्खने ।
ननृत्तयथासरः सल्ल्ह गन्धर्वस्य जगुः कल्पु ।
विवाहे रघुमुखव्याणा तद्दुत्तमद्यम् ॥ २८ ॥

देवताओऽने नगाजे वजाये, अप्रसारः नार्हीं और गन्धर्वोऽने
गीत गाये । दुर्योधनन्दने के विवाह में वे विस्मयात्मक कौतुक
देख पड़े ॥ ३५ ॥

ईदशे वर्षमाणे हुं तुर्यदुन्धृतिनिनादि ।
गिरिअशुः ते परिक्रमे द्वधुर्भाष्याः स्यूः । ३९ ॥

इस प्रकार वाजे रजते हुए तीन तीन चार वाहिन को
प्रदीया कर, राजकुमारोऽने अपनी पतियों को प्रदीया
किया ॥ ३६ ॥

अथे महाकारः जमुस्ते सदारा रघुनन्दनः ।
राजार्ण्युज्याः परस्यस्यांपिसहुः सवानवः ॥ ४० ॥

हृत् विस्मयात्मम् स्मरः ॥

तदन्तं तव राजकुमार अपनी पतियों सहित जनवासे को
सिद्धारे । महाराज जनक सी श्रवियो और वन्धु वान्धवो सहित
विवाह का कौतुक देखते हुए जनवासे को गाये ॥ ४० ॥

वालकाण्डः का तिहतनर्वा समं समास हुष्या ।

[नोट—इस विवाह कार्य में कहसं के बाद भरत जी का विवाह
हुआ देख, कुछ लेखों की यह माफ हो सकती है कि, ज्येष्ठ भरत के छोटे
छोटे कहसं का विवाह प्रथम क्यों हुआ । इस शास्त्र के निःखुलि तीकाकारों ने]
यह कह कर की है कि, छात्रण और भरत सगे माई न थे। अतः व्येठ और छात्र की शास्त्र। यहाँ नहीं है। सकता।]

—#—

चतुष्ठातितम्: गर्गः

—#—

अथ राज्यां व्यतीतायां विद्वामित्रे महामुनि।
आपृष्ठ्यों तौ च राजानाथ जगामोत्तरपर्वतम्।॥ १ ॥

विवाह के छुटने पर अगले दिन सवेरा होते ही महर्षि विद्वामित्र दोनों राजाओं (महाराज दुश्यंत और राजा जनक) से विद्वा मांग, दिमालय पर (तप करने) चले गये। ॥ १ ॥

आश्रीर्भिः पूर्विता च कुमारानं वरायवान।
विद्वामित्रे गते राजा वैः देहं मिद्धिलाभीपम्।॥ २ ॥

विद्वामित्र ने जाने समय राजकुमारों के तथा महाराज दुश्यंत की प्राशोंवान दिया। महर्षि विद्वामित्र के विद्रश होने पर महाराज दुश्यंत ने मिद्धिलेखम् राजा जनक ले। ॥ २ ॥

आपृष्ठ्य जगामशुर राजा दुश्यंत: पुरीम्।
गच्छन्ति तं तु राजानमनवगच्छवरपतिः।॥ ३ ॥

विद्रा मांग धाति शीघ्र अप्रेश्या की प्रस्थान किया। राजा जनक कुछ दूर तक महाराज दुश्यंत के पीछे पीछे, उन्हें विद्रा करने गये। ॥ ३ ॥
अथ राजा विदेहाना ददी कन्याधनं वहुः।
गवां शतसहस्राणि वहूनि मिथिलेश्वरः॥ ४॥
धैर वृहेजुः के लवाजः में (वैद्यके में) मिथिलेश्वर ने
प्रवेच्याधिपिति को एक जाल गौड़े दर्रे॥ ५॥
कर्क्कानां च सुख्यानां श्रौमकार्यमन्त्राणि च।
हस्तयस्वरवर्धातत्र दीन्यरूप स्वरहस्तनितमः॥ ६॥
बहुत से वहुमुल्य दुःशाले, धैर वेक करोड़ देशामी वाह दिये।
बलक चन्द्र धैर लजे चतुर्यो हाथी, घोड़े, रथ, पैदलः,॥ ७॥
ददी कन्यापिता तासा दासीदासमनवचमसः।
हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्ताना चिद्वस्य च॥ ८॥
ध्रुवियो धैर भास दिये। बहुत सो वधिया मेहरेन धैर
भुषणियो, मैती, मूँगः (प्रथवा वधिया सेने के मेती जड़े गहने) दिये॥ ९॥
ददी परमसंहः कन्याधनमनवचमसः।
द्रव्य वहुधरं राजा समनवचः पार्थिवसः॥ १०॥
इस प्रकार परम प्रसब हो धैर भी बहुतला वहुमुल्य दायजा
दे कर, राजा जनकः महाराज दशरथ से आज्ञा मांग॥ ११॥
प्रविष्टेऽव छानि विष्कारा मिथिला मिथिलेश्वरः।
राजपर्योद्याधिपिति सह पुष्टेऽमतांत्रिं।॥ १२॥
मिथिलेश्वर अपने मिथिलापुरी वाहे राजमण में गये। महाराजानुजः
दशरथ भी, राजकुमारं के साथ लिये दुः॥ १३॥

१ कन्यापिताद्रैतकाव्यम्। (१०)
चतुःस्ततितमः सर्गः ।

ऋपीनसर्वार्णपरस्त्रक्षत्य जगाम सवलानुगः ।

गच्छन्ति तं नरव्यायं सर्फिस्वं सराधवसः ॥ ९ ॥

तथा न्यायोऽयो को प्राणे कर, सेना सहित चल दिये । चूषियोऽयो ध्वेय ध्रीरामचंद्रजे के साथ जाते हुए महाराज दशरथ ॥ ६ ॥

ध्वेयः स्म पञ्च्योऽयो खाचे व्याहरणिततस्ततः ।

भौमाध्येन मुग्धः सर्वेऽ गच्छन्ति स्म पद्धरोपणः ॥ १० ॥

के मार्गे में चारो ध्वेय मध्यकर पत्री वेलनें लगे । हिरन दौड़ फर रास्ता काटने लगे ॥ १० ॥

तान्त्रिक राजशाहीले वसिष्ठं पर्यपूर्वच्छत ।

असौम्यः पञ्च्योऽयो ध्वेयः युगाभापि पद्धरोपणः ॥ ११ ॥

इन प्रपशक्तिनों को देख महाराज दशरथ ने वशिष्ठ जी से पूर्व बोला । वह एक ध्वेय हुए पत्री कुरी तरह वेल रहे हैं । ध्वेय दूसरी ध्वेय हिरन दूल्ही ध्वेय से रास्ता काट रहे हैं ॥ ११ ॥

किमिदं हृद्योत्सङ्ख्य मनो मम विपीदिति ।

राजो द्वारावस्त्रस्यत्वं त्वा वाक्यं महान्तरपि है ॥ १२ ॥

यह हृदय दूल्ही हाले वाला क्षा उत्पात है । इन प्रपशक्तिनों को देख मेरा मन उद्रास हो गया है । महाराज के इन प्रश्नों के खुन मद्दर्पि वशिष्ठ जी ने ॥ १२ ॥

उवाच मधुरा वार्षिकं श्रूयतामस्त्रय सत्कल्लम् ।

उपस्थितं भयं ध्वेयं दिव्यं पञ्च्योऽभावाच्च्युतम् ॥ १२ ॥

वाण च ॥—३२
धृष्टशास्त्री से उतर दिया कि, इनका फल खुनिये! पत्री बोली बेल कर बजाला रहे हैं कि, कोई वड़ा भारी भय उपस्थित होने वाला है। ॥ १३ ॥

मुग्रा: प्रशमयन्त्येते सन्तापस्तयज्ञतामयम् ॥
तेषा संवददत्ता तत्र नायक: मादुर्वभूव ह ॥ १४ ॥

परन्तु मुग्रा के रास्ता काटने से अर्थात् वाही श्रीर से दृढीनी श्रीर जाने से उस भय का नाश प्रतीत होता है। यथाः श्रीर सन्तास न हें । यह वात हो ही रही थी कि, वड़े जोर की श्रांधी चली। ॥ १४ ॥

कम्बुन्मेदिनी सवरं पारत्यश महादुर्मानु ॥
तपसा संहत्त: सुयं सवर न पवशुर्दिशः ॥ १५ ॥

जिसदे प्रथिवी कांपने लगी, बड़े बड़े चुटक गिरते लगे। चुटक के कारण सुयं हिंद गये श्रीर ध्यानकार का कारण, दिशाएँ कीं हैन न रहा। ॥ १५ ॥

भस्मना चाहुरं सवरं समृहतिमि तद्वर्षम् ॥
वसिष्ठस्थर्प्यशान्ये राजा च सम्भुस्वदा ॥ १६ ॥

इतनी चुल बड़ी कि, सैनिकों के बक्के चुटक गये। वशिष्ठ जी तथा धन्य सूर्षयों को, महाराज दशरथ तथा उनके राजकुमारों को। ॥ १६ ॥

सर्संज्ञा इत्य तथ्रासन्सर्वमन्यन्निबेंचेनम् ॥
तासिम्स्थमत्से घेरे तु महस्फ्च्चेश सा चमुः ॥१७॥
तै उस समय चेत रहा श्रीर सव प्रचेत हो गये। क्योंकि उस घेर अन्यकार में, सव लेना भस्मान्ज्राखित हो गयी थी।

पर्यावृत मानों भूल में हड़क गयी थी। ॥ १७ ॥

दृश्य भीमसेनकार्य जटामण्डलघारिण्य।

भार्गवं जामदान्यं तं राजराजचिरमिर्दिन्यं। ॥ १८ ॥

तद्वन्तम महाराज दुर्भाग्य ने भयेंक रूप धारण किये, जटाजल-धारी, भूगुलशीर्ष जमदग्री जी के पुत्र श्रीर राजावश मान मदन करने वाले परशुराम की देखा। ॥ १८ ॥

कैलासमिव दुर्भाग्यं कालायुगिमिव दुष्कालं।

ज्वलनकामिति तेजोगिरिदुर्गिरिरीव पूर्णप्रजनः। ॥ १९ ॥

परशुराम जी कैलास की तरह दुर्भाग्य, कालायुग के सामान दुष्काल, कोठ से जलते हुए प्रक्ष के सामान, श्रीर और पाऑर लोगों द्वारा दुर्गिरिरी थे। ॥ १६ ॥

स्त्रवः चासाय तर्कुं भुर्विर्दुर्ज्ञोपमम।

प्राप्त काँरकुष्यं च त्रिपुरवं यथा शिवम्। ॥ २० ॥

वे अपने कंधे पर परसा लेने हुए थे श्रीर विजली की तरह चयंचमाता धनुष श्रीर वाण लिये हुए, ऐसे जान पढ़ते थे, मानों त्रिपुरावं जी के मारने के लिये शिव जी आये हें। ॥ २० ॥

तं दृष्टा भीमसेनार्थं ज्वलनकामिति पाकस्य।

वसिष्ठपुरुषः सत्रं जनप्रमपरायणः। ॥ २१ ॥

१ पूर्वप्रजनः—पावरः। (गो ०)
वालकाण्डे

दृष्टिय दुःस्थ आग के समान उन भयानक हृदयारी परशुराम जी के देख, जप्पामपरायण वर्षित प्रमुख। २१।।

संगता धुनयः सर्वं सजनजयुरयो मिथः।
कब्जित्वसद्भार्यं क्षण नेत्तादधियतिः। २२।।

अभिवाद भाप्स में कहने लगे कि, पिता के माते जाने के कारण कोठ में भर, परशुराम जी भ्रमियों का नाश करने की तैयारी करने नहीं आये। २२।।

पूर्वं कित्रस्वं कस्त्वं गतामन्युर्गत्वज्वरः।
कंस्योस्यास्वादः सूयेषा न खलवस्य चिक्कीपितम्।।२३।।

भ्रमियों का नाश कर पहले तो इनका कोठ शान्त हो जाकर है। अब क्या पुनः भ्रमियों का नाश करने पर चले हैं। २३।।

एवमुक्तवास्यास्वादाय भार्गवं भीमदर्शनम्।
धृष्टवेण रामरामेति वने मधुरम्बुवनम्।।२४।।

इस प्रकार परशुराम वात्सलीत कर अभिवाद अर्थे पाप ले उनके आगे गये और राम। राम। ऐसा मधुर चचन कहने लगे। २४।।

प्रत्यूष्णु त मृणामृष्ण्यां प्रतापवान्।
रामं दातरथिं रामो जामदग्न्योर्म्यभाषात्।।२५।।

इति विश्वास्तितमः खर्चः।
पञ्चसत्ततितम: सर्गः

प्रतारी मरुपरम ने वर्गियों का चह प्रातिष्ठय ग्रहण किया त्रीर दुर्गर्गन्दन अरियाम जी से मरुपरम जो इस प्रकार वातविष करद्धे लगे ॥ २५ ॥

वालकागड का चैहसचरो गर्ग समास हुशा ।

—ःः—

पञ्चसत्ततितम: सर्गः

राम द्राजरथे राम तीर्थे ते श्रृयुसेतुतमः ।
धनुषग्रें भेदनं चेव निरिजिश्न मया श्रुतम् ॥ १ ॥

हे वीर राम! तस्मात् पराक्रम इद्द्वृत्त सुनाई पड़ता हैं।
जनकपुर में तुमने जो धनुष तांडा हैं उसका सारा धुतान्त सी
में ने सुना हैं ॥ १ ॥

तदद्रुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुपसत्वया ।
तत्त्व त्वाग्हसमुपासो धनुश्चिन्नपरं श्रुतम् ॥ २ ॥

वस धनुष का तोड़ना विस्मयायाद्वृत्त त्रीर क्यान में न भावने
योग्य वात हैं। उसीका त्रुच्छान सुन हम यहां भावै हैं त्रीर एक
इसरा सत्यम धनुष लेते भावै हैं ॥ २ ॥

तद्विदं घोरसक्तान्त जामदन्त्यं महद्दुरं ।
पूर्यस्व श्रीरेषाव स्वरलं द्विषयति च ॥ ३ ॥

यह भयक्तर व्यं धनुष जस्मन्दि जो का है ( अथवा इस धनुष
का नाम जामदन्त्य है ) इस पर रोश्य न德拉 कर त्रीर वाया न德拉
कर, भाव एपना बल मुसे दिखलाये ॥ ३ ॥
तदह ते वलं ह्या धनुपोजस्य प्रपूरणे।

धन्युदुं श्रद्धास्यामि वैराश्लाभ्यामहं तव॥ ४ ॥

इस धनुष के चढ़ने से तुम्हारे वल की हम जान लगें और उसकी प्रशंसा कर हम तुम्हारे साथ धनु युद्ध करेंगे॥ ४ ॥

तस्य तदवर्णं श्रुता राजा दृष्टरथस्तदः।

विषणवदने दीनः माचलिवाचिक्यमत्रवीत्॥ ५ ॥

परशुराम जी की ये वार्ता सुन, महाराज दशरथ उदास हो गये और दीनतार्पिक (प्रथार्थ परशुराम की खुशामद कर के) धार जोड़ कर कहने लगे॥ ५ ॥

श्रवेराष्ट्रान्तस्त्वं भाषाणं धार्यश्रवः।

वालानां सम पुराणामभरं दातुपसिः॥ ६ ॥

हे परशुराम जी! भापका नारियों पर के। कैप या वह शान्त हो चुका, क्योंकि भाप तो वड़े शाक्त्री बांधकर है। (प्रथावा भाप बांधकर हैं ग्रंथः नारियों जैसी गुर्दा के शान्त कीजिये, क्योंकि बांधकर की कैप करना शोभा नहीं देता) भाप मेरे हम वालक पुज्यो की प्रमाणद्रान दीजिये॥ ६ ॥

भागवाणूं कुले जातं स्ताध्यायत्रशालिनाम्।

सहस्त्रले प्रतिज्ञाय चाहं निश्चितस्वागसि॥ ७ ॥

बेदपाठ में निरत रहने वाले भागवतं में बच्चन भाप तै सर्द के साथे प्रतिज्ञा कर सब हिरियार भाग चुके हैं॥ ७ ॥

स तत्त्वाय शून्यपरं भूवाकार्य वशुन्भराम्।

दत्ता वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः॥ ८ ॥
पञ्चसतत्तितमः सर्गः

होर मारी पृथिवी का राज्य कर्त्तव्य की दें, आप ते महेन्द्रचिन्मणि के वचन में तप करने चले गये ने || १1 ||

भयं गम सत्वविनायक संघातस्तत्व महामुने || ३ ||

न चैक्रसिन्ने रामे सर्वे जीवायहे क्रमम् || ४ ||

( पर हम देखते हैं कि, ) आप हमारा सर्वस्त्र नए करने के लिये ( पुनः ) आये हैं। ( आप यह जान रखें कि, ) यदि कहाँ हमारे प्रकर्षके राम ही मारे गये तो हमने से कोई भी जीता न बचेगा || ६ ||

नुविेवें दृशये जापदग्नयः प्रतापवान्

अनादायः तदाक्रमं रामेनात्मवध्यभापत || १० ||

महाराज दृशये की इन वातों को प्रवहेला कर प्रथात्तू कुल
भी उत्तर न दें; प्रतापी परशुराम श्रीरामचन्द्र जी से व्याहे—|| १० ||

हमे दे धनुपी श्रेष्ठे दिन्ये लोकाभिविलुः।

द्वे बलवती गुरुये सुकृते विश्वकर्मणा || ११ ||

हें राम। ये दोनों धनुप प्रत्युत्तम हैं और सारे संग्राम में प्रसिद्ध हैं। ये कहे हुड़ हैं और ये चिह्वकर्म द्वारा बढ़ी सावधानी से व्याहे गये हैं || १२ ||

अतिसुपर्न सुरेशक्रम ज्योतकाय सुयुत्तवे।

तिरुप्रग्न नर्भ्रेष्ट भगवं कान्तस्त प्रत्यया || १२ ||

हमे से एक तो देवताधीन ने महादेव जी के युद्ध करने के
लिये दिया था, जिसके उन्नती तिरुपरात्तु के मारा था और उसकी तुममे तोड़ हाला है || १२ ||
इदं द्वितीयं दुर्भर्षं विष्णूर्दर्तं सुररत्नमः ।
तदिदं ब्रेञ्ज्रं राम धनुः परपुराञ्जयम् ॥ १२ ॥

यदह दुर्भर्षो भीर, खो इमारे पास है, बड़ा मज्जूत है। इसे देव-
तानों ने विष्णु महाभारत के दिया था। हे राम! यह विष्णु का
धनु, भी शान्तों के पुर को जीतने वाला है ॥ १३ ॥

समानसारं काकुस्त्यं राग्नीश धनुपा त्विद्मु ।
तदा तु देवता: सर्वं पुर्ण्यन्ति सम पितामहतः ॥ १४ ॥

और महादेव जी वाले धनुप के बाएँ का है। एक बार सब
देवताओं ने ब्रह्मा जो से पूँजा था कि, ॥ १५ ॥

शितिकिणङ्गस्य विष्णोशं वन्दात्रुनिरीक्षया ।
अभिमायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः ॥ १५ ॥

महादेव जी और विष्णु महाभारत के धनुषों में क्रूर सा बड़ा
कर है। ब्रह्मा जो ने देवताओं का अभिमाय जान कर ॥ १५ ॥

विरोध जनयामासं तयोः सत्यचत्वारः ।
विरोधेषु च महदुरुः तथोऽहंपरमहणस्य ॥ १६ ॥

सत्यचत्वारों में श्रेष्ठ (ब्रह्मा जो ने) ओन श्रेष्ठों में बड़ा विरोध
उत्पन्न कर दिया। इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि, उन
देवों में रामायणार्थी ब्रह्मा बुद्ध हुआ ॥ १६ ॥

शितिकिणङ्गस्य विष्णोशं परस्परस्यायिष्टोः ।
तदा तु जृष्णितं जैवं धनर्मिल्लिकरकमस्य ॥ १७ ॥

महादेव ब्रह्मा विष्णु एक दूसरे को जीतने की हृदय करने
लगे। महादेव जी का बड़ा मज्जूत धनु मीला पड़ गया ॥ १७ ॥
हृद्धारण महादेवस्तम्भितोत्स विलोचनः।
देवसद्या समागम्य सर्पिसहः सचारणेः। ॥ १८ ॥
शैव नेत्र बलसे महादेव जी विष्णु जी के हुँकार करने ही से स्थापित हो गये। ( प्रथम विष्णु ने शिव का हरा दिया ) तब ऋषियों और चारणों सहित सब देवताओं ने वहाँ पहुँच कर ॥ १८ ॥
यात्रिता प्रतिमा तत्र जगसुस्त्रोऽसुरोत्सामः।
जृम्भितं तद्धूर्तं हुष्ठं विष्णुपराक्रमः। ॥ १९ ॥
देवताओं की आर्यपत्नी की ध्यान सुदर कर रखता है। विष्णु के पराक्रम से शिव के धनुष को ढोला देख, ॥ १६ ॥
अभिजय मे निरे विष्णु देवा सर्पिसणासद्या।
धनु, ग्हरस्तु संकुच्छो विदेहेघु महायशः। ॥ २० ॥
ऋषियों सहित देवताओं ने विष्णु को ( प्रथम विष्णु के धनुष ) प्राधिक पराक्रम । ( प्रथम हुड़द ) लम्बाई। महादेव जो ने इस पर कुछ ही, अपना धनुष विदेह देश के महायशाध्वी। ॥ २० ॥
देवरात्स्य राजपरेदिरो हस्ते सशास्यकर्मः।
इदं च वेण्वर राम धनुः पर्युपर्ययः। ॥ २१ ॥
राजपर देवरात के हाथ में वाष सहित वे दिया। हे राम! मेरे हाथ में वह जो धनुष है, यह विष्णु का है और यह सभी शल्यों के पुर का नाश करने वाला है। ॥ २१ ॥
ऋचीने भार्गवे मदांद्रिष्णः सन्मयासुरमयम्।
ऋचीकृतस्तु महातेजः युगस्यामातिकर्मणः। ॥ २२ ॥

१ अत्यतिकर्मणः—स्वर्गयत्वपितापार्जितिकार्यारहितस्य। ( २० )
पितृमान ददौं दिव्य जमदग्नेमहत्तमाः।
न्यस्तश्रेसे पितारि मे तपेश्वर समझिते॥ २३॥

पूर्वकाल में विष्णु भगवान् ने यह धनुष्य भूमिभागी अच्छीकृति के दिया। चूँकि ने अपने महानगित धनुष न हारे पिता महाशाम-जमदग्नि को दिया। जब हमारे पिता, श्रावकारण करता त्याग, तप करने लगे॥ २२॥ २३॥

अर्जुन ने विद्ये मुत्यु श्राह्कां बुद्धिमापिति॥

चध्यपारितर्गं हु शिशु श्रुत्वा सुदारामाम्॥ २४॥

तब राजा सहस्राङ्ग ने अन्मे पिता के गँवारापन कर मार डाला। पिता के इस नित्यक्रिया मृत्युर अस्थाय निष्टुरता पूर्वक मारे जाने का जाल पुनः॥ २४॥

क्षत्रियसूत्रायपापान्त जातमनेकृतः॥

पूर्विंचन चालिंद्रां प्राप्य कर्मपाय महत्तमसे॥ २५॥

क्षेत्र में सर जैसे जैसे तन्नियु अक्षय होति गये तैसे ही तैसे हमने फिरनी ही वार उनकी मारा। सारे पूर्वियो का राज्य अपने हस्तगत कर, हमने महात्त्य कर्म की॥ २५॥

यान्यान्ते तदा राम दक्षिणां पुप्यकमेष्टे॥

दृत्या महेन्द्रमिन्निःस्थएवतस्मिनियते॥ २६॥

स्थितोजस्मि तत्स्मिन्निःपं जुलकर सुरसेरविते॥

अद्य तूतमागिर्येऽय राम महावल॥ २७॥

यद्र के श्रान्त में उस पुप्यकर्म की बुद्धिया खलुम दे दिया श्रीसे हम तब से सुरसेवित महेन्द्रचाल पर तप करते हुये, वड़े खुश से रहते हैं। चार ये महावली राम। तुस्कारे उच्चम पराक्रम॥ २८॥ २७॥
पद्तस्ततितमः सर्गः

श्रुत्वात् धनुषो भेदं ततेः जह दुर्मागतः ।
तवदं चस्मि राम पितुपैतामहं महत् ।
स्मार्थर्थम् पुरस्कृत्य गृहीत्व धनुष्क्षम ॥ २८ ॥

द्वारा धनुष फळ दृष्टता सुन, हम तुर्नत यहाँ चले आये हैं। प्रायः चिपण्ड प्रदृढ़ हमारे पुख्लों के इस उत्तम धनुष को ![व्याख्या](#) में स्थित है, लोजिये । ॥ २८ ॥

योजयस्त्तं धनुषोऽपि गर्वं परपुरुषायसः ।
यदि स्वकारसि काकुलसस्त हन्दे दास्यामि ते ततः ॥ २९ ॥

इन्न प्रक्षश्चतमः सर्गः ॥

हे प्राचुत्यो के पुर को जीतने वाले! इसे मजित कर (रेंदि से) इस पर वाण चढ़ाये। हे काकुलस! यदि तुम इस पर वाण चढ़ा सकें तो में तुमसे ददन्युद्ध कहेंगा ॥ २६ ॥

वालकायणा का पचहतरवस सर्ग समाप्त हुआ।

——

पद्तस्ततितमः सर्गः

—-४०—

श्रुत्वा तज्जामदग्नयस्य वाक्यं दासारथस्तदा ।
गौरवाचन्त्रितकथा: पितृ रामप्रायचार्य ॥ १ ॥

* क्षत्रियर्थम् में स्थित है; अर्थात् यदचपि मैंने क्षत्रियर्थम् वर्णविद् वुद्राहा परियाग कर दिया है, तथापि इस समय में वुद्र हे परामुख नहीं हैं। कहीं यह सत कह देना कि, वाण अंतिम रक्त रखना ही शोभा देता है।
परशुराम जी के वचन सुन श्रीरामचंद्र जी आपने पिता महाराज दृश्यारथ के गौरव से अत्याचार आपने पिता का अहसास कर के,
मद्वार ( धीरे ) से बाले ल। १।

शुभवानसिप यज्ञश्रम कृतवानसि भाग्यव।
अनुरुपयामहे प्रभुनितरानुत्यमास्तितः। २।

हे परशुराम जी। आपने जो का काम किये हैं, वे सब में हुँ चुका हैं। आपने प्रिय प्रकार आपने पिता के मारने बाले से बदला लिया—वह सब सुने विदित है। २।

वीरमहिमविवाहः क्रष्टरमेण भाग्यव।
अवजानसि मे तेजः पद्य मेल्य पराक्रमम्। २।

किंतु आप ले यह समस्त हैं कि, हम वीर्यहोन हैं, हमारे शास्त्रीय का धमाव है, प्रति: आप जो हमारे तेज का निरूपण करते हैं सो आप जब हमारा पराक्रम देखिये। २।

इत्युऽक्ष राधवः कुञ्जो भाग्यवनस्य भरासनम्।
शर्य च प्रतिज्ञाह हस्तालक्षुपराक्रमः। ४।

यह कह कर तौर फौज में भर श्रीरामचंद्र जी ने परशुराम के हाथ से चुनून तौर तारा फट ले लिया। ४।

आरोप्य स चन राम: शर्य संज्य चकार ह।
जामदन्य तेतो राम राम: कुञ्जोव्रववीदिदिदस् । ५।

तौर चुनुप पर रोजा चढ़ा कर उत्तर पर वाया चढ़ा, जमदग्नि के पुत्र परशुराम से श्रीरामचंद्र जी कह हो यह बाले। ५।
परस्परास्तिमः सर्गः

(५०७)

व्राह्मणोपसीति में बूझो विश्वामित्रक्रतेन च
tस्माच्छको न ते राम मेक्तु अणहरं शरसः || ६ ||

ईपरशुराम जी ! एक ता व्राह्मण होने के कारण चाप
मेरे पूजय हैं, इसरे चाप विश्वामित्र जी के नातेश्वर (विश्वामित्र
जो को वदिन के पोछ ) हैं। प्रत्र० इस वाक्य को चापके ऊपर बढ़
कर, चापके प्राण लेना ता में नहीं चाहता || ६ ||

इमां वा तदरूपति राम तपोवर्रमणार्जितान्।
लोकान्ययति मानवा ते इनिष्काम्य यद्रिष्कसः || ७ ||

क्रियात् इस वाक्य से या ते चापकी गति को, ( यानी पैरों को)
या चापका गमनादिको चापकी शक्ति को, अथवा तपस्या द्वारा
प्राप्त प्राप्तके लेकर को में नए भविष्य कर दृष्टा । चाप जो पसंद
करें वही किया जाय || ७ ||

न ग्राम वैण्याको दिव्यं श्रवं परपुरुशयः।
मेधः पतिति वैवर्येनं विद्धार्धिनाशनः || ८ ||

क्रियात् यह वैण्याव चाप है । यह अपनी शक्ति से श्रवू के
लेकर अभिमान को नए भविष्य करने का लेकर होता है । यह वाना क्रम
किये, तरस में नहीं जाता—यह अभिमान ( अभिमान निप्पल न
जाने का लेकर ) है || ८ ||

वरायुन्दरं राम इन्द्रु सर्पिणगः हुराः।
पितामहं पुरस्कृतं समेतभिषत्र सर्वशः || ९ ||

१ इमां—प्रत्यवान सिद्धांगति । (१५०) २ बीयर्य—स्वस्वत्त्वा । ( गो० )
गन्धर्वरूपस्य सिद्धचारणकिलिचाँः।
यशराजसनागाध तदर्भन्तु महान्वतमू॥ १० ॥
श्रीरामचन्द्र जो की उस दिव्य धनुष पर वाण धारण विचुः हुप
देख, गन्धर्व, ध्रुवसर, सिद्ध, चारण, दिव्य, खत, राजास और नाग
सव श्राद्ध जी के पीछे दुकृत इस अद्वैत यज्ञार्ध का ढूँढने के
लिये वहाँ जमा हो गये ॥ ६ ॥ १० ॥
जो भी तदा लेके रामे वरङ्गन्यथे ॥
निर्वीर्यः जाम्बुद्वित्क्ष रामो रामसुदेश्यते॥ ११ ॥
श्रीरामचन्द्र के उस दिव्य धनुष की हाथ में लेने से तीनों लोक
हृदयित हो गये। परशुराम जी के शरीर से वैष्णव तेज निकल
गया इससे वे विशिष्ट हुप ॥ ११ ॥
तेजोभिन्नवीर्यार्ज्जाम्बुद्वन्यो जदीकृतः।
रामं कमलप्रजानं दंडं मन्दं मन्दसुव्रच ह। ॥ १२ ॥
श्रीरामचन्द्र जी के तेज से जब परशुराम जी जड़ के समां वैष्णवहीन हो गये, तब वे कमलनयन श्रीरामचन्द्र जी से धीरे धीरे
कहते लगे ॥ १२ ॥
कष्यपयं मया दच्चा यद्य पुरुष वसुन्धरा।
विषये से न वस्तवत्मित यां कष्यपेऽखर्वात् ॥१३॥।
जव वाचानत्त जैसे हमारे सारी पुरातनी कष्यप मुनि की दी, तब
उन्होंने हम से कहा था कि, ग्राज से तुम हमारे भूमि या राज्य में
न वस्ता ॥ १३ ॥

१ निर्वीर्यः—निर्गतवैध्यतेजः। (गो०)। २ वदेश्यत विशिष्ट हृदयः
शेषः। (गो०)। ३ विषये—देशः। (श०)।
पद्मातितमः सर्गः

साहिङ् गुरुवः कुर्अनपृथिविय्यां न वसे निशाम्।
तद्या प्रतिज्ञा काकुटसः क्रुद्ता भूं कश्यपसः हि। १४।

इति हें फाकुर्ः कश्यप जी के कथनानुसार या उनकी प्राणी को माने, में रात में पृथिवी पर नहीं रहता। पर्यावरण तब से हमारे अपनी प्रतिज्ञा के प्रतेर हम पृथिवी का क्रुद्ता के हो सकते हैं। १४।

तद्रिमां लम्त गंति वीर हन्तु नाहिः संघव।
प्राणजन्यं गमिन्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमसू। १५।

हि राघव! अति आप हमारी सर्वत्र की गंति (लेकिन न जाने की गंति का) नए न कोझी। जिससे हमारी बेगवती चाल वही रई श्रोर हम श्रीम पर्वतों में उत्तम महेन्द्राचल पर पहुँच जाया करें। (यदि कहाँ यह चली गयी तो प्रतिज्ञा मानने को पालक श्रोर सिर पर चढ़ेगा। प्रतिज्ञा यह कि, कार्यपी नहीं करें)। १५।

लंकास्तवणितमि राम निर्जितान्तस्तपसा मया।
जाहि तात्त्विकमुक्तेन मा भुत्कालस्य पर्यं। १६।

हि राम! किन्तु हमारे तप द्वारा जैं लेख जीत रखें हैं। (अर्थात् जिनकी प्राणी का प्रतिकार सङ्गम कर रखा है) उनकी इस विशेष वार्षिक से हमारे कोझी। अति हमारे अवलंब न कोझी। १६।

अष्ट्रं मधुहुन्तारं जानामि त्वं शुरुतस्मारः।
भजुपोः परामर्शार्तः स्वस्ति तेस्तु परमप। १७।

१ परामर्शान्तः—महणात्। (गोा)
* पृथिवी का दूसरा नाम कार्यपी तभी से पढ़ा है।
हे परम्परा! धारके द्वारा इस धनुष के श्राय किये जाने से, हमने धच्छे तरह जान लिया कि, धार प्रत्यय (धारिनाशी) हैं मध्य दृष्टि के मार्गे वाले हैं, और सब देवताओं में उच्च पृथ्वी विभिन्न हैं। धारके लोहे हैं।

एते गुरुणारं सर्वं निरोक्षन्ते समागतां।

लायप्रतिमेकमुर्मणसप्रतिदः। याहें ॥ १८॥

ये सब देवतागण धारके दृश्य करने धारये हुए हैं। धार सब कामों के करने में चतुर और समर में धारने प्रतिदृश्य की नात्र करने वाले हैं।

न चेत्य मम काशुत्थ द्रीड़ा भवितमहर्षि।

tयया त्रेतोक्यनाथेन यदहैं विशुच्चिक्रात्॥ १९॥

हे रावण! धार तीनों लोकों के लक्ष्मी हैं। धार: यदि नम धारके हर गये तो इसको हमें लजा नहीं है॥ १६॥

मारसप्रतिमं राम भूकुम्भिहः सुकुट।

समारेच्छे गमिज्ञामि महेन्द्र पर्वतोजसम्। ॥ २० ॥

हे राम! धार इस प्रकृति के धारके की ड्राक्क्रिष्य। धार के खुदे ही में पर्वत-तच पर्वतासन चला जाओ।। ॥ २० छ।

तथा ब्रजचति रामे तु जामदनये प्रतिप्रानु।

रामो दाशरथर्यं श्रीमांशिष्येन श्रसुतंसम्। ॥ २१॥

जब प्रतिप दर्शराम ने श्रीरामचंद्र से इस प्रकार कहा; तथा दर्शियन्यन श्रीरामचंद्र ने इस उच्च वाण को ब्लू दिया। ॥ २१॥

1 प्रतिदृश्य--प्रतिमेत सहित (१८०)
स हृदान्तदय रामेन स्वाल्लोकांस्तपसासार्जितान्।
जामदग्न्यो जागामाशु महेन्द्र परंतोतामम् ॥ २२ ॥
ब्राह्मणे से तप द्वारा दृष्टे किंचे हुप लोकोऽकोऽ की नए हुधा
देव, परशुराम जी तुरंत महेन्द्रचल की चले गये ॥ २२ ॥
ततो बिचित्रिताः सर्वा दिशश्रोपदिशस्तथा ।
युराः सर्वसनात्म राम प्रमोदसुर्दङ्ग्युधुम् ॥ २३ ॥
सब दिशापूर्व व्रीर विद्विशापूर्व पूर्वचतु प्रकाशामान है गर्भा प्रयात्ति
अनंतकार जी झुआ हुमा था, वह दूर हो गया। कृप्यि श्रीर देवता
घनुप-साय-धार्म श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥
रामं दृश्वरधिं रामो जामदग्न्यः प्राध्यम च ।
ततः पद्तिषण्ण कुला जगामात्यगति ग्रहः ॥ २४ ॥
इति पद्तेक्यति: सर्वः ॥

जामदग्नि के पुत्र परशुराम, दुश्यनन्दन श्रीरामचन्द्र जी की
प्रशंसा कर के तथा उनकी परिक्रमा कर, अपने श्यान की चले
गये ॥ २४ ॥

वालकायड का छिंतार्वरां सर्वा समास हुधा ।

—***—

१ आल्मगति—हस्स्यां । ( मे० )

"छोकोऽ से अभिभ्राय यद्वर्त पर तप के वस फल से है, जो तप द्वारा
परशुराम जी ने सम्पादन किया था। अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी ने परशुरामकी
तपस्या की वह फल जिल्ले उन्होंने अनेक लोकों की प्राप्ति का अधिकार
प्राप्त किया था, नष्ट कर दिया ।

चा० २१०—२१३"
सतसततितमः सर्गः

गते रामे प्रवान्तालम् रामे दाशरथनिर्धातुः।
बरुषायासमेयः दुःखे हस्ते सतायकम्।। १ ।।

विगत कृष्ण परशुराम जी के चले जाने के बाद, दशरथनन्दन श्रीराम जी ने धर्माकार हाथ का बाह्य सहित वह धनुष वज्र जी का विश्वास के तरह सोप दिया।। २ ।।

अभिवाच ततो रामे वसिष्ठमुखाष्ट्रपीनः।
पितारं विन्ध्यं हस्तं गोवाच रघुनन्दनः।। २ ॥

तदनन्तर श्रीरामचर्या जी ने वशिष्ठ आदि अश्विनियों की अनुमति किया और महाराज दशरथ की चान्द्रायण हुआ त्वचा उनके बाले ॥ २ ॥

ज्ञातं नेव गते रामः प्रयातु चतुर्ज्ञिणी।
अयोध्यायैनिमुखी सेना त्यथा नाथेन पालिता।। ३ ॥

परशुराम जी चले गये, जब भ्रापुरी धर्माकार चतुर्ज्ञिणी सेना की धौप्याचारी की श्रीराम चलने की धारा दीजिये।। ३ ॥

रामस्य वचनं श्रुतवः राजा दशरथः सुतम्।
वाहुम्यां सम्पण्यश्च मुद्धिनि चायत्राय राजवर्म।। ४ ॥

श्रीराम जी का यह वचन छुट महाराज दशरथ ने अपने पुत्र श्रीरामचर्या की खाती से लगा लिया और उनका माया धूपा।। ५ ॥

१ प्रतापात्मा—गतक्षेत्रायोमाचितिं त्यस्। ( २० ) २ हस्ते—हद्दल्ले। ( २० )
गतो राम इति श्रुत्वा हुएः प्रसुदितो तुपः ।
पुनर्जातं तदा मेने पुनरात्मानमेव च ॥ ५ ॥
पर्यारम जो का जाना छुट महाराज दशस्य परम प्रसन्न
हुए चौर प्रयणा तथा प्रयणे पुष्क का पुनर्जन्म हुन्या माना ॥ ५ ॥
चाथ्यामास तां सेनां जगामाण ततः पुरीम् ।
पताकाभजिनीं रस्मां जयेदुहुनिनादितमाः ॥ ६ ॥
चौर सेना का आगे बढ़ने की प्राण्या दी । महाराज दशस्य
बड़ी जल्ली घात पताकाओं से युगोजित चौर जयवैयप से निनु-
दित प्रवेशपुरो का गये ॥ ६ ॥
सिक्कराजपथं रस्मां पर्वारण्णकुमोतककपारम् ।
राजमवेश्चमुखः ॥ परंमज्ञवादिभि ॥ ७ ॥
| प्रवेशपुरों को जल्ली जल से गड़की हुई थी । चौर उन
| पर पुष्क बिचरे हुए थे । वे बड़ी रस्ता जान पड़ती थी। महाराज
| के आगमन से प्रसन्नमुख पुर्वासी आनेक प्रकार के आशीर्वादः-
| समन बचन बोल रहे थे ॥ ७ ॥

सम्पूर्णां प्रविशद्राजा जनाँधि: सम्रोक्षक्तामाः ।
पारं: प्रत्युग्रतो दूरं द्रिज्जेठ पुर्वासिभि: ॥ ८ ॥

ऐसी सजी हुई चौर बन्धु वान्धवों से भरी पुरी प्रवेशपुरी
| में महाराज दशस्य ने प्रवेश किया चौर नगर से आगे बढ़ पुर्वासी
| समानों ने उनकी आगमनी की ॥ ८ ॥

1 सुमुहे:—विकलन मुखे: । ( गो । )
2 मकर:—आशीर्वादंवक्:
| शीघ्रमेवामलीतमहवादिभि: । ( गो । )
पुस्तकेतुर: श्रीमालाश्रीमद्विवरक्षम् महायासरः।
अविशेष यहं राजा हिमवतसद्ध्र भ्रमित ॥ ९ ॥
महायासर महाराज दुशरय अपने राजकुमारो और श्रवणीत्रिगुण 
सहित अपने वर्फे की तरह सप्तर रंग के प्रिय राजमहर में 
गये ॥ ६ ॥
नन्द साजने राजा यहें कामः सपुजितः।
कैसल्या च शुभिर्गा च कैंकेरी च शुमध्यमा ॥१०॥
वस्मितं ग्राह्यं युक्ता यायाय्या राजयोगितः।
तत् सीता महाभागापारमित्वा च यशस्विनीसु ॥११॥
कुशचन्द्रजनस्ये चाबे जग्नुषुर्पप्पवः।
महाशहपेनेश्वर शोभिता: श्रीमचासस् ॥ १२ ॥
प्रस्नवर्तित है राजमहर में पहुंचने पर महलवासी नाथ 
रिश्वारो ने महाराज का फुलमाला चन्दनादि से मली मांजरी 
सकार किया। उदार कौशल्या, शुभिर्गा, कैंकेरी तथा अन्य राणियो 
बहुः का पनीजा करने में लगी। राणियो महाभागा सीता, 
यशवर्नी औमिला, और कुशचन्द्र की दोनों बेटियों का महलों में 
लिवा हो गयी। और वहाँ उनके मक्कल लेख अर्थात पेपन और, 
कुशचन्द्र लगाये। फिर उनकी बालके बालके रेशमी चढ़खारा 
करता ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥
देवस्तातयनान्यायः सर्वस्ताः पल्योजयनः।
अभिवाचारिवाचारायं सर्वा राजस्वसतः। ॥ १३ ॥
श्यूर तर्क देवसन्तिरो में ले जा कर उनसे देवताओं की पूजा करवायी। तदनन्तर सब वहुओं ने साथ तथा प्रभु बड़ी बढ़ी खियों के प्रसाद किया || १३ ||

[ नोट—१३ वें श्लोक में "देवतायन" शब्द के देख यह तत्प्रेक्षित होता है कि, रामायणकाल में देवताओं के सन्दर्भ बदलये जाते थे और वह समय भी भारतवर्ष में शुरुआती पूजा प्रचलित थी।]

रेमिरे सुदिता: सर्वा भूतिम: सहिता रहः।
कृंतदारा: कृतान्ताय धनना: ससुहुङ्गना: || १४ ||

तदनन्तर वे सब अपने अपने पतियों के साथ राजधानी में जा हुर्पित है। निवास करने लगाँ। उद्धर श्रीसम्भवादि सब राजकुमार निवासित है, तथा सब धर्मशास्त्र चलने और रोकने की विशेष निपुंस एवं धनवान है, अपने इत्यादि मित्रों सहित। || १४ ||

शुभ्रप्रभाणा: पितरं वर्तयन्ति नरस्वभाभा।
केस्यचिरघथ कालघथ राजा दशरथ: सुतमृ ||१५||

पिता की सेवा करते हुए जा रहने लगाँ। कुछ दिनों बाद महाराज, दशरथ अपने पुत्र कैसियोतन्नदन मरत जी से बैठे। कैसियोतराज के पुत्र धर्मशास्त्र वन्द्यारे मामा यहाँ (बहुत दिनों से) ठहरे हुए हैं। || १५ ||

भरतं कैसियोत्राजमन्नब्बन्नदनः।
अर्य कैसियोराजस्य पुत्रो वसतिः पुत्रक || १६ ||

त्वां नेतुमागते वीर्युधाजिन्नामातस्तपव।
शूर्वा दशरथस्यस्याद्वरलः कैसियोतः ||१७||
गमनायाधिकायम् चर्कुग्रसहितस्तदा।
आपृच्छायं पितरं स्तुते रामं चाकिष्टकारिणम् ॥१८॥
मातुकारि नस्वेषं श्रद्धुग्रसहितं यथा॥
गते च भरते रामो लक्ष्मणेन महावर्णः ॥ १९ ॥

cे यह तुम्हारे मामा युधिष्ठिर तुम्हें ले जाने के लिये जाये
 fodder हैं। किन्तु भरत जी महाराज दुश्मन के वह वचन खुद
 श्रद्धु जी के साथ जवानाल जाने की तैयार हो गये। तदनत्तर
 प्रपने वोरण पिता और अति कामकाज भाई श्रीरामचर्य तथा
 कॉशलादि मातादेव से पूँछ वे श्रद्धु की साथ ले चल दिये।
 भरत जी के जाने पर श्रीरामचर्य व लक्ष्मण ॥ १५॥ १६॥
॥ १५॥ १६॥

पितरं देवसनां पूजयामासतुस्तदा।
पितुराज्ञां पुरस्तल्य पारकायाणि सर्व:॥ २०॥

चकार रामो धमत्तमा सिवाणि च हितानि च।
मातुभेयो मातुकायाणि रामः परममन्तित:॥ २१॥

प्रपने वेद समाज पिता की सेवा करने और प्रपने पिता से
 पूँछ पूँछ कर पुरातनों के भ्रम व विशेष सब कार्य करते थे।
 इतना ही नहीं वे माताओं के सो सब काम बड़ी अच्छी तरह किया
 करते थे॥ २०॥ २१॥

गुरुवर्ण गुरुकायाणि काले काले चकार ह।
एवं दशरथः पीता ग्राह्याना नागमास्तदा।॥ २२॥

१ नागमास–वर्णजः (भूमु)
वेश शुभकामिनी श्रीरामचंद्र जी के शेष वर्षों के महाराज द्राक्षर, श्रीगुरु, श्री शीतलवासिनः।

तेषामातिविशालै लोकः रामः सत्यपराक्रमः॥ २३॥

श्रीरामचंद्र जी के शील व्यवहार से सव ही पुरवासी सत्यपराक्रमवाली राज्यमारियों में महाराज द्राक्षर जी का नाम बहुत चाचित्विक व्यास्त था। श्रीरामचंद्र जी के अन्य नायकों को ही गये थे॥ २३॥

स्वयंभूरित्रे भूतानां वच्चु गुणवत्तरः।

रामस्तु सीतासारां विनाश वहान्तुवः॥ २४॥

स्वयम्भू-श्रीशर्ता की तरह वे सव व्यवस्थापन से बढ़ कर गुणवानः समाने जाते थे। श्रीरामचंद्र जी ने बहुत वर्षों तक सीता जी के सृष्टि विनाश किया॥ २४॥

मिया तु सीता रामस्तु द्वारः पितृकुट्तरा इति।

मनस्त्री तद्गतमना नित्यं हृदि समापितः॥ २५॥

श्रीरामचंद्र जी की, व्रजकाल से प्राप्त जानकी जी प्रति प्रियार्थी यां श्री और वे उन पर प्राप्त थे तथा उनकी बहुत चाहते थे॥ २५॥

गुणातपुगुणप्रज्ञापि प्रेमित्युष्योभयवर्धतः।

तत्स्याध्य यत्त द्विगुणं हृदये परिवर्त्तते॥ २६॥

प्रेम्य इति, गुणां और शील के प्रभाव से सवा बढ़ा करते हैं।

'श्रीरामचंद्र जी के सव वार्ते सीता जी में श्रीरामचंद्र जी से हुनी थी॥ २६॥

1 विपय्यवासिनः प्रीति इति केपः॥ २ वहान्तुवः—ह्रदस्वर्योभयप्रज्ञापि

इति वहः। (२००)
अन्तर्जातिपि व्यत्क्रमाः व्यातिन्त्र हुत्र्य हुता ।

tस्तयं भूयो विशेषेणा

ैतिहिली जनकात्मजा ।

देवतामिः समा घे

सीता श्रीरिव रुपिणी। ॥ २७ ॥

श्रीरामचंद्र जी के मन की वातें बिना कहे ही जानकी जी,

जिनकी शिष्या देवताओं के समान थी श्रीरा जो साचात लढ़िये तेजी के तुल्य थी, विशेष रूप से जान लिया करती थी। ॥ २७ ॥

तत्सा राजर्षिणुसुपत्तिरामण्या

समेचिवात्तमराजकत्या

अतीच रामः श्रुतमेवतिकायाः।

विष्णुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः। ॥ २८ ॥

इति सत्ततितिमः सर्गः।

इत्यादां श्रीमद्भागावे वाल्मीकियां आदिकावे

चुरुचितिः सहिष्काव् शंहितायां

वालकाण्डः समासः।

राजपि जनक की दुहिता जानकी जी के साथ श्रीरामचन्द्र जी उसी प्रकार व्रति शीता की प्राप्त हुप, जिस प्रकार आर्येश्वर (देवताओं के घामी) भगवान् आदिविष्णु श्रीलक्ष्मी जी के साथ खुशानिष प्रहिल हैं। ॥ २८ ॥

वालकाण्ड का सतहारचाव सर्ग समास हुता ।

* * *

१ अदिकावा—श्रीलया। (गो) २ आदिभरवीरिविष्णु—आदिविष्णु। (गो)
|| श्री: ||
श्रीमद्भागवतपारायणपञ्चमापनकमः
श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—●—

पचमेवतुरुप्यचमार्ग्यानं मद्रास्तु वः
प्रवाहाक्षत विकीर्ण्यं वलं विष्णोः प्रवर्फ्यताम् II १ II

लाभस्तेष्यं जयस्तेष्यं हुतस्तेष्यं पराभवः
येवपारिन्द्रविश्वाम्बो हदद्ये सुधातिकितः II २ II

काले वर्षतु परस्परं पुर्णवी सत्सपशालिनी
देवोज्यं ज्ञातामति ब्रह्मणः सत्तु निर्मयाः II ३ II

कावेरी वर्षत्व काले काले वर्षतु वासवः
श्रीरामायणे जयतु श्रीरामायण वर्षताम् II ४ II

स्वस्तिनि प्रजाम्यः परिपालकस्तः
न्यायोन्न मार्ग्या मद्री माहीशाः I.

मेघार्ग्योऽभ्यमः सुषभस्तु निवर्तः
लेखकः समस्ता: सुखिनेऽभवन्तु II ५ II

महालं कैसलेन्द्रयां महानेयागुप्ताया भवे
चक्षुविलंबपुरायां सार्वभौमायं महंतम् II ६ II

कष्टवेदान्तवेदायां भेदश्यामलसुतीये
पुरातां महानेयपायं पुष्पश्चलोकयं महंतम् II ७ II
विभवामित्रनाथर्द्राय मिथिलागरीपते ।
भाष्यानां परिपाकाय भन्युपाय महंतम् ॥ १ ॥
विद्वेषकाय सततं श्रावस्यं सह सीतया ।
नन्दितातिलोककाय रामभद्राय महंतम् ॥ २ ॥
लक्ष्मीकेतवासाय चित्रकृतविहारियो ।
सेवाय सर्वस्यिनों धीरेदराय महंतम् ॥ ३ ॥
तामिरिषणा च जानुक्त्या चापवाणासातिविरोधे ।
संसेवाय सह सक्या स्तामिने मम महंतम् ॥ ४ ॥
हरिम्बारघायवासाय खरिण्डकालस्वात ।
पुर्णराजाय मकाय मुकिद्रायस्तु महंतम् ॥ ५ ॥
स्वास्तं शवरीद्रस्वपिष्टमुलासिष्टो ।
सौल्स्यपरिपुरुपाय ख्रोऽद्रिकाय महंतम् ॥ ६ ॥
हनुमस्मवेताय हयीरशाबीपदयायने ।
वालिकप्रयामाणास्तु महागोराय महंतम् ॥ ७ ॥
श्रीमते खुच्छीराय सेतुझितकलिष्वाय ।
जितराजसराजाय र्खघोराय महंतम् ॥ ८ ॥
प्रासाच नगरीं दिव्याभिभिकाय सीतया ।
राजाबिराजराजाय रामभद्राय महंतम् ॥ ९ ॥
महंताशास्त्रायेंद्रंदाचार्यपुरोगामे ।
सप्तेश पूर्वेचाचायें स्ततातायस्तु महंतम् ॥ १० ॥

(*)
(२)

माधवसम्बन्धायः
स्वस्ति प्रजाम्: परिपालयन्ताः
न्यायेन मारंगेण महों महीशा: ।
गोविण्डलोकेण: शुभमस्तु निष्यं
लोकाः समस्ताः छुँखिने महन्तु ॥ १ ॥
काले वर्ष्यं पर्जन्यं: पृथिवी सल्ल्याणि: ।
देशायं चोमर्यस्त ग्राहयाः सन्तु निर्भयः ॥ २ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषा कृतस्तेषां परास्यः ।
चेष्यमिद्वृष्टित्वायम्: हद्ये सुपतिष्ठितः ॥ ३ ॥
मन्दलं कोलेन्द्राय महंतीयः रुयावधि: ।
चक्रवत्तिन्तूर्ताय सार्वसङ्गाय मन्दलम् ॥ ४ ॥
कायेन घाचा मन्दरस्तिप्रेतः
सुदृढ्यालना वा प्रकृते: स्वभावात् ।
करोमि यथोस्त्रानं परस्तै
नारायणायेति समर्प्यामि ॥ ५ ॥

स्मातंसम्बन्धायः
स्वस्ति प्रजाम्: परिपालयन्ताः
न्यायेन मारंगेण महों महीशा: ।
गोविण्डलोकेण: शुभमस्तु निष्यं
लोकाः समस्ताः छुँखिने महन्तु ॥ १ ॥
काले वर्ष्यं पर्जन्यं: पृथिवी सल्ल्याणि: ।
देशायं चोमर्यस्त ग्राहयाः सन्तु निर्भयः ॥ २ ॥
अपुष्टा: पुष्ण्यं सन्तु पुष्ण्यं: सन्तु पौष्ण्य: ।
प्रधाना: सधना: सन्तु सीतान्तु शरदाः प्रश्यम् ॥ ३ ॥
वर्तिं रघुनाथस्य शतकोक्तिप्रविष्टरम्।
प्रकृतमत्रं प्रोक्तं महापातकनाशनम्। २।।
श्रुवन्यायमायेन महत्या यः पार्वें पद्मेव वा।
स याति प्रहणः स्थानं प्रहणं पूर्यते सदा। ५।।
रामाय रामभ्राय रामचन्द्राय वेधे।
रघुनाथाय नाथाय सीताया: पत्रं नमः। ६।।
यम्मक्षणं सहजाते सर्वदेवज्ञस्थते।
ज्ञानशी समवचे भवतु मद्वलक्षम। ७।।
मद्वलं कोसलेनाय महतीयगुप्ताय।
चक्रवर्तितकुजाय सार्वसैमाय मद्वलक्षम। ८।।
यम्मक्षणं सुपर्णव्य विन्दासुक्कवलुः।
प्रमुखं प्रार्थ्यानस्य तच्चे भवतु मद्वलक्षम। ९।।
प्रमुखोपाधाने दुल्हन्यातो वजनकर्यं यद्य।
प्रदित्यमक्षणं प्रादात्वचे भवतु मद्वलक्षम। १०।।
श्रीविश्वमन्यप्रक्रमते विधाः स्मितवेदज्ञ:।
पदार्थसीमक्षणं राम तच्चे भवतु मद्वलक्षम। ११।।
ज्ञतवः सागरं द्वीपं वेदा लोकं दिष्टश्च ते।
मद्वलानि महावाहो दिष्टं तव सर्वं। १२।।
काव्येन चाचा मद्वलस्मिनेद्यैव।
हुद्वायुर्न्वा वा प्रक्तः स्मायात। १३।।
कुर्माम प्रदत्तकलं परसे
तारायणायेति समर्पयाति।